

-

मध्यकालीन
हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

मध्यकालीन

हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

एम० ए० (हिन्दी सस्कृत) पीएच० डी०

हिन्दी, विभाग,

गवर्नमेण्ट कालेज, नैनीताल

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९९१ ईसवी

दस रुपया मात्र

मुद्रक—श्री. विष्णु चंन ४२ दरमोहन टावर इलाहाबाद ।

समर्पण

संघ साहित्य के सिद्धाचार्य
सम्मान्य श्री परशुराम चतुर्वेदी

को

सादर

अनुक्रम

शुक्ति			
१	तांत्रिक बीजमत	—	—
२	पाषण्डमत	—	—
३	शाक्तमत	—	—
४	कर्मवीर शैवमत	—	—
५	परिशिष्ट तांत्रिक बीजमत	—	—
			१
			४२
			१२१
			१८७
			२३७
			३२६

भूमिका

हिन्दी के मध्यकालीन छंद एबन् वेप्याब काव्य को समझने के लिए इस देश के ज्ञान-मनमन्त्रालयों और साधनाओं का ज्ञान परमावश्यक है क्योंकि काव्य में अस्मिन्मय कृती युग का 'बुद्धिगतक' पूर्ववर्ती बिन्दनपाठ को बिना हृदयगत निये हुए अस्पष्ट ही रहता है। काव्य एक संश्लिष्ट मानसिक-क्रिया है, उसमें कवि की बिन्दनपाठ इतनी संकुल-पठन पर व्यक्त होती है कि उसके बिरनपन के समय हम आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं, कि कवि बिरोध की अपने वर्तमान के प्रति प्रतिक्रिया में मूतकाल का पर्याप्तमात्रा में अभिवेद्य होता है। मूतकाल का यह प्रयास, मूतकाल की पुनर्प्राप्ति के रूप में भी हो सकता है और परंपरा के कुछ अंश को यथावत् स्वीकार करके भी हो सकता है। अस्मिन्मय सम्पूर्ण में रहने से वर्तमान के समाधान के लिए प्रायः कवि और बिचारक मूतकाल की ओर मुड़ते हैं। बिरोधक कवि में 'पूर्णता की व्यास सबसे अधिक होती है। मूतकाल की अपूर्णता कवि के सम्पूर्ण में होने से और वर्तमान में बुद्धि का चराने वाले प्रयोगों के समाधान में मूतकाल के एक क्षीमा तक समय होने से कविगत मूतकाल को केवल रोमानी धृष्टि से देखकर उच्छा गौरवगायन ही नहीं करते अपितु उनकी बौद्धिक प्रतिक्रिया मूतकालात्मक हो जाती है। यह प्रकृति हिन्दी के संतों और भक्तों के काव्य में हमसे अधिक सिद्धायी पड़ती है।

मूर पुनसी, कबीर ज्ञानक, दासू भाति कवियों का काव्य मूल्यन गापकारवक है। वे भक्त और माधव पहले थे, कवि बाद में। इन सर्वप्रथम इन मध्य का उजाड़न इन काव्य को गमनान के लिए अनिवार्य होगा कि इन गतों और केतनों की साधना का स्वरूप क्या है और कौन साधना और भक्ति के लिए मन्त्रण्य आपसक ध मन्त्रण्य अर्थात् साधना की प्रयोगजाभाई, अनएव इन मन्त्रण्यों अथवा प्रयोगजाताओं का बिनास साधना आवश्यक हो जाना है। यही कारण है कि मध्यकालीन काव्य का सर्वोत्तम काली आपोषत उच्छाना-शुभक कर सके है सिद्ध साहित्यिक तथा पूर्ववर्ती उच्छान्यों का सम्यक् ज्ञान था। मध्य

वार्सन काव्य में अभिव्यक्त बिम्बनधारा में शैवमत धातुमत पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत ठाने-बाने की तरह बुना हुआ है। कारण यह है कि पुण्यों के प्रयत्न में परस्पर-विराभी मनों साधनाओं देवी-देवताओं और आचार-विचारों में हिन्दी काव्य के भीमनेत्र के पूर्व ही अंगभक्ति स्थापित की जा चुकी थी। एतद्विराट् राष्ट्र में माना कबीलों आतियों और बगों की सृष्टि पौराणिकों की दूर कृति के कारण विसम्भुनकर सज्जगी मूर्तों की तरह एक ही प्रवाह के रूप में बहने लगी थी। इसीलिए मध्यकालीन हिन्दी काव्य में जो कुछ पुराना है, उसमें आंबिरोप हूँदने के स्थान पर, उनके प्रति अटूट थडा ही गद्दी उसका अनुकरण ही जीवन का उदरेय माना गया है। जो आनोचना है, वह किसी महान जीवन-दान अथवा समाज-दर्शन की प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं है अपितु दुर्बलताओं को दूर करने के लिए है। परिवामय मध्यकालीन काव्य में व्यक्त बिम्बनधारा और साधना का निर्माण त्रिन गृहों में हुआ है, जहाँ पहचान के लिए इन पुष्पक में पाँच मनों का विशिष्ट निष्कार में वर्णन हुआ है। मेरा विश्वास यह है कि मनुष्य की पदचान क जिन बरत की पहचान नहीं हो गयी। मध्यकालीन हिन्दी काव्य के परिपान में ममकाय गम्यंय से त्रिय माना साधना-मूर्तों और बिम्बन मूर्तों के स्वरूप को समझने के लिए इन काव्य की तांत्रिक पुष्पक में व्यक्त मटपूनी है।

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के बिम्बन और साधना को समझने के लिए ही अमुत पुष्पक मरीं विगी मई अतिलु उक्त काव्य की बलमा और भाव की जिना बलमा क हाय गाये गर उपररन कवी की मृष्टि भाव के आधार तथा भासा और अभिव्यक्ति के प्रारो को समझने के लिए भी शैव-मत धातुमत पांचरात्रमत तथा तांत्रिक बौद्धमत का अनुशीलन आवश्यक है। इन सम्प्रदायों की बहु-मा लमदी विरिष कवीं में तांत्रिक ममय संकृति और काव्य में रूप मृत हुई है। अतः अंगभक्ति और बिम्बन को दर्शी मम्ययों में प्रतिष्ठित है। एतदीय म टि-कति अथवा बलमा उपाय के आदी पर साधना का विरत हुआ कग और काव्य दाहि में यह प्रवृत्ति जिगयी परती है अत म न काव्य काव्य का भाव म त्रिन मरीं में बना था उममें म न मम्ययों की बहु-मा लमदी भी दिगता है। उम माक म परिवाम विगता है की रती बर ह म कर्कट म म है कि उमका पदचान मति है कर्कट म मम्यय-विद मरत म म मदी का अम मी री एर कनक मारी और कर्कट मरी बर मर

देखी जा सकती है अतः केवल काव्य के बुद्धितत्त्व की दृष्टि से ही नहीं बल्कि उपमान प्रतीक, भाव और कल्पन-बद्धि की दृष्टि से भी उक्त सम्प्रदायों का अध्ययन आवश्यक है।

किन्तु इन सम्प्रदायों का प्रकाशित वाली समय यह कह देना आवश्यक है कि इनका धर्म-दर्शन (Theology) की दृष्टि से भी महत्त्व है और जो सम्प्रदाय केवल इन्हीं सम्प्रदायों के अध्ययन में रुचि रखते हैं, उनके लिए भी इन में रोचक सामग्री मिल सकती है।

मुझे इन विषयों को निरन्तर समय यह प्रश्न बार-बार पृष्ठा पृष्ठा कि अंततः काव्य के अध्ययन में यदि प्राचीन मन-मत्तास्वरूपों के इनके गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है तब काव्य-अनुशीलन और धर्म-दर्शन में क्या अंतर रह जाता है ? मेरा उत्तर है कि सीमाएँ आपसी बनायी हुई हैं। ज्ञान एक और अंतक है। यदि आपसी बंधों को समझने के लिए धर्म-दर्शन पढ़ना ही पढ़ना है तब काव्य का अनुशीलन यदि कबीर के काव्य को ध्यान में रखकर उन प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की छान-बीन करने से इसमें आपत्ति की बात क्या है ? हिन्दी में भगवद्-गीता का अभाव नहीं है किन्तु एकर दृष्टि व्यापक के बरबर में इनका उपनाम आया है कि भारी बोझों में भी कोई नयी गुणता नहीं मिलती। 'नरो भ्याख्या और 'बैतानिक भ्याख्या' की आशा तो दुःखता में परिणत ही हो रही है।

इसके विनाय मेरा दृष्टिकोण भी काव्य के अध्ययन के प्रति भिन्न है। मैं काव्य को किसी देश या जाति की समस्त संस्कृति का पुण्य मानता हूँ। बैतानिक की तरह इन 'पुण्य' को पहचान के लिए पुण्य के रूप, उसके समाज आदि का वर्णन होना चाहिए। मैं भूमि की परीक्षा भी पुण्य ज्ञान के लिए आवश्यक मानता हूँ अतः भूमि और भूमि में विरहित पुण्य अपना हमारे शब्दों में समाज और समाज में विरहित काव्य—य दोनों विषय मेरी दृष्टि में सम्बन्ध रूप में—एक साथ—आनाचना के विषय है।

इन दृष्टि से अध्ययन करने पर मध्यकालीन काव्य में केवल सत्तर शब्द बनवार और एक ही मरी विवेक आँसु इन काव्य के प्रयोजन के रूप में कुछ ऐसी बाधाएँ मिलेंगी जो गालानिक समाज को धीमग भी करनी है और उनके समर्थन दिशादि का भी विचारयोग्य प्रस्तुत करनी है। आश्चर्य यह होगा है जब

ऐसी घाघरें प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल तक एक अविच्छिन्न शृंखला के रूप में दिखायी पड़ती हैं और कालक्रमानुसार सुन्धी छिपतीं मार्ग बदलतीं और जन के गुप्त में परिवर्तन सातीं हुईं, मध्यकालीन काव्य-यथाह में अपनी विविधता की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए हमें प्रेरित करती हैं अतः यह भी आवश्यक है कि शाक्यमठ शैवमत, पाषाणमत और तांत्रिक बौद्धमत के आदिम रूप को भी हम स्मरण रखें तभी हम इस प्रथम घाघर का ऐतिहासिक योगदान निश्चिन कर सकते हैं और इस घाघर को सहायता से भारतीय समाज के विकास को भी हम समझ सकते हैं।

द्विज प्रकार किसी एक कवि की कविता के अनुशीलन के लिए उसका मानसिक-स्थितिओं अथवा उसका अन्तःकरण की छान-बीन आवश्यक होती है, उसी प्रकार युग-विचार का भी एक अपना अन्वेषण होना है। मेरा निदेश यह है कि मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रतिबिम्बित सामूहिक अन्वेषण के समझने के लिए जहाँ अन्य कर्तों और मापमाओं को विस्तार पूर्वक समझना आवश्यक है, वहीं हम काल के लिए आत्म या संज्ञ-घाघर को समझना भी आवश्यक है। इसलिए इस पुस्तक के लिए मैं दिगी समा-वाचना की आवश्यकता नहीं समझता।

शैवमत शाक्यमत पाषाणमत और तांत्रिक बौद्धमत जतार्थ अन्तिक आत्म शाक्यवादविरोधा आत्ममार्गी आदि मार्गों से अभिविहित किया गया है। यह घाघर उक्त गन्तारों के रूप में संगठित होने के पूर्व सिद्ध रूप में प्रचलित थी इस समय पर प्रकाश कालना आवश्यक प्रतीत होता है। हमने प्राचीन और मध्य कालीन युग शृंखला और मध्यकाल रूप में प्रतीत होने समझा।

पारचाय इतिहासकार और युवातत्परेता बटुमत से बेहिक जायों के भारत आगमन को १२०० ई० पूर्व में मानते हैं अर्थात् यह अंतिम सीमा है। आर्यों का आगमन भारत में माना जाता है। कुछ काल २०० ई० पूर्व में भी माना जाये शायद और भी पहले जायों के युवात्म आए हों किन्तु १२०० ई० पूर्व के बाद में आर्य आगमन मानने पर आया और साहित्य के विकास को नहीं समझाया जा सकता।

हमर कुछ विचारों में आत्म-आगमन की कथा को सर्वथा अस्वीकार और अविज्ञान सिद्ध किया है। अर्थात् आर्यों के आगमन के आचार पर यत् भी सिद्ध हो सकता है कि आर्य भारत में परिवर्तनी एतिया अथवा मध्य एतिया गए। आ-

एने विद्वान यह मानकर बसते हैं कि आर्यों का आगमन प्रमाणित नहीं हुआ तक केवलित इति यह है कि आर्य भारत में रहते थे और पश्चिमोत्तर प्रायों से उतना विस्तार पूर्व और दक्षिण की ओर हुआ। किन्तु अभी तक बहुमत से आर्यों का आगमन एक तथ्य माना जाता है।

बुद्ध विद्वान मिश्र, मैसोरोलॉजिया तथा एशिया के ध्रुवपरिचमकर्तों देशों और हीनों में होने वाली युवाई में प्राप्त सामग्री से आर्य-आगमन को सिद्ध करते हैं किन्तु उमदा समय ई० पूर्व० पाँच सहस्र वर्ष अथवा उससे भी पूर्व निर्धारित करते हैं। डॉ० हर्षे का कथन है कि मैसोरोलॉजिया के राज्य-निर्माता आर्य ही थे और अशोरिया के अनुष्ठान द्वारा आक्रमणों से आग्न हो कर आर्य भारत आए।¹

डॉ० हर्षे के अनुसार वेद-वर्णित मरीचि, मृगु, अत्रि अंगिरा बरिष्ण पुनस्तम, पुनह मनु प्रचेतस-अथ तथा स्वर्धनुष मनु—इन दस प्रजापतियों तथा आशिये अफ्यनस भाग आदि के उत्संग पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। उगाहरत्त मिश्र की प्राचीन जातियों के नाम सर्व प्रायः गिद्ध मरुत्त वात्र जेम जीवा और पौपा के नाम पर हैं। यह भी कहा गया है कि ई० पूर्व ३३३० ई० पूर्व ३००० तक जातियों के उ-उज्य के रूप में संगठित हो गईं। ऊपर पुछना भी कबीरों या जातियों के नाम पशु-वर्णियों आदि पर आधारित है या उच प्रथम उच बाष्प्य वधि, अत्र पनग आदि। किन्तु मिश्र की उक्त प्रायश्चित्तित जातियों का समय ३००० ई० पूर्व है अर्थात् वेदों का समय भी यही मानना होगा यह डॉ० हर्षे का कथन है।

इनके निवाय डॉ० हर्षे एशिया माइनर व फ्रीजिया (Phrygia) व 'मृगु' का ईराक के बार्क वा उर (Warak or Uruk) व 'दुस्रोम' का ईराक के फेनजान (Fenjwan) से मुदास और बरिष्ण का टिनलीन का पुनस्तम से, मीमन्दी से 'वत्रम' का और मध्य एशिया में स्वर्धनुष मनु का सम्बंध जोड़ते हैं। इसी प्रकार मरुत्त के 'रेशे' (RESHEE) मृगि में अफ्यनस का दरवा पना में 'मरुत्त' का, ईराक के शायम प्रदेश में 'वत्रम' का, मैसो-पोलोनिया उच में अफ्यनस और पिरसायस का 'उर' (Ur) का उचदी का मरुत्त व अरुत्त के यह पश्चात्त गवा मरुत्त का तथा मिश्र देश में अन्वैरि का

1 The Trails of the Vedic Civilization in the Middle-East
R G Harsh—K P Bhatnagar Commemoration
Volume. KANPUR, Page 165

सम्बंध स्थापित किया गया है। चास्त्रियन सोड से जो सूर्य-मूक्त मिता है, यह बेर के सूर्य-मूक्त से यथावत् भिन्नता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्वे ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और असीरिया के असुरों से परास्त होकर मरन आए। पुछनों में जिस वेबामुर-संधाम का वर्णन मिलता है वहाँ 'वल्गु' सुमेर-देश के आर्यो और असीरिया के असुरों के युद्ध की मास्यार है।

उनका घोष मुख्यतः 'अन्ध-साधुत्व पर आचारित है किन्तु केवल शब्दों के साथ ही इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संवेदात्मक ही रहता है।

किन्तु एक तथ्य उनका घोष से भी पुष्ट होता है कि आर्य विभिन्न कबीलों में से संगठित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टटिकारक रहे। इस तथ्य से हमारे विषय का घनिष्ठ सम्बंध है।

डॉ० हर्वे का अध्ययन अविष्कार शब्दसाधुत्व पर आचारित है अन्ध-सम्मानना कुछ भी हो बेबल सम्मानना ही प्रमाण नहीं माना जा सकता। इन सम्बंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रो० वैदरिक ह्याक्नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की निधि को पढ़ लिया है और इस निधि के आधार पर उन्होंने परिवर्ती एशिया तथा त्रिपु-वादी के समाज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० ह्याक्नी के अनुसार सुमेर-अशरानियन सम्प्रदाय आर्य-सम्प्रदाय नहीं थी। ई० पूर्व ३००० व १५०० तक विभिन्न इस सम्प्रदाय के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर देश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में अन्न, पृथिवी सूर्य सुन्दरेश आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्वे यह नहीं देख सके कि प्रागैतिहासिक ज्ञान में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी साधुत्व मिलता है और कबीलों के कार्य में किन्तु इनमें यह निश्चय ही होता कि विषय और सुमेर कबीलों के कार्य कबील से। जिस प्रकार बेर में अन्ध देवताओं में लार्स है, उन्ही प्रकार सुमेर देश में भी 'मादुंर' को बड़ा संगर्भ के बांधू देवता माना गया।

वही नहीं, जिन्हें मैं ब्रह्माण्ड की कल्पना भारत से पूर्ण सुमेरु देश में मिलती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के अंश, परीर बन जाने पर विभिन्न अंशों में प्रकट होते हैं, यह विचार सुमेरु प्रदेश में मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विरासत समान व्यवस्था में मन्त्र मिलते हैं क्योंकि विरासत व्यवस्था के अनुरूप ही कल्पित होते हैं।

परवर्ती विदेह की तरह सुमेरु इकाद्वियन सम्प्रदाय में आकाशदेव 'वन या 'वनम या। उसकी पत्नी की अंतम। पृथिवी का देवता या इन्मिन या इन्मिन उमरी देवी थी, निररित। जल का देवता या ह्य या ह्यी और उसकी पत्नी की 'बनमिन। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, रवि आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह वहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ के विद्वान् पौराणिक साहित्य को देखकर यह कहना कि वे आर्य थे, अपमानित लज्ज है। प्रो० हाजनी भी सुमेरु-सम्प्रदाय की स्वर्ण सम्प्रदाय मानते हैं।

हमारे लिए महाकूर्म तन्त्र यह है कि सुमेरु की 'हरार' नामक देवी अत्यन्त शक्तिशाली थी। भारतीय छवि-पूजा से 'हरार' पूजा का अद्भुत सादृश्य मिलता है किन्तु पौराणिक युग में छवि-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को प्रेम और उजब का देना माना जाता था और इसीलिए छवि-मन्त्रों की तरह 'हरार-सम्प्रदाय' में 'शोम' व 'गुनशासन' और 'कैपाशुति' प्रचलित रही। जादू का सम्बन्ध बर्ष के आरम्भिक रूप में सर्वत्र मिलता है। वर्षों के दत्त, वर्ष की तरह सुमेरु में भी दत्तों और दत्तों का प्रचार था। रोगनाश के लिए भूतविद्या का प्रचार अत्यन्त ही तरह यहाँ भी मिलता है। तांत्रिक मन्त्रों की तरह रहस्यमयता का सम्बन्ध भी छवि-आचार्य के साथ था।

हाजनी टिप्पणियों का हकीकत के साथ आर्यों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। सुमेरु-नीबामियों के साथ नहीं यह स्वरूपीय है। हकीकत भी अब भारतीय परिवार की मानी जाती है। इस आस्था में पारिवारिक सम्बन्ध मिले हैं, जिनमें भारतीय चरित्रों, जादू के मन्त्र तथा यंत्र मिलते हैं। यंत्रों का वर्णन भी मिलता है। उक्त रोगनाश के पारिवारिक दत्तों का मन्त्र दिया पूर्ण १६०० वर्ष माना है। हकीकत आर्यों के शिक्षक 'हृदय' भी साथ आर्य थे। इनका वर्णन बेन्टि देना के उल्लेख मिलते हैं। हाजनी के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के आर्यनाश एशिया का परिचय था आर्यों का धर्म था। इस बात में आर्य उत्तरी मेषोपोटामिया का पंच था। अश्वत्थ और रथ-दीर्घों के उल्लेख हकीकत में मिलते हैं। हाजनी के

सम्बन्ध स्थापित किया गया है। आम्बियन शोध से जो सुर्ब-सूक्त मिला है, वह वेद के सूर्य-सूक्त से समानता मिलता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्वे ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और बसीरिया के असुरों से परास्त होकर भारत आये। पुराणों में जिस देवासुर-संग्राम का वर्णन मिलता है वहाँ बभ्रुव सुमेर-देश के आर्यों और बसीरिया के असुरों के युद्ध की यादगार है।

उक्त शोध मुख्यतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है किन्तु केवल शब्दों के साम्य से इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संवेहास्पद ही रहता है।

किन्तु एक ठप्प उक्त शोध से भी पुष्ट होगा है कि आर्य विभिन्न कबीलों में से संघटित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टटिमरक रहे। इस ठप्प से हमारे विषय का बलिष्ठ सम्बन्ध है।

डॉ० हर्वे का अध्ययन अधिकतर शब्दसादृश्य पर आधारित है अतः सम्भावना कुछ भी हो केवल सम्भावना को प्रमाण नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रो० बैडरिक ह्यान्नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ लिया है और इस लिपि के आधार पर उन्होंने पश्चिमी एशिया तथा सिन्धु-खाड़ी के समाज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० ह्यान्नी के अनुसार सुमेर-अककादियन साम्यता आर्य-सम्भता नहीं थी। ई० पूर्व ३०० से १९०० तक विकसित इस साम्यता के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर-देश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में अन्न पृथिवी सूर्य मृशवेक आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्वे यह नहीं देख सके कि प्राचीन इतिहासिक काल में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी सादृश्य मिलता है और कबीलों के नामों में भी किन्तु हमसे यह सिद्ध नहीं होगा कि मिश्र और सुमेर के कबीले आर्य कबील थे। जिस प्रकार वेद में अष्ट देवताओं में स्थानी है, उसी प्रकार सुमेर देश में भी 'मार्सुस' को बहुत संघर्ष के बाद खेच देवता माना गया।

यही नहीं निरह में प्रशासन की कल्पना भारत से पूर्व सुमेर देश में मिलती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के बीच, परस्पर बन जाने पर विभिन्न क्षेत्रों में प्रविष्ट होते हैं, यह बिहार सुमेर प्रदेश में मिलता है। इनका तात्पर्य यह है कि इन प्रकार के बिस्वाद्य समान व्यवस्था में सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि बिस्वाद्य व्यवस्था के अनुसृत ही कल्पित होते हैं।

परबतों प्रदेश की तरह सुमेर उच्चान्वित सम्यता में आभाषादेव बन पा 'अनम या। उखरी पत्नी की अंतम। पुर्वीका देवता या इंसानिय या इम्मिस उखरी देवी की नितान्त। जप का देवता या इय या इन्की और उखरी पत्नी की 'बमिन्। इसी प्रकार पूर्व, चन्द्र, रति आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह यहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ के बिजाम पौषणिक मामुय को देगडर यद कहना कि वे कार्य में अग्रगणित तत्त्व है। प्रो० हाजनी भी सुमेर-सम्यता को स्वतंत्र सम्यता मानते हैं।

हमारे लिए महात्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि सुमेर की 'इवर नामक देवी अथ पिठ प्रथम थी। भारतीय एलि-पूजा से 'दरर पूजा का अद्यतन सादृश्य मिलता है किन्तु शाण्डिल्यिक युग में एलि-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को ब्रह्म और उग्र का देवता माना जाता था और इसीलिए एलि-सम्यदाय की तरह दरर-सम्यदाय में 'ब्रह्म के गुणगान और वैश्यावृत्ति प्रचलित रही। बाद का सम्बन्ध यहाँ के शार्विमरु रूप में सर्वत्र मिलता है। तंत्रों के बीच यंत्र की तरह सुमेर में भी तंत्र और दर्ता का प्रचार था। रोगनाश के लिए श्रुतिया का प्रचार अपवर्षिद की तरह यहाँ भी मिलता है। तात्रिक सम्यदाय की तरह सम्यमयता का सम्बन्ध भी उक्त आचार के साथ था।

एजुनी हिन्दूत या हती जन के साथ भावों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं सुमेर-निवासियों के साथ नहीं, यह स्वरणीय है। हनीभाषा भी अथ भारतीय परिवार की भासी जाती है। इन भाषा में धार्मिक एव्य विधि हैं त्रिनमें धारणी धार्मिकार्थ जात्र के मत्र तथा गीत मिलते हैं। यज्ञों का एव्य भी मिलता है। उक्त वेगडर इन धार्मिक दर्तों का सम्य दिय पूर्व १६०० वर्ष माना है। हनीभाषा भविष्य के निरवय 'दृष्टिय भी धायर कार्य थे। इनका यनी बेनिद दवों व उम्मेग्र मिलते हैं। एजुनी के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के आशराम एजिया का परिवर्षि भय भावों का एव्य था। इन बात में कार्य उखरी वैशतोणमिया तत्र एव्य रूप थे। अथवागत और एव-पौत्रों के उम्मेग्र हनीभाषा में मिलते हैं। एजुनी के

अनुसार ई० पूर्वं ४००० से ३००० तक अस्व का उल्लेख नहीं मिलता । इनके अनुसार यह सम्भव है कि ई० पूर्वं ३००० से २००० क बीच कभी हिट्टायट प्रेषण से आर्यों ने भारत के पश्चिमीभाग पर अधिकार कर लिया हो और आर्य आर्यों के प्रवाह आते रहे हों । इस प्रकार ह्याजनी के अनुसार प्रारम्भिक आर्यों का अग्रिम स्थान सीरिया, पूर्वी एजिया माइनर तथा उत्तरी मैसेरोटामिया था ।

इन हत्ती लोगों या प्रारम्भिक आर्यों में १००० देवता थे । सूर्यदेव पूज्य थे, इनका बलिपशु था कुषम । वीरता का देवता 'हनर' या 'हनर्या' या इसीसे शायद 'इन्द्र' का विकास हुआ । अर्थात् देव भारत में सिद्ध हुए किन्तु उनके पूर्व आर्यों के देवता थे, जन्ही से भारतीय देवताओं का विकास हुआ ।

सिन्धुघाटी की निधि पढ़कर ह्याजनी ने सिद्ध किया है कि सिन्धुसम्प्रदाय में आर्य सम्प्रदाय का 'पूर्वज' मिलता है अर्थात् प्रारम्भिक आर्यों का सम्बंध मोहन जोदड़ो की सम्प्रदाय से भी था । खोल नं० ८१ में उक्त लेखक ने 'नाट्य' शब्द पढ़ा है जिसका स्पष्ट अर्थ 'नटयज' से है । 'वात्य' शब्द का भी उल्लेख मिलता है । वात्य का अर्थ वा दिव्य पत्नी या ऋषि । ह्याजनी के अनुसार संस्कृत भाषी आर्यों के अन्तर्गत एक हजार वर्ष पूर्व ही सिन्धु-सम्प्रदाय अनेक 'पेट्रो-इन्डियन' देवताओं को मान चुकी थी ।

सिन्धु सम्प्रदाय में कोठी कुजी, कुधि कुधिय या कुजीय देवता का उल्लेख मिलता है । इसी तरह शंक्रुत्य शकुनि (पत्नी) तथा ययश (yayash) के उल्लेख हैं । ययश नाम पशुओं से सिन्धुवासियों की रसा करता था । नं० ६२ के चित्र में एक 'यय' मिलता है, दूसरे पार्श्व पर बुद्ध-युवा चित्रांगी गई है । पीपल का बुल भी अंकित मिलता है, जिस पर देवता का विकास है । एक पागी का बहान् या बड़ी नौका मिलती है जिसके छान नाविक भी है । जो अर्थात् मिलते हैं जो 'विष्णु के वरुणियों' का स्मरण दिताते हैं । यह स्मरणीय है कि विष्णु द्वारा विरचमाय का यह परीक उत्तरी मैसेरोटामिया में १६३० ई० में मिल चुका है और इसका समय २६०० ई० पूर्व है । ह्याजनी के अनुसार yayash का अर्थ है, 'यात्रा' अर्थात् विष्णु की यात्रा से 'ययश' का सम्बंध स्थापित किया गया है ।

सिन्धु की की घाटी में अस्तित्व पशुपति की योगमल मुद्रा भी अंकित मिलती है । पशुपति की छील पर लिखा है—

"Here is the Sacrificial fee for god kueya"

इस प्रकार शिव की पत्नी दुर्गा का भी उल्लेख मिलता है—जो सिद्धवाग्िनी है । शिव के साथ हाथी भी मिलता है, गणपति का प्रारम्भिक रूप घायक मही है ।

एक अन्य ताबीज पर शिवा (Shiva) देवी का उत्सव मिलता है । इसमें देवी बिना सेटी हुई है और उसके पेट से एक घोड़ा निकल रहा है । इसी ताबीज की पीठ पर एक मनुष्य एक स्त्री को बलि दे रहा है । प्रा० हार्जनी ने प्राचीन शास्त्रमय के विषय में स्पष्ट लिखा है—स्त्री की बलि और दोरकहिनी दुर्गा में यह स्पष्ट है कि देवी को बलि दी जाती थी और यह देवी रक्त शिवा और भ्रमंकर थी । एशिया माइनर में भी इस देवी का सम्प्रदाय प्रबल था । देवी से मयमौल्य व्यक्ति ताबीजों पर स्वस्तिक चिह्न बनाते थे । शिवा या शिवा देवी का प्रतीक यंत्रिका था । देवी पर उरबोज को भी बलि दी जाती थी ।

त्रिपु घाटी में पर उग्रहिण या उषा का भी उल्लेख मिलता है । इसी तरह एक अंगुरा या अंगु देवता का उल्लेख है जो वेद के आग्नि से सादृश्य रहता है ?

इन प्रकार प्रारम्भिक भावों देवताओं का आग्निरोध होता जनक देवताओं को माना गया है । एतोदेव याे वह ही विष्णु हुए, नृपयण ही शिव बने और शन्तारा (Shantash) ही इन्द्र के रूप में विनिर्दिष्ट हुए । प्रा० हर्षे ने विवरण दे० हार्जनी ने प्रमाणित किया है कि यबीमेल के देवताओं का प्रारम्भिक भाव देवताओं पर प्रभाव पड़ा था ।

इन प्रकार हार्जनी के अनुसार २००० ई० पूर्व के वासुपात्र एशिया माइनर, उत्तरी मीरिया तथा उत्तरी पश्चिमी पैसोरोलामिया में त्रिपु घाटी में आकर लोग बस गए होंगे । उनके बाद २००० ई० पूर्व, इबिड़ों का आक्रमण त्रिपु की घाटी पर हुआ हुआ और तत्पश्चात् वेनिच भाषी का आगमन हुआ हुआ जिन्होंने इबिड़ों और अन्य त्रिपुवाशियों को बसु बसा ।

यदि प्रा० हार्जनी विष्णु सिद्धि को पढ़ सक है और उन्होंने पहले में द्रुम मही को है तब पश्चिमी एशिया में प्रारम्भिक भावों का सम्बंध और प्रारम्भिक भावों और परबर्ती बलि भाषी का सम्बंध स्पष्ट हो जाना है ।

विष्णु यदि प्रा० हार्जनी के विवरणों को अर्थात् पूर्व में भी माना जाय तो भी विष्णु घाटी में पुरापात्र में एतना स्पष्ट है कि विष्णु घाटी में वास्तु

बैदिक धार्यों के देवताओं से सावुर्य हा लेकिन मूलतः सिन्धु घाटी का धर्म और पूजा बैदिक धार्यों से भिन्न थी ।

सिन्धु घाटी में शिव और शक्ति की उपासना मंत्र, कृष्णपूजा, नागपूजा, बलि, यंत्र आदि की प्रमुखता है क्योंकि इसे हम 'प्रारम्भिक भारतीय धर्म' कह सकते हैं किन्तु वेदों में यंत्रों की प्रशंसा है । इसके अतिरिक्त पुरव देवताओं की प्रशंसा है वेदियों नहीं इतनी प्रशंसापूर्वक नहीं हैं । अतः बिबेता धार्य धर्मों की किस प्रकार उत्पन्न करना बिना वा, संकटन बिना वा, इसी प्रकार अन्तर्गत धर्म भी पर्याप्त बिना वा । देवताओं की सावुर्य अवश्य बिना सफ़टा है परन्तु बैदिक धर्म और देवतावाद को धार्य सर्वथा 'अपना मानकर उत्तर धर्म करते थे ।

शुद्धेय का देवतावाद मुख्य प्रधान है । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्राचीन उर मातृसत्तात्मक व्यवस्था को धार्य कबील पीछे छोड़ चुके थे जो उनमें मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्गत मिलते हैं । यह भी प्रमाणित होता है कि अतिप्राय कबीलों में मातृसत्तात्मक व्यवस्था का कुछ अन्तिक प्रचलन वा किन्तु समस्त बैदिक कबीलावाद विद्वत्सत्तात्मक वा । इसके विपरीत सिन्धु घाटी की सम्प्रदाय में शक्तिपूजा के प्रमाण अन्तिक मिलते हैं अतः यह सम्भव है कि नोडन जोशको और हकपा की सम्प्रदाय में मातृसत्तात्मक व्यवस्था की भाषा अन्तिक हो किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्राग्बैदिक युग में जाहू, धर्म तंत्र शक्तिपूजा बलि यंत्र आदि का प्रचार अन्तिक कबीलों में अन्तिक प्राचीन काल से बना आ रहा था । शुद्धेय का धर्म इनसे भिन्न है क्योंकि वह मूलपरक और मुख्य देवतावादी है ।

शुद्धेयिक युग स्पष्टतः कबीला युग वा अन्तिक बैदिक युग में अन्तिकपरक नाम बहुत मिलते हैं । स्वयं बैदिक अन्तिकों के नाम अन्तिकपरक हैं—शाकल (सर्व), माहूक (मेहक) शार्वन् (शेर) तैतरीय (तीसुर) बाण्ड (शूकर) श्रावन् (बकरा) आदि । इसी प्रकार अन्तिकों के नाम भी अन्तिकपरक हैं । अन्तिक यह है कि बैदिक कबीलावाद का आन्तिक आचार क्या था ? हम बिना में बिना है किन्तु प्रारम्भिक वेदों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पशुधारण-ध्यान ही यह व्यवस्था थी जिसे अन्तिक प्रारम्भिक सोमनों में पशुधारण व्यवस्था की महायुग बनी और उत्तर अन्तिक अन्तिक अन्तिक प्रमुख हो गया । पशुधारण व्यवस्था में कबीलों के मुखिया 'राजा' होते थे और अन्तिक उत्पादन व्यवस्था में अन्तिक उत्तर बैदिक काल में अन्तिक कबीलों के स्थायी रूप से बस जाने पर और कबीलाई समता के बिना अन्तिक होने पर 'राज्य व्यवस्था का बिना

हुआ और अन्ध न्याय और दण्ड तथा बाध न 'आय और दूध' — इन बगों के स्थान पर आत्मज्ञान, राजिय बरप और दूध बगों का विनाश हुआ। बगीचों के रूप में संघटित आयों में बगों के रूप का विकास हुआ किन्तु इनके साथ ही बगोता व्यवस्था से अधिक प्रगतिशील शक्ति व्यवस्था और राज्य व्यवस्था का विकास हुआ जिसमें माना बगोत में बगों में विभाजित होकर एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहे थे। 'इंतेपेन' अमेरिकी युग से लेकर उत्तर अमेरिकी नाम तक अर्थात् महाकाव्यों के युग से पूर्व तक यही उच्च सामाजिक विकास हुआ और इसी अवधि में वैदिकधर्म और तांत्रिकधर्म का समानांतर विकास के साथ साथ परस्पर प्रभाव पड़ने भी हुआ।

अन्ध के मंत्र अधिकतर पुराने देवताओं को संबोधित किए गए हैं किन्तु इनका अर्थ यह नहीं है कि इन बग में देवियों का कुछ भाग महत्व नहीं है। अंगन विद्वत्कारमक व्यवस्था में प्रार्थना मानवकारमक व्यवस्था सर्वथा विरुद्ध हो नहीं सकती थी। इनके मिला अनाय आदिवास्त्रियों का भी प्रभाव रहा होगा। अन्ध के अन्ध के परबनों दशम मंडल में प्रसिद्ध आग्नेयी न मंत्र हैं जिनमें धर्मन माते रूप में बलिष्ठ है। शक्ति इसी देवी को संबोधित करते हैं। इसी युग में बाणों के चार रूप — पुरु, परयन्ती मध्यमा और बगरो मिलने हैं। इनके विनाय दशम मंडल में ही धर्म का वर्णन प्राप्त है। यह धर्म, शक्ति और मनुष्य को अभिनात्मिक देवी है। यहाँ शिव शक्ति का रूप दण्ड और शक्ति का रूप में मिलना है। इनके विना विनीतानी भद्रा मूर्धा सरसा दना दण्ड पत्नी महिषुषी और भारती आदि देवियों के उल्लेख भी मिलते हैं। दशम मंडल में एक पुरु 'गो मूक' मिलता है। इसी बग के शक्तिमूक ने शक्ति 'बानी' का अर्थ बताया है। इसके विनाय दण्ड, अहिर्बुध्न्य और अम तांत्रिक देवताओं का पूर्ण रूप है।

निश्चय रूप से उक्त बगों में परबनों तांत्रिकों ने प्रेरणा प्राप्त की है परन्तु बगों का मुख्य शोध अर्थात् दण्ड है। यह समर्थन है कि अर्थात् को उत्तर वर्तमान में भी अन्ध तीन बगों के समान प्राप्त नहीं हो पाया।

अर्थात् के विरोधात् थी दण्ड के अन्ध के अनुसार अर्थात् के अन्ध शिव परंपरा के अर्थात् अर्थात् का अन्ध उत्तर और तांत्रिक विचारों द्वारा 'शक्ति'

प्राप्त' में विश्वास किया था। अथर्ववेद का अथि पुरोहित जादूगर, वेद्य और
 प्रप्य होता था। प्रप्य यह है कि जादू और अग्निचार-श्रदान अथर्ववेद शुद्ध कार्य
 परंपरा में विकसित हुआ अथवा अथर्ववेदियों में अनाथ आदिवासियों से ज्ञान
 उबार लिया। श्री शिन्दे का कथन है कि अथर्व वेदगत अनाथों से ही नहीं यह
 किया गया क्योंकि जादूगोरी या जादू-विद्या आर्यों से भी प्रचलित की किन्तु यह
 श्री शिन्दे श्री मानवे है कि जादू-विद्या और अग्निचार अनाथों से भी यह किया
 गया होगा क्योंकि धामा में अनाथ पुरोहितों को प्रभाव सीध करने का एक मास
 इन का उनके ज्ञान-दोष में उनसे भी अधिक प्रवीणता प्रकट करना। बस्तुतः
 अथर्ववेद में एशिया माइनर मिस्र मेशोपोटामिया और सिंधु वाटी में प्रकटित
 धार्मिक अथवा प्राथमिक विश्वासों को स्वीकार कर लिया गया है जो मुख्यतः
 जादू-विद्या और अग्निचार-श्रदान का और जिसमें बलि योग अक्षयुजा आदि का
 अधिक प्रचार था अतः तांत्रिक धर्मों का आदि स्रोत प्राथमिक धार्मिक श्रौत
 व्यवस्था में देखा जा सकता है। यही कारण है कि आर्यों द्वारा वर्णवर्गीय सम्प्रदाय
 की स्थापना का प्रारम्भ से ही इस तांत्रिक जादू ने विरोध किया है और ईसा की
 द्वितीय शताब्दी के बाद जब वर्णवर्गीय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्द्वार बहुत तीव्र
 हो गये हैं, तब यह तांत्रिक जादू शीघ्र ही अक्षयुजा पादपत्रमठ और तांत्रिक
 मंत्रमठ के रूप में संघटित होकर वर्णवाद और वर्णवाद का योग विरोध करती है
 अतः अक्षयुजा में अथर्ववेद प्राथमिक अथवा अनाथ विश्वासों का प्रतिनिधित्व करता
 है। यह तो प्रकृत ही है कि अथर्ववेद की स्वीकृति के लिए बहुत से अथर्व वेद मंत्र
 अथर्ववेद में मिला दिए गए हैं।

अथर्ववेद में जादू-विद्या अग्निचार कृत्या आदि के अतिरिक्त जिनका उन्हीं में
 विकसित हुआ तांत्रिक-धर्मों की अतिथि परंपराएँ भी मिलती हैं। श्री सर्वप्रथम पिण्ड
 और ब्रह्माण्ड, बुद्धात्म, सूक्ष्मकामरूप प्राणरूप और कामरूप का विस्तार से
 वर्णन मिलता है। तंत्र और आगम मन्त्रि के भी स्रोत हैं और यह मन्त्रि
 बस्तुतः देवता को क्रिया द्वारा प्रसन्न करने की क्रियाओं में निहित है। मन्त्रि के
 भी दो रूप दिखायी पड़ते हैं—प्रथम में क्रियाओं और मंत्रों द्वारा देवता को बरदान
 या सिद्धि के लिए विवश कर दिया जाता है और द्वितीय में देवता की श्रद्धा पर
 निर्भर रहना पड़ता है। मध्यम-काल मन्त्रि में केवल देवता की श्रद्धा या अनुग्रह पर
 ही बल दिया गया है जबकि अथर्ववेद में और प्राथमिक धर्मों में यह प्रथम प्रस्तर
 को 'मन्त्रि से विवश रूप में मिलती है। इसी प्रकार उन्हीं में 'वंचक' का मन्त्र

उत्पन्निक है और मंत्र का चमत्कार सबसे अधिक अथर्ववेद में ही किया पड़ा है।
 भौतिक श्रमणियों में इसी शक्ति का विनाश निश्चय है।

अथर्ववेद में राक्षसों अर्थात् अनापों की 'माया का वर्णन अधिक है।
 'अग्निचार' में अनापों का विशेष सम्बंध जान पड़ा है। अग्निवयुक्त ने 'तन्नामोऽहं'
 मंत्रों की परंपरा में अनेक निराश्रयों का उल्लेख किया है। उनका अनुसार यश
 और दानव भी उल्लेख्य हैं।^१ तंत्रों के नामों से भी समझा है कि यह वास्तव अथर्ववेद
 परंपरा से संबंधित है। 'मार्तण्डमंत्र' और 'निशाचरुमंत्र' जैसे नाम इसी
 स्वीकार किए गए हैं।^२ तंत्रों में ज्ञान साधना और शक्ति के अतिरिक्त भौतिक
 ज्ञान पर भी बल दिया गया है, रसायनशास्त्र, ज्योतिष आधुनिक और अतीतकाल
 शास्त्र-परंपराओं में ही विरहित हुए हैं और अमरों नामों आदि में भौतिक-
 ज्ञान अधिक विरहित था ज्ञान इन दृष्टि में भी तंत्रिक परंपरा का परंपरा से
 नहीं अधिक अनाप-परंपरा की अधिक है। अथर्ववेद में स्पष्टता बड़ा गया
 है कि आपत्ति को आधुनिक माया में उत्पन्न किया है।^३ जिसे 'ज्योतिषिक' कहा
 जाता है उसके मोन भी अनाप-परंपरा में अधिक मिलते हैं। 'सर्वभूत अथर्ववेद'
 में इन स्वीकार किया और बाद में आप-परंपरा में भी इसका अन्वय दिया गया
 कि भी अथर्ववेद की परंपरा में तंत्रिक परंपरा का इस 'ज्योतिषिक पर
 विनाशितार रहा।

अथर्ववेद में माया का प्राण की इसी प्रधानता है कि भी एन० वे० शिल्प
 तो ब्रह्म के साथ माया का सम्बंध जानने में अथर्व-परंपरा का ही उदाहरण मानने
 है। ब्रह्म अपनी माया से ही यह सृष्टि रचना है और माया द्वारा ही धारण
 करता है। इसे चतुर्दश अथर्ववेद की यह माया या प्राण का सम्बंध देवताओं
 में अनाप 'ब्रह्म य जोड़ कर 'मायाका' का वर्णन किया और तंत्रों में विष्णु का
 जिन की एक शक्ति के रूप में इस 'माया को स्वीकार कर लिया। ब्रह्म को
 यज्ञमाया प्रकृत है। इस प्रकार एक आदिम विनाश ही बाद में 'मायाका'
 के रूप में सिद्ध हुआ।

इस विनाश अथर्ववेद में पराकार का विनष्ट वर्णन मिलता है। यदि
 मायम का आप्त स्वीकार किया जाय तो वाणी विनष्ट तन्पूर्ण तंत्रिक ज्ञान की
 सृष्टि मिलता है।

(१) तन्नामोऽहं—३१ आदि—पृष्ठ ३८२ ८८

(२) अथर्व—वाण १, अनुवाक ३ मंत्र ३ और ५४ ४

यह तो स्पष्ट ही है कि अवशेष की वातुविद्या और धर्मिचार में पंचमय
ब्रह्मा पंचमकार का प्रयोग होता था और यही प्रभुति तंत्रों में मिलती है ।

यही तन्त्री तांत्रिकों की प्रसिद्ध 'ब्रह्मसाधना' का भी स्पष्ट वर्णन ब्रह्मविद में
मिलता है जो आगे चल कर 'तांत्रिकयोग' की विशिष्टता बन गई । यह स्मरणीय
है कि यह 'ब्रह्मयोग', पञ्चमय के 'योगसाधन' में नहीं मिलता । ब्रह्मयोग का निष्पन्न
तांत्रिकों की विशिष्टता है जो आगे चल कर बीरब्रह्मण्डल द्वारा प्रचारित होकर
नादों के माध्यम से सन्तकर्मियों तक पहुँचा—

ब्रह्मब्रह्म ब्रह्मण्डल देवानां पुरोधाया ।

तस्यां हिरण्यव' काश' स्वर्गो ज्योतिषा कृत' ।

बाठ कर और नी द्वार वाली देवताओं की बर्बात इन्द्रियों की यह अपोधा
पुरी है उसमें हिरण्यमय स्वर्गमय कोश ज्योति से बाहुत है ।

'योग' का भी स्पष्ट वर्णन ब्रह्मविद में मिलता है—

न श्रेष्ठे यस्य रोमसं निपेक्षुषो विबुधम्भे ।

श्रेष्ठो यस्य रज्जुमेखरा सक्त्यो रक्तपूर क्लिबस्मवित् उत्तम ।^१

मंत्र का धारण यह है कि आसन लगा कर बैठने वाला वही योगी उत्तम
होता है जिसका रोम भी बचल न हो ।

यह भी स्मरणीय है कि ब्रह्मविद में सात्य उपस्थियों और बोकियों की
अत्यधिक वर्णना की गई है ।

तंत्र की उत्पत्ति पर 'सोत्रवत' नामक ग्रन्थ में श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय
के विस्तार से ब्रह्मण्डल काबा है । 'सोत्रवत' में भारतीय भौतिकवाद के पुनरुद्धार
का प्रयत्न किया गया है क्योंकि भारतीय दर्शनों पर लिखने वाले सेबक धर्मिचारण
ब्रह्मवर्मा (आइजिगलिस्ट) रहे हैं जो उन्होंने भारतीय भौतिकवाद को महत्व
ही नहीं दिया उसे निरुद्ध रूप में प्रस्तुत करके आर्थात्मिक और अन्य मोरामतों की
ओर मिला की है । 'सोत्रवतवत' के अतिरिक्त श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने
तांत्रिक वाद को भी भौतिकवादी धारा के रूप में स्वीकार किया है ।

तांत्रिकवाद की उत्पत्ति की चट्टोपाध्याय ने भारतीय कृषि व्यवस्था के
बाद कल्पित की है । कलाकलात्मक और नृसिंहान के अनुसार कृषि का आरम्भ

त्रियों द्वारा हुआ क्योंकि पुरुष आघेद करता था तब त्रियों पर के आस पास कम के पीछे उभा मेडी थी मयबा स्वर्ग उगे हुए सौर्षों की रता करती फ्रमस पाने पर उतरी बार्ने छोड़ती और बाने निष्कासती थीं। तात्रिक धर्म में त्रियों की प्रधानता है, स्त्री शक्ति की ही पूजा होती है और 'शक्ति ही बड़ा स्वस्व है मय' की श्ट्रोभाष्याय का अनुमान है कि तात्रिक धर्म शारत्त्रिक श्रुति के समय से बना था रहा है।

किन्तु इस सम्बंध में मेरा निवेदन यह है कि तंत्रों में केवल श्रुति-सम्बंधी आचार ही नहीं है। बल्कि तंत्रों में 'मुक्तमौल सम्बंध' और नियमों के विच्छेद जाने की प्रवृत्ति अधिक है। इससे यह स्पष्ट है कि आदिमशास्त्रवादी व्यवस्था की वादगार तंत्रों में सुरक्षित नहीं आई है और क्यों क्यों और आश्रितों में विभाजित समाज के विच्छेद तंत्र कीलाई समाज और स्वच्छन्दता के प्रचारक है। नवीलाई व्यवस्था में जिस सोपान से तात्रिकधर्म निष्पत्ता, यह कहना कठिन है क्योंकि इसमें प्राचीन युग का अनुमान ही सम्भव है।

श्री श्ट्रोभाष्याय का मत है कि सामाजिक विकास में मानु-शत्रुत्य दो सोपानों में विभाजी पड़ता है। शारत्त्रिक आघेद-अवस्था में मानु-शत्रुत्य या तब नारी पुरुष के साथ मिल कर विच्छेद करती थी और वापद शारीरिक बन्धन भी कम न थी किन्तु आघेदक-व्यवस्था के अन्त तक आघेद का कठिन कार्य पुरुष करने लगा और हस्तन की बाधा के कारण पर का बाध अधिकतर त्रियों करने लगीं। अतः पुरुष प्रभुत्व स्थापित हुआ किन्तु आघेदक पुरुषों का साथ न देखर त्रियों ने उससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि वह समाज के पीछों की पर के आस पास उभाने लगीं और अन्त का प्रयोग भोजन में होने लगा, अन्त मानु श्रमाय पुनः बढ़ा और तंत्रों में श्रुति सम्बंधी आचार अधिक होने से तात्रिकधर्म की उत्पत्ति का सम्बंध शारत्त्रिक श्रुति के साथ जोड़ा जा सकता है किन्तु शारत्त्रिक आघेदक अवस्था में मुक्तमौल सम्बंध स्थापित था और तंत्रों में शौन-स्वार्त्त्रिक या प्रचार है तब यदि कोई बड़े टि तंत्रों का सम्बंध आदिम शारत्त्रिक-व्यवस्था से था, तब क्या उत्तर होगा? अतः मेरा निवेदन यह है कि तात्रिक मत आदिम शारत्त्रिक अवस्था से केन्द्र कीवादी समाज के पूर्व तक की सम्पूर्ण 'नवीलाई व्यवस्था की वादगार है। और बर्बन्दाई समाज से इसी 'वादगार' की प्रेरणा लेकर, तात्रिक शताश्रितों तक बढ़ते रहे हैं।

यह एक छय है कि तंत्रों में नई आचार श्रुति सम्बंधी प्रतीक होने हैं। श्री श्ट्रोभाष्याय के अनुसार तंत्रों में 'आमाचार' अर्थात् वाया + आचार =

द्वियों का आचार स्वीकृत है। श्री अट्टोपाध्याय कहते हैं कि 'वद्वन्मेषसाधना' में ऋषि शरीर के स्वान हैं क्योंकि प्रत्येक ऋषि में एक-एक विक्रोध मिलता है। प्रत्येक ऋषि में एक-एक शक्ति की अवस्थित भाषा गया है। तांत्रिक योग का रहस्य है— प्राणायामादि द्वारा मुसाधारस्थित शक्ति को जाकृत कर सहस्रास्थित शक्ति-माम से एक करना। यही अर्द्धसाधना है। इस प्रकार तांत्रिक योगशाधना 'स्त्री बनने का प्रबल माध है। इस व्याख्या द्वारा श्री अट्टोपाध्याय यह सिद्ध करना चाहते हैं कि इषि की उत्पत्ति के कारण और इषि-आचारों से सम्बद्ध होने के कारण तंत्रों में शरीर की महिमा का पावन है। इसके सिवा यह कहते हैं कि पाश्चमरी बेबी का स्पष्ट इषि से सम्बन्ध है 'कुम्भापुत्रा' में 'पूर्ववट के ऊपर पुष्प पद्मादि रहे आते हैं। 'बेबीपत्र' में विक्रोधों की स्वाध्या की जाती है। उर्वरतामन्त्रमन्त्रमन्त्र में श्री विक्रोध रहता है जो योनि का प्रतीक है। महासाधना में भी योनिपुत्रा होती है। श्री अट्टोपाध्याय कहते हैं कि 'योनिपुत्रा' द्वारा योग आधा करते कि फलस अच्छी होगी। इसका अर्थसाधने यह प्रथा है कि अनाहुति होने पर शिवा रात में नम होकर निकसती है और बिबबाध है कि इससे बर्पा होती है। इसी प्रकार 'सुपुष्प' की पुत्रा और 'सिद्ध' के प्रति आकर्षण भी अविद्ध उत्पादन के लिए था। पंचमन्त्र में मध और मैत्रुण का ही अर्थिक महत्त्व है। अट्टोपाध्याय श्री कहते हैं कि यह श्री उत्पादन के प्रति शक्ति के कारण था। मध की कर्मीलों में आज तक उत्पत्ति का सहस्रमक तत्त्व माना गया है और मैत्रुण का महत्त्व संज्ञान और अन्न की उत्पत्ति के कारण था। इस प्रकार सम्पूर्णतादि-साधना इषि सम्बन्धी जादू की प्रिया भाष है। इन प्रियाओं से लोग समझत थे कि उत्पादन अविद्ध होगा।

इस व्याख्या में अत्यधिक सरलीकरण प्रतीत होता है पर यह व्याख्या सर्वथा भीति और आकर्षक है। तंत्रों के विद्वानों ने श्री अट्टोपाध्याय के पूर्व यह नहीं देखा कि साधनाएँ सामाजिक-विकास का मर्म अपने गर्भ में निहाये हुए हैं। फिर भी यह कहा होगा कि अत्र-साधना का जब तक प्रागैतिहासिक युग में प्रमाण नहीं मिलता तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि यह उत्पादन-वृद्धि का जादू भाष है। अपने विकसित रूप में तंत्रसाधना पुरव-युवात समाज में ही बिनाश को प्राप्त हुई है अतः तंत्रों का अन्ततद्विषयवस्था अथवा सामंतवादी समाज के विरुद्ध विद्रोह के रूप में देखा है क्योंकि सामंतवादी व्यवस्था के पुरोहितों ने जो भी सामाजिक और धार्मिक नियम बनाये थे तांत्रिकमन उन सबके विरुद्ध

स्वच्छस्वतावासी और समतावासी दृष्टिकोण सेकर जमा है अतः प्रत्येक तांत्रिक क्रिया की दृष्टिसम्बन्धी व्याख्या द्रविड-भाषायाम मात्र है। फिर साधना म जो सुष्टम और बर्निम आचार धन पड़ते हैं वे प्रायः प्रतीकारमक होते हैं और तांत्रिक कर्तव्यों का बोध कराने के लिए कल्पित होते हैं अतः उन प्रतीकों को देखकर उनसे किसी सामाजिक व्यवस्था का बोधन अतिसरसीवर्ण है। फिर भी इस विषय पर अभी अनुमान की और आवश्यकता है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि तांत्रिक आचार आर्सेतर है और उसकी स्वीकृति, आर्सेतरपरराओं में सर्वप्रथम अथर्ववेद में मिलती है यद्यपि अथर्ववेद का तांत्रिकमठ अभी अकिञ्चित्त अवस्था में दिखायी पड़ता है।

यह विभिन्न तथ्य है कि यजुर्वेद के यज्ञ और ब्राह्मण-ग्रन्थों द्वारा यज्ञों की व्याख्या में अनेक तांत्रिक तत्त्व मिलते हैं। यहाँ तीन सम्भावनाएँ हा सकती है। प्रथम यह कि अथर्व परंपरा का ब्राह्मणग्रन्थों पर प्रभाव पड़ा है। ब्राह्मणग्रन्थ वेदों के बाद दीर्घशास्त्रात्मिक म निर्मित होते रहे हैं। द्वितीय सम्भावना यह है कि परवर्ती तांत्रिकों ने अपने कुछ कर्तव्यों के समर्पण के लिए इन ग्रन्थों में सावुष्य योज लिया हो। परवर्ती मठों को वैदिकता सिद्ध करनी पड़ती थी। वेद-विषय मत्त माय्य नहीं हो सकता था अतः अथर्ववेद कर्तव्यों की स्वीकृति के लिए उनमें वेदानुपूरुता प्रमाथित करनी पड़ती थी। तीसरी सम्भावना यह है कि ब्राह्मणग्रन्थों की कुछ परंपराएँ तांत्रिकों से प्रभावित रही हों। उदाहरण के लिए आमसमाजियों का कथन है कि कृष्ण यजुर्वेद 'यजुर्वेद-परंपरा का ग्रन्थ है। कारण यह है कि धार्यर ही किसी ऐसे पशु का अस्मैक ऐसा हो जिसे बलि और मांसभक्षण क लिए कृष्ण-यजुर्वेद में स्वीकृत न किया गया हो। मेरा अनुमान यह है कि उत्तर-वैदिककाल में आय और आर्सेतर सम्पके बढ़ रहा था अतः ब्राह्मणग्रन्थों में तांत्रिकतत्त्व मिल जात हैं। यी प्रदमास यमनों में आर्सेर एवेमोल के 'उक्ति एष्य वाक्य नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ १०४) अपने प्रसिद्ध निबन्ध में वैदिकसाहित्य में सभी तांत्रिक तत्त्व योज निकाले हैं। उदाहरण के लिए 'मिथुनमासना' बधिक स्वीकार करते म। मिथुन पार्थिक कृत्य के रूप म स्वीकृत थी। मिथुन के समय मंधोपचारण का भी विधान था।

श्रीनामनि यज्ञों म मुरापान हुआ था, इसका उत्सव अभिनवपुत्र में तंत्रामोक्त में भी किया है। तंभुल, पिष्टक, माज और भाल के साथ वशुबलि का भी विधान

वा । दृष्ट्य-यजुर्वेद के बलि-यज्ञों की सूची लम्बी है । हिरण, शुक्र, बाज बन्दर
 कीट, पतंग, मगर, हाथी बिल्ली, बकरा मछली कच्छोड़ा चमड़ा कीजा
 छिपकली आदि नामा पशु-पक्षियों का उल्लेख दृष्ट्य-यजुर्वेद में मिलता है ।
 आर्यसमाजी रघुनन्दन शर्मा ने भी यह स्वीकार किया है कि उत्तर वेदी पर पशुबलि
 होती थी । परन्तु वह यह भी कहते हैं कि पशुबलि संहिता-कालीन नहीं है और
 दृष्ट्य-यजुर्वेद की रचना रावण आदि इन्द्र असुरों ने की है ।^१ फिर भी रघुनन्दन
 शर्मा ने मांसपक घट्यों का अर्थ अल्पविपक कर दिया है । वस्तुतः आर्यजीवन
 पशुचारण-व्यवस्था में मांसपकी वा, आदर्शवादी कुछ भी नहीं । बलि यज्ञ
 का भाग भी परन्तु इष्टि का विकास होये ही 'बलि' का मूल्य कम हुआ होगा
 जल्दा कम से कम जानी सोम उसका विरोध करने लगे होंगे बहसि बौद्धका के
 प्रचार के पूर्व 'बलि' का प्रचार बना रहा । अतः यह सम्भव है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में
 बलि यज्ञों में वैष्णव-बलि आदि स्वतंत्र रूप से प्रचलित हों यद्यपि आर्येतर साधनाओं
 के सम्पर्क में आने के कारण इन पर उन्मत्त प्रभाव अवश्य दिखायी पड़ता है । परन्तु
 तांत्रिकों ने अपने मन को प्रमाणित करने के लिए इन्हीं वैदिक क्रियामों
 को प्रस्तुत किया और सिद्ध कर दिया कि तंत्र अवैदिक नहीं है । बतर्ही के लिखने
 से एक बात स्पष्ट है कि ब्राह्मण-युग में जो जटिल यज्ञ क्रिया का विकास हुआ
 उसके निर्माण में आर्येतर परंपराओं से अवश्य प्रेरणा ली गई है । विवरण देना
 यहाँ जनाकस्वक है । फिर भी इतना कहना आवश्यक है कि अद-ष्ट दृष्ट्य
 वेदी धर्मिणा ब्राह्मण-काल में आर्येतर साधनाओं से प्रचलित यंत्रों में ली गई
 होंगी । 'मुद्य और अद्रकार बैठने तथा बेठी बनाने की क्रिया पर भी आर्येतर
 या तांत्रिक प्रभाव दिखायी पड़ता है । यह अनुमान इसलिये और बुद्ध होता है कि
 यजुर्वेद के यज्ञों में नव देवताओं की प्रथी आर्येतर कालों से हुई है । 'इन्द्र' का
 मूल्य यहाँ बढ़ा है और जम्मा हुआ अन्नपत्नी विषयपत्नी कर्पयपत्नी अमुरपत्नी
 पृथिवी पमदेवी मिहिनी या सरस्वती आदि में सरस्वती के विनाय अन्न
 नहीं देविता है । तैत्तरीय आरण्यक में नियुक्ता स्वीकार कर ली गई है । इसी
 तरह ऋग्विषय ब्राह्मण में रात्रि और वाह देवी की एकता स्थापित कर दी गई
 है । अथर्व वेद के विषय नाम में रात्रि को स्पष्टतः 'बुधा' कहा गया है । तैत्तरीय

(१) दृष्ट्य यजुर्वेद—१—७—१४

(२) वैदिक सम्पत्ति—१८३—१०७

भारष्यक में देवी को अग्नि कहा गया है। अग्नि की सात जिह्वाओं को देवियों के रूप में स्वीकार करने की भी प्रवृत्ति है। सात जिह्वाएँ ये हैं—कासी, करासी, मोजवा सुमोहिता सुबुभाक्ती, स्फुन्निङ्गनी, शुचिरिमता।

स्पष्ट है कि ऋग्वेद के 'रात्रिसूक्त' का आचार मानकर ब्राह्मणकाल में देवी-पूजा स्वीकार कर ली गई थी। आर्यों ने अथर्ववेद में जिस प्रकार स्थानीय आर्योत्तर निस्वाहों को स्वीकार करके सामाजिक सम्मिलन की ओर कदम बढ़ाये थे उसी प्रकार ब्राह्मणकाल में यह सामाजिक-मिलन की प्रक्रिया और तीव्र हुई और इस तरह आर्य और आर्योत्तर की खाई सँकटी होती गई।

सामवेदान्त ब्राह्मण को 'दत्तपत्र' का समकालीन नहीं माना जाता। इस ग्रन्थ में स्वयं विनायक और विष्णु की पूजा का उल्लेख है। वैतपेय्य भारष्यक में 'मनेश्वर उल्लेख मिलता है। विष्णु को छोड़कर वे सब देवता आर्योत्तर देवता थे 'मित्री' ने प्रसिद्ध 'गणेश' ग्रन्थ में यह यमी शक्ति प्रमाणित कर दिया है। पद्मपति शब्द से ही स्पष्ट है कि 'गणेश' यमों या कबीलों के देवता थे। पेंटी ने बताया है कि आर्योत्तर जनता में प्रचलित विचित्र और स्वेच्छाधारी देवताओं को आर्यों ने शिव के परिवार में शामिल कर दिया है। स्वयं विष्णु के विषय में कहा गया है कि इनकी प्राचीन मूर्तियाँ बड़ी कुत्तर हैं। क्रमशः उन्हें सुन्दर रूप दिया गया है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि आर्योत्तरों के पूर्व विष्णु भी एक स्थानीय देवता था। भाष्यकर्ता ने 'उपेन्द्र' विष्णु को सुन्दर रूप देकर सर्वप्रिय देव बना दिया। इस प्रकार 'उत्तर वैदिककाल' में आर्योत्तर संस्कृति को स्वीकार करके उसकी भाषा संस्कृति के साथ संवत्ति स्थापित करने पर बहुत धन दिया गया है।

ब्राह्मण-साहित्य का अंतिम ग्रंथ उपनिषदों के रूप में विकसित हुआ है यहाँ सबसे प्राचीन उपनिषदों से ही हमारा सम्बन्ध है, क्योंकि सभी उपनिषदों का विकास बहुत धार में हुआ है, यहाँ तक कि शैव-उपनिषदों, शाक्त-उपनिषदों और वैष्णव-उपनिषदों वस्तुतः 'सांज्ञिक उपनिषदों' हैं। उपनिषदों में बुद्धारष्यक, छान्दोग्य, ईश केन एषेय, कठ, प्रश्न तैत्तरीय, मीमंसी, मुंडक कौटीलकी, माण्डूक्य तथा स्वेतान्वतर उपनिषदों प्राचीन मानी जाती हैं।

उपनिषदिक चिन्तन में वैविध्य मिलता है, अनेक चिन्तकों के विचार यहाँ गुरादिन हैं। इन विचारों में अथर्ववेदीय चिन्तन और सायन-परंपरा से भी साध

उठमा या । यज्ञयागी आर्यों के सिवाय नाना कबीलों के 'राष्ट्र' के रूप में परिवर्तित होने पर, समाज में विन्न-विन्न कबीलों में प्रचलित साधनार्थ और विश्वास प्रचलित रहे होंगे और आर्य-भाषकों और आर्येतर साधकों और विचारकों में यह असमान्य अब, नयी सामाजिक व्यवस्था में सम्मिल नहीं था क्योंकि उत्तर वैदिक-काल में वही एक ओर, आर्य-विस्तार हो रहा था वहीं देश के एक बड़े भूभाग में आर्यों का शासन पूर्णतः स्थापित हो चुका था और नबीसे अब इति प्रधान व्यवस्था में रहे रहे थे । वैदिक युग में पशुपारम्य प्रधान था और इति उद्घायक भी विष्णु उत्तर वैदिक काल में इति प्रधान हो गई थी और पशुपारम्य इति की उद्घायक व्यवस्था थी । नवीनाई व्यवस्था में अमम-अमम कबीलों के अलग देवता भ टॉटम-धुना भी प्रचलित थी विष्णु अब कबीला-सरदारों के शासन के स्थान पर 'राजा' का शासन था । समतावादी नबीसे विचार गए थे और विभिन्न कबीलों में सर्व-व्यवस्था ज्ञान में चुकी थी विकसित हो रही थी । नाना कबीलों के देवताओं के अलग एक सत्ता की कल्पना अब मुंबिवा से प्रचलित हो सक्ती थी अब ब्रह्मवाद का प्रचार उपनिषदों में सबसे अधिक मिलता है । देश का नवीनाई व्यवस्था से 'राज्य व्यवस्था में अलगने में इस 'ब्रह्मवाद' का महत्त्वपूर्ण योगदान है । उपनिषदों में 'महत्त्व' या कर्मकाण्ड का विरोध भी मिलता है अर्थात् कबीलाई कर्मकाण्ड अब आकाशक नहीं है क्योंकि यह केवल आर्यों तक ही सीमित है । अब यज्ञयाग 'स्वयं' अमने अमता है और सर्वव्यापक सुख ब्रह्म और आत्मा का अनुसंधान होता है । भारतवर्ष में आनुवंशिक से अनेक देवताओं और नाना जाचारों को मानने वाली जातियों का इस 'ब्रह्मवाद' के द्वारा एक सांस्कृतिक-प्रवाह में शामिल कर लिया गया अर्थात् 'राष्ट्र' के रूप में राष्ट्रीय समाज के विकास के लिए और इसलिये विभिन्न भाषा रूपों आचार, धर्म देवताओं को मानने वाली जातियों के 'राष्ट्र-अस्तित्व' के लिए तथा आर्य-आर्येतरों में 'भाष्यमक एकता' के लिए 'ब्रह्मवाद' एक प्रगतिशील सिद्धान्त था । अब एक इस 'ब्रह्मवाद' के द्वारा ही नाना देवताओं और जाचारों में अधिकार स्थापित किया जाता है । 'भिरों में अमम-द-द्वय का और निषिद्ध-द्वय एक सामयिक आकाशयता थी ।

अतः उपनिषदकारों के लिए यह अस्मत्त्व था कि वे आर्येतर जातियों और विचारों से प्रभावित न होंगे । उपनिषदों में स्पष्टतः अनेक तांत्रिक तत्त्व सुरक्षित हैं ।

उपनिषदों में तांत्रिक विष्णु भावना का सिद्धान्त मिलता है । बभ्रुन उप निषद के विष्णुवादी रूपों को परवर्ती तांत्रिक उद्भूत करते आए हैं यथा "ब्रह्म

एकाम्बे मा, उसने रमण नहीं किया तब उसने द्वितीय की इच्छा की, वह जिस प्रकार परस्पर आसिद्धि स्वी पुण्य होते हैं, वैसे ही परिमाणबन्धा हो गया, उन्ने इस अपने देह को ही वो मायों में विभक्त कर जाता उससे पति और पत्नी हुए^१ शिव शक्ति की उत्पत्ति से इस कथन का अद्वैत सादृश्य मिलता है। अन्यत्र कहा गया है कि ब्रह्मा ने कामना की कि मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न हो अतः उस अशनाया क्य मृत्यु ने मम से बेह क्य मिथुन की भावना की, उससे जो देह (बीयं) हुआ, वह संवत्सर हुआ। संवत्सर को प्रजापति गर्भ में धारण किया रहा। फिर उसमें अन्त हुआ तो उसने 'वाण सञ्ज कथा, महा वाक् कथा'^२

यहाँ काम और वाक् की उत्पत्ति मिथुन भाव से बताया गई है। जगत् की सृष्टि में शिव और शक्ति के मिथुन का सिद्धान्त बृहदारण्यक में सप्तमपा मनु के मिथुन की कथा के रूप में स्वीकृत है।^३ परमेश्वर क संकल्प और रमण की भावना से ही सृष्टि होती है, यह सिद्धान्त शिव और वाण के मिथुन क रूप में क्या स्नेहा स्वतः उपनिषद् म शिव और शक्ति के मिथुन की कथा क रूप म मिलता है।

यद्यपि उपनिषदों म संन्यासधर्म अर्थात् रामरूपधर्म की कथा अधिक है परन्तु बृहदारण्यक म (१-२-५) गौरी पुण्य मिलन को यज्ञ के रूप म वर्णित किया गया है, परिणामतः परबर्ती तांत्रिक अपने मत की वैदिकता सिद्ध करन म ऐस स्वर्गों को उद्भूत करते जाते हैं—

हे गौतम ! त्वो हो अग्नि है। उपस्व ही सवित्रि है। ताम पुन है, योनि ज्याता है, मिथुन व्यापार भंगार है, आत्मन्वत्सा विस्तृतिग्नू है। स्त्री प्रकार आत्म साधात्कार के समय के आत्मन्व की उपाया स्त्री के आसिद्धन अन्य आत्मन्व से ही य^३ है। 'यह सब कथ्य है — यह सर्वबावी दृष्टि उपनिषदों की विरायता है, दृष्टते यह भी सिद्ध होता है कि एश्विन आत्मन्व भा ब्रह्मानन्व वा आत्मानन्व का ही रूपस रूप है अतः तांत्रिक इस रूपस आत्मन्व की प्राप्ति म ब्रह्मानन्व की साधक देह कर एन्द्रिक आत्मन्व द्वारा शरीरान्त्रिय आत्मन्व प्राप्त करते हैं। बृहदारण्यक क पण्ड अभ्याय के पनुर्थ प्राज्ञान में मिथुन कर्म का विस्तृत वर्णन मिलता है वा उपनिषदों की श्रेयोर राय विद्योनी दृष्टि को दृष्टते हुए, विभिन्न समयता है।

१ बृहदारण्यक १-४-३ तथा १-४-१७

२ बहो, १-२-४

३ शरी १-४-६

शब्द साधना' पर भी उपनिषदों अल्पलिङ्ग ब्रह्म देती हैं। वेनुरपा वाक् के चार स्तन बताये गए हैं, स्वाहाकार, कपर्दकार, हुन्तनर और स्ववाधर। इस वाक् इपी वेनु का कृपम प्राण बताया गया है और मन को बस्य बर्दि मन, प्राण और वाक् की एकता^१ को उपनिषदों के पूर्व योगियों में प्रथमित भी उसे स्वीकार किया गया है। उपनिषदों में वाक् उपासना प्रथमोपासना उन्मीषोपासना ब्रह्मा ओंकारोपासना के रूप में वर्णित है, तांत्रिक वाद्य में शब्द साधना वा मंत्रसाधना का महत्त्व अधिक है। बीजकारों की व्याख्याओं को तंत्रों में मिलती है उपनिषदों में सुरक्षित है। हू वा खै ह्रदय व' का खै वाग और यम् का अर्थ बसर किया गया है।^२ द्विकारोपासना और मातृसाधना में अद्भुत साधुत्व मिलता है। पांच प्रकार के सामगायन को ब्रह्माण्ड व्यापी बताया गया है। पिण्ड में व्यात नाद का भी वर्णन है। 'प्राण की उच्च गति ही द्विकार है, वाय प्राण ही प्रस्ताव है, वासुप प्राण ही उर्गीक है। ध्योप्राण प्रतिहार है और वाक्स प्राण निघन है।^३ सम्पूर्ण उपनिषत् के अनुसार नाद वा सामान्य मृष्टि व्यापी है। सम्पूर्णपवाय और क्रियार्थ मातृमय है अतः नाद साधना की धरना भी उपनिषदों से ली गई है। मुद्क में आठवू को अक्षुप आरमा को वाग और ब्रह्म को मह्य कहा गया है। कहा गया है कि वाक् के साथ तन्मय होकर अग्रगत होकर शब्दबोध करना चाहिए। (१-४)

साधनारमक तांत्रिक रहस्यवाद उपनिषदों में स्वीकृत है। वह बेल कर आश्चर्य होता है कि कर्मवर्षी आचार्य उपनिषदों में रहस्यवादी बैठे हो पर ? यहाँ वेद क स्वान पर वाक्, मन और प्राण साधना का महत्त्व अधिक हो जाता है। सम्पूर्ण पद्यों और क्रियाओं को प्राणों में स्थित माना गया है अर्थात् ब्रह्माण्ड की पिण्ड परक व्याख्या की गई है—“युव प्राण से ही उत्पन्न होता है और प्राण में ही बसत होता है अतः प्राण और अपान का व्यापार करे। प्राण के अंतर्गत ही आकाश है वे अमूर्त है।^४ शास्त्रियों ने जब याज्ञवल्क्य से पूछा कि यह क्या है तो वह बस इन्द्रियों और मन को ही ११ हलों से अभिवृत्त करते हैं। योगियों की द्विधा नामक ७२ सहस्र तांत्रियों का उल्लेख भी उपनिषदों में मिलता है।^५ सम्पूर्ण देवताओं का

१ बृहदारण्यक—१-१-१ तथा ४-३-२

२ वही—४-३-१

३ छांदोग्य २-२-१

४ बृहदारण्यक—४-२-३

५ वही—२-१-११

कर विकसित हुई है। महाभारत में तो शिव ही प्रमुखतम देवता है, जिनकी उपासना कृष्ण अर्जुन अस्वत्थामा आदि सभी करते हैं। गीता में विष्णु का महत्त्व अधिक है किन्तु इन देवताओं में इन प्राचीनतर देवता हैं वत स्वेतास्वतर जिस तांत्रिक शैव-परंपरा का ग्रन्थ है। उसी ने सर्वप्रथम शिव या रुद्र की भक्ति को धार्मिक आधार दिया और उसी आदर्श पर वैदिक देवताओं में महत्त्वपूर्ण देवता विष्णु को आराध्य बनाकर छालकों या भागवतों द्वारा गीता की रचना हुई।

यह भी स्मरणीय है कि उत्पत्त तांत्रिक शैव परंपरा ईतबारिनी थी। पाशुपत मत ने ईतबार स्पष्ट है। स्वेतास्वतर उपनिषद् में पुरय और प्रकृति की मिलनता स्पष्ट है। यद्यपि शंकराचार्य ने अद्वैतपरक अर्थ किया है। शैवशास्त्रों में ईतबार प्रथम रहा है, कर्मादी अद्वैतबार के पूर्व आगत ईतबारी ही मिलते हैं वत इस दृष्टि से भी स्वेतास्वतर का महत्त्व स्पष्ट है। तंत्रों की ज्ञान स्वभाव नियति यदुक्त्यं मूढ और मूढ्य सम्बन्धी पारम्पर्य स्वेतास्वतर में विद्यमान हैं। पाय का विशेषण भी यहाँ मिलता है। 'जाम' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। शंकराचार्य ने 'इंद्रजाम' अर्थ कर लिया है। तंत्रालोक में अजितकर्म ने जाम और मत्स्य शब्दों का प्रयोग किया है और जाम का उर्ध्व मत्स्येन्द्रनाथ से जोड़ा है। कर्क-शैव में जिस 'मामा' या 'जाहू' का वर्णन है, उस मामा का ज्ञान से सम्बन्ध स्वयं श्वेतास्वतर उपनिषद् में जोड़ा गया है। इस उपनिषद् में ब्रह्म को माबाबी और 'जामबागु' कहा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्कशैव में प्राप्त धार्मिक तांत्रिक्याय को वैदिक-ब्राह्मणों के समानान्तर प्रचलित रही, प्रचलन रूप में वह न केवल ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलती है किन्तु उपनिषदों में भी बहु विद्यमान है और स्वेतास्वतर में तो वह तांत्रिक्याय स्पष्ट विद्यापी पड़ती है। यहाँ तक अजितकर्म का प्रश्न है, अजितकर्म श्रौतारम्भ और विपरित कर्म पद्धति का प्रयोग आर्ष-शास्त्रों में उत्तरवैदिक काल में बढ़ता दिखायी पड़ता है। बृहदारण्यक में कहा गया है कि "जहाँ ईतबार रहता है, वहीं यमुष्य अम्य अम्य को मूर्धना है, अम्य-अम्य को वेतता है। किन्तु यहाँ जिसके लिए सब आत्मा ही हो गया है, यहाँ जिसके द्वारा जिसे देने ? जिसके द्वारा जिसे मूर्ध ? जिसके द्वारा जिसे अजितकर्म करे ? जिसके द्वारा इस सबको जानता है, उस जिसके द्वारा जाने ?

बाह्याचार को इस कठोर जल्सा की परंपरा तांत्रिकों में अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है जो मध्यकाल में संतकवियों के काव्य में पुनः नये भावों के साथ व्यक्त होती है।

प्रतीकात्मक कवय-प्रवृत्ति भी उपनियतों में मिसती है। मुहंकोपनिषद् में 'पक्षियों' का वर्णन तथा खेतारवतर में 'हंस का वर्णन, इसी प्रतीकात्मक पद्धति पर हुआ है। इसी तरह 'अज्ञा' और 'अज' का वर्णन भी प्रतीकात्मक है। आंतरिक स्तरों का उद्घाटन ही इनका उद्देश्य है। उपनियतों के बहुत से प्रतीक संत-परंपरा में प्रयुक्त हुए हैं।

यज्ञ के स्थान पर अंतरात्मकोत्थ तप, योग आदि को आर्योत्तर परंपरा में अधिक महत्व प्राप्त था, उपनियतों में अंतरात्मकोत्थ तप योग ही मुख्य हो गया है और यज्ञ मौन हो गया है, इससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि 'सांस्कृतिक अंतर्मुक्ति' की कल्पना निराधार नहीं है किन्तु साब ही यह भी स्मरणीय है कि अंतर्मुक्ति होने पर भी समाज के भीतर आर्य-परंपरा अर्थात् यज्ञयाग स्मृतियों के नियम-कानून आदि के विरुद्ध अंतरात्मकोत्थ परंपरा अथवा आत्मिक-परंपरा ने सर्वथा संघर्ष जारी रखा है। अज्ञ 'उपद्र' के रूप में कभीसाईं संघर्ष में जो 'समन्विति' (Synthesis) मिसती है, उसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि भारतीय समाज के भीतर सावक और सावित्र का अरबा उच्च वर्ग और निम्न वर्ग का संघर्ष समाप्त हो गया था। बर्बादी समाज में यह वर्ग संघर्ष कभी बर्न-संघर्ष कभी आदि-संघर्ष, कभी सांस्कृतिक संघर्ष और कभी अन्य स्तरों में दिखायी पड़ता है अज्ञ 'तांत्रिक-परंपरा जो मूलतः कभीसाईं साम्य और बर्न-वैषम्य रहित भावना का प्रचार करती थी, उपनियत-युग के बाद अनेक संप्रदायों के रूप में विकसित हुई। वैदिक युग से उत्तर वैदिककाल तक यह धारा आत्मिक प्राणियों और कबीलों का आचार बनाकर अथर्ववेद ह्यन्-मन्त्रवेद ब्राह्मण साहित्य और उपनियतों को प्रभावित करती है किन्तु उपनियत-युग के बाद अर्थात् महाकाव्य-युग में स्पष्टतः नाना संप्रदायों के रूप में विकसित हो जाती है। भारतीय समाज के विकास पर निम्नकी दृष्टि नहीं है अर्थात् जो समाज के विकास में 'संघर्ष' और 'समन्वय' के गिद्यान्त को नहीं मानता वह इन संप्रदायों में केवल अंतरात्मकोत्थ योग शब्द साधना और काममायं जो देखता है किन्तु समाज के विकास पर दृष्टि रखकर जगै जाते विचारक यह नहीं मूल तकते कि यह तांत्रिक-परंपरा बाह्यजाती आधुनिक समाजिक व्यवस्था अपना

कर्म-बर्षवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध अपनी साधना और विचारों के द्वारा
 बराबर विरोध करती रही है। उपनिषदों के बाद ही तांत्रिक सम्प्रदाय विकसित
 हुए उनका नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथों में बना गया और इन उच्चवर्गीय मनोवृत्ति
 वाले शास्त्रों ने तंत्रों की वैदिकता सिद्ध करने में पूरा बल लगाया किन्तु फिर भी
 तांत्रिक सम्प्रदायों की विरोधी प्रवृत्ति तथा उनके साथ रही और उन्होंने सर्वथा
 कर्मवादी, जातिवादी मनोवृत्ति का विरोध किया। जब तक कर्म और जाति के
 सिद्धान्त प्रवृत्तिहीन रहे जहाँ कभी-कभी व्यवस्था को कर्मवाद और जातिवाद ने
 'उन्मत्त' में जब तक परिणत किया तब तक तांत्रिकवाद ब्रह्मम और असंस्कृत
 रूप में आर्योत्तर साधनाओं के रूप में प्रचलित रही किन्तु बौद्धयुग तक भारतीय
 समाज का वर्णवाद जातिवाद या कर्मवाद अंतर्विरोध घटत हो गया, इतना अधिक
 कि 'आर्यकर्मवाद' के विरुद्ध तांत्रिकों बौद्धों, वैदिकों तथा अन्य सम्प्रदायों के रूप में
 एक अंतर्विरोध के विरुद्ध कठोर प्रतिजिया हुई। उत्पादन के साधन न बदलने के
 समाज में 'साम्य' स्थापित होना सम्भव नहीं था किन्तु समाज में 'संतुलन' की
 स्थापना में इस आर्योत्तर साधनात्मक या संस्कृतिक विरोध ने पर्याप्त सफलता
 प्राप्त की यह स्मरणीय है। अतः यह सांस्कृतिक विरोध निम्न जनता के व्याव-
 हारिक जीवन के विषमता-जन्य अस्तित्व का ही परिणाम था वह उपनिषद युग
 के बाद बौद्धमत, जैनमत, शैक्यमत, शक्तिमत, वैष्णवमत तथा अन्य आर्योत्तर
 विचारों को लेकर चलने वाले सम्प्रदायों का अध्ययन भारतीय समाज में स्थित
 अंतर्विरोधों को ध्यान में रखकर होना चाहिए और इसके साथ ही उस 'अंतर्विरोध'
 और 'समन्वय' को भी देखना चाहिए जो इन परस्पर विरोधी शास्त्रों के
 मिलन से उत्पन्न हुआ था। भारतीय संस्कृति के विकास में केवल 'समन्वय'
 को ही देखने वालों को यह शुभ कामना आवश्यक है कि विरोधों पर बल देने
 से 'वर्तमान' में संघर्ष बढ़ेगा किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि समाज के विकास में 'संघर्ष'
 और 'समन्वय' अथवा 'वीथि' 'एन्टी वीथि' और 'सिन्थेसिस' के सिद्धान्त
 को पुनः नहीं छोड़ी। बलुग-वर्तमानकाल में एक वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव के
 कारण ही उत्तर और दक्षिण आर्य और आर्योत्तर में युगा बढ़ती है। 'सच्ची
 क्रांती' कहने से युगा बढ़नी नहीं चाहिए यह भाव जब तक नहीं जायेगा और
 जब तक धर्म दर्शन काव्य आदि का समाज शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन न होना
 तब तक कूटप्राम में किसी सम्प्रदाय या व्यक्ति विचारों के साथ सादात्म्य करके
 नाम आपस में बढ़ते ही रहेंगे। इतिहास के विषय में कोई समनकर्ता और कोई

बन्धित बनेगा ही, क्योंकि विकास सर्वथा संपर्कमय होता है, 'भाष्यीय संस्कृति' का नाश भवान् बान् इस समय को दृष्टि से सदा जोषस क्रिय रहते हैं और 'संपर्क' की यह कथा जितनी तांत्रिक सम्प्रदायों के अध्ययन से स्पष्ट होती है, उतनी अन्य सम्प्रदायों के अध्ययन से नहीं होती क्योंकि तांत्रिक बारा बन्धित बान् की साधना और धर्म के माध्यम से प्रकट होने बान् विरोधी बान् है ।

उक्त दृष्टि धर्माधर्मों के बाद के विकास को समझने के लिए बहुत आवश्यक है क्योंकि पुरातन वैदिककाल में वेद के विभिन्न प्रयोगों में कबीलाई प्रभुत्व के स्थान पर आमा के राज्य स्थापित होते हैं और महाकाव्य-काल में यह राज्य-व्यवस्था और भी मजबूत होती है । नबों का विकास होता है जिनमें किसी एक भाषि का प्रभुत्व स्थापित होता है और गण धर्मा 'राजा' भी चुनते हैं जो 'एकाधिकार' के लिए संघ की तरह संघर्ष भी करते दिखायी पड़ते हैं । यहाँ विचारण का स्थान नहीं है । संक्षेप में महानारायण तथा बौद्ध-साहित्य के अध्ययन से इतना स्पष्ट है कि वेद में धर्मसम्पन्न राज्यों की स्थापना हो जाती है और राजा एकाधिकार बन्धना 'किन्नीप्रबल शासक' या 'कर्मगर्ही' बनने के लिए संघर्ष करते हैं । राज्य स्थापना का अर्थ है कि विधि और व्यवस्था का जन्म होता है, धर्म और व्यापार की उत्पत्ति होती है, कबीलाई प्रभुत्व और बराबरता समाप्त हो जाती है अतः राज्य-व्यवस्था वैदिक काल से अधिक प्रगतिशील व्यवस्था है किन्तु कबीला प्रथा में एक कबीले के भीतर सदस्य को जो समता और स्नेह मिलता है, वह राज्य व्यवस्था में सम्भव नहीं है क्योंकि इस व्यवस्था में पुरोहित, मोक्ष, व्यापारी इत्यादि किसी धर्मिक भाषि बान् बन जाते हैं और राजा का कार्य धर्मिक महत्व पूर्ण हो जाता है अतः शासक का तथा उनके पदपर्यन्त विद्यार्थी या ब्राह्मणों या पुरोहितों का आचरण होता है ।

इस स्थिति में स्वभावतः निम्न बान् असंगुष्ट रहता है अतः वह उसे बन्धित करने के उपाय सोचता है । 'धर्म और साधना' ऐसा ही एक उपाय है । किन्तु विचलित होती हुई राज्य-व्यवस्था में योद्धाओं के पदपर्यन्त ब्राह्मणों के द्वारा प्रचारित सिद्धांतों को एक विशेष गौरव और महत्व मिल जाता है । महानारायण तथा अन्य संस्कृत साहित्य अधिपतिर इसी बान् द्वारा लिखा गया है । अतः महा भारत में ब्राह्मण-धर्म ही है किन्तु पुरोहित बान् स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि वेद या धर्म में बान् जातियों या कबीलों के बीच रहते हैं एक जनपद से दूसरे जनपद में व्यापार चलता है, यातायात होता है । अतः 'एकता' की ओर मन स्वतः

जाता है, अब विन्तग कर्मीलाई मनोवृत्ति में सीमित नहीं रह सकता । अब कार्योत्तरों को 'रस्य,' कट्टर काम नहीं बन सकता क्योंकि समाज की प्रगति का भार उनके बधिक ष्ठी होते हैं अब महाभारत में तथा बाद में पुराणों और काव्यों में 'एकता' के तत्त्वों पर बहुत बल दिया गया है । एकता के लिए स्वीकृति आवश्यक है अब कार्योत्तर विद्वानों को स्वीकार किया गया है । उपनिषदों में ब्रह्मवाद द्वारा सभी 'मित्र' स्वीकृति हो सकते हैं किन्तु फिर भी 'ब्रह्मवाद' में विराट देश के विभिन्न देवी-देवताओं और उनके साधन-मन्त्रियों को समेटने की शक्ति नहीं थी । मात्र स्वीकृति अपवर्जित होती है, जातियों के मुख्य जीतने बच्चा उनके बसंतोय को समाप्त करने या भाषात्मक एकता के लिए माना साधनाओं और देवी देवताओं को सातकों की संस्कृति में लाने बाने की तरह बिना बुने हुए 'एकता' हो नहीं सकती अब उत्तर वैदिककाल के अंत में दुर्योधनी और समाज के विकास के अनुभूत बनकर, ब्राह्मणों ने दक्षिण और 'विष्णु' की उपासना का प्रचार किया । 'ब्रह्मवाद' के साथ 'व्यवहारवाद' को भी स्वीकार करके सभी जातियों के देवी-देवताओं को इस विष्णु, सवित्र आदि कार्योत्तर देवताओं का कार्योत्तरण करके इनके परिवारों में शामिल कर लिया इस प्रकार सभी जातियों का बसंतोय समाप्त करने का यह महानतम प्रयत्न था ।

'महामाण्ड' यद्यपि इस पूर्व अनुभव पराधी है । इस परन्तु अनुभव पराधी के मध्य में सिद्धा हुआ माना जाता है परन्तु महामाण्ड में परंपराओं का उन्मूलन है अब उत्तरवैदिक युग के अंत में निकर बौद्ध युग के मध्य की अवधि में होने वाली राजनैतिक और सांस्कृतिक घटनाओं का पता महामाण्ड से बन सकता है ।

महाभारत 'विश्व का साग' कहलाता है । किन्तु, इस घन्य में समस्त अवैदिक मंत्र ही शामिल हैं और अवैदिक तत्त्वों की स्वीकृति देकर ही 'महामाण्ड' महान बन सका है । यहाँ यश्याय की अतिथय प्रशंसा है, बर्चस्व वैदिकता को मूर्धन्य स्थान दिया गया है किन्तु उनके उत्तरक और प्रचारकों में कार्योत्तर देवता दक्षिण और विष्णु को स्वीकार किया गया है । इनके परिवार के देवताओं के साथ सभी तांत्रिक और गृह्य साधनाओं को सम्बद्ध कर दिया है । यही दृष्टि अन्य पुराणों में है । परिभाषित यदि तांत्रिक साधनाओं का स्वतंत्र रूप से अध्ययन न किया नाम तो ऐसा लगता है कि इस देश में राजनैतिक संघर्ष को छोड़कर 'बत' संघर्ष का अस्तित्व ही नहीं था । जैसे ब्राह्मणों की राजनीति और

समाधानीति का कभी विरोध ही नहीं हुआ। स्मृतियों और तर्कों की तुलना करने पर ही स्पष्ट होता है कि स्मृतियों पर आधारित शासनकार्य को मनोवृत्ति और उसका विरोध अर्थात् राज्य-व्यवस्था और 'तीव्रवर्ष संभव' भारतवर्ष के इतिहास में भी उपलब्ध हैं।

महामारुत में 'रुद्र' के गर्भों में सर्व अहिबुध्द और कपाली जैसे नाम मिलते हैं स्पष्टतः ये त्रिमूर्ति अर्थात् ऋषियों से मिले गए नाम हैं। भृगुप्याय 'पशुपति' भी इसी रूप को पुष्ट करते हैं। 'रुद्र' के परिवार में काकी, हामिया, मासिनी, वृहता, आया, पलासा, बेधिया आदि स्थानीय अनेक देवियों को समेट लिया गया है। इनके रूप विकृत हैं और ये सब बामाचार प्रिय हैं। शीतवर्ष में स्पष्टतः 'रुद्र' को राक्षसों का स्वामी कहा गया है। त्रिपोपासना त्रिसप्त वेद में उपलब्ध किया गया है, यहाँ प्रसिद्ध हुई है।

सांख्यिक वर्ष में अस्वत्थामा अनेक रुद्र के दर्शन करता है, यहाँ रुद्र का शोक, श्मान अन्न आदि का वर्णन शुद्ध सांख्यिक पद्धति पर है। कहा गया है कि रुद्र को व्यास और कृष्ण ही समझते थे अर्थात् उपर्युक्त महान दूरदर्शिता या सांख्यिक समन्वय द्वारा 'राजनीतिक पद्धतियों' के रहस्य को व्यास और कृष्ण ही समझ सकते थे। अनुशासनवर्ष में कहा गया है कि ऋषियों के शरीर में न पशु का बिह्व है, न बक का न बक का। सभी प्रजा तिय और भद्र के बिह्व से युक्त हैं अतः सम्पूर्ण प्रजा माहेस्वरी है। महामारुत में एक ओर 'रुद्र पिब' यज्ञयाग का उपदेश देते हैं और दूसरी ओर युद्धसामानों का। रुद्र कृष्ण की प्रशंसा करते नहीं बल्कि ओर कृष्ण तो रुद्र के ही उपासक थे अतः अद्भुत अंत दुष्टि द्वारा अत्यंत तार्किक गुह्य सामानों को बाहर देकर देव के सांख्यिक जीवन से 'अतमाव' की समाप्त किया गया है।

रुद्र की तरह 'कृष्ण' भी विवादास्पद हैं। महामारुत के कृष्ण अन्त्यायन में राजनीति विचारक अतः देव में 'विश्वीय प्रवसता' की स्थापना के लिए वे भयकर अनसह्य से भी नहीं डरते और प्रवसता देव में प्रवस राज्य की स्थापना करते हैं क्योंकि मुख्यवस्था के लिए बसिदान आवश्यक है और प्राण्यतावादी राक्षसी की स्वतंत्रता देव के हित में बाधक है। शायद इन्हींलिए कृष्ण को भगवान् बनाकर इत देव में अपनी कृत्रिमता व्यक्त की है। राजनीति की तरह,

बैदिक देवताओं और यज्ञ के स्वान पर कृष्ण ने अनेक 'मक्ति' और 'पूजा' की प्रथा, जो श्लेशास्वतर उपनिषद में लिखायी पड़ती है, प्रचलित की। इसी प्रकार बीता में यज्ञवाद के स्वान पर उन्होंने 'कर्मवाद' का प्रचार किया जो बौद्धों के निवृत्तिपुनरुदरक्षण के विरुद्ध अपनी 'सम्यग्ता' के कारण जनता को अधिक दबा किन्तु उसके साथ ही 'शाहजानवादी व्यवस्था' या 'वर्धवाद' को भी स्वीकार करना पड़ा।

कृष्ण के इस 'समन्वयवाद' जिसमें वर्धवाद भी शामिल था को लेकर शास्त्रों ने पांचपात्र संज्ञिता लिखी जिसे हम 'विष्णव तंत्र' कहेंगे ॥ । इन वेदशास्त्रों पर इस पुस्तक में एक स्वतंत्र अध्याय है, इससे स्पष्ट होगा कि पांचपात्र मंत्र मुक्त संश्लेषित है। उसके उत्सवादि और शोक-शास्त्रों के उत्सवादि में कोई अंतर नहीं है, अंतर केवल साधना को लेकर है। पांचपात्र दक्षिणमार्गी और वर्धवादी है किन्तु शोक-शास्त्र वाममार्गी भी है। इस भाग्यदत्त का जो महाभारत युग में पूर्ण स्वीकृति नहीं मिल पाई थी। स्वयं कृष्ण को भीष्म और पांडव ही मानवान् मानते थे, अन्य नहीं। कृष्ण का विशेषी धर्म संश्लेष था। स्वयं 'विष्णु' १२ आश्रितों में से एक थे और ११ देवताओं के अतिरिक्त उपदेवताओं में भी उनका सम्मेलन होता था किन्तु 'महाभारत' में 'विष्णु' 'वध' के समकक्ष प्रतीत होते हैं मंत्र 'विष्णु' को औरत पश्यते नहीं मिला जमान की स्थिति के साथ देवता की स्थिति सम्बन्ध रखी है।

महाभारत में पाठ-परंपरा को भी पूर्णतः स्वीकार किया गया है। वनपर्व में मानुषी रत्ना सिनीवाली अश्विपत्नी, हविष्पत्नी, महिष्पत्नी महामती और कुहू को भी देवी माना गया है। स्वयं के परिवार में मातृपुत्रों का सम्मेलन हो चुका है। इन स्वामीय देवियों का 'आर्य देवियों'—शाही माहेश्वरी आदि से क्या औरत दिया गया है। जब स्वयं से मातृपुत्रों ने आर्य देवियों की ही प्रतिष्ठित मायी तो कहा गया कि अन्य आश्रितों के देवताओं को आर्य देवताओं के साथ औरत नहीं दिया जा सकता। यह सम्भव है कि महाभारत में देवीपूजा के सूक्ष्म विस्तृत स्वान परवर्ती हों किन्तु देवीपूजा की स्वीकृति महाभारत की मूलभूटि के विरुद्ध नहीं है। अन्य पुराणों में भी यही भूटि मिलती है। इसके सिवा 'भीष्मपर्व' में बहू अनुन देवी की स्तुति करते हैं बहू बहून से परवर्ती नाम नहीं मिलते। उदाहरण के लिए सात देवियों में 'बायही' और 'सतिता' के नाम नहीं हैं। नवपुरा के भी सभी नाम यहाँ नहीं हैं।

शाक्त-सम्प्रदाय के सभी शिरोधार्य इस मत को मानते हैं कि स्वामीय वैश्वियों को एक ही शक्ति के अंश के रूप में स्वीकार कर लिया गया है ।

इस प्रकार महाभारत सांस्कृतिक एकता और राजनैतिक एकता के लिए तांत्रिक या आर्येतर शाखनामों को स्वीकार करता है किन्तु यह स्मरणीय है कि महाभारत में शैव-शाक्त तत्त्वज्ञान बहुत प्राथमिक अवस्था में है। 'ब्रह्म' की 'ब्रह्मवाची' व्याख्या अधिक की गई है जब कि वायुपुत्रमत ईशवाची कहता है। 'वायु पुत्रमत' पर महाभारत से अधिक प्रकाश नहीं पड़ता परन्तु इतना स्पष्ट है कि यह आर्येतर मत वाः शक्तिपूर्वक में कहा गया है कि वायुपुत्रमत वर्णाश्रमधर्म के विपरीत है किन्तु कुछ अनुकूल भी है ।'

अतः मेरा अनुमान यह है कि शैव-शाक्त तत्त्वज्ञान महाभारत के बाद ही 'आगमों' में लिखित हुआ है, इसके पूर्व शाखनामों और विश्वस्यों के रूप में तांत्रिक शाखा प्रचलित थी। तत्त्वज्ञान सर्वप्रथम वेदों के माध्यम से मिलता है क्योंकि अन्तर्गत की वृत्ति से पांचरात्रसंहिताएँ आगम साहित्य में प्राथमिकता में हैं और पांचरात्र संहिताएँ पुराणों के साथ ही वेदों के शाखनामों द्वारा लिखी गई हैं। इन संहिताओं, शैव-शाक्त-आगमों और बौद्धतंत्रों में 'शाखना' की वृत्ति है अधिक स्पष्टता मिलता है। बौद्धतत्त्वज्ञान कुछ भिन्न होता जाता है और पांचरात्र-शाखना में वसिष्ठजी तत्त्व अधिक हैं परन्तु फिर भी इनमें इतना अधिक सादृश्य है कि 'तांत्रिकशाखा' धर्म का अंगोत्पन्न किया जा सकता है।

महाभारत के बाद इस साहित्य का विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा बहुत अधिक प्रचार होता है। पुराण भी विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा लिखे गए हैं इनमें ब्राह्म शैव, वेदों के साथ ही अन्य मतों के भी किन्तु स्थान देकर ही छोड़ी परन्तु स्वीकार प्रकट करता है। इस नीति से अपने मत की श्रेष्ठता भी सुरक्षित हो जाती है और अधिकार की भी स्थापना हो जाती है। अतः महाभारत और पुराणों द्वारा 'आर्येतर' की श्रेष्ठता और प्रमुख भी स्थापित हो जाता है और दूसरी ओर माना

पुराण 'माहात्म्य एकता' के लिए 'विचार' नीति अपनाते हैं। जिस सम्प्रदाय में जो पुराण लिखा गया है, वह अपने मत को सबसे ऊपर रखता है और साथ ही अन्य मतों को भी किन्तु स्थान देकर ही छोड़ी परन्तु स्वीकार प्रकट करता है। इस नीति से अपने मत की श्रेष्ठता भी सुरक्षित हो जाती है और अधिकार की भी स्थापना हो जाती है। अतः महाभारत और पुराणों द्वारा 'आर्येतर' की श्रेष्ठता और प्रमुख भी स्थापित हो जाता है और दूसरी ओर माना

मतों में उत्पन्न 'अन्वय' भी समाप्त हो जाता है। मुसलमानों के पूर्व तक आती थी यह नीति ही सांस्कृतिक एकता और 'सहस्रवर्षिता' के लिए उत्तरदायी है। आर्य समाजी विद्वान् पुराणों के इस महान् और बुरखर्ची नीति का महत्व समझ नहीं पाए। अस्तुतः भारतीय एकता के सबसे बड़े प्रचारक पुराण हैं।

जब हिन्दी के आलोचक कहते हैं कि तुलसीदास ने शैव-वैष्णव एकता स्थापित की तब इन आलोचकों पर क्या उत्पन्न होती है। क्योंकि तुलसीदास उक्त 'अत्रमुक्ति-वाची' परंपरा में अपना देवता योगदान करने वाले कवि हैं। एकता का प्रचार पुराणों में ही किया गया था और ब्राह्मण पुराणों का सम्मान करते हैं। इसी प्रकार शैव और ब्राह्मण पुराणों को आदर देते हैं। यद्यपि इन सबमें अपने देवता को ही श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार तुलसीदास पुराणों के पक्षियों पर चले हुए किन्तु को सर्वाधिक महत्व देते हुए शिव, कृष्ण, गणेशादि को सम्मान देते हैं। इसी 'नीति' के कारण इस देश में धार्मिक युद्ध अब रूप धारण नहीं कर सके।

पुराणों का समय विद्वान् के अनुसार, बौद्धयुग से लेकर सप्तम शताब्दी की मध्यार्ध है। इसी बीच महाभारत रामायण बर्मयुग स्मृतियों आदि का निर्माण हुआ। इसी अवधि में प्रथम वैदिकीय राज्य सत्ता को बुद्धता प्राप्त हुई जब इस युग में संघ और 'समन्वय' के लिए घोर प्रयत्न किया जाता है।

उक्त पुराण-युग के बाद तांत्रिक-युग प्रथम हो उठती है। पूर्वार्ध के ६० ई० के बाद के युग को शाक्ययुग की संज्ञा दी है। अर्थात् ६वीं शताब्दी के बाद सिद्ध जनता का अस्तित्व हीत रूप में लोगों के माध्यम से व्यक्त होता है। भारतीय समाज में 'वर्णव्यवस्था' का प्रतिनिधित्व हीत रूप इस युग में अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है, यद्यपि बौद्धयुग में ही 'वर्णव्यवस्था' के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था बौद्धयुग के पूर्व ही 'जन्म' पर आधारित हो जाता है अतः निम्न जातियों को समाज में अपना पैदा करने तथा विद्या प्राप्त करने के अपिचार से बहिष्कृत कर दिया जाता है। प्रायः यह कहा जाता है कि किन्तु जाति प्रथा पैरों पर आधारित है। शिल्पियों के सम्बन्ध में यह सत्य है किन्तु इतिहास और व्यापार में सभी जातियाँ आय पैनी थीं किन्तु अन्त में जातिव्यवस्था के कारण समाज में ऊँच नीच की भावना समाप्त नहीं हो पायी थी—Different castes that are otherwise set apart often engage in the same type

of work, but some economic functions, such as agriculture and trading, both highly important activities in the Social life, seem to be open to the members of all caste groups.¹

जब ब्राह्मण क्षत्रिय भी शूद्रों की तरह कृषि और व्यापार में भाग लेते हैं तब उच्च जातियों की श्रेष्ठता केवल जन्म के आधार पर ही सुरक्षित रह सकती थी। किन्तु जन्म से जातिवाद के कारण निम्न जातियों में अंतर्दोष बढ़ता था कि मोक्षन विवाह आदि की दृष्टि से निम्न जातियाँ बहिष्कृत थीं अतः भारतीय समाज का सबसे बड़ा अंतर्दोष यही जातिवाद था। पुराणों द्वारा किया गया एकता का प्रयत्न पर्याप्त नहीं प्रमाणित हो रहा था अतः छठी सताब्दी के बाद संन्यास आदिवादी शास्त्रों द्वारा उत्कृष्ट अंतर्दोष के विरुद्ध संघर्ष होता है। पुराण संहार और दूरदर्शी ब्राह्मणों द्वारा लिखे गए हैं किन्तु ब्राह्मण बढ़ते हुए अंतर्दोष को देखकर केवल कुछ सुविचारों से एकता या परन्तु निम्न जातियों को समाकृष्ट नहीं दे सकता था अतः तांत्रिकों ने इस 'सुविचारवाद' के विरुद्ध क्रांतिकारी पथ अपनाया और सभी जातियों की समता की घोषणा की। यह घोषणा साधनाओं के माध्यम से प्रकट हुई है अतः तंत्रों में निम्न जातियों को ही अधिक पवित्र माना गया है, बंगालीने डोमिनी आदि की महिमा का यही कारण है। यद्यपि पुराणों ने तांत्रिकों की उपासना को स्वीकार कर लिया है परन्तु उसे वैदिक यज्ञयाम के बराबर महत्व मिला नहीं सकता था अतः स्वतंत्र रूप से इन साधनाओं का प्रचार आवश्यक था। तांत्रिकों में जातिवादी प्रवृत्ति ही नहीं, ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित पर्येक प्रकार के सिद्धांतों के विरुद्ध तीव्र युवा मिसरी है अतः प्रतिप्रिया की श्रौत में तांत्रिक ब्राह्मणवाद के विरुद्ध सर्वथा विपरीत मार्ग ग्रहण करते हैं, यही साममार्ग है। तुम जो कर रहे हो उसके हम विपरीत करेंगे—यह प्रवृत्ति तंत्रों की विशेषता है, इनसे तांत्रिकों में असाधारण घोर इच्छा का भी विकास हुआ किन्तु इन सबको स्वीकार करने और 'नाम व्यवहार' के प्रचार का उद्देश्य ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह ही था जो साधनाओं में चरम सीमा पर पहुँचकर अत्यधिक 'रहस्यवादी' और अज्ञेय रूप भी धारण कर लेता है।

रहिष्यवर्गी (Rightist) ब्राह्मणों के विरुद्ध साममार्गी (Leftist) प्रतिप्रिया बड़ी बटीर दिखायी पड़ती है। समाज के विकास पर ध्यान न रखने पर

बाममार्गी शास्त्रार्थ अष्ट विद्यायी पढ़ती हैं किन्तु उनका बापहू बातिबाब के विरोध पर रहा है, यह तथ्य सम्मुख बाँटि ही हम उनका सामाजिक योगदान समझ सकते हैं।

इसके सिवाय तांत्रिकशास्त्रों की बाममार्गी शास्त्रा विभिन्न रूपों में बलिपर्वणी ब्राह्मणवादी सम्प्रदायों को भी प्रभावित करती है। तांत्रिकों में वैष्णव तांत्रिक ब्राह्मण-परंपरा के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। वैष्णवशास्त्रों में केवल ब्राह्मणों को ही बीसा देने का विधान है किन्तु 'भक्ति' का अधिकार बाँटियों को दिया गया है। यही कारण है कि यामुनाशायें ने पांचरात्र बापमो को स्वीकार किया था। शैव और शाक्त संतों में बलिपर्वण और बामपर्वण दो पार्व हैं। बलिपर्वणी ब्राह्मणवाद के निकट है किन्तु बाममार्गी घोर अस्मितकारी है। बाममार्ग के बढ़ते हुए प्रभाव को पच्छिमी पुराणों में प्रकाशान्तर से स्वीकार कर लिया गया है। विशेष रूप से श्रीमद्भगवद्गीता ब्रह्मसूत्रपुराण बाँटि में 'कृष्ण' के साथ 'गौरी—रुद्र-विदार' का समूचा चित्रण तांत्रिक है। बाममार्ग का मर्म 'राजशासन' है, बर्दान्त राज के माध्यम से परमशक्त की शासि होनी चाहिए जब कि पश्चिमों में सर्वत्र 'राजसत्ता' का उपरोध दिया गया है। बाममार्गीयोंमें पर्वजसि के योग-शास्त्र से निरत है, क्योंकि तांत्रिक योग 'नाडी योग' अथवा 'ब्रह्म-योग' है जब कि 'योगशास्त्र' में 'ब्रह्मशासन' का नहीं उल्लेख नहीं मिलता अतः छठी शताब्दी के बाद ब्रह्मशासन 'राजशासन' संवशासन बाँटि का विकसित ब्राह्मणवादी मन्त्रशास्त्रों के समानान्तर होता है।

हममें तांत्रिकशास्त्र अर्थात् ब्रह्मशासन तांत्रिक बीडों में 'पञ्चाक्षर' स्वीकृत हुई है। वेदशास्त्रों की मूर्ति पञ्च बख बाह्य, अक्षर-राक्षर बाँटि का ध्यान और सुयमत्र' शक्ति-शक्तिमान् की आराधना सभी तांत्रिक सम्प्रदायों में समान है। शक्ति-शक्तिमान् की एकता उनके रमण-विनास, भाँटि का ध्यान वैष्णव परंपराओं में प्रकाशान्तर से स्वीकृत हुआ और 'राजा' की कल्पना करके सापनों ने 'राजा कृष्ण' के विनास का ध्यान प्रारम्भ किया कर्णतः समूर्ण कृष्ण सम्प्रदाय का साहित्य तांत्रिक शक्ति-शक्तिमान् सिद्धान्त का है। विधिष्ट निश्चित रूप है। मध्यकालीन वैष्णवी शास्त्र उक्त तांत्रिक सिद्धान्त की स्वीकृति में बाधा इसलिए नहीं पड़ी कि स्वयं पांचरात्रशास्त्रों में शक्ति-शक्तिमान् का सिद्धान्त स्वीकृत था। केवल भावसक मपुरता' का बड़ी अभाव था उसे बाममार्गी शाक्त-दीव मर्गों से पढ़ कर लिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में उक्त विन्दु को स्पष्ट करने के लिए तांत्रिक बौद्धमत तथा शैव-शाक्त मतों में प्रचलित 'शामसाधना' का विस्तृत विवरण दिया गया है। पाठक इसके राधा-कृष्ण सम्प्रदायों में प्रचलित 'रागसीमा' और 'अनुरागसीमा' में बद्धसुत सादृश्य देख सकते हैं।

किन्तु सप्तकवियों कबीर, दादू, मानक आदि के सम्प्रदायों में यह उक्त 'रागसीमा' स्वीकृत नहीं हुई। इनमें तांत्रिक शक्त-साधना या तांत्रिक योग ही स्वीकृत हुआ है। हम यह चुके हैं कि 'शक्तसाधना' तांत्रिक बौद्धों में भी यथावत् स्वीकृत है अतः बौद्ध विद्वानों और नाग विद्वानों के माध्यम से यह 'शक्तसाधना' सिद्ध कवियों की रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है। चूंकि बौद्धतांत्रिकों और शैव-तांत्रिकों की 'शक्तसाधना' में 'मत्तासाधना' प्रचलित थी और यह प्रत्याहार की सीमा का स्वयं कर चुको भी अतः पौरुषपथियों ने 'रागसाधना' को निश्चय फँका और 'रागव्रत' के आचार पर 'शक्तसाधना' स्वीकार की, यही दृष्टि संत-कवियों में मिलती है फिर भी बौद्धतांत्रिकों की शक्त-साधना शब्दसाधना, ध्यानप्रक्रिया तथा प्रतीक आदि संत-काम्य में स्वीकार किये गए हैं। संतकाम्य की कथन-व्यक्ति पर भी बौद्धतांत्रिकों का प्रभाव है। प्रतीकात्मक पद्धति, विपरीत कथन पद्धति का तांत्रिक रूप संत-काम्य में यथावत् सुरक्षित विद्यता है। लोकभावा में, लोकधर्मों में रहने की प्रवृत्ति संतों ने विद्वानों और नागों से ही ग्रहण की थी। इसका सिवाय अनलंकृत अनाद भाषा का प्रयोग भी तांत्रिक परंपरा में प्रचलित था या संस्कृत काम्य के समानांतर एक विशिष्ट लोककाम्य के आचार पर विरहित हो रहा था, यह विचार संत-काम्य में जाकर पूर्ण हो जाता है।

संतों की सामाजिक दृष्टि शुद्ध तांत्रिक है। जिस प्रकार तांत्रिकों ने ब्राह्मण बानी जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था, वैदिकता और शैव-नीच, सुब्राह्मण स्वयं वैदिकता स्मृतियों के आचार पर कर्म-विवरण आदि का घोर विरोध किया है, उसी प्रकार संतकवियों ने इन प्रवृत्तियों का विरोध किया है। कबीर, तुलसी और मुर की तरह निम्न जातियों को केवल सुविधाएँ नहीं देते पूर्ण साम्य और सम्मिलन का स्वप्न करते हैं अतः संत-काम्य और संत-साधना तांत्रिक-साधना का ही रूप है।

संतकवियों के विपरीत कृष्णसम्प्रदाय और रामसम्प्रदाय के भक्तकवि संतों ने 'रागसाधना' को स्वीकार करके भी समाज के प्रति विरोधी दृष्टि नहीं अपनाते। छत्री पठाप्पी के पश्चात् भक्ति और योग आन्दोलनों के रूप में निम्न वर्ग का

जो बसंतोव व्यक्त हो रहा था तथा मुसलमानों के शासन के कारण जो हिन्दुओं के चिन्तन में 'समता की ओर समाज उन्मुख हो रहा था, उसके कारण भक्त आचार्यों—रामानुज, रामानन्द, चैतन्य, कल्याणदास आदि ने "वालि-वालि पूछे मा कोई हरि को मजे जो हरि को होई" का सिद्धान्त स्वीकार करके भी व्यावहारिक सामान्य जीवन में निम्न जनता के साथ एकता को प्रोत्साहन नहीं दिया था। मन्त्रों की यह प्रवृत्ति कबीर, भक्तक बाबू आदि के सम्प्रदायों में परम्परा नहीं की जाती क्योंकि संत पूर्ण एकता चाहते थे जिसके लिए स्वार्थव्यवहारी प्रवृत्ति नहीं हो सके थे। भक्तकवि तुलसी शूर आदि कर्मकाण्ठी मीमांसकों की तुलना में बहुत अधिक 'समतावादी' थे किन्तु संतकवियों की तुलना में वे केवल 'सुविधावादी' ही प्रतीत होते हैं। मुसलमानों की 'समता' का ज्वाहरण सम्मुख रखने पर यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि इतिहास संतकवियों की विचारधारा के साथ या अर्थात् तात्त्विकों ने 'समतावाद' का जो नारा बजाया था वह इतिहास की पंक्ति में अधिक अनुपलब्ध था। आज समाजवादी युग में तात्त्विकों का 'सामाजिक समतावाद' अत्यधिक प्रेरणादायक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में अर्णित तात्त्विक बौद्धमत, साक्तमत, पाँचतन्त्रमत तथा ब्रह्मोदी धर्ममत^१ के अनुसंधान से मध्यकालीन हिन्दी काव्य का मर्मोद्घाटन होगा ऐसी आशा है। साथ ही भारतीय काव्य के विन्दस के साथ भारतीय समाज के विन्दस के 'संस्कारमक' और 'समन्वयमक' रूप की ओर ध्यान आकर्षित होगा ऐसा विश्वास है। यदि प्रस्तुत पुस्तक में अर्णित सम्प्रदायों की सही परिचय में परया जायेगा तो भारतीय काव्य साक्षात् और समाज पर अहम एक अनुपम प्रकाश पड़ेगा अतः इनी विश्वास के साथ इस पुस्तक को प्रकाशित कर रहा है।

^१ परिशिष्ट में 'वैकन्यायिक मत' पर भी प्रकाश डाला गया है।

तात्रिक-धौद्धमत

सर्वचिन्तां परित्यज्य-दिनमेकं परीक्षयेत् ।
यदि न स्यात् प्रत्ययस्तत्र, तदा मेत-मृषा वषा ।
—सेकादेश्य टीका-नारोपा

सारी चिन्ताएँ छोड़कर, केवल एक दिन तंत्रसाधना
का अभ्यास करो, यदि विश्वास न हो तो
(समझना) मेरे य बचन मिथ्या हैं !

तांत्रिक धौद्धमत

दौद्धधर्म में तांत्रिक शक्तों के विकास के दो कारण दिखायी पड़ते हैं, प्रथम—कठोर दौद्ध साधना के प्रति उच्च जीवन की प्रतिक्रिया। द्वितीय—ब्रह्मीय शक्तियों की प्राप्ति और प्रदर्शन का मोह। इनमें प्रथम प्रकृति सिद्धान्त और साधना की व्यावहारिकता से सम्बन्ध भी जब कि द्वितीय प्रकृति धर्म के प्रकार और प्रभावशक्ति से सम्बन्ध भी।

कभी वैदिक यज्ञों को लौकिक, ब्रह्मीय शक्तियों की प्राप्ति का उपाय समझा जाता था। उपनिषद् युग में संन्यास-धर्म द्वारा ब्रह्मीय शक्ति प्राप्त सम्भव मान ली गई थी। यज्ञ के स्थान पर तपस्या द्वारा ही सभी ब्रह्मन्मय सम्भव कार्य किये जाने लगे। सृष्टि में प्रत्येक कार्य तप द्वारा सम्भव है, ऐसा विश्वास अब तक प्रचलित है। तप एवं योग के सम्प्रदाय जो वैदिक-यज्ञवाद के समानान्तर विकसित हो रहे थे उपनिषद्-युग में प्रकाश में आये। 'प्रिय' ऐसे ही तपस्वी एवं योगी थे जिनकी साधना के कारण ही यह सृष्टि बन रही है। तप तथा योग द्वारा ही क्षम की शक्ति हो सकती है, 'कर्मकाण्ड शास्त्रानुशीलनं चादि क्रियार्थं केवलं सहायक

-
- 1 In fact, the magic potency formerly ascribed to the Sacrifice, now began to be attributed to asceticism. In the succeeding age the idea that the universe was founded and maintained through Sacrifice slipped into the background, in its place it was widely believed that the universe depended on the penances by the great lord Shiva, meditating for ever in the fastnesses of the Himalayas and on the Continued austerities of his human followers.—The wonder that was India,

है, ऐसा विश्वास उपस्थितियों योजकों एवं रहस्य बोधकों में फैलित हो गया। बौद्ध धर्म के पूर्व जो अनेक सम्प्रदाय विकसित हो चुके थे उनमें तप तथा योग की ही बहुमता थी। कर्मकाण्ड को तो बौद्धों के अतिरिक्त अन्य अनेक सम्प्रदाय भी बसनीकृत कर चुके थे। कर्मकाण्ड के स्वान पर तप और योग का बौद्ध-धर्म के पूर्व सर्वत्र प्रचार था।

बौद्धधर्म में भी तप एवं योग को स्वीकार किया गया, तुलनात्मक दृष्टि से यद्यपि वेनधर्म से बौद्धधर्म कहीं कम कष्टपूर्ण साधना को स्वीकार करता था परन्तु फिर भी बौद्ध-साधना कठिन थी तथा यिसु-संधों के विकास के साथ संघों में गृह्य-समाजों का आंतरिक और गुरु संघटन होने लगा किन्तु निर्वाण प्राप्ति के लिए भोममय जीवन को स्वीकार किया गया, साथ ही जगत्ता को आकर्षित करने एवम् व्यक्तिगत प्रभाव बुद्धि के लिए लोकोत्तर शक्तियों के प्रदर्शन भी होने लगे।

डॉ० श्री० मट्टाचार्य ने तो स्वयं गौतम बुद्ध को तांत्रिक तत्त्वों का समर्थक सिद्ध किया है, उनके अनुसार बुद्ध ने 'इन्द्रियों' की प्राप्ति को उचित कहा था यद्यपि वह इनके प्रवर्तन पर शोचिन होते थे।^१ 'तत्त्व-संग्रह' में आंतरिक तथा व्याख्याकार कमलसील ने स्पष्टतः बुद्ध को तंत्र का प्रवर्तक कहा है।^२ धर्म से अन्मुक्त तथा कल्याण होता है, ऐसा सभी मानते हैं और इसीलिए मंत्र एवं बोधार्थ से प्रज्ञा आरोग्य किमुक्त आदि की प्राप्ति कही गई है, जो विषय है।

डॉ० मट्टाचार्य का विचार है कि गौतम बुद्ध एक चतुर संयोजक-कर्ता एवं कर्म-प्रचारक थे अतः उन्होंने निम्न जगत्ता को आकर्षित करने के लिए लोकोत्तर

१ इन्द्रियां चारुं—(१) चक्षु (२) श्रोत्र (३) विल (४) विमान ।
तुलनात्मक (५-८) में बुद्ध एक जगत्ता के व्यापक के लिए समस्तकार
विधानों पर आराध्य नामक साधक पर शोचिन होते हैं—'साधन
माना'—(पृष्ठ १०२) त्रितीय पुराण—साधकनाम डॉ० श्रीरीज

२ मगध-मुद्रय निष्पत्तिर्वतो नि-भ्रमसत्य च ।

तु धर्म उच्यते तादृक् सर्वैरेव विचक्षण-

तदुक्तमन्त्र ब्रह्मादि नियमादिभिस्तन्नाम् ।

ब्रह्मारोग्यनिमुत्पादिदृष्टपत्तौपि जायते ।—तत्त्वसंग्रह पृष्ठ १२

शक्तियों की प्राप्ति एवं प्रवर्धन को स्वीकार कर लिया था^१ परन्तु डॉ० एडिमुपण दास बुल इस मत को स्वीकार नहीं करते, उनके अनुसार पारम्भिक बौद्ध साहित्य में यौन-तत्त्व (Sex-element) तथा अन्य तांत्रिक तत्त्व विद्यमान होते हैं परन्तु इसके बहू प्रभावित नहीं होता कि नीचतम बुद्ध एक जन्मांक और अनुर संगठन कर्ता के रूप में इन्हें स्वीकार करते थे।^२

बलुस्विदि यह भी कि योग स्वयं एक रहस्यमय मार्ग है। गौतम बुद्ध मोक्ष के लिए उनके योग का जो विकास करते छठमियों में हुआ उसमें तांत्रिक-योग को स्थान ही स्थान मिल गया। ऐतान्तिक दृष्टि से भी गौतम की विचार-व्यक्ति एक हीमा एक रहस्यमय थी। अनेक प्रशंसा का उतर गौतम योग द्वारा दिया करते थे छठः महायानियों ने उनके योग से पारम्भिक बौद्धमत (हीनयान) के सर्वदा विपरीत मतों का आधिकार कर लिया। गौतम बुद्ध के जीवन को दो भागों में विभाजित किया गया। प्रथम—मिश्र जीवन, जिसमें उनका उपदेष्टा रूप है। द्वितीय—पारम्भिक योगमय जीवन। आगे के तांत्रिकों ने कपिलवस्तु के मोक्षमय जीवन की ऐतान्तिक व्याख्या करते करते ही उत्कृष्टतम साधनमय जीवन स्वीकार किया और दूसरे मिश्र-जीवन को बाह्य तथा निम्नकोटि की जनता के लिए मान्य माना। इस प्रकार चाहे स्वयं गौतम बुद्ध ने जान बूझकर ऐतान्तिक शक्तियों और शक्तियों की प्राप्ति का विरोध किया हो परन्तु उनके जीवन विचार-व्यक्ति तथा धारणा में अनेक रहस्यमय तत्त्व थे जिन्हें आचार बनाकर सोकोत्तरवादिनों ने तांत्रिक-योग का विकास किया।

हीनयान-मत का रूपान्तरण

महायानमत के तांत्रिक-बौद्ध मत (बोधयान रहस्ययान) में रूपांतरण को समझाने के लिए यह आवश्यक है कि संक्षेप में हीनयानमत एवं महायानमत का सम्बन्ध स्पष्ट कर लिया जाय। इस सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए बौद्ध-धर्म के पारम्भिक विकास को तीन धरणों में विभाजित किया जा सकता है।^३

1 An Introduction to Buddhist Esoterism—Page. 26 27

2 Obscure Religious cults—S II as Gupta—Calcutta University (Introduction)

3 Mahayan Buddhism and its relation to Hinayana, N Datta—London 1930

- १ शूद्र हीनयानमत—४४० ई० पूर्व से—३५० ई० पूर्व तक
- २ मिश्रित हीनयानमत—३५० ई० पूर्व से—१०० ई० पूर्व तक
- ३ महायानमत का प्रारम्भ—१०० ई० पूर्व से—३० ईसा के
एक विनाश परचात् तक

प्रथम युग में बौद्धमत केवल नगरों तक ही सीमित था। भिक्षुओं के अतिरिक्त सामान्य जनता संघ से अलग थी वह बौद्धधर्म की सहजमता कर सन्ती थी किन्तु संघमें सहजमता प्राप्त नहीं कर सकती थी। 'प्रजापारमिता' जो कि महायानधर्म तथा तांत्रिक बौद्धमत की आधार थी अभी अस्तित्व में नहीं आयी थी। जीवन का उद्देश्य केवल बहिष् होना या दुःखल प्राप्त करना भिक्षुओं का उद्देश्य न था। अनात्मवाद दुःखवाद सन्निकषाद तथा इच्छा का नाश ये मूल सिद्धान्त थे। चार आर्यसत्तों का प्रचार था। निर्वाण से क्लेश का नाश होना है, विषम एव चिन्त की शान्ति प्राप्त होती है ऐसा विश्वास था।

मिश्रित हीनयान मत—(३५० ई० पूर्व—१०० ई० पूर्व) चौथम शूद्र के १०० वर्ष परचात् कैशाली में बूद्ध संघ की इसरी सभा हुई। इसमें भिक्षुओं का एक दल (सम्मत्त महासांपिक) प्राचीनतावादी भिक्षुओं से अलग हो गया। महासांपिक संघ-नियमों को सरल और सुविधाजनक बनाना चाहते थे तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से भी वे मतभेद रखते थे। अबतक धर्मधर्म अवदान तथा शातक साहित्य का परंपरावादी (वैरावादी) भिक्षुसंघों के बोध में जन्म हो चुका था। बूद्ध के अनेक पत्नी और त्यागपूर्व कन्याओं का प्रचार हो रहा था। पारमिताओं का भी विकास हो रहा था। पारमिताएँ १० हैं—दान धीम धन धीर्य धान्ति ध्रुव अविष्यग धीर्य उपेक्षा तथा निखम्मा (संन्यास लता) प्रारम्भ में पारमिताएँ ६ थीं परन्तु स्वयं वैरावाधियों ने सत्य अविष्यग भिक्षता एव निखम्मा जोड़ दीं। ध्याने चल कर महायानमत में इस १ पारमिताओं की महिमा बहुत अधिक बढ़ गई।

वैरावाधियों की ही एक शाखा 'सर्वास्तिकावादी' कहलायी। सर्वास्तिकावादी एव महासांपिक (जो सर्वास्तिकाधियों से भी अधिक प्रसारतावादी थे) पारमिताओं पर अधिक दल देते थे। यह स्मरणीय है कि उत्तरी भारत में सर्वास्तिकाधियों का ही प्रभाव अधिक था, दक्षिण तथा नदगीर इनके प्रभाव-क्षेत्र थे। नामदप मासवा तथा

तुषार केंद्र तक इनका प्रभाव फैल रहा था। बेरावाणियों का प्रभाव मगध तथा उज्जैन तक ही सीमित रहा।

महासांघिकों का केंद्र मगधपि वैशाली में था परन्तु इस का प्रचार उत्तर व दक्षिण में भी हुआ था। सबसे पसिद्ध महासांघिक केंद्र 'बान्धकटक' था। मंदूर जिले में कृष्णा नदी पर यह स्थान बाद में महायानमत का मुख्य केंद्र रहा और तांत्रिक धर्म के प्रचार का मुख्य स्रोत बना। महासांघिकों की एक शाखा लोकोत्तर बुद्ध में विश्वास करती थी और अर्हंत पर-धामि के स्थान पर 'बुद्धत्व' प्राप्ति को उच्चतर लक्ष्य मानती थी। बुद्धत्व-प्राप्ति का यह धरेणा भी सम्भवतः सर्वास्तिवादियों से प्राप्त हुई थी? क्योंकि बेरावादी एक सर्वास्तिवादी दोनों सम्प्रदाय बुद्ध के लोकोत्तर बुद्धों पर इतना अधिक बल देते थे कि महासांघिकों ने बुद्ध को लोकोत्तर बुद्ध के रूप में स्वीकार किया। बुद्ध साधारण मनुष्य न हो कर अलौकिक शक्ति के रूपमें स्वीकृत हो गए। सर्वास्तिवादियों ने काया-सिद्धान्त की भी खर्चा की है जिसका महामान एक तांत्रिकमत में महान आदर है। सर्वास्तिवादी रूप-काया एक धर्म-त्रया को मानते थे परन्तु इनके अर्थ महायानी अर्थों से भिन्न हैं। 'शून्य शब्द का प्रयोग भी सर्वप्रथम सर्वास्तिवादियों ने ही किया है। परन्तु सिद्धान्ततः सर्वास्तिवादी बाह्यपदार्थों की सत्ता पर विश्वास करते थे और इस पर अधिक बल देने के कारण महायान महाबलमिथ्यों ने प्रतिश्रियावश सारे बाह्य पदार्थों को शून्य घोषित किया। बाह्य पदार्थों के अतिरिक्त आंतरिक पदार्थों को भी 'शून्य' घोषित किया महायानमत में बाह्य-निजुओं ने उपनिषदों के अभ्यसन के फलस्वरूप 'सत्ता' एक आत्मा की अजातमनसोत्तर सिद्ध किया और बाह्यपदार्थों की सत्ता प्रमाणित नहीं होनी यह स्पष्ट स्वीकार किया अतः उन्होंने 'शून्य शब्द का व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

बेरावादियों एक सर्वास्तिवादियों द्वारा स्वीकृत पंचस्कन्ध धातु, आपतन आर्षस्कन्ध प्राप्ति को महायानियों ने स्वीकार किया परन्तु उन्हें व्यावहारिक सत्य (मंडूक सत्य) माना और पारंपारिक सत्य की प्राप्ति के लिए बाह्य साधना को सोपान के रूप में स्वीकार कर लिया। प्रजापारमिता के विकास में सर्वास्तिवाद ने ही अधिक धारण किया था। उड़ीसा में इनका केंद्र था यहीं से महायान ने

प्रेरणा की प्रतापारम्भिता को स्वीकार कर दक्षिण में इन्होंने महायानमत का विकास किया। नागजुन (द्वितीय शताब्दी के लगभग) ने भी धार्मिकता में साधना की थी जो संन्यास का सर्व-समम आचार्य भागा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि बौद्ध तांत्रिक मत का प्रारम्भिक केन्द्र दक्षिण-प्रेरणा ही था।

महायानमत में सर्वस्तिवाकियों के सिद्धांत एक सत्तावादी के जिम अर्थ प्रकृत हैं। कथकथा निर्माणकथा तथा संशोधकथा ये सांख्यिक (ध्यात्मिक) कथाओं के नाम हैं। धर्मकथा ही पारंपरिक कथा है। 'धर्मकथा' ही उपपन्न कीर्ति का आधार है। बुद्ध अनेक हैं। प्रत्येक की संशोध कथा अलग-अलग होती है। परन्तु सबकी धर्मकथा एक है। धर्मता अनेक उत्पन्न है अतः धर्म्य है, उसे धर्म्य ही कहा नहीं जा सकता। बुद्ध इसी धर्मता का प्रतिनिधित्व है। धार्मिकता ही बुद्ध थे—उनके अनेक नाम हैं—स्वयंभु, नायक कृपण विष्णु ईश्वर, प्रथम भक्ति सोम आस्कर, राम ध्यास शुभ्यता तथा भूतकोटि निर्वाण सर्वज्ञ आदि। बुद्ध न धर्म्य हैं न अधर्म्य हैं, वह अनोपधर्मकथा है।¹

सर्वस्तिवाकियों द्वारा प्रयुक्त धर्म्य कथा शुभ्य आदि धर्मों का अर्थ जिस प्रकार महायान ने बदला उसी प्रकार 'निर्वाण' का अर्थ भी परिवर्तित होने लगा। महायानमत के अनुसार 'निर्वाण' का अर्थ हीनवादी 'उच्छेद' मते है परन्तु महायान उच्छेदवादी नहीं है वे 'निर्वाण' का अर्थ भी अज्ञेय-स्वयंभु के रूप में करते हैं। यही शुभ्यकथा है। जिस 'आत्मा' का अर्थ महायानी करते हैं उसका अर्थ है चिन्ता की तांत्रिक स्थिति (Transitory Consciousness)। इसका नाश (उच्छेद) आवश्यक है। तभी निर्वाण प्राप्त हो सकता है। बौद्ध बौद्ध क समय 'आत्मा' का अर्थ उपनिषदों के प्रभाव के कारण इतना अधिक सामान्य हो गया था कि उसका अर्थ आवश्यक था परन्तु

(1) नागजुन 'धर्मकथा' का अर्थ अज्ञेयवादी के समान करते हैं। निवेदनी की तरह नहीं, बल्कि पदार्थों के अस्तित्व का निवेद करने अज्ञेय सत्ता की ओर संकेत करते हैं। कथकथाओं ने आगे चलकर स्पष्टतः 'धर्म' को स्वीकार किया—

It is by denial of the existence of unreal things including the so called Tathagata, that he (Nagarjun) points out towards the reality—the real Tathagata—the Dharm Kaya.

इस काल के द्वारा महामानी चेतना के उल्लेख में विश्वास नहीं करते केवल चेतना के सम्बंध में सामान्य जनता के भ्रम का निराकरण करते हैं इस प्रकार महायानमत द्वारा प्रतिपादित 'निर्वाण' और वैदान्तियों की जीवन्मुक्ति अवस्था एक ही पायी है।

बुद्धत्वप्राप्ति के लिए काया सिद्धान्त एवं निर्वाण सिद्धान्त का रूपमुक्त विशेषरूप ३०० ई० पूर्व से १०० ई० पूर्व तक विकसित हुआ। 'प्रज्ञापारमिता' को इनका आधार बनाया गया, साधना के लोभ में पंचध्यानी बीजों एवं बोधिसत्वों का आविष्कार भी इसी युग में हुआ। किन्तु महायान के इन सिद्धांतों का निश्चित रूप भाग्य के युग में प्राप्त होता है।

तृतीययुग—(१०० ई० पूर्व से ३०० ई० के परन्तत् तक)

महामानमत में बोधिचिन्त वराभूमि, बुद्धत्व, विज्ञप्ता, बोधिसत्व तथा धर्म साम्यता या तपता इन तत्त्वों को आधार माना जाता है।

महामानमतानुसार साधारण दो हैं, I क्लेशावरण II ज्ञेयावरण। पुद्गल शुभ्यता एवं धर्म-शुभ्यता से इनका नाश सम्भव है। हीनमानी केवल क्लेशावरण का ही नाश करते हैं। वे ज्ञेयावरण का नाश नहीं कर सके। अतः वे हीन हैं। ज्ञेयावरण का नाश प्रज्ञापारमिताओं के ज्ञान से होता है।^१

१ प्रज्ञापारमिता साहित्य विज्ञान है। इसी पर महायान आधारित है। इनमें अनुपलब्धिका प्रज्ञापारमिता प्रारम्भिक है। उत्तरकाली पंचविद्यतिसहस्रिका प्रज्ञापारमिता तथा अतमहस्रिका-प्रज्ञापारमिता का विकास हुआ। कनिष्ठ के व सत्य बौद्ध-सभा में सम्भवतः प्रज्ञापारमिता को स्वीकृति मिली। यद्यपि प्रज्ञापारमितासाहित्य की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में मिलती है। भीनीभाषा में पंचविद्यति प्रज्ञापारमिता का अनुवाद २०१ ई० में हुआ।

यद्यपि पारमिताओं में कार्यसदय चरमस्तरण २ प्रकार के ध्यान (Vijñāna) १ अविज्ञान एवं १६७ वर्तमानों का उल्लेख है परन्तु वे सब बाह्य साधनार्थ और विश्वास व्यावहारिक सत्य मान जाते हैं। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए वे आवश्यक नहीं हैं। ज्ञाना एवं ज्ञेय का भेद जब तक रहेगा तब तक तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता अतः ज्ञेयभावण भी नष्ट करना होगा। प्रज्ञापारमिता साहित्य का मुख्य संदेश यह है कि हीन यानियों में अज्ञान विधि-निषेध (नीति धारण) ध्यान-प्रतिपत्ति शारत्तानुगीतन, अर्थात् सत्ताहीन (Non-existent) है वे आशाउ-नुसुय के प्रमाण हैं, बाह्य कार्य विधायी तत्त्व

‘प्रज्ञापारमिता’ पर आधारित महायानमत में एक और कान्तिमयरी परिवर्तन हुआ। महायान में ‘बोधिसत्त्व’ का सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया। यदि बुद्ध के पंचप्यामी बुद्ध और पंचप्यामी बुद्धों से बनेक बोधिसत्त्वों का जन्म होता है। बोधिसत्त्व केवल अपनी मुक्ति का प्रयत्न नहीं करते वे धारे जन्म को मुक्त करके मुक्त होना चाहते हैं।

हीनयानमत में दो याग (सम्प्राय) थे। (१) ध्यानध्यान (२) प्रत्येकमान। ध्यान बुद्ध के उपदेश सुन सकते थे परन्तु उन्हें बिना किसी ‘बुद्ध’ की सहायता के निर्वाण नहीं मिल सकता था। अतः ध्यान बुद्ध की प्रतिष्ठा-क्रम में उपदेश देते थे व्यापक जीवन व्यतीत करते थे परन्तु अन्य लोगों को मुक्ति-प्राप्ति में कोई सहायता न दे सकते थे क्योंकि वे स्वयं बुद्ध पर अवलम्बित थे। ‘प्रत्येक-बुद्ध-याग’ में प्रत्येक बुद्ध बिना गौतम बुद्ध की सहायता के ही मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे दूसरों को मुक्ति दिलाने में असमर्थ थे। परन्तु महायान में बोधिसत्त्वों की कल्पना

विश्वासों के अभाव के समय यह तथ्य यदि ध्यान में न रहता जायता तो तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रज्ञाप्राप्ति ही मुख्य है, वह सर्वत्र बाह्य जगत् से प्राप्त होती हो यह आवश्यक नहीं। हीनयानी आचार्यों की नस्ब्रटा में विश्वास नहीं करते अतः वे हीन हैं। महायानी मुख्य एक इष्टा के भ्रम से ऊपर उठते हैं। केवल चित्त शुद्धि के लिए ही आचार्यों को आवश्यक मानते हैं। बाह्य आचार्यों से चित्तोत्थारण होता है, चित्त शुद्धि होती है, बोधि प्राप्त नहीं होती। (इष्टतथ्य—पंचविद्यति प्रज्ञापारमिता—सम्पादक गणितोत्तर—भूमिका भाग १६३४ पृष्ठ १६३४)।

प्रज्ञापारमितासाहित्य में कुछ कारिका एक टीका से हीन भाग हैं। कारिका का लेखक मैत्रेयनाथ का विषय समय निर्धारित नहीं है। तारनाथ के अनुसार तुषिण स्वयं में असंग मे मैत्रेय से प्रज्ञापारमिता कुछ पत्रे थे और असंग ने उनका अनुष्यों में प्रचार किया। सिद्धार्थ की सारी पर नभिलास्यतः विज्ञा है कि मैत्रेय ने प्रज्ञापारमिता सूत्रों पर कारिकाएँ नहीं थीं कुछ उगके भी पूर्व विद्यमान थे। असंग समुत्तु, विमुक्तसेन आदि ने टीकाएँ लिखीं। ८ वीं ९ वीं शताब्दी (गानिक-यम) में प्रज्ञापारमिता साहित्य का अपरिचित प्रचार हुआ क्योंकि इसमें तत्त्वज्ञान मुख्य का बाह्य आचार-अनुशीलन आदि चीन। पंचविद्यति प्रज्ञापारमिता में मैत्रेयनाथ की कारिकाओं पर टीका भी है।

की और बताया कि बोधिसत्त्व स्वयं मुक्त हो सकते हैं और दूसरों को भी मुक्त कर सकते हैं। बोधिसत्त्व कठणा एव कृपा भाव के कारण सारे जगत की मुक्ति में सबसोन रहते हैं वे इतने कृपासु हैं कि जगत का उद्धार किये बिना वे स्वयं अपनी मुक्ति नहीं चाहते। यह आदर्श महाान था। तृतीय शताब्दी (ई० के परबात्) तक इस बोधिसत्त्वयान का बिदास हो चुका था अतः इस समय तक इमें आध्यात्मिक, प्रत्येक बुद्धयान एव बोधिसत्त्वयान (महायान) इन तीन धाराओं की प्रमुखता मिलती है।

इस प्रकार व्यक्तिगत मुक्ति के प्रयत्न में हीन हीनयान समष्टिगत मुक्ति की ध्येय में उत्तर हो गया। जोरों पर अधिमूर्च्छना एव ज्ञान (प्रज्ञा-प्रसापरिमिताओं के अनुशीलन से प्राप्त) वे उत्तर महायान की अपनी विशेषताएँ हैं हीनयान इस प्रकार महायान में समाहित हुआ। सिद्धान्ततः इस रूपान्तरण को इस प्रकार विभाजित किया जाता है—१ सर्वास्तिवाद २ वैभाविक ३ योगाचार या विज्ञानवाद ४ माध्यमिकमत या शून्यवाद। अद्ययवध के अनुसार वैभाविकमत का आध्यात्मिक एव प्रत्येक-बुद्ध-यान मानता था। महायान को प्रकार था है १ पारमितायान (प्रज्ञापरिमिता पर आधारित) २ मंत्रयान (मंत्र को महत्व देने वाला)। पारमिता को योगाचार, शैवाणिक माध्यमिक सभी मानते हैं परन्तु मंत्रयान को योगाचार तथा माध्यमिकमत ही मानते हैं। उपर्युक्त चार सिद्धान्तों में तांत्रिक बौद्धमत विज्ञानवाद एव माध्यमिकमत या शून्यवाद से प्रभावित हुआ है। शैवाणिक और वैभाविक^२ मत तांत्रिक को स्वीकृत नहीं हैं। अतएव दार्शनिक दृष्टि से तांत्रिक बौद्धमत विज्ञानवादी तथा शून्यवादी है तथा महायानमत की मंत्रयान शाखा के रूप में स्वीकृत है। यह स्मरणीय है कि तांत्रिकों की साधनाया ने उनके सिद्धान्तों को भी प्रभावित किया है, जिन्हें हम यथास्थान देखेंगे।

तांत्रिक बौद्धमत का विकास—यद्यपि तांत्रिक बौद्धमत का निश्चित स्वरूप मंत्रयान की परंपरा में ब्रह्मिण 'ब्रह्मयान और सहस्रयान' में मिलता है परन्तु इसका प्रारम्भ सम्भवतः गौतमबुद्ध के परबात् शीघ्र ही हुआ होगा क्योंकि रहस्यमय तत्त्व गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों में कहीं-कहीं है। फिर भी यत्रतत्र बिकीर्ण प्रमाणों को छोड़कर ब्रह्मयान के पूर्व मंत्र ही कोई निश्चित रूपरेखा बौद्ध साहित्य में नहीं प्राप्त होती। किन्तु ईसा के आसपास बौद्ध साहित्य में तांत्रिक तत्त्व प्राप्त होने लगते हैं।

ई० विनयोल मद्राचार्य के अनुसार सिद्धापर पिक^३ नामक महायानी ग्रन्थ में सर्वप्रथम तांत्रिक तत्त्व मिलते हैं। परन्तु यह अपाय्य है।^१ 'मुद्रावती-

झूठ' या 'भक्तिायुससूत्र' में^१ अभिमान तथा अक्षयभित्तिरत्नर की चर्चा है। इस कल्प पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट है।

मंजुभीमूलकल्प^२ में यद्यपि पीछे से बहुत मिथ्या प्रतीत होता है परन्तु मूल रूप में यह निश्चित रूप से ईसा के आसपास की ही रचना है। भाषा में विनयतोप दूरे २०० ई० की रचना मानते हैं। इस ग्रन्थ में तंत्र का प्राथमिक रूप मिलता है। इसमें दार्शनिक एवं मंजुभी से संभाव रूप में मंत्र-साधना का विलुप्त वर्णन है। यज्ञ यज्ञिणी जाति की साधनाओं के वर्णन हैं, स्त्री को साधना में उपकारी बताया गया है। मुद्रा मंत्रालय अक्षयभित्तिरत्नर जाति सभी कुछ यहाँ वर्णित है।^३ साथ सुनाए नामही विद्याय बुद्धक कल्पति का उल्लेख है।

मङ्गल-निर्माण में तपायनों एवं कल्पसत्त्वों की अनेक मूर्तियों के निर्माण करके धूपदीप आभूषण बलि पट्ट-स्वनि मुद्रा-स्वर्णन पात्र आदि सभी तत्वों का विधान है।^४ एकादश पटल में स्पष्ट कहा गया है कि स्त्री के सहचार से साधना होनी है। यह भी कहा गया है कि दुष्टचार के लिए तंत्र-साधना नहीं है, न मूर्तियों के लिए है, ज्ञानमय तथा संयम से ही सिद्धि मिलती है।^५

१ सुनावती झूठ का चीनी भाषा में (४८ ई. परबत्) अनुवाद हो चुका था अतः यह निश्चित रूप से प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गई होगी।

२ भावमंजुभीमूल कल्प—त्रिभेन्द्र्यु खीरीय कल्पति धारणी १६२

३ मंजुभी मूलकल्प का प्रारम्भ इष्टम्य है — स्थापते से मंजु भी । महा एव कर्मात्तर्ष बुद्ध अक्षिण्डित निर्हार सर्व बोधि सत्त्वावैश्यापक सर्वसंनयन सत्त्वस्या विपुत्र मुद्रामन्त्रल कल्याणिके आपुत्तरोष्ठीरत्नर्य सर्वशापरिपूरक सर्वसाधनोपिक-सम्भ्रान्त श्रेय वाचान्तराधान.....अन्तर्ज्ञानावासायन पात्रप्रचारित मेधावी करण आदर्शन पात्राप्रवेशन आन्ध्रिक नर्भरामावात्तिरत्नर मरयधिणी विदुःरिशाच सर्वभूताकषण.....सर्वमनोव्यपरिपूरक आन्ध्रिक शास्त्रिणपौष्टि नेपु अनुर्वाण (प्रथम परिपुत्र) प्रथम पुस्तक

४ भावमंजु भी मूलकल्प—तृतीय पात्र (प्रथम पुस्तक)

५ संयता कल्पस्यज्ञा सुरवेकपुत्ररा मातृमिदृशतामा स्त्रीषु बुद्ध न विद्यते । बुद्धीतस्य बुद्धिरेण मन्त्रिदित्तं चोरिता ।

दुःख निष्पन्नि कल्पा वे वाग्ध्यास्येह बुद्धिने । एतत्साधनम (प्रथम पुस्तक) ।

मञ्जुषी मूलकल्प से स्पष्ट है कि बौद्ध-तंत्र पर शैव प्रभाव था। बिष्णु एक छत्र दोनों को बौद्ध तांत्रिक शैवों के रूप में स्वीकार करते हैं।^१ शैव-तंत्र को अनुत्तर योग कहते हैं, मञ्जुषी मूलकल्प में भी 'अनुत्तर' शब्द का प्रयोग प्राप्त है।^२ शाक्य-मुनि का स्पष्ट कथन है कि पूर्व कल्पों में शिव ने जित्त मार्ग का उपदेश दिया है, उसी का उपदेश मैं कर रहा हूँ। मैंने पहले भी इसी मार्ग का उपदेश किया है।^३ अत्यन्त बड़ा है कि शैवतंत्र में भी वस्तुतः मेरा ही उपदेश वर्णित है।^४

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक तांत्रिक बौद्धमत मुख्य-शैव सम्प्रदायों से प्रभावित रहा होगा अतः पीछे ने बौद्ध-तांत्रिक शैवों से अपनी एकता साधित करते हैं।

मञ्जुषी मूलकल्प के अनुसार अष्टमर्षुद्धरीक में भी तांत्रिकत्व प्राप्त होते हैं। इस कल्प का रचनाकाल निश्चित नहीं है परन्तु यह ईसा के अठ-यास निष्ठा गया होगा एका विद्वानों ने स्वीकार किया है। इसमें भी मञ्जुषी मूलकल्प की तरह मिश्रण मिलता है। बाद की शताब्दियों में अनेक बातें मिलती हैं तथापि मूल रूप में यह कल्प प्राचीन है। कल्प के गीता का इस पर स्पष्ट प्रभाव है।

अशोक के पदपाठ ही ब्राह्मणधर्म एक बौद्धधर्म परस्पर प्रभावित होने लगे थे। शु. गों के समय तक ब्राह्मण प्रबल हो गए थे ब्राह्मण पौरोहित्य और बौद्ध पौरोहित्य जो मंदिरों, संघों तथा राज दरबारों पर अधिकार प्राप्त करने में परस्पर स्वर्ग में

१ इन्द्रजनायिका ये मन्वा बिष्णुना ब्रह्मणा स्वयम्—मञ्जुषी—द्वितीय पुस्तक १ पृष्ठ ४४२

२ अनुत्तरं शब्दमित्याहुः महाबोधिवर्म पथम्—वही, पृष्ठ ४४२।

३ सर्वे शैवनिनि क्मान् सर्वेभूतम वासिधिः।

मर्मैव निमग्निं पूर्वं वस्येमस्मि सचित्तरे—मञ्जुषी—द्वितीय पुस्तक पृष्ठ ३२३।

४ विधिषा गुण विस्तारा, शैवतन्त्रे मयोविता—प्रथम पुस्तक—पृष्ठ १४
श्री० वर्म के अनुसार मञ्जुषी पर बहिरिः अग्नि, श्री रात्र श्री का प्रभाव रहा होगा—

इत्यस्य — Manual of Indian Buddhism—Part I Page
(101 134)

संज्ञक या सब अपने-अपने नामों को अधिक आकर्षित करने में सतर्कित हो गया था। इसी काल में ब्राह्मण-बौद्धों ने महायान बौद्धधर्म में पीठा का अवतारवाद स्वीकार कर लिया। बौधिसत्त्वों के रूप में इस कल्पना को विस्तार दिया, उपनिषदों के 'ब्रह्म' की तरह 'बोधि' बुद्धत्व एवं निर्वाण का वर्णन होने लगा। बलिष्ठा के समय में जो अनुरूप बौद्ध समा हुए थे। उसमें महायान एक लघु सम्प्रदाय था परन्तु ईसा की द्वितीय शताब्दी के नापार्बुन तथा आर्यदेव ने साम्प्रदायिकमत तथा तृतीय और अनुरूप शताब्दी में अरुण अरुणधर आदि ने योगाचार मत के रूप में महायान का विकास किया और साधना के लक्ष्य में अवतारवाद प्रतिष्ठाद मंत्र पूजा मूर्ति-निर्माण आदि सभी तरफों को स्वीकार कर लिया।^१ छठम-पुस्तकीक में हमें ब्राह्मण-धर्म के इसी प्रभाव का प्रारम्भिक रूप दिखायी पड़ता है।

'छठम पुस्तकीक' में स्पष्ट कहा गया है कि त्रिनेत्र जी-शैव के मुक्तार्थ अवतार मते हैं, नीच उक्त सभी के उद्धार के लिए उनका अवतार होता है।^२ इस सिद्धान्त को स्वीकार कर अनेक अनेक देवताओं व बोधि सत्त्वों आदि की अवतारना भी सत्य हो गई और नाना देवताओं के ध्यान युक्त स्तौत्र आदि की परम्परा के लिए मार्ग मूल्य गया।

१ प्रो० कर्न ने लिखा है कि नापार्बुन पहिले महायानी ब्राह्मण का ध्यान बतलाया गया है। यह ब्राह्मण इन्द्र व वनेश का मूर्ति था। कर्न के अनुसार इन परंपरा से यह प्रमाणित होता है कि महायान मत पीठा एवं शैवधर्म से प्रभावित हुआ था — *This quasi-historical notice reduced to its less allegorical expression means that Mahayanism is much indebted to the Bhagvat gita and more even to Shaivism. Manual of Indian Buddhism Page 122, Strassberg 1896.*

सर चार्ल्स इलियट ने भी महायान सम्प्रदाय के छठम-पुस्तकीक पर पीठा का स्पष्ट प्रभाव स्वीकार किया है—

Japanese Buddhism—Page 29 London—1895

२ (क) बड़ वि वेणुहि त्रिनेत्र नायका उग्रम सरवान मुक्तार्थम् ।

संदर्भार्थि इय बुद्ध बोधि नामाभिनिर्धार सहस्र कर्मिणि ।

(ख) तपागण्डर्ष भगवान नामिषु उपासार्थं इह भोक्ति ज्ञान ।

जिस प्रकार यीशु में समन्वय का प्रवृत्ति मिलती है, उसी प्रकार छद्मपुंडरीक में स्वारता, समता एवं परबर्मसंहिम्बुता जलित होती है। साधना में सम्पन्न ज्ञान की आवश्यकता है, सिद्धान्तों के इन्द्रों और प्रबंधों में ही मूलभूमि में बर्म का सार प्रतिष्ठित है, सभी बर्मों में यह सार रूप में उत्पन्नमान प्राप्त है।^१ इसी सारसाहिना की प्रवृत्ति के कारण आगे के संन-साहित्य में बौद्ध-साहित्य का श्रेष्ठतम अंश चुन लिया गया है।

छद्मपुंडरीक में सुखाकरी स्वर्ग का भी वर्णन है।^२ अन्य स्वर्गों या लौकों में स्थित देवता मंत्र से बंध में स्थित या सफेद हैं, यह विदवाय भी यहाँ प्राप्त हुआ है। मंत्र यहाँ धारणी के रूप में प्राप्त होते हैं। भक्तों ने पूछा कि हे भगवन्! इस छद्मपुंडरीक को कामगज एवं पुस्तकयुक्त कैसे करें? तो उत्तर मिला कि रक्षावरण मुक्ति के लिए धारणीमंत्रों में यह आख्य सुरक्षित रहेगा^३ अतः धारणीमंत्र-याठ से संबंध है, स्वरण से आप से पूर्ण पुस्तक के पाठ का ज्ञान प्राप्त होगा। परन्तु धारणी मंत्र फलों की रचना बड़ी विचित्र है। और रहस्यमय है।^४ जनता में यह

(घ) सत्पयामि इयु सर्वभोक्तं मेधो व चारि सम मुञ्जमान ।

आर्येयु नीचेप व नुत्पयुतिरुःशीमभूनेष्वव धीमवत्सु ।

छद्मपुंडरीक—सम्पादक प्रोफेसर कर्न तथा

बी० नरिपो ।

सेंटपीटर्सबर्ग—१९१२ ई०

(पृष्ठ १४ १२८ ११७ क्रमरा)

छद्मपुंडरीक का अनुवाद चीनी भाषा में ३०० ई० तक हो चुका था।

१ सर्वपमः समा सर्वे समा समसमा सता ।

एवं आत्मा विक्रमागति निर्वाणममूर्तं सिद्धम्—छद्मपुंडरीक पृष्ठ १४३

२ रिति परिषदम यत्र मुक्तकरा लोकापालु विरवा सुत्रावनी—पृष्ठ ४११ (वही)

३ वास्मानो बर्म भगवत्सेवा कुलपुत्राणां कुलनुद्धिपूर्णा वा मेधामय छद्मपुंडरीको बर्मपर्याय कायमगो वा स्वात्पुस्तकमगो वा रक्षावरणमुत्तये धारणीमन्त्र-यदानि । पृष्ठ ३११ (वही)

४ एक धारणी इत्यस्य—अथ महाअथ उच्यते सुखी मुक्तरु अथे अदावनि नृत्ते नृत्पावति इतिनि विनिनि विनिनि नृत्पनि नृत्पावनि स्वाहा—पृष्ठ ११८ (वही)

विश्वास उत्पन्न कर दिया गया कि केवल इनके जाप मन्त्रों से वह सभी फल मिलते हैं जो तप एवं योग से मिलते हैं। बौद्धधर्म की कठोर साधना को इस प्रकार सरल किया जाने लगा।

सहस्रमंजुशरीक में मौनम बुद्ध 'शैवम्यराज' के रूप में भी स्वीकृत हैं। उनके 'तंत्र' में—'शैवों—शाक्तों—बौद्धों सभी में तंत्रसाधना का सम्बन्ध औपनिषद्-विज्ञान से भी रहा है। रसायन सम्प्रदाय का निष्पन्न सर्वप्रसिद्ध है। सहस्रमंजुशरीक में इनके शारङ्गिक रूप के दर्शन होते हैं।^१

मूल-शत रासस रासनी यथादि की साधना पर भी बल दिया गया है। महापद्म 'विबुद्धक' (ज्योतिष का पुत्र) की उपा में आकर भगवान कहते हैं—
 ज्योतिष गये गौरि गन्धारि चण्डालि मातङ्गि पुण्डरि मंजुमे वूमनि सिद्धि स्वाहा^{१२}

अथर्ववेद के कई रासस-उपनिषदों का उल्लेख सहस्रमंजुशरीक में मिलता है, उनमें कुछ में करने का भी विधान है।^३ इसे देखकर स्पष्ट हो जाता है कि अथर्ववेद में प्रागेतिहासिककाल से प्राप्त तथा स्वीकृत शक्ति-साधना एवं विस्वास्तों को अथर्ववेद के परचातु तंत्रों में अपने में समेट लिया इसका कोई यह नहीं है कि तंत्रों के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर इनका प्रभाव नहीं पड़ा।

जिन प्रकार शैव-शाक्त तंत्रों का जन्म तब उमा के संवाद के रूप में प्राप्त होता है उसी प्रकार बौद्धतंत्र शैव-शाक्त-रासस शक्ति-तंत्रों आदि की मन्त्र (संकीर्ति) में भगवान बुद्ध के उपदेशों से होता है। इन शक्तियों में भगवान

१ साधु मातु शैवम्यराज सम्बानामर्षी कुतो चारणीपरादि मापिनामि
 पृष्ठ ३१७—३१८ (वही)

२ पृष्ठ ४०० (वही)

३ अथ पृष्ठ १ व नाम रासनी विपम्या २ व नाम रासनी कृदग्नी ३ व नाम रासनी पुष्पन्ती ४ व नाम मन्त्रपन्ती ५ व नाम रासनी वरिणी— (वरिणी अथर्ववेद की रासनी है)

दशम शत में करने का संघ देखिए — नदि ये इति मे इति मे इति मे इति मे । निमे निमे निमे निमे निमे । सुदे सुदे सुदे सुदे सुदे स्वाहा—
 पृष्ठ ४ २ (वही)

बुद्ध दुर्बोप सध्यामाया' का प्रयोग करते हैं,^१ ताकि केवल मर्मज्ञ साधक ही उसका बन्ध समझ सकें, अन्य साधारण लोग धर्म को भ्रष्ट न कर सकें। बहिर्गामी भेद से अनेक उपायों का वर्णन शाक्यमुनि ने किया है, इनमें एक उपाय यह सध्या-माया द्वारा भी प्राप्त है।

सद्वर्णपुस्तक के अतिरिक्त 'अमृतापुसध्यानमूत्र' में सम्मोहनबन्धनध्यान (Hypnotic Vision) के द्वारा मुखावती स्वर्ण के दर्शन करने की पद्धति का वर्णन है। अमुबन्धु (अमूर्ध घटाब्दी) के 'अमृतापुस मूत्र धात्र म मुखावती स्वर्ण का वर्णन है इसमें तांत्रिक उत्पन्न प्राप्त होते हैं।^२ 'करम्य म्यूह' में भी इसी परंपरा का विकास मिलता है। बर्बीचि नरक एवं मुखावती स्वर्ण का वर्णन यहाँ विस्तार से मिलता है। नारायण तथा राक्षस के नाम यहाँ प्राप्त होते हैं^३ पीठा का इस प्रश्न पर भी प्रभाव है। अक्सोफ्रिस्तेस्वर का विराट रूप में वर्णन किया गया है। अक्सोफ्रिस्तेस्वर के अंग प्रत्यंग से ही सारे ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ है।^४

दोष-प्रभाव जो इस प्रश्न पर दुष्प्रभाव होगा है। आकाश को सिद्ध कहा गया है, पृथ्वी को उस निज्ज की पीठिका बनाया गया है। नीला के कारण

१ दुर्बोप्यं धारिपुत्र सधापनस्य संभायाप्यम् । उत्कस्यहेतोः । नानानिर्दिक्त निर्देवाभिमापनिर्देवानैर्मया धारिपुत्र विविधैरुपाय कौशलस्य घट मूहमे धर्म-संप्रकाशित (सद्वर्ण० पृष्ठ ३६)

(2) The Religious quest of India—J N Farquhar 1920
Page. 158

(3) करम्य म्यूह—सत्यव्रत समर्थरी

प्रकाशक—जीवानन्द मद्रासार्थ १८७३ ई०

पृष्ठ—१० द्वितीय अध्याय

(४) अमुपायस्य धारिपुत्रस्य मन्त्राणां मन्त्राणां मन्त्राणां स्वधर्मो ब्रह्मादयो हृदयाया एवमो हृदयायां सस्वती, सुष्ठो वायवा आता धरणी पाद्यम्याम्य नरनरभोजनान् ।—श्री

ही गिज्ञ कहलाता है।^१ अथवा की सीमा के लिए ही सृष्टि का निर्माण होता है। यह वेदवाक्यमात्र भी यही विद्यमान है^२ शेष ब्रह्मण्य वाचि यमों में त्रिष प्रकार अधिकारी भव भिन्नता है, जिसके आधार पर प्रत्येक प्रकार की उत्कृष्ट निकृष्ट साधना-प्रवृत्तियों को स्वीकार किया गया है, वह करण्य स्यूह में प्राप्त होता है। यहाँ स्पष्टता कहा गया है कि जीव अनेक प्रकार के हैं यत यम भी अनेक प्रकार के हैं। प्रत्येक बुद्ध प्रवृत्तिप्रधान जीवों के लिए अथवा प्रत्येक बुद्ध होकर उपदेश करते हैं अर्हत—प्राप्ति कर्त्तव्यों के लिए अर्हत होकर। शेष-मात्र प्राप्ति-कर्त्तव्यों के लिए महेश बनकर अथवा उपदेश देते हैं और नारायणशब्द प्राप्ति-कर्त्तव्यों के लिए भगवान् विष्णु बनकर अवतरित होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मवासियों के लिए ब्रह्म एक गणपति उपासकों के लिए अथवा गणेश का उपदेश करते हैं। सर्वत्र एक ही उक्त है जो अनेक अकार और साधना-प्रवृत्तियों को अधिकारी भव से निर्दिष्ट करता है—

देव देव इवेन वैनेयां सत्त्वां ऐन ऐमत्रपेन धर्मन्देशयति । तथामत वैनेयानां तथामत्रपेनधर्मन्देशयति । प्रत्येकबुद्धवैनेयानां सत्त्वानां प्रत्येक बुद्ध इवेन धर्मन्देशयति । अर्हत वैनेयानां सत्त्वानामर्हत्पेन धर्मन्देशयति— महेश्वरवैनेयानां सत्त्वानां महेश्वरपेन धर्मन्देशयति नारायण वैनेयानां सत्त्वानां नारायणपेन धर्मन्देशयति । ब्रह्म वैनेयानां सत्त्वानां ब्रह्मपेन— किन्त्वति वैनेयानां किन्त्वतिपेनधर्मन्देशयति (पृष्ठ २२) ।

करण्यस्यूह में स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि असुर प्रवृत्ति प्रधान जीवों का उद्धार आसुरी-साधना से ही सम्भव है। क्या इस प्रकार है कि ब्रह्मसृष्टि नामक गुहा में असुरों का निवास था। अन्तोचितेश्वर ने असुर रूप धारण किया और उपदेश दिया।^३ उपदेश में देवताओं का ही ज्ञान था परन्तु वह दिया गया असुर बनकर वह आसुरी-साधना अपिवाची भव से तृतीय है क्योंकि उसमें भी देव-साधना ही प्रथम रूप से वर्णित है। संघ्याभाषा का भी यही उद्देश्य है।

(१) आचार्य सिद्धमित्राह पृथिवी तस्य पीठिना ।

आलयं सर्वभूतानां भीमया सिद्धमुच्यते—वही

(२) एष बुद्धुनामभोचितेश्वरः मुखावस्था लोकात्तो रागच्छति तस्यागच्छ भावस्यैरं मया ईदृशं निर्मितं प्रादुर्भूतं दृष्टितम्—वही पृष्ठ १७

(३) करण्य-स्यूह—पृष्ठ २३

करण्यम्बूह में व्यवसोचितेस्वर की प्राप्ति पञ्चदशीमहाविद्या द्वारा कर्तायी गई है।^१ पञ्चदशी महाविद्या के साथ भावनायोग अनिवार्य है अन्यथा मन्त्र व्यर्थ है। मन्त्र के साथ मंत्राल का भी वर्णन है। जप, मुद्रा समाधि आदि का विस्तृत वर्णन है। शारणी मंत्रों का भी विस्तार है।

करण्यम्बूह में कहा गया है कि सामान्य जीवों के उद्धार के लिए महा मन्त्र महाबान द्वारा निरूपित है। बुद्धों, पापियों (कर्मियों) का भी इस साधना से उद्धार होता है।^२ इस प्रकार बौद्ध तान्त्रिकमत भी शैव वैष्णव एवं शाक्तमतों की तरह महाबान (व्यवसोचितेस्वर) के नाम के जप, करण्य स्मृति को पढ़कर, मरक वाटमा से बच सकता है और जन्म में व्यवसोचितेस्वर के लोक (सुखावती) को प्राप्त कर सकता है।

महाम्बूह में भी मञ्जुवी आदि देवताओं का वर्णन है। स्वर्गप्रभा तथा समाधिप्राप्त में देवियों देवताओं को मन्त्र साधना द्वारा प्राप्त करना सम्भव बताया गया है। ये स्पष्टतः तंत्र ग्रन्थ हैं।^३

सद्वर्गपुस्तक सुखावतीव्यूह, करण्यम्बूह आदि ग्रन्थों में तान्त्रिक साधना का जो प्रारम्भिक रूप मिलता है उसको ऐतिहासिक आधार नागार्जुन (द्वितीय शताब्दी) एवं आर्यदेव (तृतीय शताब्दी) सहस्र तथा बसुबन्धु (चतुर्थ शताब्दी) से मिला 'I' साम्प्रतिक (शून्यवाच) मत में प्रज्ञापारमिता—हृत्पद्ममन्त्र-संज्ञा-पारमिता का विशेष महत्त्व है। महाबान (महाबान श्रुतेस्पादसूत्र) तथा नागार्जुन (साध्यनिक कारिका) के सिद्धान्त प्रज्ञापारमिता सूत्रों पर ही आधारित हैं।

विज्ञानवाह तृतीय शताब्दी में मैत्रेयनाथ द्वारा प्रवर्णित हुआ। परन्तु इस सिद्धान्त का विस्तृत अन्वय के 'महायोगसूत्रार्थसार' योगाचार भूमिपाल तथा बसु बन्धु के परमार्थसंग्रहों 'बोधिचरित्तमूर्ति' आदि ग्रन्थों से हुआ।

(१) जो मणिपदं हू — यही पञ्चदशी महाविद्या है।

(२) वे परदारप्रसन्न और शिभक कर्मोद्युक्त ये पातापिपूषातना अर्हपात स्तूप-भेदप्रसन्नपातस्यान्तिके बुद्धचित्तवधिरौत्पादकम् । ईदुधानां पापरतामा सत्त्वानां तदधि कारण्यं व्युत्तं महाबान सूत्ररत्नराजं सर्वपापपरिमोक्षणं बुद्धैः ।

(३) The Religious quest of India—J N Farquhar

(४) सहस्र के महाबान सूत्रार्थसार में यौन-योग (Sexo-yogic) के उल्लेख मिलते हैं। डॉ० घटिपुत्र दास गुप्त के अनुसार तंत्र का प्रारम्भ महाबान व अक्षय द्वारा हुआ—

शुन्यवाद एवं विज्ञानवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक बौद्धमत का निरिच्छित स्वल्प 'तथागतमुद्राङ्क' नामक तंत्र में मिलता है। आचार्य विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार इसका निर्माण तृतीय शताब्दी में हुआ। इस तंत्र का प्रथमार्थ प्राचीन एवं उत्तरार्थ महीन है। उत्तरार्थ में 'प्रसपायविनिश्चय सिद्धि' को मिला दिया गया है जिसका लेखक अनर्कवच्य है (७ वीं शताब्दी)। तथागतमुद्रा-समाज का जाने के ऐतिहासिक में अत्यधिक महत्व रहा है। इस पर मागाधुन द्वितीय (६१२ ई०) शक्ति देव (६१२ ई०) कुप्याचार्य (७१७ ई०) सीतावच्य (७४१ ई०) रत्नाकर शक्ति (९७८ ई०) की टीकाएँ हैं। इन्द्रसूक्ति अष्टवच्यारि ने इसका उल्लेख किया है। विनयतोष जी के अनुसार गुह्यसमाज से 'असंग' प्रमाणित वा क्योंकि उसने 'साधन नामकय व में पंचध्यायी युद्धों का शक्ति सहित उल्लेख किया है, मंत्रों एवं मंत्रों का भी उसने उल्लेख किया है अतः गुह्यसमाज असंग से पूर्व का तंत्र होना और मंत्रुषी मूलकर्म के परचात् इसकी रचना हुई होगी। विनयतोष जी असंग का समय तृतीय शताब्दी मानते हैं और मंत्रुषी मूलकर्म का समय निश्चित नहीं है क्योंकि उसमें मियण बहुत है अतः तथागत मुद्राङ्क (गुह्यसमाज) का निर्माण कतुर्ष शताब्दी तक हो चुका होगा केवल यदि निश्चित रूप से कहा जा सकेगा है।^१

(१) तथागतमुद्राङ्क—विनयतोष भट्टाचार्य पायकबाइ ओ० सी० र्ज बर्दीला जी निरन्तरित्त गुह्यसमाज व 'तथागतमुद्राङ्क' इन दो तंत्रों को असंग-असंग मानते हैं। उनके अनुसार गुह्यसमाज प्राचीनक तंत्र नहीं है और कतुर्ष शताब्दी से बहुत बाद का है।

(२) असंग व असुबुधु का समय की विचारवास्व है। प्रो० कर्न के अनुसार असुबुधु का समय २ वीं शताब्दी है। उनके अनुसार असुबुधु नासम्ब्या में अभ्याङ्क भी था। *Manual of Indian Buddhism Part I Page 130*

प्रो० शर्वात्पूरी भी असुबुधु को २ वीं शताब्दी वा मानते हैं। इतिहास असंग व असुबुधु का २८०—३६० ई०—वह समय निर्धारित करते हैं।

Japanese's Buddhism—Page 71

विनयतोष असंग वा समय तृतीय शताब्दी मानते हैं—(तथागतमुद्राङ्क पृष्ठ १) असुबुधु असंग वा छोटा भाई था अतः उसका समय गुह्य कर्म बाद माना जायगा। असंग व असुबुधु का समय कतुर्ष शताब्दी मध्यभाग से पंचवीं शता क पूर्वभाग तक मान सकते हैं।

‘तन्मासु गुह्यम्’ एक संगीति है अर्थात् बुद्ध ने इसमें तन्मागतों ध्यातीबुद्धों, शक्तियों आदि के नाम उपबंध विधा है। हीमयाम एवं महायामगतों में भी संगीतियों का उल्लेख है परन्तु उनमें केवल शिवा तथा बोधिसत्व ही समास्य बनते हैं। तांत्रिक संकीर्णों में ध्याती बुद्ध एवं शक्तियाँ (स्त्रियाँ) भी रहती हैं अतएव गुह्यसमाज एक ‘तांत्रिक संगीति’ है। तांत्रिक संगीति को बुद्ध बन्धन भी कहा जाता है।

बौद्ध संन का सदस्य शीव-शाक्त संनों की तरह शीघ्र ही बुद्धत्व की प्राप्ति है। सिद्धि सूक्त और सरलता से प्राप्त हो सके इसलिये गुह्यसमाज में ‘शक्ति-साधना’ का भी उल्लेख मिलता है। साधना के लिए स्त्री-शक्ति को यहाँ ‘विद्या शत’ कहा गया है। आशु सिद्धि के लिए विधि नियम की पूर्ण अवहेलना अन्य संनों की ही तरह इस संन में भी पायी जाती है। हठयोग को भी स्वीकार कर लिया गया है, शक्ति-साधना के पूर्ण हठयोग करना पड़ता है। यदि शक्ति साधना से सिद्धि प्राप्त न हो तो समझना चाहिए कि हठयोग में कहीं अशुद्धि रह गई है।

तन्मासुगुह्यम्—दर्शन एवम् साधना—गुह्य-समाज उन्म्यानाया में लिखा गया है। अतः इसमें गुह्य-ज्ञान प्रधान है। आरम्भ में ही कहा गया है कि तन्मासु वाय, वाक् चित्त, हृदय, तथा बन्ध स्त्री एवं भग में विहार करते हैं।^१ इन्द्रमूर्ति ने शानसिद्धि में इसका अर्थ यह किया है कि हृदय का अर्थ ज्ञान है इसे बन्धमोहित भी कहा गया है क्योंकि वह अभेद्य प्रज्ञास्वभावा है, इसी को भ्रम कहा है क्योंकि यह सारे क्लेश का भक्षण करती है।^२

परन्तु सर्वत्र यह शैली नहीं है। जब तन्मागत तथा बोधिसत्व भक्तान से प्रश्न पूछते हैं कि तन्म ज्ञान क्या है तो भक्तान स्पष्ट शैली बतलाते हैं कि सांख्यिक पर्याय एव अर्थ अनुत्पन्न है अशुद्धि सत्ता नहीं है। बोधि (चेतना) आवाय के समान है, यही तैराम्य है। बोधि के संयुक्त होने से पदार्थ प्रकटित होते हैं।^३ स्पष्ट है

(१) एवं मया श्रुतम्, एकस्मिन् समये भगवान् सर्वं तन्मासु वायवाक् चित्त हृदय बन्धयोपिद्मभेदु विहारः।

(२) हृदयं = ज्ञानं तदेकबन्धयोविद्म अभेद्यप्रज्ञास्वभावात्।
तदेव मयं सर्वक्लेशभङ्गान् — शानसिद्धि — इन्द्रमूर्ति

(३) अनुत्पन्ना इमे ज्ञाना न धर्मान न धर्मना ।
आवायमिव तैराम्यमिव बोधिनयं बुद्धम्
अनुत्पन्नेषु धर्मेषु न ज्ञाना न च भावता
आवायपर बोधेन इति भावः प्रतीयते—गुह्यसमाज संन द्वितीयपटल

यह विद्यान्त विज्ञानवाद से प्रभावित है। विज्ञानवाद केवल चेतना को मानता है, बाह्य पदार्थों को नहीं। सत्य सत्य में प्रवाहित चेतना ही प्रमाणित है, पर्याय इसी चेतना में स्थित है जो बाह्य प्रतिबिम्बित होवे है। साक्ष्य के द्वारा जब मान ज्ञान, प्राण प्राणक वेद्य वेद्यक की स्थिति का नाश हो जाता है और योनी स्वयंपस्थित हो जाता है, तो इसे 'शून्यता' की स्थिति कहते हैं, इस अवस्था में चेतना के बाहरियों का नाश हो जाता है। किन्तु यह शून्यता की अवस्था ही केवल प्राप्य नहीं है, इसके प्राप्य 'करणा' को भी स युक्त करना पड़ता है।

शून्यता और करणा की अवयव-अवस्था ही 'बोधिचित् कहलाती है।' तथागत-मुद्गाक में इसी बोधिचित् का स्तवन है। यही प्राप्य है।

ज्ञान के द्वारा ही यह अवस्था प्राप्त हो सकती है। भक्ति एक कर्म से नहीं। केवल तथा जाकरण दोनों का नाश ज्ञान द्वारा ही होता है। स्वयं 'देवाकरण' जिसके नाश का विधान हीनयानमत में नहीं है, ज्ञान द्वारा ही नष्ट होता है। इसीलिए ज्ञान को ही साधन व 'विद्यान्तकृत्' कहा गया है^१। ज्ञान का ही दूसरा नाम 'प्रज्ञा' है, शून्यता भी इसे का नाम है। वास्तव अर्थ गुह्यता एक योग से प्रज्ञा-भाति सम्भव है परन्तु इसको करणा या उपाय से सम्बद्ध करना पड़ता है। बिना उपाय के प्रज्ञा निरसहाय है, बिना प्रज्ञा उपाय अन्धा है। अतः प्रज्ञा तथा उपाय शून्यता एक करणा की एकता को ही भागे समझकर 'युगमय' कहा गया है। तथागतमुद्गाक में प्रज्ञा और उपाय की एकता को ही योग कहा गया है,^२ जिसका इस प्रारम्भिक तंत्र में विस्तार से वर्णन है।^४

(१) शून्यता करणानिध्न बोधिचित्तमिदं स्मृतम्—अष्टाव्या पटल।

(२) सर्वधेरा धर्म यत्तत्सर्वकर्म धर्मस्तथा।

सर्वाकरण धर्म ज्ञानं विद्यान्तकृदिनि स्मृतम्—वही

(३) प्रज्ञोपाय समापत्तिर्योग इत्यभिधीयते।

प्रज्ञाज्ञानारमर्क योगं कथरत्या समन्विताम्

निःशेकान् ज्ञानधारामि प्रज्ञाज्ञानं स्वयं भवेत्—वही

(४) काया वाक् व चित्त की एकता ही योग है, युद्धावमान का वही तात्पर्य

है, इस योग से ही "बोधिचित् की प्राप्ति होती है —

त्रिविधं वायव्यकचित्तं बुद्धमित्यभिधीयते।

महार्जं धीरार्जं धीमत्तं सर्वबुद्धानिवाणवम्—अष्टाव्या पटल

मुदा वा कर्ष है—काया वाक् और चित्त।

बमान का कर्ष है—इगरी एकता

सर्व-भाव अस्थिर हैं, इस पर गृह्यसमाज में बहुत बल दिया गया है। स्वयं भगवान्, एक स्कन्ध भाग्य, आकाश संघ आदि किसी की सत्ता प्रमाणित नहीं होती। इसी प्रकार रूप रूप मन्त्र काय, वाक्, चित्त, सपत्न, समधि सब अस्थिर हैं, निःस्वभाव हैं। सत्य इनसे भी परे है। यह ज्ञान निम्नलिखित वातावरण द्वारा स्पष्ट किया गया है—उक्त भगवान् से पूछा गया—हे भगवन् ! आप कहीं स्थित हैं ? कहीं से उत्पन्न होते हैं ? उत्तर—भगवान् सावक के काम वाक् और चित्तादि में स्थित हैं—

प्रश्न—स्वभाव, वाक्, चित्त स्थित कथ (भगवान्) कहीं स्थित हैं ?

उत्तर—आकाश में स्थित हैं।

प्रश्न—आकाश कहीं स्थित है ?

उत्तर—कहीं नहीं।

यह उत्तर सुनकर सभी आश्चर्य आश्चर्य-मूढ़ होकर, सारे फलमें स्वचित्त में ही स्थित हैं ऐसा ध्यानकर मीन हो गए। इस प्रकार गृह्यक-समाज चेतना को ही स्वीकार करता है, अन्य सभी की सत्ता को उसी का प्रतिबिम्ब मानता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यावहारिक (सांख्यिक रूप) दृष्टि से पदार्थों की सत्ता नहीं है।^१ पारमार्थिक दृष्टिकोण से पदार्थ की सत्ता नहीं है, यही तथा—

१ न च भगवन् सर्वत्रागतः सर्वमन्त्रविद्धीनि सर्वमन्त्रशामबाक् चित्त
वप्य स्थितानि। तत्कस्य हेतोः। परमार्थः कायवाक् चित्त मन्त्र विद्धीनामसम्भ-
वान्।

अथ ते सर्वे त्रयागता सर्वत्रागतं काय वाक् चित्त वप्य तजामतमेवमाहुः।
सर्वत्रागतमत्रर्था भगवन् कुत्र स्थिता इव च सम्भूता। अथयत्न आह। स्वभाव
वाक् चित्त संस्वित्ता स्वभाव वाक् चित्त सम्भूता। भगवन् सर्वत्रागतं वाहुः।
स्वभाव वाक् चित्त वप्य कुत्र स्थितम् ?

आकाश स्थितम्

आकाश कुत्र स्थितम्

न कश्चिन्

अपते सर्वत्रुद्ध बोधियत्वा आश्चर्ययाता अत्रुत्तपाता स्वचित्तपरमगादिद्वारं
ध्यामन्तुर्लो स्थिता अत्रुत्तपतिनि। पंचशरपटल

पदगुह्यक का निर्णय है, और यह सिद्धान्त माध्यमिक एवं योगाचार दोनों के अनुकूल है।

साधना—मगबान का यह बचन है कि कुष्ट कमी परब्रह्महारी आदि पापी विशेष रूप से साधना के लिए उपयुक्त ॥ साधना में सभी पाप पुण्य बन जाते हैं। साधक को चाहिए कि बहु माता भक्तिी पुत्रो की कामना करे इससे आशुसिद्धि होती है। परन्तु सिद्धारहित होकर यह साधना करनी पड़ती है।^१

यह बिबिध साधना सुनकर श्रोता है तथापि । 'मत् कहिए' 'द्वि मत् कहिए' चिन्ताते हुए व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गए।^२ एक भगवान ने बताया कि यही ज्ञान का सार है। यही शुद्ध 'बोधिचरित्त' है। यही कर्मठा है।^३

ध्यानयोग—तथापन गुह्यक में सर्वप्रथम ध्यान-बोध का वर्णन है। चक्र रत्न पद्य रत्निसंज्ञक आदि का ६ माह तक ध्यान करना बताया गया है। यह स्मरणीय है कि चक्र रत्न आदि शब्द प्रतीक रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं इनके अर्थ कुछ और भी हो सकते हैं। उदाहरणतः रत्न का वास्तविक अर्थ चित्त है।^४ परन्तु सम्भवतः साधन के प्रारम्भिक सोपानों में इनका अनिबेयार्थ ही पहचान किया जाता है। नासा के आये सरसों का ध्यान करे जबवा सुर्व संज्ञादि का। यही इन शब्दों का अनिबेयार्थ ही ग्रहणीय है।^५ ध्यान के पूर्व स्नान न्यासादि का भी विधान है, अनियेक का भी वर्णन है।

(१) ये परब्रह्माभिरुता निर्वं कामरुतारव ये ।

विरामुत्राहारुत्वा ये मध्यास्ते पञ्चसाधने

मत्पुनगिनी पुर्बीरिच कामयेद्यस्तु साधकः ।

त सिद्धिं विपुलां वच्छेत्, महामानसकर्मठाम्

मातरं बुद्धस्य विमोः कामयन्न च तिप्यते—पंचम पञ्च

(२) रिममं भगवान् सर्वतथागत स्वामी सर्वनथागत पर्यन्तव्यसत मध्ये—

कुर्मरिठ वचनोशाहारं ज्ञापते । (वही)

बोधिचरिता भीता सन्नस्ता मूर्च्छिता अपुवन—वही

(३) इयं ता कर्मना बुद्धा बुद्धानां सार ज्ञानिनाम् ।

सारपमार्कं सम्पुना एषा बोधिचरित्तम्—वही

(४) अन्तर्या पटन

(५) नागाये सर्वं विन्तैत् सपि सचपचरम्

भानासमानुमध्यम्यं ध्यवयन् नुयमन्तसम्—वही

अभियेक—अभियेक तीन प्रकार का है, कमशाभियेक, मुह्याभियेक, प्रजाज्ञानाभियेक । द्वितीय अभियेक मन्त्रों की आवश्यकता होती है ।

न्यास—स्नान के अनन्तर शिखा सँपेर तक प्रत्येक अंग में न्यास का विधान है ।

आहार—भयंकर आहार का भी विधान है । प्रत्येक पशु का मांस मद्य शीघ्र है । शीघ्र बिन्दुदि का मद्य भी विषेय कहा गया है । यदि मांसादि उपलब्ध न हों तो शीघ्र तांत्रिकों के अनुसार यह विधान क्रिया गया है कि ध्यान हाथ ही मांस-मद्यन करे ।

स्थान—साधना के लिए शिवालय (एक सिङ्ग का मंदिर) बौराई पर, बृहत् के नीचे जयवा निर्भन स्थान (शयनागारि) में साधना करे ।

जप—बौद्धिष्ठ भी प्राप्ति तथा सिद्धियों की प्राप्ति के लिए 'जप' का महत्त्व बतिका है । तथागत-मुद्राङ्क में १० प्रकार के जप का उल्लेख है । वायु वाक्, चित्त, रत्न, अमोघ क्रोध मोह राग, द्वेष, तथा नपुंसक जप ये १० प्रकार के जप हैं । भाव एक अभाव का विचार करते हुए उच्चारण से जप करना काय जप है । सत्य तथा असत्य का विचार करते हुए जप करना वाचजप है । वित्तजप में वित्तानुसंधान होता है । 'बुद्ध' पर ध्यान केन्द्रित करते हुए एतजप क्रिया जाता है । तल में बार-बार मम्म-आयमन अमोघ जप कहलाता है । शीघ्र के समय छान्द्राण जप क्रोध-आप है । सर्वश्रीओं के हित के लिए व्याकुल होने की अवस्था में मोह से मुक्त होने पर आत्मसूक्त जप मद्रजप है । काया वाक् चित्त के स्थिर होने पर रागवश में स्थिर होकर जप करना रामजप है । इमी प्रकार द्वेष की स्थिति में जप द्वेषजप है । उपर्युक्त सर्व-श्रीओं का एक साथ जप नपुंसकजप कहलाता है ।^१ जप के समय चेतना भी उच्च अवस्था ही फल देती है ।

मंत्रों का स्वरूप—तथागतमुद्राङ्क में पूर्ववर्ती चारणी मंत्रों के समान ही अनेक मंत्र मिलते हैं । मृतसंजीवनी, रतामंत्र बपीकरण, आचपन उच्चाटन मारण स्मरण सबके मंत्र दिये हैं ।^२ सर्व-दयान के लिए भी मंत्र दिये गए हैं ।

(१) इन्द्राय—अपोऽज पटत ।

(२) मृतसंजीविनी ओं ह ह स्फुरा अम निष्ठ सिद्धो बने सर्वार्थ साधनि स्वाहा—रक्षाधर्ममंत्र, ओं धन्वरे धान्तिकरे शुद्ध शुद्धि पातय पातय पृष्टि स्वाहा । अतुःउपःम

परशुमरय—भोगारे गुणारे गुरे स्वाहा

मंत्र-वर्षों का महत्त्व—मंत्र वर्षों में बाह्य प्रयत्न आवश्यक नहीं है। चित्तानुसंधान ही फल देता है। शुद्ध तत्त्व (चित्त) में चित्त का समाहित होना ही मंत्र-वर्षों है।^१ तत्त्व का मगन ही मंत्र है।^२ लोकाचार मंत्र-वर्षों में ग्रहणीय नहीं है।

शक्तियोग—शक्ति-साधना (सत्ता-साधना) के पूर्ण हठयोग द्वारा चित्त शुद्धि आवश्यक है। सभी प्रकार की शुद्धि के परन्तु १२ वर्ष की कन्या लेकर विज्ञान में साधना करे। विद्या, मूत्र आदि का संकलन बन्दये। उस संकलन पर किसी भी जाति की स्त्री को अंक म आसीनकर साधना करे।^३ काम बाध, चित्त भेद अभेद से परे होकर यह साधना की जाती है। इसी को 'विद्यापीरप कन्हा जाता है। बिना विद्या (स्त्री-यज्ञ) के साधना असम्भव है।^४

तांत्रिक साधना का महत्त्व—क्या इस साधना से अर्थ पत्रन नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि जिससे बन्धन होगा है, उससे ही मुक्ति मिल सकती है। बन्धनों की तरह यहाँ भी यह सिद्धान्त स्वीकृत है। संसार में मोह, द्वेष, राग शोक आदि पर विषय के अनेक उपाय अल्प साधनाओं में बताये गए हैं परन्तु तंत्र-साधना में राग पर राग द्वारा शोक पर शोक द्वारा मोह पर मोह द्वारा और द्वेष पर द्वेष द्वारा विषय स्वीकृत है, इसीलिए यह सबसे सरल और सबसे कठिन मार्ग है। ज्ञान के बिना पद पद पर भय है परन्तु भय ही संसार में बैठे

(१) भारव्यु—जो ही स्त्री विद्वतागन सब शशुभ्राद्याय स्तम्भय
है है पद पद स्वाहा।

(२) असमाहित योगेन नित्यभेदसमाहित सर्वचित्तपु या वर्षों मन्त्र-वर्षों
इति कथ्यते।

मन्त्रं मन्त्रमिति श्रोतं तत्त्वं शौर्य आध्यात्मम्।—अष्टादश पटल

(३) इन्द्रसायिकी कन्यां तां चण्डालस्य महारम्भम्।

साधयेत् सायको निरधे अनुरम्य विद्यालयम्।

विभूषणमयागेन अनुरम्य विद्यालयम्

मन्त्रं कारयेत् तत्र ब्रह्मसंकल साधने।

तत्रै कलमन्त्रशुद्धां चारुकाशां सुशोभन्म्।

सर्वानिष्टार मन्त्रुर्गामिदु—स्वाप्य विद्याधरैर्गु—पंचरत्न पटल

(४) नास्येतायेन बुद्धत्वं तस्माद्विद्यामिमां वराम्—अष्टदश पटल

मी है अतः निर्मय होकर तथा बच्चाचार्य साधना करने को कहते हैं। तबगत गुह्यक श्री बोधपा है कि पदार्थों में स्वयं ज्ञान करके की शक्ति नहीं है क्योंकि उनकी सत्ता है, यह प्रमाणित नहीं होता उनकी यदि नहीं सत्ता है तो चित्त में ही है अतः चित्त को ब्रह्म में लेने से ही मुक्ति सम्भव है और चित्त में त्रिज पदार्थों से भ्रम उत्पन्न होता है, उनके द्वारा ही शक्ति भी उत्पन्न की जा सकती है। अतएव मोह के द्वारा ही मोह का नाश हो सकता है। यही 'बन्धयान' की विशेषता है।^१

गूढार्थ—तथागत गुह्यक में प्रतीकों के द्वारा सत्य की ओर संकेत किया गया है। मण्डल शब्द के लिए भग, बोधिचित् एव घटीर ये तीन प्रतीक हैं।^२ पुष्य शब्द नवीन स्त्री के लिए आता है।^३ चक्र का अर्थ है, ज्ञान से जिसकी धृष्टि हुई है।^४ विद्या शब्द भी स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है। पचासुत्र का अर्थ है, पाँच प्रकार का ज्ञान।^५ बन्धन का अर्थ है आंतरिक रश्मि से तत्त्वपद में करम, बाह्य चित्तादि को आकर्षित करना और अंतर्मुख होना।^६ गुह्य शब्द का अर्थ है वाय

(१) मोहोद्धपस्तथा चयं सवा बन्धे रश्मि स्थिता ।

उपायस्तेन बुद्ध्यानां बन्धमालादिनि स्मृतम्
अस्मिन्नाधारसका चर्मा अनुत्पादस्वभावतः ।

सम्बन्ध सर्व भावनां तैर्नैवान्तकचूचमः ।

मोहो मोहोन्वयानेन सवमोह बमान्तकृत ।

रायो रायोपमोहेन-उपचयं पचाम्तकृत

दोषो व-पीपमोहेन रायदोषं प्रज्ञान्तकृत—अष्टादश पटल

(२) भर्ष मण्डल माकष्यार्थं बोधिचित्तं च मण्डपम् ।

देहं मण्डलमिति मुक्तं त्रिषु मण्डल कल्पना । अष्टादश पटल ।

(३) पुष्य श्रियमिपीमन्ते नववोपिनउपायतः । बही

(४) ज्ञानतत्वेन यत् सृष्टं ज्ञानजनमिति स्मृतम्—बही

(५) उशान्नं तापनं चैवोद्योतनं च च दशानम्

मन्मूर्ति प्रयोगेण, अज्ञोपच-मुतामृगम्—बही

(६) रश्मिना सर्ववृत्ताणां तर्कवधादि तत्पदे ।

संहृत्य पिण्डरूपेण बंधो, बन्धनमुच्यते—बही

वाह्य एवं चित्त और 'समाज' शब्द का अर्थ है इन तीनों का संघट्ट = एकता ।^१ रत्न शब्द का अर्थ है चित्त ।^२ 'सेवा' शब्द का अर्थ है साध्य-साधन का संयोग ।^३

बुद्धि समाज की उपर्युक्तसाधना से स्पष्ट है कि यह मूलतः मनोवैज्ञानिक साधना है (Psychic) हठयोग में 'साधक' का विकास मध्य नहीं होता, बलितु प्राण शक्ति माड़ी तथा अर्धपञ्चमियों को अनुशासन में लाया जाता है जहाँ हठयोग को सेवान के रूप में संज्ञा अपनाते हैं। हठयोग से सामान्य विद्विषों-भारण मन्त्रादि की प्राप्ति हो सकती है परन्तु उत्तम सिद्धि—बुद्धत्व की प्राप्ति संभवयोग से ही सम्भव है,

देवसंबन्ध—'बुद्धि समाज' में मन्वान से उपवेश की प्रार्थना करने पर बहु अनेक मुद्राएँ कारन करते हैं तथा अनेक मंत्र पढ़ते हैं इनका रहस्य समझ लेने से देव-संबन्ध का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। मंत्र और मुद्रा के अनुसार एक ही शक्ति अनेक रूप कारन करती है। बीजों का देवसंबन्ध इसीलिए अत्यन्तिक व्यवस्थित है।

ध्यान का नाम	मंत्र	कुल + शक्ति	देवता
(१) शानप्रदीपवचन	बच्चबुद्ध	इष होपरति	बोदिकितवचन (मन्वान आदिगता हिन्दुओं के परब्रह्म वा शिव)
(२) समयसम्भववचन	त्रिनत्रिक	महो (मोहुरति)	बीतेचन
(३) रत्नसम्भववचन	रत्नपुत्र	चित्रासि (हिर्यारति)	रत्नकेतु
(४) महाराजसम्भववचन	आरोसिद्ध	बच्चराग (राग-रति)	अविद्याम
(५) अमोघसम्भववचन	प्रज्ञाबुद्ध	समयाकर्षण बच्चरति	अमोघवचन

इनके परब्रह्म मन्वान ने लीजना मामकी तारा पाण्डु तथा भावनारा आदि देवियों को व्यक्त किया। पुनः ज्यदान ने अपने को चार प्रहरियों में परिचरित किया—

क्रिया—Guardian gods—

(१) चिकित्सा कायचार्चितं बुद्धिमिष्यमिधीयते ।

समाजं मीतनं प्रोक्तं सर्वं बुद्ध्यामिष्यामकम्—बही

(२) चित्तम् रत्नविनि स्यात्सर्वमे नर्मे नपुंसकम्—बही

(३) साध्य साधनसंयोगं यस्तत् सेवेति भवति—बही

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
ग्रही—समनान्तक	प्रज्ञान्तक	पद्यान्तक	विघ्नान्तक
मंत्र—समनान्तकृत	प्रज्ञान्तकृत	पद्यान्तकृत	विघ्नान्तकृत

ग्रही + मंत्र + क्रम + देवता + शक्ति + ध्यान—इनके योग से ही समाधि प्राप्त होती है। इस विभाजन से यह स्पष्ट है कि पंचध्यायी कुछ एक ही मता के व्यक्त रूप हैं।

यह व्यवस्थित देवमण्डप सर्वप्रथम गृह्य-समाज में ही मिलता है। ध्यानी कुट्टों के नाम पूर्व ग्रन्थों में अवश्य मिलते हैं, परन्तु उनमें व्यवस्था नहीं मिलती मत्र इस 'गृह्य-समाज' को ही प्रथम व्यवस्थित उच्च-धन्य माना जाता है।

अश्वयान का विकास—उत्पात गृह्यक में सर्वप्रथम प्रारम्भिक तांत्रिक बौद्धमत का निश्चित रूप देख लेने के पश्चात् आगे की सताधियों में इसका विकास सरलता से समझ में आ जाता है। 'गृह्यसमाज' के बाद ध्यानी-कुट्ट देव कुल (The families of god) शक्ति चर्चित देवों (पुनः) की उपासना महामुख आदि सिद्धान्त जब तांत्रिक-बौद्धमत में प्रधान होते गए तो इसका नाम 'बध्मयान' पड़ा।

तारापत्र के अनुसार अद्य य से वर्तमान के समय तक (अनुर्मे घटा० से घतम् घटा० तक) इसका विकास मिलता है। सख्पाव नागाकुल (द्वितीय) मुर्ध्पाव, पध्पव अर्ग बल इन्द्रभूति और सख्परीकर देवी आदि ने इस धर्म के प्रचार में अधिक योग दिया है। सख् का समय घतम घताणी है और सख् तंत्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। सख् नामन्दा ने आचार्य रह चुके थे और अनुर्मे भी मानन्दा में आचार्य रहा था मत्र नामन्दा विश्वविद्यालय में जहाँ विज्ञानवाद एक दूम्यवाद का अध्ययन होता था, बध्मयान का विकास हुआ है।

बध्मयान के विकास की समयरेखा के लिए गुर-परंपरा का उत्प्रेक्ष्य आवश्यक है। नादिर के अनुसार आचार्य परंपरा इस प्रकार है—

१ पध्पव—६९३ ई०

२. अनुर्मे—७०१ ई०

३ इन्द्रभूति—७१७ ई०

(१) इष्टध्म—उत्पातगृह्यक की धूमिना—विनयनीय स्टाचार्य

- ४ मरुपीकण देवी—७२६ ई०
- ५ सीसावध—७४१ ई०
- ६ वारिकपाव—७५३ ई०
- ७ सहजसामिनी चिन्ता—७६५ ई०
- ८ बोम्बी हेरक—७७७ ई०

‘संजीव केटासोम’^१ में काबिबर ने यह परम्परा रखी है। विनयतोष की ने ‘सावनमाला में इन्द्रभूति के समय को आचारमानकर उपर्युक्त विविधा निबिचत की है। किन्तु विनयतोष गुरुपरंपरा द्वारा जो सूची प्राप्त हुई है, उसे अधिक विस्तृतरीति मानते हैं। गुरुपरंपरा इस प्रकार है—

- १ सरहपाव—१३३ ई०
- २ नामार्जुन त्रितीय—१४३ ई०
- ३ खबत्पिा—१५७ ई०
- ४ मुहपा—१६६ ई०
- ५ बखपष्ट—१८१ ई०
- ६ कष्टप—१९३ ई०
- ७ जामत्परीपाव—७०३ ई०
- ८ बुल्पाचार्य—७१७ ई०
- ९ कुह्य—७२६ ई०
- १० विजयपाव—७४१ ई०
- ११ तैनीपाव—८७८ ई०
- १२ माटोपा—८८० ई०

सरहपाव के बुहजपासतर्क का उल्लेख विष्णु है। तात्पर्य के अनुसार सरह ने अनेक ग्रन्थ संकलन में लिखे हैं। सरहपावकीर्ति के समकालिक थे। बर्मकीर्ति का समय क्रियशील व अनुसार १००-१३० ई० है।

नामार्जुन त्रितीय विनयशील के अनुसार ऐतिहासिक व्यक्ति या बचपि अनियम विज्ञान देने ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते।^२ संस्कृत में इसके कई ग्रन्थ हैं।

१ Tanjyvn Catalogue—P Cordier

२ The Stories of Nagarjvn from Tibetan and Chinese

पद्मवज्र—गुह्य सिद्धि के सेतुक पद्यवच्य है।^१ त्रिम्बत में १८वीं शताब्दी तक इसका महान आदर रहा। यह संप्रदाया में निश्चित है। गुह्यसिद्धि भी गौतम बुद्ध को ही संन्यस का प्रवर्तक मानती है। 'गुह्यसिद्धि' में संन्यस का पूर्ण विवक्षित रूप मिलता है। तारानाथ के अनुसार 'हैमच्छतम्' के सेतुक भी पद्यवच्य ही है।

जालन्धरीया या हाक्षीया—कहा जाता है कि चित्तगांग (बंगाल) के राजा मोक्षीचन्द्र के साथ हरी सिद्ध का सम्बन्ध था परन्तु यह निश्चित नहीं है। 'हैमच्छतम्' पर इनके एक पद्य का उल्लेख मिलता है।

अर्नगमज्ज—'प्रतोपाय विनिरचयसिद्धि' की रचना अर्नगमज्ज ने की है। 'हैमच्छतम्' पर भी लिखा है।

इन्द्रमूर्ति—सहजवान सम्प्रदाय का प्रवर्तक इन्द्रमूर्ति को माना जाता है। आचार्य पद्मसम्भव के यह पिता थे। पद्मसम्भव (पद्यवच्य से जिन) तथा शांतिरहित ने ७४२ ई० में त्रिम्बत में जाकर प्रथम बौद्ध बिहार की स्थापना की थी। इन्द्रमूर्ति 'ज्ञान सिद्धि' के सेतुक थे।

कृष्णोपाय—कृष्णाचार्य अनेक हुए हैं। चिन्तु ८ वीं शताब्दी का यह कृष्णाचार्य सिद्ध था। जालन्धरीया इनके गुरु थे। यह 'सम्पूर्णत्रिक' आदि अनेक ग्रन्थों के सेतुक थे।

सहर्मीकरावेयी—यह इन्द्रमूर्ति की बहिन थी। अत्रमसिद्धि नामक पद्य लिखा है।^२ सहजवान के प्रचार का सबसे अधिक योग्य इसी गायी का है। सहर्मीकरा की देवरेख से बज्रयान के समानांतर सहजवान का भी प्रचार होने लगा। नीलाचल इसका शिष्य था जिसने इस परंपरा में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

दारिकपाद्—इनके ग्रन्थ संशोधन में सुरक्षित है।

सहजयोगिनी चिन्ता—'अप्यवभाषानुष्ठा-रत्न सिद्धि' इन की प्रसिद्ध रचना है। यह दारिकपाद की शिष्या थी। विमानवाद से प्रभावित थी। त्रिम्बती भाषा में इसका पद्य सुरक्षित है।

- (१) हस्तलिखित रूप में नायकबाद पुस्तकालय बङ्गोरा में प्राप्त।
- (२) हस्तलिखित प्रति—बङ्गोरा पुस्तकालय में तथा हरप्रसाद शास्त्रा के निजी पुस्तकालय में प्राप्त।
- (३) हस्तलिखितप्रति—बङ्गोरा पुस्तकालय

डोन्मी हेरक—यह सहजयोगिनी का शिष्य था मयब का राजा था । संस्कृत में कई ग्रन्थ लिखे हैं । इसकी 'सहजसिद्धि' प्राप्त है ।^१

इन आचार्यों के अतिरिक्त बख्तियार एवं सहजमान के अन्य आचार्यों का उल्लेख भी आवश्यक है । बख्तियार के अतिरिक्त मासन्ध्या के आचार्य शक्तिदेव ने 'सिद्धासमुच्चय' नामक ग्रन्थ लिखा है । (सप्तम अक्षांश) इनमें भी तांत्रिक बौद्धमत के सिद्धान्त एवं उपासनाएँ हैं ।

मासन्ध्या के अतिरिक्त पालबंस (बंगाल) के राजाओं के समय इस मत की विशेष उत्पत्ति हुई । विश्वमहिमा तथा कोरलपुरी में तांत्रिक बौद्धमत के विस्वविद्यालय स्थापित हुए । इनमें तांत्रिक-सिद्धान्त एवं उपासना पर बहुत अधिक कार्य हुआ । पालबंस के महाराज महीपाल के समय (९७५—१०३०) के समय यह मत उत्पत्ति के चरम-विचार पर पहुँच गया ।^२ कुछ आचार्यों के नाम उल्लेखनीय हैं— कुन्दुदेवा ११३ ई० शबर—१२७ ई० बेरोचनरचित—७२८-७६४ कन्नाचार्य ७२३ श्रीकृष्ण—७१७ ई० ।

दीर्गकर (१२० १०२३) अत्रयवच (१७८ १०३०) अत्रयवच संपद में रचनाएँ संवृहीत समित्तुम (१०२०) मुकुट (११००) प्रमाकर कीर्ति (११००) रत्नाकर शक्ति (१७८ १ ३०) रत्नाकर (११००) कुलाचार्य (११००) रत्नाकर गुण (११००) संभवत (१०७२) शास्त्रराज (११ ०) सर्वज्ञमित्र (१०२०) श्रीधर (११००) सुबनमर (११००) अम्मकर पुत्र (१०८४ ११३०) ।^३

अन्य शक्ति आचार्यों में आर्यदेव (विश्वविगृहि प्रकरण)^४ शक्तिपण्डित (तत्वसंपद)^५ गारोना (सेकोदशपटीका)^६ के नाम उल्लेखनीय हैं ।

(१) हस्तलिखितप्रति—बड़ीदा पुस्तकालय

(२) पालबंस—इतिहास में अति प्रसिद्ध है ।

(३) इच्छ—शापणमासा—इस संज्ञ में उपर्युक्त आचार्यों के नाम से शापनाएँ की गई हैं ।

(४) Journal of Asiatic society of Bengal में प्रकाशित—आर्यदेव नागार्जुन त्रितीय वा समसायामित्र आचार्य होना ऐसा अनुमान है ।

(५) G O Series

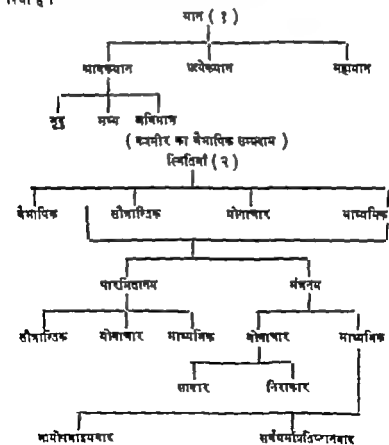
(६) Oriental Institute Baroda.

उपर्युक्त आचार्य-परंपरा के विद्वान्बलोजन से स्पष्ट है कि तथामतयुद्धक के पश्चात् छत्रम घटाव्दी में मासंवा विश्वविद्यालय के आचार्य सचू से पचमान का प्रचार प्रारम्भ होगा है। अतः बौद्ध तांत्रिक-युग ७वीं घटाव्दी से १३वीं घटाव्दी तक माना जाता है। संघास पर मुहम्मदबिन अहमदियार के आक्रमण-काल के पश्चात् तांत्रिक बौद्धमत विष्णु बलिष्ठ हो गया और हिन्दू धर्म में सम्मिलित हो गया। फर्गुसर ने इस मत का नाम 'घात बौद्धमत' दिया है। क्योंकि इस युग में बौद्धमत में दृष्टिउत्कृष्ट देवताओं की उपासना दाव्दी की तरह मन्त्र मुद्रा मंडल तथा वंचनकार द्वारा प्रचलित हुई। फर्गुसर का कहना है कि गौतम बुद्ध ही इस तांत्रिक मत के लिए उत्तरदायी थे क्योंकि उन्होंने देव, यज्ञ, पिशाच आदि की उपासना का खंडन कभी नहीं किया था यद्यपि ज्ञात्या एव ईश्वर के बहु विरोधी थे। संघास तथा घोस द्वारा प्राप्त लोकोत्तर दृष्टियों के भी वह विस्वासी थे। यद्यपि इन दृष्टियों को गौतम-बुद्ध ने पृष्ठभूमि में रखा था परन्तु इनका खंडन कभी नहीं किया अतः महायानमत में उनका विकास होने लगा। स्वयं-स्मित द्योपितृत्वों को हिन्दू देवतावाद के आधार पर बलिष्ठ कर लिया गया। देवताओं के अनेक दुर्गों से अर्चय देवताओं का जन्म बलिष्ठ हुआ—इस प्रकार बौद्धमत को प्रारम्भ में अन्ध विस्वासी का विरोधी था स्वयं हिन्दू अन्ध-विश्वास का केन्द्र बन गया। प्रत्येक देवता की एक स्त्री कल्पित की गई और दैव-दाव्दी की चक्र-युवा के आधार पर तांत्रिक बौद्धमत ने बौद्ध-कापालिक साधना को स्वीकार कर लिया। यद्योपय एव उत्तरी दक्षिणी तथा दाहिनी के साथ गौतम बुद्ध ने जो भौतिक जीवन व्यतीत किया था उसे ही तांत्रिकों ने आदर्श मान लिया और यद्योपय को भगवती (शक्ति उमा) का रूप प्राप्त हो गया। सम्भोइन (Hypnotism) जादू

(1) The main conceptions of polytheistic paganism had never been repudiated and Condemned All Buddhists believed in the Hindu Gods and demons the need of honoring them the supernatural power of Saint hood the occult potency of yoga-practices both physical and mental and the power of magic spells. Although these things were kept in the background in early Buddhism they were not killed and in the Mahayan they got the opportunity to grow and spread.

(Magic) कर्मचार, शब्द-साधना चक्र-साधना शक्ति-सिद्धि प्राप्ति का प्रचार हुआ। गुरु एक बुद्ध की एकता चोपित की गई। एक विस्तृत साधना-पद्धति का विकास हुआ। शून्यवाद विज्ञानवाद तथा औपनिषदिक ब्रह्मवाद के निम्नलिखित सिद्धान्तों द्वारा इस तांत्रिकमत की दार्शनिक पृष्ठभूमि को पुष्ट कर दिया गया, ज्ञाने ह्ये श्रीं यथाश्री से १ श्रीं यथाश्री तक के बौद्धतांत्रिक मत के दार्शनिक और साधनात्मक पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

अद्वयवाद ने तांत्रिक बौद्धमत का दार्शनिक दृष्टि से इस प्रकार विभाजन किया है।



उक्त विज्ञान से अक्षयमान या अक्षयमान' की स्थिति तथा दृष्टि स्पष्ट है। किन्तु यहाँ यह स्वरूपीय है कि अक्षयमान माध्यमिक से अतः उन्होंने 'अक्षयमान' को योगाचार से समझ कर लिया है। अतः 'तांत्रिक-बोधप्रथ' में योगाचारी और माध्यमिक दोनों दृष्टियाँ स्वीकृत हैं, जहाँ 'अक्षयमान' धार्मिकरूप के 'अक्षयमान' में विज्ञानवाद स्वीकृत है। अतः अक्षयमान एक इन्द्रमूर्ति माध्यमिक है। 'अक्षयमान' विज्ञानवाद से माध्यमिकमत को खेच सिद्ध करते हैं।

विज्ञानवादी जगत के पदार्थों को परमाणुओं का संघात नहीं मानते। पदार्थों के रूप में अस्तुत् हमारुचित चित्त (विज्ञान) ही प्रकटित होता है। पदार्थों की सत्ता इसी चित्त के भीतर है। क्योंकि चित्त बाहर के पदार्थों के रूप में अस्तुत् जाता है इसे ही 'साकार विज्ञानवाद' कहते हैं, इसमें चित्त पदार्थ का रूपधारण करता है।^१

निराकारवादी विज्ञानवादी चित्त को निष्पञ्च मानते हैं, इनके अनुसार चित्त पदार्थ का रूपधारण नहीं करता क्योंकि चित्त का आकार नहीं है। चित्त स्वयं आकार के बिना भी पूर्वजन्म की भासना के कारण पदार्थ के दर्शन करता है। अतः पदार्थ बाहर विद्यमान नहीं है। विज्ञान आकाश के समान निर्मल और निष्पञ्च है, इसी चित्त पर अज्ञान के कारण माना रूप प्रतीत हो रहे हैं अतः पदार्थों की सत्ता प्रतीतमान है और यह माया का कार्य है, चित्त का नहीं चित्त अदिकृत और निष्पञ्च है। अक्षयमान से अनुसार यह निराकारवादी विज्ञानवाद हिन्दू वेदान्त मत के निकट आ जाता है, क्योंकि वेदान्ती भी नाम, रूप रहित निरुद्ध अविभूत चेतना को मानते हैं, जिसकी चित्त पर माया के कारण अस्तुत् प्रतीत होता है।^२

(१) न चित्तेषु महिर्भूता इन्द्रियाणि स्वभाक्ता ।

स्वादि प्रतिभासेन, चित्तमेव हि भासते—अक्षयमानसंघ

(२) बाह्ये न चित्ते अर्थात्, यथा बालेन्द्रियस्यते ।

बालनाभूतिर्चित्तमर्थाभासं प्रवर्तते ।

यावदाभासते यच्च तन्मादिष च भासते ।

तत्त्वतो हि निराभासः, शुद्धानन्तममोक्षिणम् ।

निष्पञ्चो निराभासी चर्मकायो महापुत्रे ।

रूपकायो तदुद्भूतो वृत्ते मार्यव त्रिपटौ—बही

अस्पष्ट माध्यमिकमत की यह विशेषता बतलाते हैं कि यह मन नागार्जुन की तरह अपनी कोई वृत्ति नहीं रखता अथवा सारी विचार की क्रियाओं का यह मन वर्णन करता है। सत्य सब मर्तों से परे है, उस न उपनिषदों की तरह आवात्मक रूप से कहा जा सकता है न अनावात्मक रूप से उसे केवल 'शून्य' कहा जा सकता है, माध्यमिक मत में मंत्र मुद्रा मन्त्रन देवता आदि का योग होने से यह मत 'मंत्रयाम' कहा जाता है, तांत्रिक-बौद्धमत यही है।

वस्तुतः विज्ञानवाद एक माध्यमिक मत में केवल अंतर यह है कि विज्ञानवादी वेदान्तियों की तरह 'विज्ञान', यह नाम सूक्ष्म-चेतना (Consciousness) को देते हैं जबकि माध्यमिक मत सत्ता (Reality) या चेतना को कोई नाम नहीं देता, यह मन 'सत्ता' को केवल अनुभव का विषय मानता है, कर्म का नहीं परन्तु यह स्मरणीय है कि माध्यमिक मत उच्छेदवाद नहीं है, वह 'सत्ता' में विश्वास करता है, वह निषेधवाद (Nihilism) नहीं है। उपनिषद की परंपरा के संन्यासियों तथा वेदवैदिक विचारकों ने यद्यपि 'सत्ता' को नेति-नेति कहा है तथापि वे प्रायः आत्मा या चेतना का आवात्मक या अनावात्मक रूप में वर्णन करते थे। दूसरे भ्रम के प्रवेश की आशंका भी अत्र माध्यमिकमत सत्ता को शून्य करता है और शून्य का अर्थ है, नाव अभाव आदि सभी क्रियाओं से अतीत होना। तांत्रिक-बौद्धमत इस प्रकार शून्यवादी वर्णन पर आधारित है जो उपनिषदों के 'नेतिनेतिवाद' से किंचित भी भिन्न नहीं है।

तांत्रिक-बौद्धमत संन्यासितादी होने पर भी पारमार्थिक एक व्यावहारिक सत्ताओं की अलग-अलग मानता है अतः व्यावहारिक दृष्टि से यह मंत्र, मन्त्रन पूजा उपासना देवता तथा सभी प्रकार के विश्वासी व साधनाओं को स्वीकार कर लेता है। यद्यपि यह मत 'ज्ञान' की क्रियाओं में विश्वास नहीं करता तथापि तांत्रिकों ने बौद्धिक विद्या, अभिमुख्योपि आदि कर्त्यों पर विश्वास किया है, जिससे तांत्रिक मत स्पष्ट हो जाता है हम समय-दम पर विचार करेंगे।

तांत्रिक-बौद्ध-न्याय एवं साधना (यमयान-सहजयान)

योगिनि—मूल नाव और अभाव आदि से अतीत है, ऐसा ज्ञान प्रज्ञा

बहुलाता है, दुर्बो से दूधरों को मुक्त करने की वृत्ति का नाम 'कथमा' है, यही 'उपाय' है। 'प्रसा' और 'उपाय' का संयोग ही 'प्रसोपाय' है, यही 'बोधिचिद्र' है, म्हासुख इती से उत्पन्न होता है। यही 'समन्तमद' है क्योंकि चारों ओर से सुख देने वाला है। 'प्रसोपाय' की स्थिति का वर्णन असम्भव है, तभी नैसर्ग बुद्ध सत्ता के सम्मुख में फल पुखने पर मीन रह जाते थे। अतः आत्म अनुवृत्ति ही सत्य है^१। फल यह है कि भाव क्या है?

भाव (existence) अणु के प्रतीयमान पदार्थों की सत्य भाव देने पर उत्पन्न होता है, अतः बुद्ध का कारण है। प्रतीयमान को परमार्थ स्वीकार करना ही बुद्ध का कारण है। प्रतीति का भाव अवश्य होता है, अतः ज्ञान के पूर्व भाव का अभाव नहीं है। परन्तु ज्ञान होने के पश्चात् भाव का नाश हो जाता है, अतः पारमार्थिक वृत्ति से सत्य भाव एक अभाव से परे है। अर्नगवच भाव को संकल्पनात्मक मानते हैं। पदार्थ की सत्ता संकल्प के कारण है और सत्य ज्ञान के

(१) 'अद्वयवच्य संघट्ट' में 'प्रसा' का अर्थ इस प्रकार किया गया है—यान्त, घुड, आभास से उद्भूत निरासम्भ, अनुत्तर, चित्त के अणुत हो जाने पर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही 'प्रसा' है—

विज्ञायापमर्तं चित्तं निरासम्भमनुत्तरम् ।

घाम्तं घुडं निराभासं चित्तं प्रतीतिकीरिता ।

अन्यत्र कहा गया है कि वस्तुसत्ता से उद्भूत, निरासम्भ, सर्वानुत्त प्रपञ्चों से अतीत आत्म उद्भूत स्थिति का नाम ही बोधिचिद्र है।

निर्वस्तुकं, निरासम्भं, सर्वानुत्तं, निरासयसु ।

समाधीर्तं प्रपञ्चेभ्यो बोधिचित्तस्य जघनम्—

नैरात्म्यपत्तिपृच्छा—

उम्पा०—सुमीन्द्रमार मुञ्जोपाध्याय

विश्वभारती पुस्तक भंडार

२१० नार्नबासिस स्ट्रीट बनरुता

१९३०

(२) एवं तस्मिन् उद्भवत् नैव धर्मं त्रिनेरपि ।

अथात्मवेद्यवत्त्वाद् बाह्यार्थे न च दृष्टाते—प्रसोपाय०—

अर्नगवच

अरुण है। भाव से ही मय (संसार) की सत्ता है अथवा संसार की सत्ता नहीं है। भाव से ही क्लेश उत्पन्न होते हैं।^१

भाव का माया प्रज्ञा से होता है प्रज्ञा के अभाव में न स्वहित होता है, न परहित।^२ अज्ञ के पशुओं को सत्य समझना भाव है और असत्य समझना भी भाव है। अभाव की वस्त्वना से ही भाव की वस्त्वना ही भेद है। क्योंकि ज्वलित दीपक (भाव) की निवृत्त सत्ता सम्भव है परन्तु बुझा हुआ दीपक होने से उपाम के अभाव में निवृत्ति असम्भव है अतः भाव अभाव से भेद है^३ यद्यपि दोनों वस्त्वना मात्र हैं। दोनों के मूर्ति आवश्यक है। यही प्रज्ञा है। वह प्रज्ञा ज्ञाना एक ज्ञान ही प्रकार की होती है और अपने असूख रूप में यह परार्थ है, मैं जाता हूँ, ऐसा भ्रम उत्पन्न करती है, किन्तु बुझ होने पर भाव एक अभाव जाता तथा ज्ञेय के अल्प दीपक की ज्योति के समान निवृत्त हो जाते हैं। बुझ स्वर्ण के समान ज्ञान में भाव तथा अभाव से परे की स्थिति स्वयं प्रतिबिम्बित होती है।^४

कहा जा सकता है कि प्रज्ञेभाव की स्थिति वास्तविक स्थिति नहीं है, कास्मिक स्थिति है जिस प्रकार अनुप्य भावार्थक संकल्प करता है, अन्यथा—एक संकल्प करता है, उसी प्रकार भाव एक अभाव से परे की स्थिति भी एक संकल्प मात्र है, इस स्थिति की वस्त्वना द्वारा संसार पर विजय होती है, वह एक बात है परन्तु भावार्थक से परे की स्थिति सत्य भी हो, यह सर्वथा दुरुष

(१) अनुपपन्न सम्भूतो-भावसंकल्पनात्मकः ।

अथ च एक आख्यातो वासव्यामोक्षो बुधे —प्रज्ञेत्वापि निरवयव
निदि (प्रथम परिच्छेद)

(२) भावप्रभाव महादाहो-मन्वहारकवनिभात् ।

प्रताहीनतया तावत्, स्वहितं परहितं न च । वही

(३) भावसाहं परित्यज्य नामार्थं वस्तुवैतुषुचः ।

यन्निनामानयोर्वेद्यः, वस्त्वना मेवनिघटे ।

बरे द्वि भाव संकल्पो न स्वभाववस्त्वना ।

निर्वाति ज्वलितो दीपो निवृत्तः का पति ब्रजेत् । वही

(४) प्रतिबिम्बं यथास्तौ स्वर्णं दृश्यतेऽव्युत् ।

वर्षकावस्त्वना ज्ञापि बुधेत्ताप्यसिद्धे—ज्ञानविदि-व्युत्

बात है। किसी बिद्योप मानसिक स्थिति बना जेन से यह सिद्ध नहीं होता कि जेनम वही स्थिति सत्य है अन्य मानसिक स्थितियाँ असत्य हैं।

इस संका का उत्तर इन्द्रभूति ने दिया है कि कल्पना और प्रज्ञा में अन्तर है। संकल्प या कल्पना से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता यथा "मैं राजा हूँ" ऐसी भावना करने पर जैसे कोई राजा नहीं बनता उसी प्रकार मिथ्या भावना से मुक्ति नहीं मिलती।^१ अतः 'प्रज्ञा' मिथ्या मानसिक स्थिति नहीं बल्कि सारी मानसिक सृष्टि का आधार है (Substratum)। यह माना जायें, कल्पनाओं को जन्म देती है और उनके बिना भी अपने निर्मल रूप में रह सकती है।

ज्ञान — साकार निराकार—जेनम बोधिविस्तृ ही ही सत्ता है, अन्य सब कुछ संकल्पारमक है, यह कहा जा चुका है। प्रश्न यह है कि जब जगत के पदार्थ जेनम संकल्पारमक हैं, तब वेवतादि भी क्या जेनम संकल्पारमक हैं? क्या उनके साकार, रूप रस आदि आकारमक ही हैं? अथवा उनकी कोई बिद्यिष्ट सत्ता है?

इन्द्रभूति के अनुसार वेवता का पदार्थ रूप वर्णन असम्भव है,^२ वस्तुतः वेवता भी सत्ता 'प्रज्ञा' से भिन्न नहीं है। वेवता का साकार रूप बाह्य आदि कल्पित है, अतः वह मिथ्या है। घट का संस्कार विट्टी से होता है अतः उसका वर्णन सम्भव है, परन्तु वेवता का वर्णन इत्यसिध असम्भव है क्योंकि उसका संस्कार नहीं हो सकता। संकृत वस्तु का विनाश भी होता है, यदि वेवता का निर्माण होता है तो उसका विनाश भी मानना पड़ता है अतः वेवता का पदार्थ रूप अकल्पनीय है, स्वानुभव-पर आधारित है। वेवता का अयवार्थ रूप बाह्य, आकार आदि जन व चित्त से अलग है अतः उन रूप का नाश भी हो जाता है। मन से वस्थित वेवता अविनाशी नहीं होता।^३ और कल्पित वस्तु के ध्यान से शुद्ध बोध

- (१) मघनाभा जन-वदिवत् राजादभूतिर्भावेत् ।
 कल्पकोटि धतेनापि भासो राज्यमवानुष्वात् ।
 मिथ्याकल्पनया यस्माद् राज्यं तस्य न विद्यते ।
 मिथ्याभावनया तस्माद् बुद्धत्वं न अविपरित—तामितिः
- (२) स्वप्नाबाद् वेवताभाव्यं तस्माद् कर्तुं न युज्यते ।
- (३) चित्तस्य कल्पना ह्येषा, सापि संस्पृशमरुता ।
 मनत्रा वशिष्ठं यत् तदविनाशं कथं भवेत्—आनयिदि

केसे होमा ? ध्यान के समय यदि देवता की कल्पना की जाती है, तो उस कल्पना से ज्ञान कैसे होमा ?^१ बुद्ध ज्ञान में उपास्य उपासक की भावना नहीं रहती बर- देवता निश्चित पदाथ है। कैवल्य मुक्तों ने जए देवता की कल्पना का उपयोग नकराय है।^२ बुद्ध का वास्तविक रूप बेश, काज पाठि धि परे वा भौतिक रूप उसी वास्तविक धर्मभानु का प्रतिबिम्बमान वा। अतः बुद्ध के रूप का ध्यान केवल मुक्त जनों के लिए है।^३ अतः यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान की आकारता अविद्य है।^४

ज्ञान की निराकारता का सर्वजन-ज्ञान में जिस प्रकार आकारता नहीं है, उसी प्रकार निरकारता भी नहीं है। यदि कहो कि ज्ञान में आकार नहीं है, तो आकार से रहित होकर ज्ञानने की प्रिया कैसे होती है ? मायादि के बुद्धान्तों को देखकर 'अभाव' की कल्पना नहीं करनी चाहिए।^५ बहुत 'निरकार' शब्द का अर्थ 'अभाव' प्रतीत होगा है। सर्वथा अभाव तांत्रिकों को इष्ट नहीं है। यदि क्वादि का सर्वथा अभाव हो तो यौतम बुद्ध को दिव्य-वस्तु क्यों कहा गया ? अभाव मानने पर योग नहीं हो सकता अतः ज्ञान साकार-निरकार के परे स्वयंसंवेद्य है, बहु अनुभूति द्वारा इसके लिए प्रत्यक्ष है, बहु 'तथता (thatness) रूप' वाला है। तभी 'तथता' को प्राप्त करने वाला 'तथागत' कहलाता है। सर्वप्रथम

(१) एवं केन नास्ति ते सम्पत्, तद् ध्यानेनाप्यं भवेत् ।

त्वया निष्पादितं रूपं कृतकं किं न बुध्यते—बही ।

(२) ज्ञानसिद्धि—पृष्ठ २८

(३) तस्मात्सूक्ष्मतरुणोको योऽयं ध्यातुमिच्छति—बही

कल्पनाकयाताकन्-वच्छरणो न सिद्धयति—

साधारणरूपलाज्येवं, वच्छरणं न साधयेत्—बही

(४) ज्ञानस्य आकारता नहि ।

यथावाची यतो न स्यात् । नेवाकारो ष्टीभवेत्—बही

(५) निराकारमपि ज्ञानं भवेद् यदि विवक्षितम् ।

आधर्येकतरुणात्, किमपि केचित् सर्ववित्—ज्ञानसिद्धि ।

(६) मायावयो हि बुद्धान्ता निर्दिष्टाः समुनेजिने ।

अभावं कल्पनामात्रं सर्वथा नहि विध्यति—बही

'अस्वप्नेय' मे यह 'तपता' का सिद्धान्त प्रवर्तित किया था। 'तप्य' क्या है? 'तपता' है—ज्ञान क्या है, 'तपता है'—निर्वाण क्या है? 'तपता है—बुद्ध क्या है, 'तपता है'—इनका वर्णन याच या अभाव में नहीं हो सकता, अनुभूतिमय होने

(१) 'महायानप्रदोस्ताव सूत्र' में अस्वप्नेय मे 'तपता' का सिद्धान्त विस्तार से समझाया है।

महायान प्रदोस्ताव शास्त्र में 'अस्वप्नेय' मे चेतना (जात्मा) को दो रूपों में स्वीकार किया है। १—मूल तपता (the Soul as suchness)
(२) संसार (the Soul as birth and death) इनमें प्रत्येक एक दूसरे से सम्बन्ध है, इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। मूलतपता का अर्थ है वह चेतना जो सभी पदार्थों को अपने में समेट लेती है (Soul is the oneness of the totality of things) इसी को परमपातु कहा जाता है। (The great all including whole)।

बाह्य पदार्थ स्मृति के कारण प्रतीत होते हैं। अतः स्मृति विषय ही मुक्ति है। सांसारिक पदार्थ की सत्ता क्या है, वह नहीं कहा जा सकता—वारे पदार्थ एक चेतन तत्त्व से भिन्न नहीं है अतः उनकी शक्तों द्वारा व्याख्या नहीं हो सकती। क्योंकि तत्त्व तथा अस्मिन्वर्तियां सत्य नहीं हैं उनकी सत्ता इमारती अस्वप्नेय चेतना पर निर्भर है अतः उनके द्वारा पदार्थों की सत्ता का वर्णन नहीं हो सकता।

मूल तपता के दो रूप हैं—प्रथम शुभ्यता, शुभ्यता का अर्थ है सत्य जो निरोध के रूप में कहा जाय अर्थात् सत्य अपने विशेषणों (Attributes) से भिन्न और स्वतंत्र है, गुण व पदार्थ से सर्वथा भिन्न चेतना की शुद्ध स्थिति शुभ्य है। द्वितीय—अशुभ्यता—इसका अर्थ है सत्य की साधारणक रूप में कहना, अर्थात् इसमें अनन्त गुण हैं (Merits) और यह सर्वथा स्वतंत्र है (self-existent)। चूंकि 'तपता' की अस्मिन्-चेतना नहीं समझ पाती अतः उसे हम 'शुभ्यता' कहते हैं।

हम चेतना को साधारण, अधिप्राणी, शुद्ध, बुद्ध रूप में जब देखते हैं तब हम उसे 'अशुभ्यता' कहते हैं तथापि चेतना को साधारण मान बैठना पक्ष होना, क्योंकि वह अस्वप्नेय स्मृति (Confused subjectivity) के द्वारा उत्पन्न नहीं होनी अतः चेतना के वास्तविक रूप को हम केवल स्मृति से सर्वथा वर्तान होकर (by transcending subjectivity) ही समझ सकते हैं।

से उसे 'शून्य' या 'तन्ता' कहा जा सकता है। यही ज्ञान महासुख रूप है।^{१२} यह महासुख नित्य महासुख है, अनिरयमहासुख इन्द्रियजन्य है, नित्य महासुख प्रसारक है। इन्द्रिय-जन्य ज्ञानन्व तो कुबली से उत्पन्न ज्ञानन्व के समान है।^{१३}

संसार—(The soul as birth and death) जगत तथागत धर्म ॥ उत्पन्न होता है। अक्षररूपूर्ण 'तन्ता' तथा क्षणिक जगत एक छान रह सकते हैं क्योंकि सर्वादिभाव आत्मा सापेक्ष रूप कारण करणी है तब उसे 'ज्ञान-विज्ञान' कहते हैं। विज्ञान के भी दो रूप हैं १ साक्षर २ अनेक पक्षों को उत्पन्न करने वाला। विद्या एक अविद्या भी विज्ञान के रूप हैं। विज्ञान शुद्ध अस्काउवत् है सर्व व्यापक है धर्मबानु है। धर्म का अर्थ नियम (law) नहीं अनिष्ट विचार (idea) वाधार (substance) है। धातु या काया का अर्थ है—व्यवही—विद्यमें अवयव मिलते हैं (Unified whole) अतः जगत के वाधार को जिनमें रूप बनते-वियड़ते रहते हैं धर्मबानु या तत्प्राणधर्म कहते हैं।

मानसिक व्यापार अज्ञान से उत्पन्न होती है तथा सुषुप्त में लहरें। सभी पदार्थ केनता के प्रकाश में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं अतः उन्हें सत् भी कह सकते हैं और बुद्धि उत्पत्ति केनता में निज सत्ता नहीं है अतः उन्हें असत् भी कह सकते हैं। बोधि प्राप्त हो जाने पर मानसिक व्यापार हीन उत्पन्न नहीं करती और केनरा। अक्षर तथा ज्ञेयावरण का नाश हो जाता है।^{१४} विज्ञान का भी नाश हो जाता है। यह स्विति 'तत्प्राण बहुलाती है शुद्ध प्रकाशमय चिन्मय रूप यही है इसी स्विति में करणा के 'अक्षर अन्व बीजों के व्यापार का उत्पन्न होना है अतः 'करणा' को सामान्य राग नहीं माना जा सकता। प्रज्ञेयाव की स्विति में अहंकार का पूर्ण विनाश हो जाता है। यही जपन की उत्पत्ति का श्रोत है अतः 'तन्ता की स्विति में अहंकार से विभिन्न करणा' नामक शोक-वैशिष्ट्य भाव नहीं रहता शुद्ध करणा का ही प्रकाश से संयोग हो जाता है, जिस करणा से अहं की तुष्टि होती है, वह करणा अशुद्ध करणा है।

द्रष्टव्य—महाप्राण अदोत्पाद शास्त्र का Awakening of faith नाम में चीनी भाषा से अनुवाद—T Suzuki—chicago—1900

(२) सर्वनाशान्नां ज्ञान स्वतंत्रित्वमाकम् ।

सर्वनीश्याप्रभूतत्वात् महासुखमिति स्मृतम्—ज्ञानमिति ।

(३) अनिरयं महासुखं नैवं नित्यं महासुखम् ।

कथं कथयन्तोत्पन्नं अर्थं महासुखं नहि—यही

यहाँ विधि-नियम पाप-मुष्य, पवित्र-अपवित्र आदि द्वन्द्व छाँट हो जाते हैं परन्तु प्रारम्भ में वे आवश्यक हैं। इन्द्रयूति ने स्पष्ट कहा है कि सामान्य साधकों को मोक्षसंपन्न का पूर्वोपासन करना चाहिए।^१ बोधिविभू उत्पन्न हो जाने के परन्तु विधि-नियम ध्वंस हो जाते हैं।

करुणा—करुणा या हृया को 'राग' माना गया है। यह 'राग' अशेष कुर्बों का नाश करता है।^२ इसी को 'उपाय' कहा जाता है।^३ नीर एव नीर की तरह प्रज्ञा के साथ इसका मेलन आवश्यक है, यही धर्म है। जब तक प्राज्ञा-माहक सगु, असगु, लक्ष्य-मलक की भावना है, तब तक समझना चाहिए कि प्रज्ञा निर्मल नहीं है, प्रज्ञा निर्मल होने पर ही छाँटि मिलती है।^४ इसी स्थिति को 'धर्मवानु' प्रमापारमिता स्वाभिष्टान्तर कहा गया है। इसी स्थिति से असंख्य मत्र मुद्रा मंदल आदि उत्पन्न होते हैं, वेद, देव्य, प्रेत, पिशाच यक्ष, रक्त सभी इसी से उत्पन्न होते हैं। यह स्थिति विनामनि के समान है, मुक्ति तथा मुक्ति दोनों इसी स्थिति से प्राप्त होती है।^५ कोई भी शिवा व्यापार साधन, प्रज्ञोपाय के बिना फल नहीं दे सकता, तब का यह अदभुत निदान्त है।

क्या करुणा सामान्य मनुष्य का एक भाव है? राग है अथवा इत 'राग' का कोई विशेष रूप है? तान्त्रिक-बौद्धमत में 'करुणा' बोधि का एक रूप (Aspect) है जो प्रज्ञा की तरह सत्वीर्य है। प्रज्ञा (वृत्तता) और करुणा (इत्य उपाय) दोनों सामान्य जन के ज्ञान तथा राग से सम्बन्ध नहीं हैं अपितु

- (१) प्राणिनश्च न ते शाल्या, अन्तं नेव जाहरेत् ।
नाचरेत् काममिष्या च मूर्धा नेव द्वि भाषयेत्—बही
सर्वात्मस्य मूलरथान मघपामं विधर्मयेत्
केतुन्ममय पादप्यं मग्निभासापभाषणम्—बही
- (२) एज्यनि अशेष कुशोपाकुत्पात्सु दुःखहेतुत् ।
सर्वसत्त्वान् वतस्तस्मान् हृया रागं प्रीयते—श्लोकाय० अमंगलम्
- (३) लोकोपायं प्रदीतिम्
- (४) न इवं नाहमं चान्तं शिवं सर्वत्र संस्थितम् ।
प्रत्यात्मवेद्य मन्मथ, प्रज्ञोपायमनापुमम्—बही
- (५) विनामपिरिवापेय जगत् सर्वशक्तिम् ।
मुक्ति मुक्तिर्न सम्बन्ध, प्रज्ञोपायस्वरूपः—बही

शुद्ध शुद्ध व्यक्ति के निर्मित बोधिचित् के अंग हैं। प्रज्ञारहित कर्मणा बन्धन है और कर्मणा रहित प्रज्ञा बन्धन है। दोनों का तादात्म्य ही मोक्ष है।^१ प्रतीप और ज्ञानोक्त के समान दोनों अर एक है।^२ व्यक्तिगत साधक की दृष्टि से 'प्रज्ञा' क्रियाहीन स्थिति है अतः कर्मणा प्रज्ञा अर क्रियारमक रूप है। वस्तु या कार्य विशेष की ओर प्रज्ञावान कर्मणा या उपाम द्वारा ही मुक्तता है। प्रज्ञा से मनुष्य कर्म बन्धन में नहीं पड़ सकता। और कर्मणा से वह अज्ञान की सेवा की ओर आकर्षित होता है। डॉ० शशिभूषण दास गुप्त को उपाम एक कर्मणा में कुछ अन्तर प्रतीत होता है परन्तु वह अन्तर क्या है, वह स्पष्ट नहीं हो सका। वस्तुतः कर्मणा द्वारा उपभार के प्रति उत्सुकता के कारण कर्मणा को 'उपाय' कहा गया है। निरिचत रूप से 'उपाय' शब्द में कार्य करने की विधि प्रयत्न आदि सम्मिलित नहीं हैं।^३

बौद्ध-तंत्रों में प्रज्ञा को स्त्री तथा 'उपाय' या कर्मणा को पुरुष माना गया है। बापही को प्रज्ञा एक हेतुक को उपाम कहा गया है। तात्पर्य यह कि प्रज्ञा चेतना का शुद्ध आभासमक तथा अभावात्मक रूप है जबकि उपाम आभासमक एक क्रियारमक रूप है। प्रज्ञा स्त्री है, उपाम पुरुष है।^४ शेष-वर्णन में पुरुष क्रिया रहित माना गया है, शक्ति क्रियामुक्त बौद्धमत में इसके विपरीत है। परन्तु यह शब्दों का अन्तर मात्र है, शक्ति एक शक्तिमान का सिद्धान्त शैवतंत्रों की तरह अपनी अद्वैतपर बौद्धतंत्रों में भी स्वीकृत है। यही महत्वपूर्ण तथ्य है। इससे तंत्रों की एकता का पता चलता है। पुरुषसिद्धि में नेपारम्य-शून्यता तथा प्रज्ञा को स्त्री तथा बोधिचित् को पुरुष कहा गया है। वहीं-वहीं 'महामुञ्ज' को स्त्री एक बोधिचित् को पुरुष कहा गया है। ज्ञान को

(१) प्रज्ञारहितो उपायो बन्धन उपामरहितो प्रज्ञा बन्धन । प्रज्ञारहित उपायो मोक्ष उपामरहित प्रज्ञा मोक्ष । तादात्म्यं ज्ञानयो सहगुणस्फोरित प्रतीपनोक्तयोरेव सहस्रतिदिमैवाविभक्तयोरेव — बुधुदि निर्पटिनम् — अइयवध

(२) शून्यता शून्ययोरेव प्रतीपनोक्तयोरेव ।
शून्यता शून्ययोरेव प्रतीपनोक्तयोरेव ॥—अइयवधसंघ

(३) An introduction to tantric Buddhism-S. B. Das Gupta
Calcutta-150

(४) An Introduction to Tantric Buddhism S. B. Das gupts

ज्ञानमुद्रा, महामुद्रा, सहजबन्धु कहा गया है जिससे योगी (पुरुष) रातदिन संयुक्त रहता है।^१ प्रजा को योगिनी व उपाय को सिंग भी कहा गया है।

जगत—ब्रह्मयान ने जगत के सम्बन्ध में माध्यमिक एवं योगाचार मत को ही स्वीकार किया है, जगत के पदार्थों की सत्ता निश्चित नहीं हो सकती यह कहा जा चुका है। 'साधनमाप्ता' में योगाचारमतानुसार जगत को आमासबन्धु, आमास्वप्नबन्धु कहा गया है।^२

काया सिद्धान्त—तांत्रिक-बौद्धमत में महायान के काया-सिद्धान्त का विकास मिलता है।^३ महायान के पूर्व हीनयान में काया-सिद्धान्त मिलता है। हीनयानी बौद्ध को एक वास्तविक अनुप्य मानते थे, यद्यपि वे महान साधक और सिद्ध पुरुष थे। सर्वस्तिबाध में रूप काया एवं धर्मकाया को स्वीकार किया गया है, प्रथम बाह्य काया है, धर्मकाया पुण्यों का संचय है। परन्तु महायान ने पुण्यों को भी सूक्ष्म घोषित किया और धर्म-सूक्ष्मता का सिद्धान्त प्रचारित किया। संचयित पुण्य आदि सब सांयुक्तिक सत्य है, पारमार्थिक सत्य नहीं। अतः माध्यमिकों के अनुसार वास्तविक धर्मकाया अकालीन अबाङ्गमनसोपर सर्वव्यापक सर्वाकार तत्त्व है, वह अन्य रूपकाया निर्माथि काया एवं सम्मोह काया का मापार है—समाप्त बौद्ध का वास्तविक रूप 'धर्मकाया' है, इन्हें 'धर्मता के रूप में देखना चाहिए, धर्मता अन्वेष तत्त्व है। अतः महायान के अनुसार काया-विभाजन प्रारम्भिक रूप में इस प्रकार है—१ रूपकाया इसे 'निर्माणकाया' भी कहा गया है। यह 'काया भी सूक्ष्म एवं सूक्ष्म ही प्रकार की है, यह जैतिक संचय का विभाजन हुआ। २—धर्मकाया—धर्मों का संचय (The body of merits) इसका प्रथम रूप है। माध्यमिक-काया (वास्तविक काया) वा metaphysical principle underlying the universe—the reality वा 'सत्ता'।

(१) वही

(२) मवेनत् प्रष्टवत् द्रष्टव्य मयमेवैककुप पर्वनादि चराचरं तत् सर्वं प्रतिपाद्य माधं विचारयेत् धर्मिभासोपमं मायास्वप्नसदृशम्, अहमपि निस्वभाव-स्वप्नोपम इत्यं सूक्ष्मतां भावयन्—साधनमाप्ता पुस्तक द्वितीय, पृष्ठ ११६

(३) द्रष्टव्य—Mahayan Buddhism and its relation to Hin-
syan—N Datta—Page 100-122

योगाचार सम्प्रदाय रूपकाया के दो भेद करता है—रूपकाया—स्पृण । सम्भोजकाया—सूक्ष्म घटीर । 'संकाशतार गूढ' में 'सम्भोजकाया' को 'निष्पन्दकाया' कहा गया है । इसे 'निष्पन्द-बुद्ध' भी कहा गया है । योगाचारमत में 'धर्मकाया' भी स्वीकृत है इसे 'स्वाभाविक काया' कहा गया है । 'पंचविंशतिसहस्रिका' में 'सम्भोजकाया' को 'सूक्ष्मघटीर' के अर्थ में ग्रहीत किया गया है । इसी 'सूक्ष्मकाया' से बुद्ध बोधिसत्वों को आंतरिक (बुद्ध) उपदेश होते हैं । धर्मकाया पवित्र शरीर है । माध्यमिक मत जिसे 'तपसा या 'धर्मकाया' कहता है, योगाचार इसे 'स्वाभाविक काया' कहता है । योगाचार मत में 'धर्मकाया' को गुणों का समूह माना गया है । गुणों में ज्ञान (बुद्ध मास्त्रक ज्ञान) अनुत्पाद ज्ञान तथा सम्मक दृष्टि की गणना की गई है । अतः 'धर्मकाया' के अर्थ में महायान एवं योगाचार मत में मतभेद है । योगाचार मत में धर्मकाया एक पवित्र व्यक्तित्व के अर्थ में (Purified Personality) ग्रहीत है जबकि माध्यमिक मत में इसे 'अज्ञेय ब्रह्म' के समान वर्णित किया गया है । बसुन बु के 'अधिवर्ग कोश' में धर्मकाया के दो अर्थ हैं (१) बुद्ध (२) पवित्र व्यक्तित्व । बसुन बु के अनुसार बुद्ध की रूपकाया (भौतिक शरीर) की धारण अर्थ है क्योंकि वह अपवित्र है । 'धर्मकाया' की धारण इष्ट होनी चाहिए ।

सद्वर्णपुस्तक में कहा है कि बुद्ध ने बुद्धत्व गुणों-गुण प्राप्त कर लिया था । दीपकर भावि पुर्न उपायों को भी बुद्ध ने उपदेश दिया था । उनका निर्वाण बुद्ध की ही सृष्टि की ।

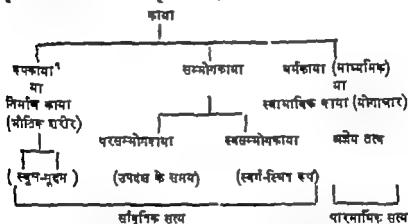
बुद्ध ने जो यह कहा है कि वह उत्पन्न हुए संन्यास लिया ज्ञान प्राप्त किया ये सब वर्णन जनता में विरवाय उत्पन्न करने के लिए हैं । बसुन उपायन अघटीर हैं जगत को 'निर्मित (निर्माण) नाया ही विद्यायी पढ़ती है । उनका वास्तविक स्वरूप 'धर्म काया' है । यह माध्यमिकमत है । इस मत के अनुसार बुद्ध की सीता एक आभास (phantom) मात्र है । सीता का तात्पर्य यह है कि लोग विरास करे कि बुद्धत्व-वाप्ति असम्भव नहीं है । बुद्ध सीता के लिए कोई भी रूप धारण कर लेते हैं, यही रूप काया या निर्माण काया है ।

ऊपर कहा गया है कि 'सम्भोजकाया' धारण कर भयवान जलों को आंतरिक उपदेश देते हैं । महायानमत का उपदेश दृष्टान्त पर इसी नाया द्वाय हुआ । इन नाया को 'प्रवाचस्य' कहा गया है और इसका वकिचूर्ण वर्णन किया गया है । श्री भविनाथ दत्त के अनुसार नागावृत्त के समय एक सम्भोज काया

कथ या निर्माणकाया से जलग न हो पाई थी परन्तु आगे के साहित्य में 'सम्मोग काया' अन्त भाग ली गई थीर इसी से 'मास्तिक बुद्ध-अचन' (महायान) का उपदेश हुआ ऐसा स्वीकार कर लिया गया ।

सिद्धि के अनुसार 'सम्मोग काया' क दो रूप माने गए हैं प्रथम सम्मोगजनया या परसम्मोग काया—यह बोधिसत्त्वों को दिव्यायी पढ़ती है, इसमें महापुरुषों के मलम पड़ते हैं द्वितीय—इसे 'स्वसम्मोग काया भी कहते हैं यह अल्प सोकों के निवासी बौद्धों को दिव्यायी पढ़ती है, मुक्ताबधी व्यूह में ही इसके दर्शन सम्भव है ।

स्पष्ट है कि सम्मोग काया' उपनिषदों के 'ईश्वर' के समान तथा 'बर्म काया' 'ब्रह्म' के समान बौद्धों में स्वीकृत है । वेद्यों के योगोपबिहारी आनन्दी कृष्ण से 'सम्मोग काया' का सादृश्य स्पष्ट है ।



(१) अर्थात् के अनुसार शिष्य जन्म ज्ञान (अभिसंबोधि) तथा निर्माण को सिद्धा देने के लिए भगवान 'निर्माण काया' धारण करता है यह 'काया' कर्मों द्वारा उत्पन्न नहीं होती, अकर्म के नाश व सुद्धर्म के लिए भगवान इच्छानुसार कोई भी काया धारण कर लेते हैं—यही भौतिक काया 'निर्माण काया' है इस काया के द्वारा आचरमाण ज्ञेयजगत् तथा बोधिसत्त्वों (अन्त लौकिकामी) के लिए उपदेश देने हैं । त्रिम प्रकार 'राम' ने अकर्म के नाश के लिए वरपरपुत्र बनकर भौतिक रूप धारण किया, जैसे ही भगवान ने शाक्यमुनि का रूपधारण किया जगत् 'निर्माणकाया' ने भगवान बुद्ध काह्य मैत्रिक उपदेश देने हैं, सम्मोग काया मे बुद्धवृत् पर जन्मोत्तै महायान का उपदेश दिया और इसी सम्मोग काया से धाम्यवृत् परल पर संभार्य का उपदेश दिया । धर्मकाया पारमार्थिक रूप है श्री ज्ञेय है ।

बचपान (अबचपान) तीन कायाओं के अतिरिक्त एक चतुर्थ काया भी स्वीकार करता है। रहस्यमय अनुभूति के लिए इन चार कायाओं को मानसिक-सोपानों के रूप में स्वीकार किया गया है। यह चतुर्थकाया विज्ञानकारियों की 'स्वाभाविक-काया' का ही विकसित रूप है, इसे तंत्र 'सहजकाया' कहता है, यह तंत्रों की अंतिम साधनात्मक स्थिति है, यही प्राप्य है। उपनिषद् भी बाह्य, स्वप्न सुषुप्ति व तुषुप्ति—इन चार अवस्थाओं को मानती है, परन्तु बचपान अपनी चार कायाओं को उपनिषद् की अवस्थाओं से उच्चतर सिद्ध करता है, 'सहजकाया, तुषुप्तिमास्त्वा से उच्चतर है, बर्मकाया सुषुप्ति से सम्मोग स्वप्न से तथा निर्माण बाह्य अवस्था से उच्चतर स्थिति है।'

चूँकि तांत्रिक ज्ञान की कोटियों को केवल व्यावहारिक दृष्टि से मानते हैं, अतः निर्माण सम्मोग बर्म तथा सहज यह कायाओं का क्रम व्यावहारिक दृष्टि से ही है। अतः निर्माण प्रथम स्थिति भी है और अंतिम भी इसी प्रकार यद्यपि 'सहज काया' को 'पूर्व योग' कहा गया है, परन्तु साथ ही उसे प्राथमिक सोपान के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों की अवस्थाओं में क्रम है, कोटियाँ हैं, अतः भेद है, ज्ञान एवं श्रेयता है इसीलिए उपनिषदों की अत्य अवस्था में भी 'मल' रहता है, तुषुप्ति में अवशेष इस 'मल' के लय से इस सहजकायावस्था की प्राप्ति होती है। यह प्रज्ञोपायात्मक है—प्रज्ञा एवं कर्मा की अईतावस्था। इसी को पूर्व योग कहा गया है। इसी स्थिति की प्राप्ति 'मुक्ति-प्राप्ति' कहलाती है। उपनिषदों की 'तुषुप्तिमास्त्वा' में 'उपाय का अभाव रहता है, इसलिए भी यह हीन अवस्था है।

दुसरी काया 'बर्मकाया' है। सुषुप्ति के लय से नित्य अनित्य आदि भेदों से रहित मीठी से पूर्ण चित्त की निर्विकल्प अवस्था को 'चित्तबल' या 'बर्मकाया' कहते हैं। प्रज्ञा व उपाय की एकता से इसे 'बर्मत्वा-योग' कहा जाता है। इस स्थिति में तर्क का अभाव है 'मै सम्यक्-अनुबुद्ध हूँ' ऐसा अनुभव नहीं रह जाता। यह स्थिति उपनिषदों की सुषुप्ति से उच्चतर है,

(१) सेहोदेय टीका—नारोपा—G O Series

इस शब्द को 'नासचक्रयान सम्प्रदाय का शब्द माना जाता है, जो बचपान सम्प्र० का एक रूप है, साधना की विधिधिता के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। 'काल' (Time) पर बोध द्वारा अनुपासन इन नासचक्र यान की विशेषता है। अन्वयंशों में भी 'काल' विजय का अर्थ है—'कालचक्र' को देवता के रूप में भी स्वीकार किया गया है।

सम्भोगकाया तृतीयकाया है इसे 'बाह्य' कहा गया है। सारे प्राणियों का मोहन तथा ज्ञान इसी अवस्था से होता है, बुद्ध ने इसी अवस्था में तंत्र का उपदेश दिया था। इसी को 'मंत्रयोग' भी कहा गया है। 'प्रसोपाम' की यही नी रूढ़ता है। यह स्थिति सभी संस्कारों के नष्ट होने पर प्राप्त होती है 'उपनिषदों की स्वप्नावस्था' से यह स्थिति महानतर है।^१

चतुर्थ काया 'निर्माणकाया' है। आहुत अवस्था के साथ से यह अवस्था उत्पन्न होती है, इसी से अनन्त रूपों व कायाओं की सृष्टि होती है, सभी क्षेत्रों में नादक तथा पीड, राग, रस शान्त भावि की सचीर्षता से रहित, उपेक्षात्मक अवस्था यही है इसे 'कायाबन्ध' कहा गया है। यद्यपि निर्माणकाया को प्राचीनक स्थिति कहा जाता है परन्तु इसे अंतिम अवस्था भी माना जाता है। गारोपा का कथन है कि 'विमल प्रभा' नामकतंत्र के प्रथम स्तोक में स्पष्ट कहा गया है कि निर्माणकाया से सद्भक्तकाया है, यही शुभ्यता है, ज्ञानबन्ध और शुद्ध योग यही है।^२ तृतीयकाया जिसमें 'राग' शेष रहता है, सुषुप्ति जिसमें तमसु अवशिष्ट रहता है स्वप्नावस्था, जिसमें विकल्प रहते हैं तथा आपदावस्था जिसमें संसारत्मक ज्ञान

(१) सम्भोगकाया की स्थिति में तर्क व इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। इस विशेष स्थिति में 'स्वप्न' होने का भ्रम न हो अतः इसे स्वप्न से उच्चतर कहा गया है, इसी अवस्था में 'ध्वनि' का जन्म होता है जो ज्ञान से एकाकार है बीजमंत्रों का जन्म होता है इन मंत्रों में सृष्टि एवं विनाश की शक्ति रहती है, ज्ञानन्द भी बीज रूप में इन मंत्रों में सुरक्षित रहता है। इनसे मन की रक्षा होती है, अतः मंत्र को आणारमक कहा गया है। सम्भोगकाया की इसी स्थिति में अवस्थित होकर बुद्ध भगवान् ने सुषुप्त पर्वत के पास 'मंत्रयाम' का उपदेश दिया था। मंत्रयाम ज्ञान एवं ज्ञानाव के निष्कन्त रूप, स्वास-प्रश्वास की मय में भाकर 'शक्ति' के 'ऊर्ध्व-संचरण' में विरवाह करता है, मंत्रों के द्वारा ही शक्ति को जायत दिया जाता है और उसके ऊर्ध्व-संचरण द्वारा अनन्त शक्ति तथा अपरिमित ज्ञानन्द की प्राप्ति की जाती है। सम्भोगकायावस्था के बिना मंत्र निर्भीय हो जाते हैं।—दृष्टव्य-सेकोदेव्य टीका की भूमिका-पृष्ठ १२ १३

(२) स एव सद्भक्तकायः, शुभ्यताविमोक्ष-विशुद्धी ज्ञानबन्ध सर्वज्ञ-सम्भोगायात्मक शुद्धयोग इति। स एव सर्वकायो _____ स एव _____ सम्भोगकायो _____ स एव निर्माण कायो _____ सेनोदेवटीका—पृष्ठ ९

(discriminative consciousness) रहता है, इन सभी अवस्थाओं से उच्चतर स्थिति की प्राप्ति निर्माण या सहजावस्था में होती है।^१ यह स्थिति ही 'महासुख' शब्द है। प्रथम और अन्तिम स्थिति को एक मानने का कारण यह है कि 'सहजावस्था' प्रथम अर्थ में आत्मविक स्थिति है, सृष्टि के पूर्व यह सहजावस्था (उपनिषद् का ब्रह्म या आत्मा) ही अपने को विषय और विषयी के रूप में विभाजित करती है और विषय एक विषयी के नाश के बाद साधक गुरु स्वरूप में स्थित होकर 'सहज' हो जाता है। अतः इस पृष्ठि से 'सहजावस्था' या 'सहज-काया' अंतिम स्थिति हुई = अनुर्धकाया।

द्वितीय अर्थ में सहजकाया ही निर्माणकाया है, कायावच्छ' की प्राप्ति सहजसाधना द्वारा ही होती है, अतः साधक साधना के प्रारम्भ में किती ओ (प्रज्ञा) के साथ योग प्रारम्भ करता है। इस साधना में मस्तक में स्थित त्रिगुण = बीर्य = बोधिविन्दु = पुरुष-शक्ति को प्रज्ञा के विमल द्वारा (रति—क्रिया) द्रवित किया जाता है, साधक का बोधिविन्दु (बीर्य) द्रवित होकर बन्धमयि (भिन्न) एक जाता है और प्रज्ञा (योगि) में गिर कर न केवल बाह्य सृष्टि करता है बल्कि साधक द्वारा बोधिविन्दु एक प्रज्ञा के विमल का यह माध्यमिक लक्ष्य समझ लेने पर, बाह्य रति-क्रिया आंतरिक शक्ति को आपत कर देती है और इस शक्ति द्वारा मस्तक से स्फूर्जित त्रिगुण (बीर्य-बोधिविन्दु) को पुनः मस्तक पर ही पलुंवा दिया जाता है (उर्ध्व-रेवस्-योग) और योगी इस प्रकार 'सहज' (सन्नीहा) साधना द्वारा घरीर स्थित शक्ति को ऊर्ध्व-संचरित करता है और अन्तिम स्थिति (सहज काया—अनुर्ध कावस्था) को प्राप्त कर नियम निर्दोष हो जाता है। यही सहजानन्द है, प्रथम एक अंतिम काया का एक ही है, स्वतन्त्र तथा ऊर्ध्व-उचरन बन्धोमुक्त विद्राव (involution) तथा विकसत (evolution) की एक साथ अनुसृष्टि ही तांत्रिक बीजमत की विशेषता है। बाह्य और आंतरिक की एकता 'सहजयोग' के बिना अनुभव है संज्ञा की यह शोधना है, शोध एवं साक्षात्गामी इसे स्वीकार करते हैं।

वसयोग—बन्धयान में 'बन्ध' शब्द की बड़ी महिमा है। हिन्दू-यीक एत्यपार में भी 'आदम' Adam शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके दो

(१) दुर्बारागमनाथनिजोभयैन्निवारयवगुणान्मोक्षविन्दुननुमप्रागत्यावृत्तिसद
सम्बन्धानोविषय्य भावसंज्ञातरक आपदवस्थाध्वंसके:-----बही—पृष्ठ १

अर्थ है। साधना में दीक्षित होने पर साधक का एक प्रकार का पुनर्जन्म होता है।
 २. आरम का अर्थ है 'बन्ध' (diamond)। क्योंकि साधक बन्धवत् दुःख
 हो जाता है, उसकी दुर्बलताएँ बलकर गत्म हो जाती हैं। बन्धमान में भी यही
 सिद्धान्त स्वीकृत है, साधना में प्रयुक्त प्रत्येक पदार्थ—जल, भुम्भ आदि सभी के
 लिए 'बन्ध' शब्द का प्रयोग किया जाता है। साधक प्रत्येक पदार्थ को बिरोध दृष्टि
 कोष से देखता, सू पता और स्पर्श करता है, प्रत्येक कार्य से वह 'सर्वज्ञान सत्ता'
 को प्राप्त करना चाहता है, प्रत्येक बाह्य-पदार्थ व क्रिया को वह जातिरिक्त सत्ता
 का प्रतीक मानता है अतः उसका नाम 'बन्धाचार्य' पड़ता है।

'बन्धाचार्य' को विशुद्ध योग, धर्म योग मंत्र योग, एक संस्वान-योग—इन
 चार होपलों को पार करना पड़ता है। चार प्रकार की मुक्तियों को पार करने
 ही बोधी इन योगों को प्राप्त करता है—सुख्यता-विमोक्ष अनिमिता-विमोक्ष
 अपरिहृत-विमोक्ष तथा अनभिर्लक्ष्य-विमोक्ष। मुक्तियों द्वारा प्रत्येक बन्धयोग से
 सम्बद्ध मानसिक-स्थितियाँ प्राप्त होती हैं, इन स्थितियों को प्राप्त करने के लिए
 ४ मार्ग हैं प्रत्येक मार्ग में एक मानसिक स्थिति-विधाय और बन्धयोग विधेय की
 प्राप्ति होती है। इन मानसिक-स्थितियों (faculties) को 'व्य' नाम दिया
 है। प्रथम बन्धयोग 'कामावच्छ' कहलाता है, इसमें भौतिक शरीररति की उन्नति
 होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्यन्तिक स्थिति को प्राप्त करने के लिए 'शरीर'
 की सहायता आवश्यक है 'कामावच्छ' का यह भी अर्थ है। काम्य' में
 बाणी की पूर्णता प्राप्त होती है, बिद्य-बन्ध में मानसिक विनास होता है और
 ज्ञानबन्ध में 'धर्मा' का विनास होता है। प्रत्येक काम्य के साथ यह बन्धयोग
 सम्बद्ध है—

निर्माण काया—कायाबन्ध—विशुद्ध योग—सुख्यता-विमोक्ष
 सम्भोगकाया—बाण्यबन्ध—धर्म योग—अनिमिता-विमोक्ष
 परमकाया—चित्तबन्ध—मंत्र योग—अपरिहृत—'
 इन्द्रकाया—ज्ञानबन्ध—संस्वान योग—अनभिर्लक्ष्य'

अभिसम्बोधि सिद्धान्त—अभिसम्बोधि का अर्थ है 'पूर्व-धनाप'।
 सम्बोधि से मुक्ति-विज्ञान की व्याख्या की जा सकती है। ये काया-सिद्धान्त स
 सम्बद्ध है—

- १ एकात्मविश्वबोधि—सृष्टि काया
- २ पंचकार सम्बोधि—वर्णकाया
- ३ विश्वव्यापार सम्बोधि—सम्बोधिकाया
- ४ मायावादात्मिसम्बोधि—निर्माणकाया

प्रथम अविश्वबोधि में अनवरत और सतृप्ता प्रकाश की प्राप्ति होती है, अतः यह सर्व सत्य है। मायावादात्मिसम्बोधि में सांसारिक ज्ञानों का ज्ञान होता है। परन्तु साध ही इन बोधियों से वर्ण-स्थित विष्णु की बुद्धि स्वास-प्रवास, विकास-अवरोधक विकास (involution) आदि का भी ज्ञान होता है, যেতনা अव नीच का रूप धारण करती है, तब इसे 'उत्पत्ति-रूप' कहते हैं, पंचज्ञानेन्द्रिया क्रमोन्मिता स्वप्न जालु आवरण आदि का विश्वस भी इसमें सम्मिलित है—मह ज्ञान योगी ध्यान द्वारा प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार रोम नीच एक विष्णु से सृष्टि का विकास समझाते हैं वेसे ही बौद्धों में विष्णु की कल्पना है, जिस प्रकार छी-मुदय-मिसन से विष्णुपाठ से पीव की सृष्टि होती है, वेसे ही ज्ञान होने के पश्चात् যেতনা ऊर्ध्व-संचरण की ओर उन्मुख होने पर एक 'विष्णु' से परमार्थ की ओर चमती है। अतः विष्णु विकास तथा अवरोधक विकास (involution) दोनों का प्राथमिक स्थान है। सर्वोत्तम स्वास-प्रवास को यद्यपि करके ज्ञान विजय की जाती है। इच्छा-व्यक्ति से ही यह सम्भव होता है। स्वास-प्रवास दिन तथा रात की प्रतीक है। इसी प्रकार पक्ष मास सूर्य-चन्द्र-बहल वर्ष आदि काम पर विषय की जाती है। विश्व में ब्रह्माण्ड के सभी सत्य विद्यमान हैं, अतः विश्व विजय ही ब्रह्माण्ड विजय है। अतिसंशोचन में स्वास-प्रवास एक जाता है, और योगी की अति आत्मनिष्ठता होती है। आध्यात्मिक उत्पत्ति की बाधाएँ बंद जाती हैं। यही स्थिति योगी का 'सुर्भोजन' है। इसी को 'ब्रह्मसत्त्व' अवस्था कहते हैं।

द्वितीय स्थिति 'महासत्त्व' है, तृतीय है 'बोधिसत्त्व और चतुर्थ है 'समय सत्त्व'। इस क्रम को उलट कर कहा जाता है अर्थात् समयसत्त्व प्रथम बोधि सत्त्व द्वितीय महासत्त्व तृतीय एक ब्रह्मसत्त्व अंतिम अवस्था भी बड़ी जाती है, क्योंकि प्रकाश की प्राप्ति में क्रम और अक्रम दोनों रहते हैं।

रोम साबक 'विष्णु' को ईश्वर मानकर इससे ही सृष्टि का विकास समझाते हैं—बौद्धों के अनुसार भी इस 'विष्णु' में अव्यक्त शक्ति अवस्थित रहती है, इन

'अच्युत' और 'स्वामावित' कहा गया है। यह प्रथम और अंतिम स्थिति है। 'विन्दु' से 'शरीर' तक के विकास को योगी ध्यान द्वारा देखता है। 'विन्दु' (बिन्दु का मृष्टि के लिए उन्मुक्त रूप) को संबिन्दु भी कहा गया है। इससे एक प्रथम रूप में यह विन्दु व्यक्त हो रहा है, अतः अनास को 'प्रकाश' एक प्रकाश को 'विमर्श' कहा गया है शैबर्तन भी संबिन्दु, प्रकाश और विमर्श शब्दों का प्रयोग करते हैं। परन्तु इनके अर्थों में क्विचिन् अंतर है। जाग्रत अवस्था को यहाँ दिन, स्वप्न को रात एक सुषुप्ति को प्रकाश कहा गया है क्योंकि सुषुप्ति में संबिन्दु पराश्रित हो जाती है, सांसारिक ज्ञान घात हो जाता है। न्युक्तिस्था को 'विमर्श' कहा गया है, अर्थात् शैबर्तनों में विमर्श चक्ति या चिन्म का निष्कारण रूप है। परन्तु शिब-शक्ति की एकता का आधारभूत सिद्धान्त यहाँ स्वीकृत है।

भूत विज्ञय—जाग्रतन का अर्थ है प्रत्यक्षीकरण (perception) एक इन्द्रियों के विषय। पृथ्वी जल अग्नि आदि पंचभूतों को प्रज्ञा (ज्ञान) माना जाता है और पंचस्पर्शों (बोध वेदना, संज्ञा संस्कार, विज्ञान) को 'व्याप' (पुष्ट) माना जाता है। इनकी एकता का ध्यान शक्तिशक्तियों के सश्रित ध्यानी-बुद्धों के रूप में किया जाता है। चक्ति-संयुक्त (युगल) ध्यानी बुद्धों के ध्यान से इन्द्रिय तथा विषय की एकता सिद्ध होती है और दुस्य एक द्रष्टा की एकता प्राप्त हो जाती है। इनके अने भौतिक अणु की सत्ता अणु पूर्व है यह ज्ञान होने लगता है, और साधारण उसे अतीत कर प्रतिबिम्बवन् देखने लगता है। यही धर्मकाया का योगान है।

एन्दोसकाया के ध्यान में अन्त-विज्ञय जाती है। काल को शक्तियों विषयों मास और संक्रान्तियों में बाँटकर ध्यान किया जाता है। इन्द्रियाणीन शक्तियों के प्राप्य हो जाने से इस स्थिति में ज्ञान-विज्ञय होती है।

निर्माविकाया में १६ प्रकार के आनन्दों पर विज्ञय होती है। ये आनन्द भौतिकशुक्ति की उत्पत्ति से सम्बद्ध हैं यथा मैथुन का आनन्द। अमानन्द, परमानन्द विरमानन्द एहजानन्द इन चार कलाओं में १६ प्रकार के आनन्दों को रखा गया है। ये आनन्द भौतिक भी हैं और पारमाधिक भी, दोनों में अनेक स्थापित करना ही साधना है—जब भौतिक आनन्द पारमाधिक आनन्द का साधक न रह जाय तब साधना पूर्ण हो जाती है, पूर्ण प्रकाश की प्राप्ति होने पर ही मैथुनारि का ऐन्द्रिक आनन्द पारमाधिक आनन्द के रूप में प्रतीत होने लगता है और योगी

एन्द्रिक और अतीन्द्रिय अनुभूतियों में द्वैत नहीं देखता वह निर्गुण होकर विहार करता हुआ निपकुल रहता है। अथ 'सहजानन्द' प्रथम स्थिति है और अंतिम भी। साधना का प्रारम्भ भी पंचमकार से होता है और अन्त भी पंचमकार में ही होता है, प्रकाश जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, अज्ञान-अज्ञान पर जैसे-जैसे अनुप्राण बढ़ता जाता है, जैसे ही जैसे भौतिक आनन्द धीमे-धीमे कम उत्पन्न करते हैं और अन्त में सांसारिक अनुभव एक पारमार्थिक अनुभव में अत्यन्त स्वाधित हो जाता है। योगी विवि-नियम से परे हो जाता है।

प्रतिपत्ति-सिद्धान्त—अक्सिडोविट क सिद्धान्त से 'उत्पत्ति क्रम पर प्रकाश पड़ता है इनसे ईश्वर और मनुष्य किस प्रकार सृष्टि करते हैं यह स्पष्ट हो जाता है। उत्पत्ति क्रम से सृष्टि का विकास तथा 'उत्पन्न क्रम से साधना में पूर्णता-प्राप्ति को समझाया जाता है। 'उत्पन्न-क्रम से अर्थात् अज्ञान-अज्ञान का वर्णन है, इसे ही प्रतिपत्ति कहते हैं। उत्पन्न, वेदना उत्पन्न, विज्ञान ज्ञान उत्पन्न इन पद स्वभावों द्वारा १० सृष्टि-सम्बन्धी निमित्तों—बुद्धि आदि का ध्यान किया जाता है।' पंचभूत तथा ज्ञान तथा आनन्द (शरीर विज्ञान तथा धर्म तथा आत्मा) तथा अर्थवानु (शब्द स्वयं, रूप, रस एवं गंध) भी इस ध्यान-प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं।

युगनन्द सिद्धान्त

पूर्व अज्ञान की अवस्था की प्राप्ति ही युगनन्दारवस्था है। 'युगनन्द' का अर्थ है, जो का परस्पर संयुक्त होना अथवा एकता में पूर्ण एवं स्वीकृत होते हैं तब प्रकाश (स्त्री) तथा उपाय (पुरुष) की संयुक्तता ही युगनन्दारवस्था कहलाती है। शैव इसे एतद्-सिद्धि की 'संयुक्तारवस्था कहते हैं। शैवों की एतद्-सिद्धि की 'संयुक्तारवस्था' को वेदान्त 'सर्वपरिपत्ति' कहता है। यह अवस्था यही है, जब वेदना में किसी प्रकार की हस्तक्षेप नहीं होती। आध्यात्मिक पदार्थों की शुद्धता प्राप्त हो जाने पर, शरीर, मन शब्द से उत्पन्न वा ज्ञान भर कर जब साधक अज्ञान के दुर्गों के भाग के लिए समस्त होता है, तब 'युगनन्दारवस्था' प्राप्त होती है। सांख्यिक अथवा एक पारमार्थिक ज्ञान की एकता इसी अवस्था में प्राप्त होती है। यह विवि

(१) अथवा पूर्व युगनन्द अर्थव्यतिरिक्त शीघ्र अर्थव्यति, अन्त, पूर्व अन्त अथवा अन्तव्यति अथवा अन्तव्यति अथवा अन्तव्यति (ध्यान) नहीं यदि है—शैवों-शैवता ।

महाज्ञानमग्नसोपार है। ज्ञान एक सांसारिक क्रमों का नहीं उद्यमस्वित्त्व हृष्टा है। भाव, ज्ञान, स्मृति विस्मृति राग विराग मारण मार्म सब इन्द्रों से यह अवस्था बनीत है। यही 'बुद्धत्व एवं बन्धोपम' अवस्था है।

ज्ञान एवं क्रिया (साधना) की एकता से ही यह अवस्था प्राप्य है। शीतलजों में भी सिद्ध शक्ति के माध्यम से ही स्वकल्पितिक्रि को प्राप्त करता है। बुद्ध ज्ञान (चेतना) अपने प्रकृत रूप का अनुभव नहीं कर सकता, इसके लिए वह अपने ही एक रूप—क्रिया को अपनाता है^१, यह क्रियाशक्ति ही देवी है, बौद्धजनों में यही योगिनी है, अतः बौद्धजनों में आदिभक्त देवी-देवताओं के रूप दिखायी पड़ते हैं। त्रिम्बक में देवी-देवताओं के इस रूप को 'वसुध' कहते हैं। बौद्धजनों में सद्मी नारायण तथा 'सुगतस्त्रिओर' के पीछे भी यही रहस्य है।

महामहत्त्व ने लिखा है कि 'सुफल' को समझने के लिए वास्तविक पदार्थों को निस्वभाव समझना चाहिए, पदार्थ स्वतः नहीं हैं, वे किसी कारणों से उत्पन्न होते हैं जिन वास्तविक रूप में उनकी उत्पत्ति होती है, यह नहीं कहा जा सकता। यथा रूप न रूप में रहता है, न मत्र में रहता है, न विज्ञान (चेतना) में रहता है अतएव 'रूप' का 'उत्पाद' केवल हमारी 'प्रतीति' पर निर्भर है। इसी प्रकार ज्ञान न पुण्य के ह्रास में है न अपनीम लब्धी में अतः बस्तु की अजातता सिद्ध है। परन्तु बस्तु की प्रतीति भी होती है जिन 'पुण्य' अजातता भी नहीं है, अतः भाव एवं ज्ञान दोनों की एकता ही 'सुफल' है।^२

(1) ----- pure abstract thought can not realise its own nature unless it comes back to itself through its own activity and when it Thus turns back to itself through Vimarasa, it becomes the Egohood.

An Introduction to Tantric Buddhism

S. B. Das gapta, Page 129

(2) रूपे न विद्यते रूपं न वा अद्युति विद्यते ।

न चैतन् तज्जन्निजाने, बाह्यकृत्तिका यथा

मृगाने मयनीये वा न वा पुण्यदुस्तयोः

प्राक्प्रियो विद्यते बहिः प्रतीत्याज्जं स जायते ।

नेस्वाभाभ्यादजातत्वं प्रत्ययार्दानकद्वया ।

भाष्यभाषावपी न स्तो मुपनर्द्ध तु भाष्यते—सुगतद प्रकाश, महामहत्त्व संघ

सांस्कृतिक पंथाओं की प्रतीकमान सत्ता है, यह ज्ञान हो जाने पर साक्षर प्रत्येक अवस्था में निर्गुण रहता है। यही 'शून्यता' है, इस शून्यता को 'स्त्री' तथा इसकी अस्मिन्वृत्ति को 'पुरुष' कहा गया है, दोनों की एकता होने पर सहज प्रेमावस्था उत्पन्न होती है, अर्थात् युगलरूपा ही सहज प्रेम है।^१

राग-महाराग—'महासुख' का सिद्धांत 'महाराग' के सिद्धांत के साथ सम्मेलन है।

'उच्छ्वसमर्तक' में कहा गया है कि शिव एवं शक्ति के समावेश से 'महासुख' मिलता है।^२ बाह्यरूप में यह सुख बीर्य-स्वप्नन के साथ में प्राप्त होता है, इस क्षण के मानस से ही आंतरिक 'महासुख' की प्राप्ति सम्भव है, क्योंकि बीर्य-स्वप्नन के समय ही निम परस्व का ज्ञान मिट जाता है, पूर्ण तात्कालिक प्राप्त होता है, स्वसंवेदित की यह अनुभूति तत्त्व ज्ञान में सहायक है। इसी ज्ञानत्व को ब्रह्मानन्द कहा गया है। यह अवस्था सब समय रहे, यही जीवन्युक्ति है अतः अनवरत चित्त-सहवास अनवरत ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है। इस अवस्था में निरंतर द्रुष्टि जाती है, उच्चर 'ब्रह्म' के दर्शन होते हैं। अतएव प्रिया-दर्शन भी ब्रह्मदर्शन ही है, चूंकि प्रिया-दर्शन सबसे अधिक मनोरम है, अतः अन्य वस्तुओं को देखने की क्या आवश्यकता है? प्रिया-सहवास द्वारा जो 'राग' उत्पन्न होता है उसी में पूर्ण सम्मग्न होने से ब्रह्मानन्द या निर्वाण प्राप्त होता है, इसमिथ तब इस 'राग' को 'महाराग' कहते हैं। अर्थात् एवं अर्थों विधि और निषेध की भावनाओं में पड़ित परतु इस साधना को नहीं समझ सकते। किन्तु तब तत्त्वज्ञान के अभाव में भोग को किनाराक मानते हैं

(१) शून्यता अनिबन्ध काला शूर्वा निस्वमा तु या ।

अपक्व यदि बन्धविन् स्यात् बन्ध स्यात् कर्मनायकः ।

दम्पतीं पश्चिनी तस्मात्, पुरीकपस्विनी वृत्तः ।

निजप्रीत्या तपोस्तेन साहजं प्रेम कारितम्—वेमर्षक

अनुभवस्यसंपदह

(२) निबन्धतिगमायोगात् ननुषं परपात्रयम् । —अनुभवस्यसंपदह—

(३) पदं मरु बं बुधयते विन्धि तत् तत् ब्रह्मिनि कस्यपेत् ।

प्रियादर्शनमेवैकं किमप्यहर्षनामतेः

प्राप्यते देन निर्वाणं स्वरागेवापि येनसा—श्री

अतः ज्ञान के द्वारा भोग ही मुक्तिदायक है। प्राह्य एवं प्राहक से परे होकर भोग्य प्राप्त होता है।^१

उपनिषद् वर तन्त्रज्ञान मन चित्त, बुद्धि के बिनाश (Anihilation) द्वारा मुक्ति प्राप्ति में विश्वास रखता है जबकि तान्त्रिक मार्ग विराय द्वारा, राम द्वारा—मन चित्त, इन्द्रियों से अलग आनन्द द्वारा ही निर्वाण प्राप्त कराता है।^२ अज्ञानी जन जिन आनन्दों के द्वारा मरक में पड़ते हैं, योमी उन्हीं के द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं।^३ जगत के सारे आनन्द साधकों के हित के लिए ही निर्मित किये गए हैं, मूखों का इनके भोग से पतन होता है—ज्ञानियों का नहीं।^४

महामुस्रधाव—शास्त्रिक बौद्धमत में इच्छा का पूर्ण नाश ही निर्वाण है, महायान में निर्वाण का कर्तव्य उपनिषदों की 'मुक्ति' अवस्था के समान वर्णित है, उसमें आनन्द एवं शान्ति दोनों की प्राप्ति होती है, किन्तु 'ब्रह्मयान' में मुस्रधावस्था के इस आनन्द को 'महामुख' का नाम दिया गया है। महात्मक रूप में 'महामुख' की स्वीकृति ब्रह्मयान की विशेषता है। केवल मानसिक वृत्तियों का दमन ही निर्वाण नहीं है अपितु इसमें अनर्गनीय लौकोत्तर महामुख प्राप्त होता है। "मैं मुक्त भोग रहा हूँ ऐसी भावना इस अवस्था में नहीं रहती अतः वह त्वनि निबिदन्त्य स्थिति है और निबिदन्त्य होने में ही 'महामुख' है।

अद्वयबन्ध के अनुसार न वस्तु ही सत्ता सिद्ध होती है न असत्ता सिद्ध होती है, अतः भाव एवं अभाव का अद्वय ही महामुख देता है। यह सुख सांसारिक सुख नहीं है न इस स्थिति में सुख का अभाव है, क्योंकि सुख के अभाव में बोधि (ज्ञान)

(१) त्वनधर्ममपर्यं च उभे सत्त्वानुते त्वन । —बही

(२) प्राप्यते येन निर्व्याधिं स्वरागेवापि वेगता—अद्वयबन्धसंपह

(३) बर्षणा येन चैव सत्त्वाः ब्रह्मकोटि उदात्तपि ।

पश्यन्ते नरके घोरे, तेन योगी किमुच्यते—ज्ञाननिधि

(४) तन्मोघार्थमिदं सर्वं त्रैधागुरुमधोपन ।

निर्मितं ब्रह्मनायेन साधनानां त्रिधा च—बही

नहीं होती ध्यान ही वास्तविक की वषा में थी बोधि नहीं उद्धर सकती अतः बहु बोधि रूप महासुख लोकोत्तर सुख है ।^१

चेतना में बलु-शून्यता या ज्ञान हीसे ही देवताकाय स्फूर्ति उत्पन्न होने लगती है, इस स्फूर्ति से ही साधक को फल मिलता है, कोई बाह्य शक्ति उसे फल नहीं दे सकती इस स्फूर्ति को ही 'बिज्ञा' कहा गया है, अतः साधना के समय लौकिक सुख-भोग द्वारा इस अलौकिक निबिन्ध्य स्फूर्ति की ओर साधक उन्मुख होता है। अतः जगत के भोग ही उपाय हैं और शून्यता ही प्रज्ञा है, दोनों का तादात्म्य ही महासुख है ।^२

इन 'तादात्म्य' की अनुभूति स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध द्वारा ही हो सकती है, लौकिक सुख की प्रतीति अलौकिक सुख की सत्ता के कारण ही है। अतः लौकिक सुख के माध्य के द्वारा साधना करना 'उद्धर' पद्धति नहीं है ।^३ लौकिक अज्ञानी पुरुष का मध्य ऐन्द्रिक सुख प्राप्ति है साधक का लक्ष्य है अलौकिक सुख-प्राप्ति। इन्द्रियों में अजर होने से लौकिक सुख साधक के लिए मुक्ति का साधन बनना है और अज्ञानी को अज्ञानता की ओर से जाता है। अतः यौनि श्रेयों में 'सुखावती' कहा गया है और 'बीर्य' को ही 'आनन्द' कहा गया है। सुखावती न स्वित्त होकर (युक्त होकर) ही साधक महासुख पाता है। इसीलिए तांत्रिक पुरुष भाषना बिना स्त्री (मुद्रा) के नहीं हो सकती। यौनि भोग एवं योग की प्राप्ति एक साथ करके महासुख प्राप्त करता है।

समरस या सामरस्य का सिद्धान्त—'महाराज' एवं 'महासुख' से ही सम्बद्ध 'समरसता का सिद्धान्त है। पूर्णता की अनुभूति ही समरसता है। इस स्थिति में प्रज्ञा एवं उपाय का अलग-अलग बोध नहीं होना एक साथ होना है।

(१) मुद्राभावे न बोधि स्यात् यथा वा मुद्रापिणी ।

अस्तिथे च महान संगं संभारोप्य हेतुः—महासुख प्रमाणा
यथा यथा भवेत् सद्गतिं सा तथा दूष्यन्तारिभवा । अत्रयवयव ईषद्
ईतार्द्धतमो यच्च नम तत्रागता चमत् ।

(२) तात्रिचिद्र देवतागारं विरञ्चनमुपायम्

प्रज्ञा च दूष्यता प्रीत्या नाप्यनादात्म्यमिष्यते ।—बही

(३) मुद्राभावे न बोधि स्यात् यथा वा मुद्रापिणी—बही

चेतना के निम्न स्तर—मन—चित्त बुद्धि आदि तथा उच्च स्तर—स्वयं प्रकाश
ज्ञान आदि में पूर्ण एकता इसी स्थिति में वृद्धिगोचर होती है। इसी को 'समरस
का चक्र कहते हैं, अर्थात् जीवन के सभी प्रकार के अनुभवों में, सभी बस्तुओं
में एक ही रस का चक्र स्थापित हो जाना ही समरस चक्र है।^१ अथवा जीवन के
चक्र में एक ही रस की अनुभूति प्राप्त करना ही समरस चक्र है। मन की प्रवृत्ति एक
निवृत्ति सामरस्य की स्थिति में मल हो जाती है। यह अद्वैतावस्था है। मिड
कन्व्यास ने कहा है कि ज्ञान में सबलवत् जब मन खा (सम्पत्ता) में मग्न हो
जाय तभी सामरस्य की स्थिति प्राप्त होती है। शिव एक शक्ति का सामरस्य भी
यही है। प्रज्ञा तथा उपाय ज्ञान शक्ति और श्रिया शक्ति की भी परिपूर्ण एकता इसी
का नाम है।

सहज-मिद्धान्त—वचनान् न विज्ञान में 'सहजमान' शब्द की बड़ी
है इन्द्रभूति और महर्षिकरा सेवी ने 'सहजमान' का अर्थ दिया यह कहा जा
सुता है। शिबु अन्य वचनानो गगन भी बस्तुतः सहजमान ही है साधना के
क्षेत्र में 'सहज' पदार्थ को अनाम से 'सहजमान' का अर्थ है। दार्शनिक
दृष्टि में 'सहज' शब्द का अर्थ है प्रज्ञाज्ञान। सहज एव प्रज्ञा ज्ञान एव है।
सम्पूर्ण धर्मों का अर्थज्ञान अस्तित्व ही 'सहज' है।^२ धर्म वा अद्वैतज्ञान अस्तित्व यह है
दृष्टि में निस्वभाव है अतः शून्य है परन्तु अनन्त अभाव नहीं है। अनन्त प्रतीति
अवस्था होती है, अतएव भाव न अभाव से परे शून्य शेषि का ज्ञान ही सहज ज्ञान
है। व्यावहारिक दृष्टि से 'सहज' का अर्थ मग्न है। ज्ञान में प्रवेश की आरंभ

(१) सम = Sameness and Ras = Chakras of Sameness =
the oneness of the nature of all that is there in the
cycle of existence—An introduction to tantric
Buddhism—

S. B. Das Gupta

(२) सहजं मग्नं सहजज्ञानानुसारिभ्यान् अनुभवमिदमिदोपदेते ।
सहजज्ञानं सहजमद्वैतं ज्ञानं शक्तिपरमं च । सहजं प्रज्ञाज्ञानम् । अतएव
प्रज्ञाज्ञाने सहजम्योपपत्तिर्नस्ति । यस्यां सहजं नाम स्ववर्णं गन्धं
वर्णानामद्वैतमस्यैव इति यावत् ।

—अद्वैतचक्र संघ

का उन्मुख होना 'सहज' है, अतः भोग द्वारा योग की प्राप्ति ही सहज मार्ग है। अन्ध साधनार्थ हठयोग आदि कठिन मार्ग हैं, तत्त्वज्ञान भोग द्वारा भी हो सकता है, यही सहजमार्ग का संदेश है। भोग-संन्यास मन के विरक्त मार्ग है अतः उसमें सरलता सुन्दर है।

किन्तु तत्त्वज्ञान के अभाव में साधना मायाक है। यथा दर्शन में प्रतिबिम्बित मुख को भ्रान्तिवश भोग वास्तविक मुख समझ लेते हैं। तथैव कोरे श्रियावादी ज्ञानहीन श्रियाओं द्वारा सद्ब्रह्मामुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे धीन मार्ग का वास्तविक रहस्य नहीं जानते। कबचा एक दृश्य के अन्दर को तंत्र मनमुद्रा करते हैं। सलता और रसना (इडा-पिंगला—सना-उपाय) के मध्यमार्ग स्थित भवभूती (शुश्रुणा) के मार्ग से सहजमुख का साक्षात्कार होता है। इसी की बर्ममुद्रा कहा गया है। यह 'सहज' का योगपरक अर्थ है। योग परक अर्थ यह है कि 'भवभूती' (त्रिभुज) स्त्री के साथ ही 'सहजानन्द' विद्यता है।

घात शीघ्र तंत्र भी वस्तुतः सहजमार्गी है क्योंकि सभी तंत्रों में वह सिद्धान्त स्वीकृत है कि मन की सहज अति का ही साधक को अनुसरण करना चाहिए। तबत्र मन बने उबर ही बनकर, जहाँ मन मने वहीं उसे रोक्कर उस वस्तु से तादालय करना चाहिए, मन को क्ल में करने का सबसे 'सहज' उपाय यही है। मन के विपरीत मार्ग को संन्यासी अपनाते हैं अतः उनका कार्य कठिन है। हठयोगी भी कठिन मार्ग हैं, कठिन साधना में मन का केवल दमन होता है, वह वस्तुतः बस में नहीं होता और दमित मन अक्षर मिलने पर साधक को भ्रष्ट कर सकता है परन्तु 'सहजमार्गी' मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाते हैं अतः उनके विरवाच के अनुसार उनका मार्ग श्रेष्ठ और सहज है। साथ ही संन्यास मार्ग में केवल कुछ भोग ही उत्तर सकते हैं जबकि तंत्र मार्ग में प्रत्येक प्रकार का प्राणी मुक्ति पा सकता है, कापी श्रेष्ठ द्वारा, जयगीत जय द्वारा और किताबी विनाश द्वारा मुक्त हो सकता है, यही इस मार्ग की विशेषता है। मन की सहजगति का अनुसरण प्रत्येक प्राणी ने लिए सहज है। मन दृश्य न हो प्रत्येक व्यक्ति ऐसा प्रयत्न कर सकता है अतः चित्त के अनुभूत योग होने से यह योग सहज योग कहलाना है।'

(१) तथा तथा प्रवर्तेत यथा न शुभ्यते मनः।

संशुभ्ये चित्तस्ते नु सिद्धिर्नेव यथाचन।

तस्मान् सिद्धि परामिच्छन् साधको विमतापह।

चित्तानुभूत योगेन साधयेन् परमपरम् प्रसौदाम्य-विनिरिचय सिद्धि

अन्यत्र बल ने लिखा है कि जिस प्रकार यौवर से मूत्र बूझ लिया जाता है उसी प्रकार माना उपार्यों से चित्त को दृढ़ किया जाता है, ये उपाय चित्त के अनुब्रुत होने चाहिए, चित्त के निरोध या नाश के उपाय 'बाह्यमाजानमस' कहे गए हैं, अत्र कठिन प्रक्रियाओं से बचना चाहिए, यही सहजयोग है ।^१

अथर्ववेद के अनुसार सहज अनुब्रुत है, इच्छा जब निःसंगता है मूत्र अवज्ञता से ही उत्पन्न हो सगता है । चित्त को अपनी वेतना में स्थित करके ही यह सहजावस्था प्राप्त है ।^२

आदि-बुद्ध का सिद्धान्त तथा दुर्बमरइक्ष—बौद्धमत प्रारम्भ में अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी या परन्तु महायानमत में भाव तथा अभाव आदि कोटियों के परे बतलाकर भी एक सत्ता को स्वीकार कर लिया गया और तान्त्रिक बौद्धमत में तो आत्मा एवं परमात्मा को स्पष्ट स्वीकार कर लिया गया यद्यपि इन दोनों को अबाङ्गममसगोचर कहा गया है । तान्त्रिक-बौद्धमत में नास्तिकता की धामा भी नहीं है ।^३ गौतम बुद्ध ने अनीश्वरवादी होने पर भी देवताओं, यक्षों, प्रेतों आदि का संबन्ध नहीं किया था यह हम कह चुके हैं थी 'चैरेनी' के अनुसार गौतम बुद्ध कल्पित ईश्वर में विश्वास न करत थे * उपनिषदों में 'सत्ता' को

(१) गोमयाचार मोक्षेन मूर्धं सन्ध्यायति यथा ।

चित्तं मूर्धं तथा धार्यं उपायाचारयोगतः

यथाव बुद्धा निरवग्रहेण चित्तेन सद्भिर्बिभुसाद्यर्वसु ।

सद्यमिमूना सहजावस्थया न वाचना अलनामी भवन्ति ॥

(२) सद्ब्रौह्मिणो यस्मात्, तस्मात् सद्गो न साहसः । बही

मुक्तं न सहजावस्थत् मुक्तं चासङ्गसराणम्

वित्तं स्वसुखं वृत्त्या मन्तं सहजावस्थे—अथर्ववेदस्य यह

(3) Mahayanic Buddhism and especially Vajrayan has developed early Buddhist atheism into a system in which all former assumptions of Indian thought, Such as pantheistic, and monistic ideas found their place in harmony together No trace of atheism as such is left here शरीरेषु हीना—नारीणा—
मूनिषा भाग—Page 20-21

(४) बही

मेदि-मैदि कहती हैं। महाभाग मठ में उसी 'सर्वातीत' सत्ता को ही स्वीकार किया गया है।

व्यक्त के पक्षों की 'सत्ता' वास्तविक नहीं है, वास्तविक सत्ता ही परिभाषा यह है कि वस्तु अपनी उत्पत्ति के लिए अन्य किसी वस्तु पर निर्भर न हो परन्तु वस्तु में प्रत्येक वस्तु बूझी पर निर्भर है यहाँ प्रत्येक 'उत्पाद' का कोई 'प्रत्यय' (हेतु) है, अतः प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्त के पक्षों की सत्ता 'स्वतंत्र' नहीं है, पक्षार्थ निःस्वभाव है, सर्वात् के स्वयमेव सिद्ध नहीं है, किसी अन्य की अपेक्षा पर अवलम्बित है अतः 'शून्य' है, यह शून्य शब्द का प्रथम और बाह्य अर्थ है। पारमार्थिक दृष्टिबोध से देखने पर 'शून्य' शब्द का अर्थ यह सत्ता है जो इस बाह्य व्यक्त का आधार है और जो इसके अतीत है यह न भाव है, न अभाव न आभाभाव। अतः 'शून्यत्व' के भी कैरेली ने बाह्य और अंतर्मुख (objective and subjective or Microcosmic) अर्थ दिये हैं और वे अर्थ मेरे मठ से टीक हैं। यह सर्वातीत सत्ता (शून्य) सर्व व्यापक भी है, ब्रह्मवाण इसे स्वीकार करता है और इसे 'आदिवुद्ध' नाम देता है, इसी से पंचध्यायी बुद्धों की अव्यक्ति होती है। 'आदिवुद्ध' अनादि उत्पन्न है, सर्वज्ञ और सर्वज्ञान है, उपनिषदों के ब्रह्म के समान ब्रह्मवाण में इसका वर्णन किया गया है, इसमें शून्यता एवं कल्या की अर्थावस्था है। यह 'कान' है इसकी शक्ति संविद् इतिषी' है, यह 'वद' है क्योंकि यह अनादि है, अतः उसे 'वासवद' भी कहा गया है।

आदि बुद्ध के ही विविधरूप विभिन्न लोकों में अवलम्बित हैं अनेक बुद्ध वेदता बोधिसत्व आदि अनेक लोकों तथा स्वर्गों में रहते हैं सभी बुद्ध और बोधिसत्व आदिवुद्ध की तरह ही कल्या एवं प्रसा से संयुक्त हैं सृष्टि के मंदल के लिए प्रमलरसिद्ध हैं।

आदि बुद्ध पंचसक्यों के अधिष्ठाता देवताओं के रूप में पंचध्यायी बुद्धों के रूप में अपने का व्याप्त करते हैं—

रूप	वेदना	संज्ञा	संस्कार	विज्ञान
ईरोक्षण	रत्नसम्भव	अभिधात्र	अमोपशिद्धि	अज्ञात्र

सम्भवतः यह सिद्धान्त सांख्य-दर्शन से प्रभावित है। क्योंकि सांख्य में पंचभूत, पंचतन्मात्रा का वर्णन है।^१ बौद्ध-दर्शनों में ये ध्यानीबुद्ध शक्तियों सहित वर्णित हैं, प्रत्येक के वर्ण, किरीट, मुद्रा बाहुन वस्त्र-वसन हैं। प्रत्येक बुद्ध कुल बीजमन्त्र, महायून, इन्द्रिय एवं अवयव विधेय से सम्बद्ध है। जिस प्रकार वक्ष्यात्मियों में प्रत्येक स्थान पर पाँच की बगह एक छठा तत्त्व जोड़ दिया है, वैसे ही ध्यानी बुद्धों के साथ भी एक छठ बुद्ध है 'वक्षसत्त्व' जो 'आदिबुद्ध' ही है और ध्यानी बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ है।

श्री विनयतोष ऋष्याचार्य के अनुसार 'आदिबुद्ध' का सिद्धान्त 'वक्षयान' की एक शाखा 'कर्मवक्षयान' में आविष्कृत हुआ परन्तु इसके बीज इसके पूर्व भी मिलते हैं।^२ वस्तुतः वक्षयान के अनेक सम्प्रदायों में ध्यानी बुद्धों को अपनी विशिष्ट पद्धति पर स्वीकार किया गया है।

आदिबुद्ध से ध्यानी बुद्ध अभिन्नरूप हुए हैं, इन्हीं के मानवीय रूप 'बोधिसत्त्व' कहलाते हैं। बौद्धदर्शनों के अनुसार ध्यानी बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों का विवरण विलुप्त है^३—

इस विवरण से स्पष्ट है कि ध्यानी बुद्ध बोधिसत्त्वों से उच्चतर साक्षात् बुद्ध हैं वे सग ध्यानरत रहते हैं वे बोधिसत्त्वों की सृष्टि करते हैं। यद्यपि वे पाँच हैं परन्तु वक्षयानी 'वक्षसत्त्व' को जोड़कर छह कर देते हैं।

तान्त्रिक गुह्य-साधना का सम्बन्ध वक्षसत्त्वों से है। नेषाम के स्वतंत्र मन्त्रों में (त्रिनपर केरोवर पुरोहितों का प्रभाव नहीं है) ये ही रूपों में मिलते हैं ? एकाकी रूप में २ युगल या 'युग रूप' में (शक्तियों से संयुक्त)। द्वितीय

(1) An introduction to tantric Buddhism—S B Das Gupta

(2) Buddhist iconography—B Bhattacharya 1924 Calcutta

(3) An introduction to tantric Buddhism—S B. Das Gupta

इस अनुसर बचसत्त्व कर्माता है। पूर्व-बीजमत में प्रत्येक सत्त्व बोधिसत्त्व कर्माता था। परन्तु पद्मपाणि, रत्नसम्भव आदि बोधिसत्त्व दिव्य बोधिसत्त्व हैं। बोधिसत्त्वों का कार्य क्या है? बीजमत के अनुसार सम्य पर मानुषी बुद्ध जन्म लेते रहते हैं, यथा गौतम बुद्ध एक मानुषी बुद्ध थे, इनके ४००० वर्ष बाद मीनेय नामक मानुषी बुद्ध अवतार लेंगे। अतः इन दो बुद्धों के बीच की अवधि में दिव्य बोधिसत्त्व मानुषी बुद्ध का कार्य करेंगे। अवतार के बीजों को वर्मक्षिप्ता निर्वाण के लिए प्रेरणा आदि का कार्य बोधिसत्त्व ही करते हैं। अतएव गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद अवधोन्मितेवधर या पद्मपाणि नामक बोधिसत्त्व कार्य कर रहे हैं। यद्यपि बोधिसत्त्व पञ्च हैं परन्तु इनमें कभी-कभी छठे 'षष्ठा पाणि' का नाम बुद्ध जाता है।

मानुषी बुद्ध (Mortal Buddhas)

हिन्दुयानी साधक २४ बुद्धों को मानते हैं जबकि महायानमत ७ मानुषी बुद्ध या तन्नागणों में विश्वास करते हैं—

(१) विपस्वन् (२) शिखी (३) विस्वबाहु (४) मकुच्छन्द (५) कनकमुनि
(६) कल्प (७) शाक्यसिंह (गौतम बुद्ध) ।

कभी-कभी इन साठों के साथ 'मैत्रय' नामक बुद्ध को भी जोड़ दिया जाता है जिनका अवतार हिन्दुओं के कल्पिक अवतार की तरह गौतम बुद्ध के ४००० वर्ष बाद अवतरण होगा। प्रत्येक बुद्ध की एक एक शक्ति है, तथा प्रत्येक बुद्ध एक-एक मानुषी बोधिसत्त्व के रूप में अभिव्यक्त होगा है—

मानुषी बुद्ध	मानुषी बुद्ध-शक्ति	मानुषी बोधिसत्त्व
१ विपस्वन्	विपश्यन्ती	महामति
२ शिखी	शिखीपानिनी	रत्नवर
३ विस्वबाहु	विस्ववरा	आनन्दपर्यय
४ मकुच्छन्द	कमुच्छती	राजमंथन
५ कनकमुनि	कंठपानिनी	वज्रप्रसन्न
६ कल्प	महिषरा	वर्मवधर
७ शाक्यसिंह	यद्योयरा	आमन्द

मैत्रेय के बुद्ध (The Future Buddha)

'मैत्रेय' नवीन बुद्ध के परपातु अवतार लेंगे। यह अभी तुर्पिन स्वर्ग में मानुषी बोधिसत्व रूप में स्थित हैं। इन्हीं मैत्रेय से आचार्य अरुण ने भेंट की थी और महायान मत की प्रिया भी थी। तंत्र का उपदेश भी असंग हो इन्हीं बुद्ध से मिला था। मैत्रेय को हीनयान तथा महायान दोनों मत स्वीकार करते हैं अन्य बोधिसत्वों को हीनयानी नहीं मानते। बिश्वास यह है कि बौद्धव्या के पंच 'करम्य मानुषी बुद्ध सो रहे हैं, जब मैत्रेय अवतार लेंगे तो वे मैत्रेय को 'बुद्ध' के योग्य बतल देंगे तब मैत्रेय बोधिसत्व से 'बुद्ध' उपा प्राप्त करेंगे।

मंजुषी

महायान में मंजुषी का महत्त्व अत्यधिक है। यह महान बोधिसत्व है बुद्धि स्मृति आदि के दाता हैं। 'साधनमासा' में इनके लिए अनेक मंत्र दिये गए हैं इनके अनेक रूप हैं। नेपाल में कनूवी घाटाओं में ही इनकी पूजा चल पड़ी थी। इनकी प्रथम चर्चा सुखाब्दी ब्यूह में मिलती है। 'मंजुषी मूलकल्प' में इनका स्थान उच्चतम है। ये 'वाणी' के देवता हैं। इनका एक रूप 'अमानक' है जो हिन्दुओं के कामदेव से उधार लिया गया है यह पुरुषों के वाच वारण करता है। वरीकरण के लिए इनकी पूजा होती है।

देवकुल विस्तार (Emanations of Gods)

बौद्धदर्शी में प्रत्येक ध्यानी बुद्ध एवं बोधिसत्व से अनेक देवताओं तथा -बोधिसत्वों की अव्यक्तिक निर्गत है। प्रत्येक ध्यानी बुद्ध और बोधिसत्व एक कुल वा वनप्र माना गया है, अतः सारे देवी देवता प्रियी विविध कुल से सम्बन्ध हैं इस प्रकार बौद्ध देवमंडल हिन्दू देवमंडल से अधिक व्यवस्थित है।

बैरोचन-कुल

बैरोचन-संज्ञि में सब स्त्री देवताओं का जन्म हुआ है। मारीची भरोचन ध्याना वाणही या सोरा आदि अनेक देवियाँ इसी कुल की हैं। वाचिन देवी भवकर देवियों भी इसी कुल से विकसित हुई हैं। साधन माता में इनके देवता-वर्ण-वाहन ध्यान मंत्र मुद्रादि वा वर्णन है।

अशोम-कुल

‘अशोम’ की संतान निरुप है। सभी अर्धकर रूप वाले हैं क्योंकि अशोम का अर्थ नीला माना गया है। अणुरोधन हेरक, बुद्ध-रुपात हयपीन ममारि कम्मल आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अधिकतर देव अपनी उच्छियों के साथ मुदगद रूप में पूजित होते हैं। शेष कापालिक मत के साथ इन देवों का सम्बन्ध है। हेरक का ध्यान अवाहन द्वारा किया जाता है। नरनागभक्षण कनामधारण तथा मैथुनरुत होकर ही यह प्राप्त हो सकते हैं। ‘कम्मल’ छायाव ध्यानी बुद्धों के पूर्व ही कल्पित कर लिया गया था। ‘कम्मल’ का एक रूप ३ वर्ष के बच्चे के रूप में मिलता है। अण्डमा पर स्थित कमल पर यह स्थित है, सर्पों का आभूषण पहनता है, रत्नों को मुक्त से जगता है। हिन्दुओं में बालकृत्य की पूजा से इस ‘बालदेव’ का सम्बन्ध है। सिन्दु देवियों में ‘बाबकृत्य’ की अन्तिक कौमल और सुंदर रूप दिया है। अशोम का एक रूप ‘अच्छाक’ है जो शिव के समान ‘महामाया’ से आश्रित रहता है। ‘हयपीन’ हिन्दुओं एवं बौद्धों में मान्य देव है। निरिच्छत रूप से बौद्धदेवमण्डल एवं पीठान्तिक देवमण्डल परस्पर एक दूसरे से प्रभावित हैं।

अशोम-संतति का शेषधर्म स अद्भुत साहस्य है। शिव की उच्छ के देव समान में रहते हैं, मित्रुति रत्नपूर्ण तथा नरमुखमान अस्थियों के आभूषण यज्ञोत्पीठ डमरु सर्प आदि धारण करते हैं। शेष एवं हेरक में मुक्त भी अंतर नहीं है। ममारि तथा मम दोनों महिष पर चढ़ते हैं।

अशोम-संतति में ११ देवियों भी हैं इनमें महाभीमताया या अणुरात एक-पण अनापारमिता मेरात्मा आदि उल्लेखनीय हैं। शेष-शास्त्रधर्म की ‘कामी’ के समान ही इनके अर्धकर रूप हैं। हिन्दुओं की साथ महाभीमताया ही है। ये देवियों मुख्यतया सर्प शक्ति की साथ वलवार आदि धारण करती हैं। छोटे बदनवासी हैं पेट निचले हुए हैं। श्व पर ये खड़ी होती हैं इनके तीन नेत्र हैं ये अर्धकर हास्य करती हैं। इनमें एकपण सबसे महत्वपूर्ण है। इससे बाधना से सब मुक्त प्राप्त होता है। अनापारमिता का रूप मनोहर है। अस्वती से अणुरा सादृश्य है।

बीजों के सिद्धान्तों को देवी-देवताओं का रूप दे दिया है, यथा भवरागा (ग्राम) एक सिद्धास्त है, किन्तु यह एक ध्वजी भी है, बोधिसत्व को यह आसिद्धि करती है। प्रसोपाय की एकता भैरवता के रूप में संकेतित है।

बौद्ध देवी-उपासना में साक्ष सम्प्रदाय की तरह सखी-सम्प्रदाय का बीज सुरक्षित है। यथा महाभक्त तारा की उपासना में कहा गया है कि साधक को अपने को 'बिबी' ही समझना चाहिये, देवी का रूप बनाकर ही उसकी उपासना की जाती है। आज भी कान्ची का रूप भर कर साधक बिचरते सिद्धायी पड़ते हैं।

रत्नसम्मन्व-कुल

रत्नसम्मन्व के कुल में वेबल दो देव एवं देवियाँ हैं, जम्भल तथा चम्पूज्ज जम्भल दो देव और महाप्रतिष्ठाप एवं बहुपाप दो देवियाँ हैं। यहाँ जम्भल कुम्भर की तरह पत्त का देवता है।

अमिताभ-कुल

अमिताभ से अम्भोकिठेश्वर, महाकाल तथा ह्यवीच देव, कुट्टुस्ता, भद्रुटी तथा महासितवती आदि देवियाँ विकसित हुई हैं। कुट्टुस्ता' महत्त्वपूर्ण देवी है, बरीकरण में सहायक मानी जाती है।

अमोपसिद्धि-कुल

अमोप के कुल में सब देवियाँ ही उत्पन्न हुई हैं। याविर बानी तारा, बस्य ताप, पनदतारा महामायुती आदि उन्मेषनीय हैं। रोग, धर्म-बंधन आदि से ये देवियाँ रक्षा करती हैं।

ध्यानी-बुद्धों से उत्पन्न देवी-देवताओं के शीशों पर अपने-अपने कुल पिता ध्यानपुत्र की मूर्ति रहती है। कुछ देव ऐसे हैं जो पंचध्यान बुद्धों की समष्टि से उत्पन्न हुए हैं। इनमें जम्भल, महाकाल, महाकाल भट्टारक आदि हैं। इनके शिरों पर ५ बौ ध्यानी बुद्धों की मूर्तियाँ रहती हैं। गुरु-श्रीर्ह्याँ को महाकाल कच्चा ही या जाता है, एसा उन्मेष निमता है, ये सब देव शैव-धर्म से सम्बद्ध हैं।

सत्रसत्त्व कुल

ये छठे ध्यानी बुद्ध हैं इनकी संतानों में जम्भल देव तथा चम्पा देवी की साधना मिलती है, इनके शीशों पर बज्रसत्त्व की मूर्ति रहती है।

शोधि-सत्य-कुल

अवसोक्तिदेवर—इनके १०८ रूप हैं। इनमें भोक्ताप, हात्ताहत, नीस बठ, मुखावती भोक्तेवर, सिंहनाह आदि उल्लेखनीय हैं। नेपाल में इनकी पूजा प्रचलित है। बीड़तंत्र में अवसोक्तिदेवर बड़े ही कल्पनामय देव हैं। गौतम बुद्ध के परचात् मैत्रेये जाने के पूर्व तक यही जगत् के कल्याण में सबसीन हैं। इन्होंने जीवों की मुक्ति के पूर्व अपनी मुक्ति स्वीकार नहीं की और बीड़ ज्ञान के प्रसार में निमग्न हैं। सभी बर्णों के सभी देवी-देवता इन्हीं के विभिन्न रूप हैं। इनकी कृपा से ही प्रथम मनुष्य पुनः पशु परती आदि भीष क्रमण निर्वाण प्राप्त करेंगे तब यह स्वयं निर्वाण प्राप्त करेंगे इस सेवा एक परोपकार भावना के कारण वे 'संभरल' कहलाते हैं। स्वर्ग में स्थित होकर भी यह जीवों की बुरा देखने के लिए नीचे की ओर देखते रहते हैं इसीलिए यह 'अवसोक्तिदेवर' (नीचे की ओर देखने वाला देवता) कहलाते हैं सभी के कल्याण के परचात् अपने कल्याण की कामना से प्रेरित होने के कारण अवसोक्तिदेवर की महिमा देवियों के 'विष्णु' तथा शैवों के 'विश्व' के समान ही प्रसिद्ध है। सभी बीड़ देवों में सबसे अधिक कल्पनामय रूप अवसोक्तिदेवर का ही है।

अन्य शोधि सत्तों के कुलों का वर्णन 'भावनामाला' में नहीं मिलता।

पंच रक्षा मण्डल

हिन्दुओं के पंचरक्षा मन्त्र देवताओं की तरह बीड़ पंच रक्षा मन्त्र भी मिलता है। इनमें महामहामयप्रमादिनी महामंत्रानुसारिणी, महामापूर्वी महासित बन्नी आदि देवियाँ हैं। महासहस्रप्रमादिनी को छोड़कर ये देव स्याति रूप हैं दीर्घानु, रात्रों की रक्षा भूय-यैत से रक्षा कल्पना से रक्षा आदि सभी लौकिक कल्याण इनकी उपासना से होते हैं। नेपाली बिहारों में इनकी पूजियाँ प्राप्त होती हैं। प्रत्येक पुरोहित इनकी 'हस्तमिथि' रखता है।

स्वतंत्र देवी-देवता

स्वतंत्र देवी-देवताओं पर प्यासी बुद्धों की मूर्तियाँ नहीं बिलती। बगवति विष्णाम्बु कपटुकार, भूतनाभर, परमारव नाम संघीति भैमोस्वविजय आदि ऐसे ही देव हैं। बगवति की १२ कुनारों एक मुख रक्तवर्ण निकना पैट, कुटार

ब्रह्म, ब्रह्म, तस्यैव, शुभ वाश मूचल, मनुष्य उद्वान्त क्वास, शुष्कमांस, कालकर्मत आदि बलिग हैं। बुद्धिया पर सवार हैं। यह गणपति तांत्रिक गणेश हैं। विष्णुशक्त को मंत्रस का द्वार रसक देवमामा गया है। यह हिन्दुओं के लभेउ को पैरी से कुचसते हुए चिजित हैं, 'बध्वावागमार्थ' नामकदेव किष्णु को श्रीमोक्ष विजय महादेव एक गौरी को परयादन इ-गामी सक्षी रति और पीति इन्द्र मधुकर एक बसत को कुचसता हुआ चिजित किया गया है। बीज मंत्र द्वाप यह हिन्दू देवों पर खेच्छता का प्रयत्न मात्र है।

स्वतंत्र-देवियाँ

सरस्वती महासरस्वती, ब्रह्मशारदा ब्रह्मबीषासरस्वती, आर्यसरस्वती ब्रह्मसरस्वती अपराजिता, ब्रह्ममाधारी, ब्रह्मयोगिनी गृहनाजिका मन्त्रपतिहृदया आदि स्वतंत्र देवियाँ हैं। इनमें अपराजिता गणपति को कुचसती हुई दिखायी गई है। ब्रह्मयोगिनी हिन्दू देवी चीनमन्त्रा से सादृश्य रखती है। बस्तुन हिन्दू एक बीज तर्कों में यह देवी चीन से आकर पुजित हुई।

बीज-देवमन्त्र—कुछ निष्कर्ष

उपभूत बीज-देवी-देवताओं के विवरण में स्पष्ट है कि यह मंत्र हिन्दू देव मंत्रस से अधिक व्यवस्थित है। इन्द्रभूति (७००-७५० ई०) से ११ वीं शताब्दी तक ब्रह्मयानी देव-मंत्रस का यह अरभुन विकास भारतीय धर्म-साधना में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रचता है। सतम शताब्दी के पूर्व यद्यपि गृह्य समान में य्वासी कुओं की जथा है तथापि बड़ी देव-मन्त्रस व्यवस्थित नहीं है फिर गृह्य समान में कुछ शेषक बाद में भी जोड़े गए हैं अतः हिन्दू पुराणों के समानान्तर बीज देव-मंत्रस का विकास हुआ है, यह बड़ा वा सता है, हिन्दू पुराणों का बीज देव-मंत्रस पर प्रभाव स्पष्ट है। विद्येय वर शैव एक शक्त पुराणों का। पुराणों और बीज तर्कों में बस्तुन स्थानीय देवी देवताओं तथा मन्त्रों द्वारा पूजित मरों भूत देवताओं को जित रूप देकर अपनाया गया है। विष्णु, विव मनेरा, शानी, आदि का पुराणों में जो रूप मिलता है, वह शताब्दियों में विकसित हुआ है। विष्णुजी आदिओं के अग्रम्य मुख्य देवताओं की बीमल साधनाओं सहित कुछ

रूपान्तरित कर बाह्यम बौद्ध पीरोहित्य ने स्वीकार करके उन्हें एक ब्रह्म की अभिव्यक्ति बता कर स्वीकार कर लिया है। इस प्रकृति से एक और तो बाह्यम बौद्ध धर्म को पिछड़ो जादियों द्वारा स्वर्णमूर्ति प्राप्ति करने में सफलता मिली है तो दूसरी ओर इससे 'समन्वित' भारतीय धर्म-शाकना का रूप विकसित हुआ है। जिन देवताओं को हम शुद्ध वैदिक या शुद्ध बौद्ध मानते जैसे मा खे हैं, वे वस्तुतः वैदिक-बौद्ध संस्कृतियों में कनार्य और पिछड़ी जातियों से जाये हैं।

किन्तु उपर्युक्त विषय या समन्वय के साथ-साथ साम्प्रदायिक उच्चता की प्रकृति ने दूसरे धर्मों के देवी-देवताओं को नीचा दिखाने का भी प्रयत्न किया है। बौद्ध देव-मंडल छटावियों में विकसित और पुराणों द्वारा स्वीकृत कई देवताओं को अपने देवताओं द्वारा पैरों से कुचताते हैं। बौद्ध मनेस को बिष्णु जानने वाला देव मानते हैं परन्तु साथ ही बिष्णुस्तर को नरोस को कुचमता है, की कल्पना मनेस की कल्पना पर ही आधारित है। ब्रह्मा बिष्णु पितृ एवं इन्द्र को बौद्ध तंत्र 'रोडान' (मार) की श्रेणी में रखते हैं। गार्धमन को 'हृष्टिरि बाह्य' नामक देव का बाह्य बना दिया गया है। 'ब्रह्मा की सबसे अधिक दुर्वृष्टा की गई है। अनेक बौद्ध देवता ब्रह्मा के शीघ्र काट कर अपने हाथों की शोभा बढ़ाते हैं। 'निम्नप्रयोगावली' में वर्णित 'हृष्टमण्डल' में गौरी चौरी बैतामी व प्रसमरी ब्रह्मा इन्द्र उपेन्द्र एवं उरु की धानी पर आसीन दिखाये गए हैं। 'संवर-मंडल' में बौद्धदेव शैरव तथा काम रात्री पर खड़ा है। 'योगान्तर-मंडल' में हिन्दू देवताओं को द्वारपाल बना दिया गया है।

बौद्ध देव-मंडल की एक विशेषता यह है कि सारे देवी-देवताओं के ऊपर चित्री न किमी ध्यानी बुद्धों की मूर्ति रहने से वे सरसता हैं पहचाने जा सकते हैं। कुछ स्वर्णमूर्ति बनाना अक्षरय हिन्दुओं से जकार लिये गए हैं। इन देवताओं के धर्म अथ आसनादि का महत्व बौद्धों के यहाँ हिन्दुओं के यहाँ से अधिक है।

शक्ति-संयुक्त (वच-भुम) देवों का रूप भी बौद्ध देव-मंडल की विशेषता है, इन शैव एवं बौद्ध शक्ति-शक्तिमान की एकता के आधार पर ही अनेक हिन्दू देवताओं पर प्रभाव पड़ा है। नेपाल तथा तिब्बत में शक्ति-संयुक्त देवों का अधिक प्रचार है।

बीजों में देवों की सूर्य या तबता की अभिव्यक्ति बनभाया है। देवों की वास्तविक सत्ता नहीं है ? केवल उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। साधना के प्रारम्भ में बीज-मंत्रों से देवता की उत्पत्ति होती है और देवताओं के साथ तादात्म्य कर साधक अपने स्वरूप में स्थित हुआ सीखता है।

अनेक रणों की कल्पना मानसिक स्थिति की अनेकता के कारण है। रोगनाश के लिए विरोध मानसिक स्थिति की आवश्यकता होगी अतः 'सिंहनाद देव का ध्यान अनिश्चय होना। शत्रुनाश के लिए महाकाल यम के लिए कुम्भकुन्दा का ध्यान करना होगा अतः बिल की स्थिति ही देव की मित्रता के लिए उत्तरदायी है देवता फल नहीं देना बिल की स्थिति ही फल देती है, बीड़-देव-उपासना का यह मिथ्यात्व अत्यधिक मनोवैज्ञानिक है। यह भी कहा गया है कि साधना प्रारम्भ करते समय साधक के अवचेतन मन का विस्तार होता है, उसके अवबोधन में यही दुर्बलनाएँ ही भयंकर देवी-देवताओं के रूप बाण बरके उसे डरती हैं। यही कारण है कि बीड़ देवताओं का रूप भयंकर अघिष्ट है। इन भयंकर देवताओं की उच्चतर मानसिक स्थितियों द्वारा बरा में जाया जाता है, जब देवता रूपधारी दुर्बलना-समूह ही सहायक तथा फलदायी बन जाता है, अतः देव-उपासना इन बुद्धि में भी अनिश्चय है।^२

(१) अणु की कण्डुओं की निरन्तरताव समता सेने पर उत्पन्न सृष्टि ही देवताकार में परिणत हो जाती है और यही सृष्टि फल देती है, अतः साधना में फल साधक की वासना होती है, देवता तो अपनी सृष्टि के अनुसार ही रूप कारण बन लेता है—

प्रतीत्योपासमाप्तवान्, मेव सत्त्वं न सून्यता ।

सृष्टिरस्य देवतावाच, निश्चयाना स्वभावतः—श्रुत्यवयव संघ

(२) सैफोदेशयटीका में 'श्रोपावेशा आचार इच्छ्य ।

अभयंकर गुण की 'निष्प्रययीपावसो' में कहा गया है कि देवता की सत्ता वास्तविक नहीं है। साधक साधना के समय ध्यान करता है 'बीजाकारों का रूप करते समय साधक के मानसिक चित्रों पर इन्हीं बीजमंत्रों से 'देवता' जन्म होता है। प्रश्न यह है कि क्या देवता का रूप वास्तविक है ? उत्तर है कि 'देवता का रूप न वास्तविक है, न वास्तविक है। साधक गर्भवत्तम बीज मंत्रों का रूप करता है और साथ ही किसी देवता का बीज मंत्रों में अणिन बाह्य, शक्ति,

कुछ विद्वानों का विचार है कि बौद्ध-देवसाधना तांत्रिक द्विषू द्वय साधना से घेष्ट व प्राचीन है।^१ परन्तु कुछ विद्वान इसका विरोध करते हैं। कुमार स्वामी के अनुसार बौद्ध तांत्रिक योगी थे और योग बौद्ध धर्म से प्राचीनतर है। परन्तु डॉ० बी० भट्टाचार्य के अनुसार उपनिषदों में वैशान्त प्रतिपादित होने पर भी संकराचार्य का स्थान जिस प्रकार महत्त्वपूर्ण है उसी प्रकार उपनिषद् एवं सांख्य से प्रेरणा मने पर भी बौद्ध तांत्रिक योग में मौसिक आविष्कार किये हैं, उदाहरणत

ब्रह्म धर्म आदि के साथ देवता के रूप पर ध्यान केंद्रित करता है, यह प्रथम रूप 'कल्पित' होता है परन्तु साधक के इस रूप के साथ तादात्म्य के कारण बीज मंत्र से देवता की मूर्ति और मूर्ति से देवता का बाह्य रूप साधक के मानसिक चिन्तन पर उल्लिखित होता है। इसी रूप को 'देवता' कहा जाता है। वह द्वितीय रूप कल्पित नहीं है बल्कि साधक की चेतना का ही एक रूप है अतः इस द्वितीय रूप के उदित होने से साधक के संकल्प के अनुसार फल मिलता है। बीज मंत्र से—देवता की मूर्ति और मूर्ति से—देवता का बाह्य रूप यही देव उत्पत्ति का क्रम है। अतः प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त यहाँ भी लागू होना है। दूम्य इषिणी यथाङ्गमनसबोचर साधक की चेतना (चेतन्य) ही एक उत्पत्ति में कारण है। साधक की ध्येयगत चेतना के (आबिक्त्) 'दूम्य तत्त्व' से मिलते ही सुषुप्ति सी जा जाती है, चूँकि आबिक्त् सीमित है अतः अतीत का ज्ञान एक साथ बहिष्कार से होता है ध्येयगत चेतना का अनुभव भी क्षीय ही रहता है, यानी जब ध्यानावस्थित होता है तो समष्टिकर दूम्य तत्त्व पर प्रतिबिम्ब होती है और उस साधक की भावना के अनुसार दूम्यतत्त्व (जो बसुन् साधक की ध्येयगत चेतना के साथ अभिन्न है) देवता के रूप में उदित हो जाता है, अतः योगी भावना विषेय के द्वारा, प्रक्रिया विषेय के द्वारा देव विषेय को देखता है, जितने देवता हैं वे एक साथ ही द्वारा 'देव' गए हैं इसीलिए साधक इष्टा बहुलाभा है। देव-उपासना बसुन् आत्म-शक्ति को जाग्रत करने की पद्धति मात्र है, यत्कि बन्धित होकर सदस्य मात्र से मुक्ति करने में साधक को मग्न कर देनी है। बौद्ध संतों की यह देव-उत्पत्ति अत्यधिक मनोवैज्ञानिक है।

इच्छा (निम्नतः बोलावधो की भूमिका—
डॉ० बी० भट्टाचार्य)

(१) साधन भाषा की भूमिका—डॉ० बी० भट्टाचार्य

बौद्ध योगियों का कहना है कि देवता के साथ तावात्म्य करने से ही सिद्धि मिलती है यद्यपि देवता निःस्वभाव है और स्वयं साधक के मन की उपज है। उपनिषद् में यद्यपि ब्रह्म के साथ तावात्म्य का सिद्धान्त बर्णित है तथापि मोहन, बधीकरण आदि के लिए देवता के साथ तावात्म्य का सिद्धान्त बौद्धों ने ही आविष्कृत किया है। बाद में हिन्दूतंत्रों ने इसे स्वीकार किया * यह डॉ० मद्राचार्य ने साधना नामा भी ग्रन्थिका में कहा है परन्तु मेरा विचार यह है कि ताम्रिक साधनाएँ बस्तुतः स्वामीय देव-उपासना प्रथ पूजा आदि के रूप में प्रागैतिहासिक काल से प्रचलित हैं इसी सामान्य सोच से बौद्धों एवं हिन्दुओं ने उन्हें ग्रहण किया है, अतः लोक साधना को केवल छात्त्रीय और वार्षिक रूप हिन्दू-बौद्धतंत्रों में लिया गया है। परन्तु स्वीकार करना पड़ता है कि सामान्य लोकविराहों को बौद्धों ने स्वीकार कर हिन्दू तंत्रों में बर्णित देव-उपासना से कहीं अधिक मनोवैज्ञानिक रूप दिया है। उदाहरणतः देवताओं, ईश्वर, प्यामी बुद्ध आदि की सत्ता की निःस्वभावता बौद्धों ने अधिक स्पष्ट और बुद्ध शब्दों में की है जब कि शैव-शाक्त वैष्णव तंत्रों में 'देवतावाद' को साधारण भाषा में बर्णित किया गया है बौद्ध सत्ता को मात्र एवं अभाव से परे बतलाते हैं अतः देवता का स्वरूप उनके यहाँ केवल एक मनोवैज्ञानिक सहायता के रूप में स्वीकार्य है जब कि हिन्दू तंत्रों में 'अभिध्यातिवाद' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, जगत को ब्रह्म की अभिध्याति मान लेने से देवों को भी ब्रह्म की अभिध्याति के रूप में स्वीकार किया गया अतएव 'देवता' का साधारण रूप हिन्दू तंत्रों में स्वीकृत हो गया। यह 'आन्तरिकता तथा 'दास्य' में विश्वास का प्रभाव था जब कि बौद्ध-साधना केवल योग एवं विवेक पर आधारित थी। साधना के निम्न स्तरों पर योग, ज्ञान, भक्ति ज्यों साधारण आदि सबका महत्त्व बौद्धों में भी स्वीकृत है।

बौद्ध-देव मण्डल में भयंकर देवता अधिक हैं, वैष्णव देवताओं के समान वे कोमल एवं सुभावान नहीं हैं परन्तु 'साधनामाला' में कहा गया है कि देवता बस्तुतः हृदय से दयावान हैं केवल उसका बाह्यरूप ही भयंकर है। यह बाह्य भयंकरता

- (2) We have sufficient reasons to hold that the Hindu tantras were introduced on the model of the Buddhist tantras and the Hindus among other things borrowed many Buddhist Customs—बही

भी साधकों को भयभीत करने के लिए नहीं है, अपितु कृष्णाराम्य हिसक जगत्साधारणियों को दण्ड देने के लिए ही वेक भयंकर रूप में अवतरित होते हैं।^१ यह भी कहा गया है कि इस प्रकार धर्म छप और 'बुद्ध-रोहियों' को कृष्ण पचाकर भी वे वेक भयम जन्म में शुद्ध कर देते हैं। राम-वर्तितमानस में भी कहा गया है कि राम जिन्हें मार डालते हैं उनकी गति हो जाती है।

यह भी कहा गया है कि श्री लोग वरिष्ठ हैं वे सुगत द्वारा निर्दिष्ट धर्म को देने स्वीकार कर लच्छ हैं ऐसे लोगों को दण्ड देने के लिए ही 'जन्मस' 'उच्छुम्न का भयंकर रूप बरतन करता है।^२ किन्तु इस व्याख्या से स्पष्ट है कि बचवान में 'बौद्ध-रोहियों अपनी वृत्ति बसाने के लिए देवताओं के मुख हैं इस प्रकार के बचन कट्टाकर स्वार्थ पुर किया करते थे। जन्म के अवविरघस से बौद्धों ने भी साम उठया जिसका शीतम बुद्ध बरतन विरोध करते रहे थे।

मूर्ति-पूजा सामान्यजन को बुद्धियों से बचाने एवं सुद्ध धार्मिक तत्त्वों की ओर उन्मुख होने के लिए धार्मिक योगन के रूप में स्वीकृत हुई थी परन्तु उसी ने भय-विश्रास को सबसे अधिक आशय दिया। जैन धर्म में 'मूर्ति' को तीर्थंकरों के ब्रह्मे कर्मों के स्मरण करने के लिए प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु वहाँ भी स्वयं मूर्ति को ही सर्वस्व मान लिया गया।

बौद्ध-देवमंडल का हिन्दू तंत्रदेवमंडल पर पर्याप्त प्रभाव मिलता है। 'ताण्ड उपानना पर बौद्ध प्रभाव है। क्योंकि ताण्ड को 'पंचमुंडाविभूषिताम् मीलाव शोभ्यंभूषिताम्' कहा गया है।^३ बौद्धदेवों में कुलप देवता की मूर्ति प्रत्येक देवता के पीछा पर रखी है। 'ताण्ड क शीश पर भी अशोभ्य की मूर्ति कही गई है जन बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है। फिर 'ताण्ड' को 'एकजटा देवी का रूप माना गया है हिन्दुओं के यहाँ 'एकजटा देवी नहीं है, यह स्पष्टतः बौद्धों से उपार ली गई है। एकजटा के विषय में कहा गया है कि नागानु न इसे तिब्बत से लाये थे।

(१) आचार्यो य- ताण्ड इपी बुषिनी रजनयत्रिपि य'।

अनेकप्रत्यविष्वंसी महाबालेन ताण्डे—ताण्डमाला भूमिना भय

(२) बारिदपुत्र्याहन मानमाला वा विरावृत्ति सुगतस्य वृत्ते।

अउच्छोतादिब अजसोतीगी उच्छुम्नधर्म भयंर अकार—ब्री

ब्रह्मामर्तम में कहा गया है कि ब्रह्मिष्ठ ने चीनभूमि में आकर पंचमकार साधना की शिक्षा ली थी।^१

उारा के अतिरिक्त 'चीनमस्ता' पर भी बौद्ध प्रभाव है। युपनस देव-उपासना बुद्ध बौद्ध है, यह डॉ० बी० मट्टाचार्य का मत है। इसमें इतना सख्यार्थ अन्वय है कि ७वीं शताब्दी के बाद युपनस उपासना का प्रभाव रोम शासक एवं कैजाकों पर पड़ा है, परन्तु अपने मूल रूप में बौद्धों को यह प्रेरणा शैव-गुह्य-साधनों से ही मिली है क्योंकि शिव-उमा का युपनस रूप बौद्धों से प्राचीनतर है।^२ आगे चलकर 'काली उपासना' पर बौद्धप्रभाव अन्वय पड़ा क्योंकि उसे 'विपरीत रतानुराग' कहा गया है।^३

डॉ० मट्टाचार्य का यह भी मत है कि सर्वप्रथम बौद्ध-तंत्रों में ही सभी बर्णों को देवताओं के रूप में देखा गया था परन्तु शक्य-साधना प्राचीनतर है।

पी ब्रैडल का विचार है कि तुखावठी-स्वित्त बुद्ध की कल्पना पर-इंडो यूरोपियन 'सूर्य देव का प्रभाव है। अबसोफिटेस्वर पर उनके अनुसार प्राचीन साम्प्रत मत का प्रभाव है। 'तापदेवी' बस्तुतः सुमेरियन सम्राट की पत्नी 'तर' का ही लचीन रूप है। प्यासी कुओं पर शैव प्रभाव है।^४ पी ब्रैडल के मुताबिक विचारणीय है पी डॉ० बी० मट्टाचार्य निश्चितरूप से बौद्धतंत्रों को मात्रा से अधिक महत्त्व देने के लिए उत्तर दिखाई पड़ते हैं। पी ब्रैडल का स्पष्ट मत है कि बौद्धमठ स्वयं हिन्दू व और हिन्दुओं के ही शिराक से अन्वय उन्होंने हिन्दू देवमठस बस्तुतः सम्बन्धी विचारों को कुछ हेरफेर करके अपना लिया था।^५ बौद्धमत पूर्वीय शताब्दों के बाद ही विकसित हुए, विशेष कर देवमठस और भी बाद में विकसित हुआ तब तक शैव एवं भागवत मत प्रबल हो गया था गुह्य-साधना में ब्राह्मणधर्म का पुनर्जागरण हो चुका था। अतः बौद्धतंत्रों पर शैवों का विराप प्रभाव है परन्तु अपने म बौद्धतंत्रों में शैवों को भी प्रभावित किया है।

(१) साधनमाला—भूमिका

(२) Lamaism—L.A. Waddell—Second edition, Cambridge

1934

(३) साधनमाला—भूमिका

(४) Lamaism—Waddell introduction

(५) बही—पृष्ठ ७३

परस्पर प्रभावित करने की यह प्रवृत्ति बराबर बढ़ती ही गई। मठों के आक्रमणों की भाँट सुनकर दौब घात बँलब ही नहीं बौद्धमत भी चौंक उठे थे। बौद्धदेवमण्डल को विस्तार देनेवाले 'कालचक्रग्रन्थ' सम्प्रदाय से सम्बद्ध 'विमल प्रभा' में एक स्थान पर महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध हिन्दुओं के साथ मिलकर विदेशियों के विरुद्ध मिलकर संयुक्त मोर्चा बनाया जाहते थे और इसी कारण 'कालचक्रग्रन्थ' में जहाँ एक ओर हिन्दू देवताओं को अपमानित किया है, वहीं उनमें से अनेक को स्वीकार भी कर लिया है, अतः 'कालचक्रग्रन्थ' जो तांत्रिक बौद्धमत का अंतिम रूप का हिन्दू देवमण्डल के निरूट का रहा था। कालचक्र उपासना ही महाकालउपासना तथा कालानुशासन एवं कालानुशासन का ही एक विशेष रूप है। सुमत दोनों एक हैं।

Vimal Prabha, a Commentary on the kalchakra tantra, records that an invitation was extended to the highest Hindus to embrace the worship of Kalchakra in order to ward off the evil of Mlechha civilisation which was sure to envelop the east and corrupt the sons and daughters of the both Hindus and the Buddhists.

(निष्पन्न योगवाणी—भूमिचक्र भाग)

अभिप्रेक

संसार में प्राणी दो प्रकार के हैं (१) दीक्ष्य—इन्हें कर्म विनाश करने पड़ता है (२) अदीक्ष्य—इन्हें केवल प्रणिधान से ही—वेदम ध्यान से ही प्राणोत्थान की सुमनसता से निश्चि मिल जाती है। प्राणी विनाशनिबल अरविण एकर अपत् का अर्थ करता रहता है।

आदिग्रन्थ—'दीक्ष्य साधकों को दान शील शान्ति शीर्ष ध्यान प्रसादन एव पारमिताओं का अभ्यास करना पड़ता है ॥ ॥ आदिरमं कहलाते हैं। स्वयं बुद्ध ने सम्मोह काया-शान्ति के पूर्व इनका अभ्यास किया था। बोधि प्राप्ति के पश्चात् इनका अभ्यास वैशाल जीर्णों पर करनाचय होता है।

दीक्ष्य साधकों को बुराचार 'पौरुषाण' दिया जाता है। संय बुद्ध, धर्म की धरम में जाना ही 'पौरुष' शान है। बौद्धों के यहाँ इसे ही अनुपद या पुच्छि

कहा गया है। प्रारम्भिक साधकों के लिए भूषा-वादन, मन्त्रपानादि सभी गुरुओं से बचना अनिवार्य है। इस अवस्था में साधक 'उपासक' कहा जाता है।

उपासक—गुरु पूजा के लिए उद्यत की उपासक कहते हैं। 'उ' से साधना के लिए उद्युत 'पा' से पाप से असम रहने की प्रतिज्ञा 'अ' से सम्बन्धि ब्रह्मसामि की प्राप्ति और 'क' से उपकार करने का फलन में शब्द 'उपासक' शब्द से संकेतित है। उपासक गुरु की देहरेण में ही कार्य कर सकता है। परन्तु गुरु के दो रूप हैं—अन्तेतर गुरु एवं बाह्य गुरु। इनमें प्रथम गुरु ही वास्तविक गुरु है। आत्मगुरु ही इन्द्रियवृत्ति का केन्द्र है, बाह्यगुरु का उपदेश केवल इस आंतरिक गुरु की प्राप्ति के लिए है। अतः साधना साधक की आत्मिक इन्द्रियावृत्ति के बिना कन नहीं हो सकती। परन्तु बाह्यगुरु तथा बाह्य शिवालों से आंतरिक प्राप्ति में सहायता मिलती है, अतः दोनों में एकता भी अनिवार्य है।

रक्षा धर्म मंडल—साधना का स्थान मंडल है। यह एक बुद्धाकार स्वतः होता है, यहाँ रेखाओं द्वारा मंडल बनाकर पुष्पी से सजाकर देवी देवताओं के चित्र लीने जाते हैं। सर्वप्रथम मंडल में गुरु चिह्न के अंग की पवित्र करता है। मंत्रों एवं जल द्वारा यह क्रिया होती है। मंडल-करण का आंतरिक अर्थ भी साधक साधक समझना पड़ता है। वान ही योग्य है जिससे मंडल-स्वप्न को लीया जाता है। वीर । सम्मार्जन है, प्रसा ही रेखाएँ हैं। शान्ति ही अहिंसा और शीर्ष ही क्रिया है।

साधक की रक्षा के लिए शीघ्र साधकों के समान ही गुरु स्वार्थ का फलन करता है। अ, उ ओ ए, अ आदि अक्षरों को विभिन्न अवस्थाओं पर लिया जाता है। इसके शुद्धि व शक्ति-प्राप्ति होती है।

अभिषेक—अभिषेक के लिए अनेक पात्रों की आवश्यकता होती है। "ओ ह्रम् ह्रम् हिम् हिम् हिम् हिम् ह्रम् ह्रम् ह्रम् ह्रम् इय मंत्र से पात्र शुद्धि की जाती है। तब मंडल में बीच एक विजय-कमण्डल की स्थापना करता है।

साधक के अभिषेक में प्रथम मंडल की पूजा होती है। पुनः मंडल के लिए मिट्टी का संघट्ट (सूयि-सघट्ट) हाता है। तब साधक का मंडल प्रवेश होता है। साधक स्नान कर स्वैयं वस्त्र पहन कर मंडल में जाता है। गुरु चिह्न के पीछे वर

पुष्प रक्तता है, सुगंधियों से सिंचित करता है। शिव्य पूर्व दिशा में गुरु के सम्मुख बैठता है। गुरु को बलिष्ठा भी जाती है। गुरु ज्ञानचक्र (पञ्चा) एवं समबचक्र (उपाय) की एकता का ध्यान करता है। गुरु तब रेखाओं पर चंचल छिड़कता है। ये रेखा नामक कहलाते हैं क्योंकि शिव्य की रक्षा करते हैं। सारी क्रिया मंत्रों द्वारा होती है।

पूजा—यह गुरु पूजा है। शिव्य गुरु के सम्मुख जगत् के दुःख से मुक्त होने के लिए गुरु की शरण में जाने की घोषणा करता है।

प्रशिक्षण—इसमें शिव्य प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने शीश पर बच बंटा मुद्रा पुर को धारण करता है और ज्ञान प्राप्ति के लिए कटिबद्ध है। यह प्रतिज्ञा सारे बौद्ध दर्शन के सार का स्मरण करती है। इसके पश्चात् गुरु मंत्र के साथ जम छिड़ककर सायक का अभिवेक करता है।

श्रेयावेदा—सायक के बबहेतन में स्थित दुर्गमिनाएँ अभिवेक से वापस ही जाती हैं और उठे भूतानेय होना है। गुरु उसे घाँट कर देता है।

अभिवेक क्रिया शीघ्र और रजस्रमय है। सात बार अभिवेक कर गुरु सायक को सायना के बाध्य बनाता है। अभिवेक तीन प्रकार के हैं—(१) कमघटेक (२) गुरुघटेक (३) पञ्चासेक।^१

सात बार कमघटेक होने के बाद गुरुघटेक होता है। सायक के हाथ में बच और चंगा देकर गुरु गुरुघ-दिशा देता है जो प्राथमिक दिशा के सर्वथा विपरीत होती है।

गुरु सेकशिद्धा —प्राथमिक दिशा में जोरी दिव्याबादन, दुःखचार सब बन्धित परन्तु त्रितीय अभिवेक में ये ही कार्य अनिर्धार्य हो जाते हैं परन्तु इनके गुरु अर्थ भी समझने पड़ते हैं। सायक को बुलीसदुल में जोरी करना चाहिए हमका अर्थ यह है कि प्राण-शक्ति का विरोध करना चाहिए।

हमारे का मन गुरु मेना पुष्प है, अर्थात् ध्यान द्वारा सुखता की प्राप्ति पुष्पकर है। आत्म पूजा ही श्रेष्ठ पूजा है, अर्थात् यह शरीर चक्र का मोल है। इसके भीतर ही मत्त का कोष है। इसे शिव्य समझकर ही दिव्यता-प्राप्ति सम्भव

(१) वही २ इनकी संख्या चार है, चतुर्थ सेक 'द्व्याभिवेक' है।

है। शोम्बी के साथ सहवास करना सिद्धिकर है, अर्थात् सुपुत्रा का मार्ग ही सिद्धिदाता है।

इस अभियंके में ब्रह्माणा का होना अनिवार्य है। इन्हें 'मुद्रा' कहा जाता है। मुद्रा (स्त्री = शक्ति) द्वारा साधक अपने अंतर्मिहित प्रकृतियों को बाहर करता है। श्रिती स्त्री के साथ साधना का अभिप्राय यह है कि साधक परमब्रह्म है (चित्त) है। वह मृत्यु-क्रिया द्वारा ही मानव प्राप्त करके भी उससे निर्मित रहता है। अतः शक्ति के बिना साधक इस अनुभूति को प्राप्त नहीं कर सकता। साधक को चाहिए कि वह मय से रहित १२ वर्ष तक की ब्रह्मा को गुरु की सेवा में समर्पित करे। तब गुरु शिष्य द्वारा उसका स्तन स्पर्श कराए यही मुद्रा कन सामियेक' है। पुनः मुद्रा के गुणाङ्ग के वर्णन करे यही गुह्याभियेक है। तत्पश्चात् 'प्रज्ञाभियेक' में बीजकार आदि बीज-मंत्रों द्वारा गुरु मुद्रा की शिष्य को सौंप दे। मुद्राओं को तब में 'विद्या' भी कहा गया है, इनकी संख्या १० है। भास्तिनेया दुहिनी अग्निनी जमनी, भार्या की अम्नी, मानुस-वली, किन्म्य-वली पिता की मलिनी स्वमानुमगिनी तथा स्वभार्या—ये दश विद्याएँ हैं। इनके अतिरिक्त धूरी धमिनी काहणी केरवा शोम्बी केवती कनी, रजनी कर्मकरी, कन्दली आदि १० विद्याएँ अन्य भी हो सकती हैं।^{१९}

इन १० विद्याओं को गुरु को समर्पण कर गुरु की आज्ञा को मानना करे। गुरु साधक को उसकी भार्या के साथ या ब्रह्मासी के साथ साधना की आज्ञा देता है। छारा, पाण्डुरा मासकी, सोचना, स्पर्शना, रसना, कपना संघना आदि विभिन्न देवियों की पूजा करता है।

(१) तत्रस्तुष्टो गुह्याङ्गुषुत्या स्तनस्पर्शनं कारयति स्वमुद्रावास्तेन कन्याभियेकः स एव। ततो गुह्यापूजां कृत्वा शिष्यावाचनं दत्तानि मुद्रास्त्रिंशत् चान्तोत्पत्तिं तैः मुद्राभियेको भवति।—सैकोरेस्पटीका—पृष्ठ २२-२३

(२) इन मुद्राओं के भी प्रतीकात्मक अर्थ हैं। १० मुद्राएँ १० भूमियों की प्रतीक हैं। १० भूमियाँ ये हैं—प्रभृतिना विमला प्रभाकरी अविषमनी सधुर्ववा, अम्बुती कुरमका जलमा और कर्मविद्या। परन्तु प्रतीकात्मक अर्थ के साथ-साथ शिष्यों के साथ सहवास को अनिवार्य माना गया है। क्योंकि स्त्री प्रज्ञापारमिता कर्मिणी है अत्रयव्य मे स्पष्ट कहा है कि गुह्य-क्रिया (सहवास) से प्रज्ञा व उपाय रीत हो उठती है—

ज्योपापकुस्याप्या दीपत—अपवसासंपद्

इसके परचातु मुख यदि चाहे तो सिष्य से पूर्व 'मुद्रा-साधना कर कबवा सिष्य की भाँखें बाँधकर मुख उसकी भार्या उसे सौँध दे। वर्षरात्रि से मूर्खोद्घम के दो पक्षी पूर्व तक इस मुद्रासाधना का समय है।

मुद्रासाधना के लिए आनुराधि का आगरण आवश्यक है। बच एक पंटा को बारण कर देने के परचातु जगत को केवल मन की भ्रान्ति समझे मत। इन भ्रान्तियों से परे प्रकाश्वर निर्मथ चेतना को पहचानने का प्रयत्न करे तब यह 'मुद्रानिपेक' सफल और शिवाचिक होना है।^१ प्रयोगाय आनोन्मुख साधक केवरीकत मुक्त भ्रमण करता है। बाज्जर्म को छोड़ देता है, जगत को स्वप्नवत् होने के कारण केवल भोग के लिए है, ऐसा विश्वास करता है।^२ वमस्मभ्रमण करता है। इसे 'पंचामृतभ्रमण' कहते हैं। गर, अरव उष्ट्र मातय ववान की जिप्टा तथा मूत्र का भक्षण ही पंचामृत कहलाता है। इससे मार एक विनायक (मनेष) बिघ्न नहीं डाल पाते ॥^३

ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रासाधना में अक्षयभक्षण द्वारा विषेय सम्प्रदायों में ही होता था, परन्तु पंचमकर-सैकन सर्वा करते थे। 'पंचामृत' जैसे पुनित पदार्थ सैकन से साधक 'मुद्रा' पर विजय करते थे और पंचमकर से 'बाधना' पर। वमदान-सैकन एक व्याप्रादि के मुद्रों पर बैठकर साधना मन्-विजय के लिए की जाती थी। इसके अतिरिक्त पंचामृत भक्षणवि प्रतीकारमरनी है जिनका तात्पर्य 'शङ्खीयोग' है, जो सभी तांत्रिकों में स्वीकृत है।

(१) शिवाचिकता विद्या हृद्या सर्वगुणोत्तमा—
प्रयोगायविनिरथय निधि ।

(२) तत्रःस्वप्नःश्वमाभ्यु सर्वाद्यद्गबहिर्मुखं
विचरेत् तत्कमुत्तरमा केवरीक समस्ततः । श्री
स्वप्नमाधोपमं सर्वं स्वप्नवात्वाविसाधनम् ।
तथाष्टसोडशमं च सर्वं श्वक्वाठिपूरतां ।
तन्मोमाधं विहं सर्वं वीथानुम धिपत्र ।
निर्दित्रं वज्रनाथन सायमना द्वितीय च

(३) विघ्नमारुदि घातपर्यं वचामुनमपिबवत् ।
एवा स्वगुत्तरा रसा, विगुमादि व्यवस्थिता—श्री

आंतरिक-यथा एव आंतरिक ज्ञान की प्रामाण्य के कारण बाह्यअभिप्रेक आचार आदि को तांत्रिक महत्त्व नहीं देते। अतस्मान् ज्ञान उत्पन्न होने की स्थिति में बाह्याचार निरर्थक हैं। शीशों में भी साम्भव अवस्था में कोई आचार विहित नहीं है।

बौद्ध-दर्शन सांख्य से प्रभावित था, यह एक स्वीकृत तथ्य है। ज्ञान होने के परवात् भ्रष्टि वा कोई प्रभाव 'पुरुष पर नहीं पड़ता यह प्रथम अवस्था में युक्त रहता है, इसी प्रकार बौद्ध तंत्रों का विश्वास है कि उर्ध्वरवों को देखते हुए सर्वं पदों को मुक्त हुए विभिन्न रसों का सेवन करते हुए सायक स्वस्थ और अकम्पित रहता है। मैं हो हूँ कबल यही एक भाव रहता है, बायें ओर अपने ही चित्त का प्रतिबिम्ब देखता है।^१

सिद्धि का कारण स्वयंभिति (केतना) है, अतः इस बुद्धयोग में हठयोग स्वीकृत नहीं है। वह प्रथम सोपान के रूप में स्वीकृत हो सकता है इसमें मैं तो जो आनन्द विष दास में मिमता है वही दास ध्येय है। अतः त्रि-रक्ति के समायोग से बुद्धन आलिङ्गनादि अन्य आनन्द को ही ध्येय बनाया जाता है।^२

मुद्रा आनन्द और क्षण—उपर्युक्त आनन्द-दास-साधना को मुद्रा एक आनन्द के सिद्धान्तों के साथ समझना चाहिए। तंत्रों में चार मुद्राएँ मानी गई हैं। कर्ममुद्रा परम मुद्रा महामुद्रा और समवमुद्रा। कर्म मुद्रा में आदि अभिप्रेक की शिवाएँ जाती हैं इसमें विधि-निषेध का पालन करना पड़ता है। इनमें कर्म

(१) अहमत्येप सद्बुध्यस्वस्मादेतद् इमे त्यजन् ।

निबिचारी निरासङ्गो निप्राप्तो गणकस्त्वप-
परपत्रा सर्ववपादि, शृण्वता पश्येव च ।

अस्मता हसता वापि प्रास्मता विविधाम् रसान्—धर्मीपाय

विनिश्चयसिद्ध

(२) स्वसंविद्येभवेत् सिद्धिः—

एवंकारं मनस्कुर्मो यः सत्त्वशास्त्रराम् ।

आनन्द एव जायन्ते, भरता बोधिसिद्धयः ।

विष ततो विपाकं स्यान्-नृणीयं तु विलसणाम्

विमर्दश्च ततो जयो हठयोगे निराकृते—

अप्रवच्यतंपद

विपाक रहता है, वैचित्र्य और विविधता है। धर्म मुद्रा में ज्ञान की प्रधानता होती है अतः उसमें विमलता और स्थिरता आती है, महासुखावस्था में ज्ञान के सभी पदार्थों की अप्रतिष्ठा होती है और शुद्ध अग्रम ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अतः बिना महासुखा के कर्ममुद्रा फल नहीं देती। अन्तमें समय या सहजमुखावस्था है। इसमें योग पूर्ण हो जाता है और योगी स्वकपस्थिति को प्राप्त कर सता है।

ये मुद्राएँ बाह्य धारीरिक चेष्टाएँ नहीं अपितु चित्त की आंतरिक अवस्थाएँ हैं।^१ ये अवस्थाएँ चार प्रकार के आन्धों से सम्बन्धित हैं। चार प्रकार के ही शब्द हैं, जिनमें इन आन्धों की उत्पत्ति होती है।

राज-विचित्र विपाक विमलजल विमर्द

आनन्द-आनन्द-परमानन्द सहजानन्द विरमानन्द

मुद्रा-कर्ममुद्रा कर्ममुद्रा महासुखा समसमुद्रा

‘रति-श्रिया द्वारा ही इन मुद्रा शब्द व आनन्द को समझा जा सकता है। मुद्रा का अर्थ बाह्य अर्थ में सामना के योग्य स्त्री’ (घण्टि) भी होता है। रति श्रिया में अंतिम शब्द विमर्द (वर्ण्य) है। इससे वीर्यस्रवण होता है, इसी को ‘विरमानन्द’ कहा गया है। क्योंकि इसी अवस्था में पूर्ण ध्यान प्राप्त होती है। विकल्प का कारण मन है, मन क काम समाप्त हो जाने से यह अवस्था ‘अमनस्कायवस्था’ भी कही गई है। सर्वविकल्पव्याक्रान्त हो कर साधक को ‘स्वस्य’ कर बैठे हैं।

- (१) कर्ममुद्रा—कर्म या काम् बाह्य चित्तचिन्ता उत्पन्नाना मुद्रा कल्पना स्वरूपा तस्या कर्ममुद्राया आनन्दा आपन्ते ।—अग्रमवस्थासंपह
 धर्ममुद्रा—निष्कल्पता निविकल्पता अपूर्णिता उत्साहरहिता वरणा स्वभावा, परमानन्दैक सुन्दरोत्सायमुद्रा । विगी विगी विचारक ने इसे “निसृतरं घुम्यता वरणाभिप्त” भी कहा है ।—बही
 महासुखा—इसमें अद्य-शांता आदि भावरण नष्ट हो जाते हैं। यह निर्वाण स्वर्गपिपी है ।

अविचल्पित सदस्य अग्रनिष्ठित माम्ना ।

अस्युत्प मनविचार, निरानन्द नमोऽस्तु ते ।—बही

नारोपा की सेकोदेस टीका में उपयुक्त आत्मियों के १६ भेद किये हैं और चार चार आत्मियों की एक कोटि तैयार की है।^१ सेकोदेस टीका में ब्रह्मिण आत्मन्दक्रम में भी अंतर है—उदाहरणतः आनन्द, परमानन्द विरमानन्द और सहजानन्द यह क्रम दिया गया है। नारोपा ने स्पष्ट रूप से कहा है 'रति-क्रिया में प्रातः उपर्युक्त आनन्द वस्तुतः आध्यात्मिक आत्मियों के ही रूप है अतएव रतिक्रिया द्वारा ही आध्यात्मिक आत्मियों की अनुभूति को और बड़ा वा सफ़्तता है। निर्वी स्त्री की बेलकर पुरुष को आनन्द होता है, यह प्रथम अवस्था है, सहवास होने पर पुम्बन-आत्मियतादि से उत्पन्न आनन्द 'परमानन्द' है, यह द्वितीय अवस्था है, अर्पण से उत्पन्न आनन्द 'विरमानन्द' है और बीज-सरण से उत्पन्न आनन्द 'सहजानन्द' है।^२ रतिक्रिया के इन आनन्द तानों को स्थायी बनाना ही

(१) समयमुद्रा—सम्यक्सम्बोधि की प्राप्ति-अवस्था यही है। इस अवस्था में मन्त्र रूप तप, होम मंडल आदि की आवश्यकता नहीं रहती।
 न मन्त्रबापो न तपो न हामो, न माष्टनमं न च मण्डलं च
 स मन्त्रबाप स तप स होम स माष्टनमं स मण्डलं च
 —यही

(२) कामानन्द करोति प्रथमं मुखां चतुर्लोकनेन ।
 पञ्चात्पूर्णाश्रद्धे पुनरपि परमानन्दमेव स्वकीय ।
 ज्यामाविभुं सवन्ती रमती च विरमानन्दमेव पश्ये ।
 बौध्दा विन्नुपाम्ने सरणस सहजानन्दवत्त्वं करोति—सेकोदेस टीका—
 पृष्ठ २६

'हेतुप्यर्थक' में कहा गया है कि 'सहजानन्द' के लिए बोधिचिन् (बीज) के प्रवाह को रोचना आवश्यक है। बोधिचिन् जब तक स्थानित नहीं होगा तब तक आनन्द प्राप्त होगा अर्थात् यद्यपि स्थूल और सूक्ष्म रति में स्थानन में भी आनन्द मिलता है, परन्तु वह स्थूल और लौकिक आनन्द है अतएव मुस्त्याश्रियेक य गुरु सापक को बीज-स्थानन को रोक कर अविश समय तक गुम्भोज वा आनन्द मने की शिखा देता है, और इन क्रिया के समय वह बोधिचिन् के प्रवाह को रोकना भी शिखाता है, इन प्रकार बाह्य एक आंतरिक स्थानन से बचने की एक माय शिखा देना ही इन गुस्त्याश्रियेक तथा प्रजाजियेक की विशेषता है। स्थानन में बराब्य बेराब्य में दृग् दृग् से प्राण-शक्ति वा नास और प्राण-शक्ति के ह्रास में मृग्य हानो है।

सहजसाधना है, यह कार्य चित्तको बरा में करके ही हो सकता है, दुर्बल चित्त साधकों का अपयत्न होगा है। जगत का भोग तथा जपत पर विजय शोभ रहित होकर ही हो सकती है, अतः ज्ञानी भोग द्वारा भी मुक्ति प्राप्त करता है और पुर्बलचित्त उन्माद भोग पर भी बचन में पड़ता है। इसीलिए यह सहजमार्ग श्रुति की धार पर चलने के समान है। इसमें काया और मन को पुच्छ देने का अन्वेषण नहीं है। उर्ध्वमुखों से समाप्त होकर भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है।^१ परन्तु यह सिद्धि ज्ञानवान के लिए सरल है, मूर्खों के लिए कठिन।

जानन्द दाय एक मुद्रा की उपर्युक्त सभी व्यवस्थाएँ नाड़ी योग पर भी आधारित की गई हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि 'सहजावस्था में हठयोग ज्ञानमय है। बोधि प्राप्त हो जाने पर हठयोग व्यर्थ हो जाता है, परन्तु संदुर्बल के साधकों के लिए भोग एक भोग साध-साध करना पड़ता है, अथवा हठयोग करने के परचात् पुनः भोग द्वारा शिवा दी जाती है, अविचारी भेद बोध भी प्राप्त होते हैं। अतएव मायेया के अनुसार उपर्युक्त चारों ज्ञानमयों का अर्थ नाड़ी-योग के अनुसार इस प्रकार होमा—

कामनाओं से विलगकर चित्त का स्व में प्रतिष्ठित करना तथा प्रायः तथा अपान के बीच मध्यम मार्ग का ध्यान करने से ससाट में बोधिचित्त प्रजापुर्ण होने पर और उपायजानिदन से परमानन्द प्राप्त होता है। तत्परचात् इव ज्ञानिदन से

There is no greater sin than discharge and no greater merit than bliss (arising from the motionless Bodhichit) Discharge is the progenitor of detachment and from detachment (विश्राम) arises Sorrow and from Sorrow is the loss of Vital element and from the loss of Vital element Comes death.

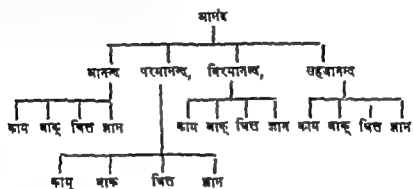
An Introduction to Tantric Buddhism—S. B. Das Gupta.

इस तथ्य ॥ स्पष्ट है कि मुद्रा-साधना में साधक अधिक से अधिक समय तक अस्थिति अवस्था में सुदृढ़ रहकर, जात्रिक चित्तवृत्ति को शोभ रहित रखने का प्रयत्न करे। इसमें सफलता प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं हठयोग दोनों की आवश्यकता है।

(२) वायिके ज्ञानं बुद्ध नामानां प्रसापयेत् ।

संश्लेषसमायुक्तः विष्यते नामसंशयः—ज्ञानमिद्धिः—अभूमि

प्रामित होकर चन्द्रनाडी सक्रिय होती है, यही विरमानन्द है। तत्पश्चात् काय बाह्, चित्त और विन्दु के अवसारम के समय—जाता-श्लेष भेद नष्ट होने पर 'सहजानन्द' प्राप्त होता है। कभीर आदि इसी को 'रामनाम का रस' कहते हैं। उपर्युक्त आनन्दों में प्रत्येक चार प्रकार का है।



इसी प्रकार व आनन्द चार काया, चार बोध चार अवस्थार्य (जादूत स्थान-सुप्ति, गुरीय) चार मुक्तियों आदि से भी सम्बन्ध है।

एक बोधह आनन्दों को मूत्रम का आनन्द कहा गया है। विपुल अन्य आनन्द में इनकी प्रतीति होती है। इनमें 'सहजानन्द' प्रथम और अंतिम है। अग्नि व्यक्तिके पूर्व यह विषय एक लिपटी के रूप में विभक्त हो जाता है। यही सारे कुओं का कोय है। यह रबन अभिव्यक्त होकर अपना आनन्द सिगा है। शैवों का 'परमचिब तल यही है।

दुमरी दृष्टि से सहजानन्द' योग-प्राप्तका का प्रथम खोलान है। अनियेक के समय शिष्य को प्रजा (स्त्री) के पास नुक भ जाता है और शिष्य मैपुन में रत हुता है। 'सहजानन्द' विन्दु के रूप में मस्तक में स्थित रहता है, वह इका होकर निम्नमात्रो बनकर कयकणि (मिद्ध) तट्र जा जाता है। बोली इनी सारण-नाथ में विन्दु (बीर्य) की पुन जन्मीय (मस्तक) तक पहुँचाता है।

- (1) Sixteen Anandas, which are creative joys appearing as pleasures of intercourse in common individuals —

इच्छा—शैवोद्देशटीना की नृदिना

मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

हिन्दुओं के गारोमा द्वारा बर्णित यह योग 'ऊर्ध्व-नेत्र-योग' कहलाता है। यह आत्यंतिक रहस्यमय है।

'विन्दु' ध्यान से ऊपर बढ़ता है। कलाश-गुह्य एवं प्रज्ञा अभिवेक के बाद इस योग को 'अनुत्तर अभिवेक' कहा जाता है। ध्यान द्वारा 'विन्दु' को ऊपर बढ़ाया जाता है। यही पञ्चम योग का अर्थन मिलता है। इसे 'पतंजलि योग' भी कह सकते हैं। यद्यपि बीजों ने इसे विशेष रूप प्रदान किया है।

पञ्चम योग (हृदयोग)

प्रत्याहार, ध्यान प्राणायाम पाठना अनुस्मृति तथा समाधि पञ्चम योग के ये छह अंग हैं। निरपेक्ष समन में भावना करना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार अथवा भावना का अर्थन है कि प्रत्याहार में विकल्पभावना नहीं रहती। अस्तु-अवयव से साधक प्रत्याहार द्वारा निवृत्त हो जाता है।

ध्यान विचक्रे विचार, पीठि गुण एवं एकाग्रता का अन्वेष ध्यान द्वारा होता है। चिक्रे का यहाँ विशेष अर्थ है, चित्त में किसी सामान्य आवयं मानना का अकारण विक्रे है। अस्तु जिनो पर इस प्रकार विचार करना मानो वह पूर्ण प्रदायक हो, यह विचार है। प्रीति चित्त की प्रथम अवस्था है। विचार अथवा भावना का अनुभव ही गुण है। गुणना पर ध्यान केन्द्रित करना एकाग्रता है। प्राणायाम में अमृत पुञ्जलीभिन्म नाम से संघ्याभाषा द्वारा वायु का वर्णन किया गया है। यह पाँच प्रकार की है। पाँच प्रकार की है। पाँच स्तरों पर अनुभूति तथा पाँच ध्यानी बुद्धों ने अमृत इनका उल्लेख है।^{१२}

I तपना (दृढ़ता नाम माड़ी)

II रमना (विगना बरिण माड़ी)

III मन्त्र्याम वारिणी माड़ी

अभिनाम

रत्नसम्भव

वेदीचन

(अमृत)

(अग्नि तन्त्र)

(पृथ्वी तन्त्र)

(१) जनो विचरन्नावना नोपनम्यते प्रत्याहारभावनायाभिनि अथनो वाचरमु-स्फारि विषय रह्य वा त्याग ही प्रत्याहार है—
केरोदरटी वा—पृष्ठ ४१ ४३

(2) An Introduction to Tantric Buddhism — S. B. Das Gupta.

IV मूत्रत्यागकारिणी नाडी	अमोपसिद्धि (वायुत्तरा)
V मध्यनाडी (अथपुती वा सुपुष्पा)	अतोम (सुष्यतत्त्व)
VI बीर्ब-नाडी (ज्ञानवाहिनी)	अथसत्त्व

रेचन पुरक, कुम्भक आदि योग से चन्द्र (ममता) मूर्ध (रसना) नाड़ियों की शुद्धि के बाद इन्हें छोड़कर मध्यमार्ध (अथपुती) का अवसम्भन करने से प्राक्प्रयोग सिद्ध होता है। इस नाडी योग में चार चक्रों की पार करना पड़ता है। नाभिस्थान में निर्माण चक्र है, हृदय स्थान में सम्भोग चक्र, कंठ में धम और शीघ्र में उष्णीष चक्र है। इस प्रकार बीस संभ पदचक्रों में चार चक्र ही मानते हैं। सेन्द्रोद्देश टीका में अनाट एव उष्णीष में असम-अवल चक्र माने गए हैं। उष्णीष ही विन्दु स्थान है। यही मध्यमार्ध द्वारा प्राण को बढ़ाकर रोका जाता है। इसी को 'धारणा' कहते हैं। प्राणोहार एव प्राणायाम दोनों में ध्यान सम्मिश्रित है। ध्यान से ही 'धारणा' प्राप्त होती है। 'जप' भी साध-शाय बनता है, इसी को 'अध्ययन' कहा है। 'अध्ययन' की अवस्था में प्राण वायु का संभनना एव रसना में संश्लेष निश्चित है। प्राणायाम धारणा का उपहासन है। धारणा के अन्त से नाभिस्थान में स्थित 'अष्टासी (शक्ति-देवी) को देखता हुआ योगी बार-बार इस महामुद्रा का 'अनुस्मरण' करता है। यही अनुस्मृति है अर्थात् धारणा के अन्त में अष्टासी की भावना की जाती है। इन अवस्था में ज्ञान की शक्ति से स्वल्प वायु, आपनन आदि द्रव्य हल जाते हैं। अष्टासी की ज्ञान-शिखा से अनाट में अन्तस्थान में स्थित बोधिचिन् विन्दुरूप में इतित होकर बन्ध हृदय, नाभि और कुम्भकमन (त्रिस) तक जा जाता है। इसी विन्दुपात अनुभूति करने के लिए मीपुनाम्त में बोर्ब-धारण का दृष्टान्त दिया गया है। मीपुन अन्ध आनन्द से यह योगत्रय 'विन्दुपात' का आनन्द करोड़ों गुना अधिक होगा है।

त्रिस प्रकार तत्त्वज्ञानी मीपुन रत होकर बीर्ब की इच्छानुसार रोका सहा है, उसी प्रकार अल्प-योग द्वारा 'विन्दु' को पुन उष्णीष तक पहुँचा कर योगी अन्तर हो जाता है। मीपुन सूच से योगत्र सहजानन्द महत्तर है। योगत्र आनन्द

भी 'सद्मानन्द' कहलाता है, क्योंकि इन्द्रियों का आनन्द तो इती का एक रूप मात्र है।^१

सुम्बता का नाम ही समाधि है। बाह्य-बाह्य भाव निरखित सभी भावनों से अतीत अवस्था ही सुम्बतावस्था है। चित्त की एकता के कारण यह अज्ञानमुखा वस्था है। अक्षरमुख का नाम ही समाधि है।^२

इस हृद्येस्य में प्रत्याहार आदि से माव के अन्वेष से प्राण को मध्यमार्ग में प्रवृत्त कर उन्मील में बोधिविधित विन्दु को निरुद्ध कर अक्षर अक्ष की सामना की जाती है।

हिन्दूतंत्रों में कुम्भसिनी क्षणिक मूलाधार चक्र में स्थित मानी गई है, परन्तु यही क्षणिक नामि में स्थित मानी जाती है, प्राणायाम द्वारा यहीं से यह हृद्यरूप में उन्नत उठती है। मध्यमार्ग में होकर यह क्षणिक चरों को पार करती हुई है, मूढ समित मति से अर्थ-मग्न करती हुई उन्मील तक जाती है।

अक्षरमावस्था उन्मील को भिन्नकर 'विचरत्वा प्राप्त होता है, कर्मवत् चेतना निर्मल होकर स्वरूप में स्थित हो जाती है, इन्द्रु मित जाती है। कर्मव्य कारकों के समान नष्ट हो जाती है, निरञ्ज आकाशवत् 'चिदम्' अवस्था घटि की प्राप्त होती है। बाह्य विरक्त इस अवस्था में स्वप्नवत् स्थित होता है, मूढ, वर्तमान मविष्य का ज्ञान अस्म्यात् होता है। स्वर्गादि लोक स्पष्ट दीखते हैं। अक्षरमात्र से सृष्टि करने की शक्ति उत्पन्न होती है। 'मृदामुत्' प्राप्त होता है। इती ज्ञान की तापगत ज्ञान कहा गया है। अक्षरम्यस्वभावी होने से यही ज्ञान अतोम्य ज्ञान उत्सार्थ होने ॥ रत्न सम्मथ अमित एव अक्षर्य गुण संयोगी होने से अक्षिराम, अन्वय

(१) तत्रस्वभावात्वा आगाधिवा जन्ने हुते सति यद्बोधिविधितं विन्दुरपणागेन/ कष्टे हृदि नामी कुत्राकम्भ आगत्यपरमविरमस्वभावेन। उशी जय मधि याकगहजानन्व स्वभावेनेति। अक्षना विविध विपाक विमर्द विमराण स्वभावेनेषैर्ष योश्चक्षमापूर्ण मध्यमार्गत्त यद्वा दृश्यं यदाति नावनाभनेन-----सद्दामिनि हृद्यान्तमार्ग स्ववपशो हीन्द्रियत्र----- कोटीसद्भगमीपनि जभा नाहीनि परमाक्षर मुखस्वैति। (कैकोदेपटीया पृष्ठ ४२)

(२) इदं पान्यपाट्टक चित्तव देवत्वेन अक्षरार गुणं अक्षति तत्सुखं समाधि रूपने—बही, पृष्ठ ४३

रहित होने से अमोघ सिद्धि कर्त्ताया है। इसी प्रकार सर्वसोपत्य होने से 'सोपत्य व्यापक होने से 'मामकी', सर्वतारव्यस्त होने 'तारा' सम्पन्न होने से 'प्रज्ञात्मक', नातोमापदिबिन्न होने से 'स्वामयन', सभी भृष्टि का कारण होने से पद्मसुत्र, तथा सर्वबुद्धमय होने से इसी भाग को त्रिधातक कहते हैं।^१ इस अवस्था में न उच्छेद बाध, है न वास्वतवाय, आवि, मध्य, एवं अन्त से बन्धित यह सर्वांगीय अवस्था है।^२

चक्र-सिद्धान्त नाडी-योगमें चरों पर अपना से प्रकाश डालने की आवश्यकता है। सारा ब्रह्माण्ड इस सिद्ध में सपु रूप में अवस्थित है, अतः नाडियों के अतिरिक्त परंतु नदियों, वृक्ष आदि सभी बाह्य प्रकृति घटीर के भीतर विद्यमान है। बीज योग में चार चक्र हैं, इनमें प्रत्येक का सम्बंध एक एक काया से है।^३

नाडि—निर्माण काया

हृदय—धर्म काया

कंठ—सम्मोह काया

उष्णीश—सहज काया

डॉ० सवि भूषण दास गुप्त ने लिखा है कि न जाने क्यों काया का क्रम यहाँ अव्यवस्थित है। निर्माण के पश्चात् सम्मोह काया और उसके बाद धर्म काया होनी चाहिये थी। बल्लुत^४ ब्रह्मा कि मारोता ने 'सिक्रोहय टीका' में कहा है कि निर्माण काया आवि काया भी है और अग्नि भी, अतः क्रम बल्लुत^५ सम्प्राने के नियम है, क्रम का सापेक्षता में पारमार्थिक महत्त्व नहीं है। 'सिक्रोहय टीका' में निर्माण सम्मोह धर्म एक सहज यही क्रम स्वीकार किया गया है।

उष्णीश चक्र में ४ दल हैं यही त्रिपि-मंडल है। इसके बाहर एक ३२ दल का कमल है। 'हृ' वर्ण यहाँ स्थित है। इन कमल में १६ चन्द्रसार्ध स्थित है। इन कमल के दोनों ओर ममना एक एतना नादियाँ हैं जो स्वर तथा ध्वजनों की प्रतिनिधि हैं इनके बीच में परमेस्वरी या अवयुनिका है।

कंठ के पास सम्मोह चक्र है। इसका वर्ण श्वेत, 'हं' बीज मंत्र है। इसके ऊपर ही अमृत प्रवाहित होता है। सम्मोह चक्र के कमल में १६ दल हैं।

हृदय के पास धर्म चक्र है, इसमें ८ दल का कमल है। यह बुद्ध है, इसका एक भाग ऊपर की तथा एक नीचे की सुनता है। 'हं' बीज है।

(१) भाव सिद्धि—इन्द्रभूति

(२) धर्ममं अक्षरं दान्तमादिमध्यान्त बन्धनम्—धर्मवचन

(३) An introduction to Tantric Buddhism, Dr S. R. Das Gupta.

नामि चक्र १४ शत के क्रम से कुछ है। 'म' बीज है। यह मोटी के समान प्रत्यावाह है। इसके चार तीर्थ के भाग में ७२ हजार मादियों का केन्द्र है।^१

चर्को अधिष्ठात्री देवियों कामाज्जी आनन्दों, विद्यान्ती, आर्यसती मुद्राओं, महामूर्ती पुर्वा शर्मा मंत्रों का परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार देखा जा सकता है।^२

चक्र	नामि-चक्र	हृदय-चक्र	कंठ-चक्र	उपवीप-चक्र
शेरी	शोचना	मामकी	पाशु	शाप
गुप्त	करुणा	मैत्री	सुरिता	उपेक्षा
भूत	पृथ्वी	कमल	ज न	बाधु
वर्ण	इ	वसु	म	य
मुद्रा	कर्ममुद्रा	कर्ममुद्रा	महामुद्रा	समय मुद्रा
कामा	निर्माण	कर्म	सम्भोग	सहन
शान	विपिन	विपाक	विमर्ष	विमरण
अंश	सेवा	उपसेवा	साधना	महासाधना
उपय	दुःख	दुःख का कारण	दुःख का विनाश	दुःखनाशक उपाय
आनन्द	आनन्द	परमानन्द	विरमानन्द	सद्मानन्द
निश्चय	स्वविराज	सर्वोत्तिराज	सर्विज्ज्वा	महासोपिज्ज्वा
प्रदर	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ

एनी पारा १६ (४×४) संक्रान्तिर्वा है। १४ चक्र है (४×४×४)
१२ मादियों है (४×४×२)।

(१) हेरफर्न के आपार पर बजिन—An Introduction to Tantric Buddhism.

(२) An Introduction to Tantric Buddhism—S B Das Gupta.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बज्रयान में सभी बौद्ध सम्प्रदायों एवं विद्यान्तों का समन्वय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए तंत्र की धर्म का उार कहा गया है। शैवधर्म में काश्यपों सम्प्रदाय त्रिषु प्रकार श्लोक कार्य त्रिक सिद्धान्तानुसार तीन तन्त्रों से निकलता है उसी प्रकार बज्रयान धार तन्त्रों द्वारा साधना-मन्त्रों को समझाता है।

'हृदयतंत्र' में चन्द्रों के स्वार्थों में कुछ अंतर दिखाया गया है। निर्माणधर्म योनि या सिद्ध के निष्पन्न ब्रह्मकाया रूप एवं सम्भोय कावा चक्र अंत के पांच ब्रह्मकाया गया है।^१

पञ्चमप्राण प्राणवायु के वाहन के द्वारा वायु को मध्यमार्ग में प्रविष्ट कर चक्रों का भेदन किया जाता है और उत्पन्न चक्र में वायु पहुँचाकर योनी पदमावस्था को प्राप्त होता है। प्राणवायु के इस वाहन को ही 'ब्रह्मजप' कहा गया है, चक्रों का उद्धारण वास्तविक रूप नहीं है। आर्यम् के तीन भाग पूरक पुष्कर एवं रेवक हैं। प्राणवायु के अनुशासन की क्रिया साय-साय को अप किया जाता है। नहीं फल देता है।

प्रणाहार, ध्यान धारणा, अनुस्मृति एवं समाधि द्वारा यह पदार्थ योनि पूर्ण होता है। मुद्रा, बन्ध तथा आसन भी इसी में सम्मिलित हैं। आसनों में बज्रोत्थी, सहजोत्थी तथा अमरोत्थी आदि हैं। मुद्राओं में शिखरी महामुद्रा आश्विनमुद्रा आदि हैं। धर्यों में भूमवर्ण, महाबन्ध आसनपर बन्ध आदि हैं नादियों व मांसदेहियों का आङ्गुष्म, विरोध ही रूप है। उद्दण्डयोग में कुजस हो जानेपर शीर्ष का सङ्गम नहीं होता और शीर्षविन्दु के निम्न प्रवाह को योनी दक्ष्यनुसार समस्त कर ऊपर चढ़ा करना है, वही अर्धं रेणु योनि है।

पौत्र संशानुसार मुक्ति एवं मुक्ति दोनों एक साथ प्राप्त होती हैं। योग द्वारा पक्ति प्राप्त हो जाने पर योनी जाना समस्कार कर करना है।

सिद्धि-प्राप्ति प्रतीकाल द्वारा सम्पुष्टि प्राप्ति के अनिश्चित यत्नारण सिद्धियों की प्राप्ति भी बौद्ध-यौग से होती है। यस्तुतः एतत्सिद्धि सिद्धियों के कारण बौद्ध योनी सिद्ध कहलाये। तान्त्रिकों में मुक्ति एवं मुक्ति को एक साथ प्राप्त करने के

(1) An Introduction to Tantric Buddhism. Dr S. B. Das Gupta.

प्रत्यक्ष के कारण इन सिद्धियों की प्राप्ति भी असंभव नहीं। 'सिद्ध' उसे कहा जाने लगा जो शिवा के बिना संकल्पमान से प्रत्येक इच्छा पूर्ण कर दे। अतः शीघ्र 'तंत्रों' में 'सिद्ध' देवताओं के साथ रह सकते हैं। अथवा हो सकते हैं। शंकर की पत्नी पार्वती को शिव से छिन्नकर उस पर बसालकार कर सकते हैं। गारायण का अतिरिक्त कर लक्ष्मी का भीम कर सकते हैं।^१

अष्ट सिद्धियों के अतिरिक्त शीघ्रों ने अम्मदा भीषण मंत्रज तपन तथा समाधि इन सिद्धियों का आविष्कार किया। इन सिद्धियों के द्वारा शीघ्र निम्न जन्मा को अविद्य-आकृषित कर सके। रोम सर्व-विष विना पड़े ही शास्त्र-ज्ञान बोधि-शक्ति अष्ट महासिद्धियों-अभिमा महिमा आदि सर्वज्ञता-शक्ति हिन्दू देवताओं से सेवा करने की इच्छा तथा बाद-विचार म शत्रु को हारने की इच्छा शत्रुनारा शीघ्र बुद्धि के लिए अमरत्व की इच्छा मृत्यु के बाद अष्टादश-शक्ति की इच्छा शत्रु, अज्ञान परलभ अंतर्धान उद्योग वैश्वर (आकाशगमन शूचर (दास तर म नहीं भी जा सकता) पाताल-स्वेष शक्ति (रोम गारा) शरीकरण स्तम्भन विरोध उच्चाटन मारण आदि सभी अमरत्वों का प्रदर्शन शीघ्र शिघ्र करते थे।

इन अमरत्वों की प्राप्ति 'देव-उपासना' द्वारा होती थी। काल नराज शीघ्र तथा मंत्र द्वारा सब कुछ प्राप्त हो सकता है यह विश्वास आज तक बना आ रहा है। इस कार्य के लिए शत्रु प्रचार के मंत्रों का प्रयोग होता था—प्रथम मंत्र विद्वान् सन्नुट रोमन शोग और परलभ।

प्रथम मंत्र उद्योग मंत्रों में साम्य के नाम के प्रत्येक अक्षर पर मंत्र का बाप दिया जाता है।

विद्वान्-मंत्र इसमें मंत्र क अक्षरों के बीच परीक्षण के लिए शिवा का नाम बाप देते हैं।

सम्भुट इसमें 'व्यक्ति' शिवा पर प्रयोग होता है, वा नाम आदि एक अक्षर में रखा जाता है।

(१) परमेनी समाह्वय्य प्रज्ञा बलवानप ।

उमादेवी समाह्वय्य, शोभाशोभैर्गुणकयनी ।

गारायण समाह्वय्य प्रज्ञा बलवानप ।

शिविनी तु समाह्वय्य उपाशोभैर्गुणकयनी—शान्तिसिद्धि

रोधन इसमें 'व्यक्ति' का नाम आति, मध्य एव अंत में होता है।

योग 'उच्चाटन' के लिए इसमें 'व्यक्ति' का नाम अंत में रखते हैं।

पुस्तक इसमें अंत 'व्यक्ति' के नाम के अन्त में बोला जाता है। इनका अर्थ 'मरण' में होता है।^१

विद्वि कार्य में जिस प्रकार की इच्छा हो उसी प्रकार का देवता चुन लेना चाहिए और उसी प्रकार की मानसिक-स्थिति बना लेनी चाहिए यथा क्रोध में क्रोधी देवता तथा क्रोधात्मक मानसिक स्थिति से ही शत्रु-मारा हासकटा है क्योंकि धन अपनी साधक की भावना देती है न कि बाहर की कोई अन्य शक्ति बाहर दिनी को कोई शक्त सिद्ध नहीं होती।^२

कथन-पद्धति

तन्मार्ग रहस्यमार्ग है। रहस्यवत्त्व को प्रतीकों द्वारा ही व्यंजित किया जा सकता है। क्योंकि उच्च भाव एवं अभाव से परे है अतः भाषा द्वारा उच्चका वर्णन सम्भव नहीं है। भाषा या तो भावात्मक हो सकती है या अभावात्मक। अतः तन्मार्ग प्रतीकों का उपयोग करते हैं। शुद्ध को 'बीरोक्षण' मूल को 'बज्रोदक' स्त्रीन्द्रिय को 'पद्म', निम्न को 'वृक्ष' आदि प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया जाता है।^३

साधक सामान्य वर्णों द्वारा गुणसाधना को बुझपयोग से बचाने के लिए संख्या भाषा का प्रयोग करते थे। गुणसंज्ञिकों में इन प्रकार की कथन-पद्धति पारमिहासिक काल से लगी आ रही है। एक उदाहरण नीजिए—

सप्तमस्य त्रितीयस्वमाष्टमस्य चतुर्थकम् ।

प्रथमस्य चतुर्थेन भुविर्तं तद् सविमुकम् ।

छम् बर्ण (अपसर) का त्रितीय वर्ण है 'र'। अष्टम वा चतुर्थ बर्ण है 'द' (अम), प्रथम वा चतुर्थ बर्ण है (स्वर) 'द'। विन्दु वा बर्ण है 'प', वा सरस्वती वा बीजमंत्र हुआ 'ह्रीं'।^४

(१) इहम्—साधकव्यक्तः—भूमिका भाग

(२) इहम्—साधकव्यक्तः—३६/५४

(३) स्वभावाद् देवताकाय उरमाद् बर्णं न शक्यते—शास्त्रविद्वि-स्मृति

(४) साधकव्यक्तः—भूमिका भाग

सिद्ध योग-प्रक्रिया की इसी संघ्याध्याया में कहते हैं। आमुकपाद ने 'शागवानु' को बुद्धिया कहा है। इसी को मारने से 'ज्ञान' की रसा होती है। कन्हुपाद ने सिखा है कि मैंने सास को मार डाला है, माता को मार कर मैं क्यासी हो गया हूँ। वही सास प्राणायाम है, माता माया है।

अन्वय वस्तु है कि सास के सा जाने पर बसु जाकृत होती है। सास प्राणवायु है और बसु अवधुतिकर है।³

नामावाप में बबिद्या को 'अंधी अँटिणी' कहा गया है। अंतमर्हित इच्छा को 'सोनि' (Sex) पाप को काला घोंघा, पुण्य को श्वेत 'घोंघा' विज्ञान को बन्दर, नामरूप को 'नाड़ी देखते हुए बीच पडावतन को 'मुक्तावरण' स्वर्ण को 'बुम्बल' वेदना को 'बाज' सृष्य को 'सुप' उपादान को घर्षों का संघर्ष' माव को 'निबाहित ली जावि को सिनुसहित ली' कहा गया है। अचमरण को 'शब' कहा गया है।⁴

श्री 'बेजेन' का मत है कि धर्म के लिए प्रतीकवाद अनिश्चय नहीं है, क्योंकि इस्लाम में चित्र एवं मूर्ति के बिना भी कार्य चल जाता है, अतः प्रतीक-प्रत्यगा के पीछे धार्मिकों की कला-प्रियता है। जो भी हो यह मानना पड़ता है कि बौद्ध प्रतीक-प्रियता ने न केवल रहस्यवादी मिथ-संत साहित्य का जन्म दिया है बल्कि स्थापत्य एवं मूर्ति निर्माणरत्ता को अत्यधिक प्रभावित किया है।

सिद्धादीन के कुछ प्रतीक इन प्रकार हैं—

कमल—दबिचना का पतीट	रत्न—सुख बुद्ध धर्म
स्वस्तिक—त्रयन प्रसाद	चक्र—धर्म की पूर्णता
द्वीरत्न—स्त्री की सेवा भावना	द्वेज हाथी—सार्वभौमिक शक्ति
अरुन—सूर्यस्य का अरुन	
प्रभात राजभीषनाभुसा	} वेदप्रपूर्व जीवन एवं मुरदा
परवान हाथी की गूँद	
रात्रा के बर्षाकृत	
रात्रा के रस	

(3) An Introduction to Tantric Buddhism, S. B. Das Gupta

(4) Lamalism—Waddell, II Edition 1934

तमवार—विजय	दर्पण—संगम
गजमुखा—संगम	दधि—संगम
इर्वा—संगम	विश्वरस—संगम
संख—संगम	गङ्ग—ब्राह्मण
संघार्थ—१ काम रूप अथवा तील गुण	४ समुद्र
५ स्वल्प	७ सप्तपि
८ सर्प	९ कुबेर के कोप
१० दिशा	

षडयान-सहजयान का महत्त्व उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बौद्धतंत्र मार्ग अत्यधिक रहस्यमय और गम्भीर है। मनुष्य के मन में बलवत् प्रतिभा विद्यमान है, मन एक प्राणवायु के घासन से सब कुछ प्राप्त हो सकता है, तंत्रों का यही संदेश है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध तंत्र भाग एवं योग की एक साथ धिगा बैठे हैं शैव धार्मिकों में भी यही मन्त्र है। वेदशास्त्रों की शक्ति तथा पूजा भी तंत्रों से ही विकसित हुई है यह भी इन अध्ययन से स्पष्ट है। परन्तु तंत्रों में संयोग द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की पद्धति विचित्र है। साधनेच्छिन्ना की चिन्ता न करके साहसी छिद्र में हमारा अम्बास किया जा। योग को उपाय के रूप में स्वीकार कर बौद्धतंत्रों में यद्यपि बौद्धधर्म के पनन के लिए मार्ग छोड़ दिया था परन्तु सहज भीकन को भी तांत्रिकों ने ही पुनर्जीवित किया संस्थानियों के विरुद्ध इन धर्म मार्गियों ने 'उप' को ही मुक्ति का साधन घोषित किया। संयोग द्वारा विरस की रचना का पता म्यान का नाम अदभुत है। केवल चित्र को ही स्वीकार कर तांत्रिकों ने बाल्य जमा की सत्ता का निषेध कर दिया, जगत् मित्र घोर धार्मिकारी हैं। परन्तु साध ही भीकन एक जपन के आगस्टों को वे 'उपाय' के रूप में स्वीकार करते हैं। मन तिम प्रहार विरर हो हमारे लिए मन का आकर्षक समने वाली वस्तुओं को ही उपाय के रूप में मित्रों ने स्वीकार किया। त्रिपुरे बंधन है, उर्वी से मुक्ति हमने प्राप्त करीक विर से विर का नाउ होता है यह उनका तर है। मिन से ती मिन छुणा है, जो योग मनु में टूट जाता है, उगा मे मायवतावर पर हो जाने है जगत् मान द्वार भोग मुक्तिवासी है यह तंत्रों की उपाय है। तंत्र कहते हैं कि किया या बन्तु न अपने से हानिरर है न गुणहरक उनका वेदान्तिक प्रयोग

गुणकारक होता है और मसत प्रयोग ग्राहक होता है। बाँवला लट्टा ॥ परन्तु रूप में मिला देने पर भीठा हो जाता है रूप एवं रूपों की अपनी स्वतंत्रता छोड़ती है। यत्र वे न ग्राहक हैं न कामकर, हमारा कल्याण उनके विविध प्रयोग पर निर्भर है। यत्र बाँवला मनुष्य को ऊपर भी उठ सकती है, यदि प्रसा एव उपाय से वह संभूत हो स्यात्। पारम्परिक दृष्टिकोण से रूप, रूप्य वास्तविक सब निष्पत्ता है परन्तु जैसे कर्प बँसल प्याहुर की निष्पत्ता क्रिया द्वारा छीक हो जाता है, तथैव क्रिया निष्पत्ता होने पर भी मुक्तिदायिणी है। जपत को धून्य समझकर उसे सद्भावक बनावा जा सकता है। उसे वास्तविक मानकर हम उन्हीं में उलझे रहते हैं।

शेख-शास्त्र-बौद्ध-संघों के इस 'रागमार्ग' का इन क्षेत्र के अर्थ सभी वर्गों पर प्रभाव पड़ा है।

तान्त्रिक-बौद्धमत का रूपान्तरण

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से बंगाल पर मुसलमानी आक्रमण के पूर्व तक तान्त्रिक-बौद्धमत का प्रसार अतिप्रसिद्ध बढ़ता गया है। गुप्तनारयण बुद्धि से बंगाल बिहार प्रान्त में इस मत के अतिप्रसक्त केन्द्र थे जहाँ से वे सारे भारतीय मानस को प्रभावित करते थे।

मगध्या विश्वविद्यालय का यद्यपि प्राहिवान (३२४-४१४ ई०) के याना विवरण में उल्लेख नहीं मिलता परन्तु समुद्रगुप्त नामग्या में अष्टावक्र या बगुक्त्य का गमय भी कर्न के अनुसार पंचमी शताब्दी है।^१ इसका शास्त्रपत्र यह है कि नामग्या का प्राहिवान में जैसे ही उल्लेख न मिलता हो परन्तु नामग्या विश्व विद्यालय का निर्माण गुप्त-महाराजों के समय हो चुका था।

इतिहास के साम्यदृष्ट के परभाव नामग्या तान्त्रिक बौद्धमत के आचार्यों का केन्द्र रहा है। शान्तिदेव (७ वीं शताब्दी) तथा चण्डीदास (७ वीं शताब्दी) भी नामग्या में आचार्य पद पर रहे थे। बंगाल के नामग्या के राजा धर्मपाल प्रथम (८ वीं शताब्दी में विक्रमदीन विश्वविद्यालय की स्थापना की। महीपाल द्वितीय तथा न्यायपाल (दशम शताब्दी के अंतिमकाव्य में ११ वीं शताब्दी के मध्यकाव्य

(1) Manual of Indian Buddhism—Part I H Kern

तक) क समय में बौद्धतांत्रिकमत अपनी चरम उन्नति पर पहुँच गया। बोधैन्द्र (बिन्धुमतीस का प्रधानाचार्य) अत्युत्कृष्ट तथा भारोपा जैसे प्रसिद्ध तंत्राचार्य इसी युग में उत्पन्न हुए। सहजयाग एक कासबाकमान की यम्भीर विचारधारा तथा तांत्रिक-बौद्ध-देवमन्त्र का विकास अपने चरम चिह्न पर इसी युग में पहुँचा। नारन्दा बिन्धुमतीस तथा ओरन्तपुरी तंत्र-स्थापना के प्रकाश स्वप्न थे।

ज्ञानभ्वाङ्ग के अनुसार सप्तम शताब्दी में बंगाल में १० सहस्र संघाराम थे। श्री हरिप्रसाद दासी के अनुसार १० लाख बौद्ध परिवार बंगाल में रहते थे। १२ वीं शताब्दी तक वास्तव एक जैन प्रभाव बंगाल में बहुत कम था, बौद्धप्रभाव अधिक था। बौद्ध संघ दृढ़ तथा शक्तिशाली था। बौद्ध पुरोहितों का प्रभाव अत्यंत था। वे धारणी रखते, बोधिसत्वों की पूजा करते और मृत्यु एक विवाहादि में कृत्य करते थे। प्रत्येक कृत्य संघ से सम्बन्ध होता था, भगवान तथा ब्रह्मज्ञान का प्रभाव था। १२वीं शताब्दी में बल्लास-सेन ने जनगणना करावी थी इसमें केवल ८०० परिवार ब्राह्मणों के मिले थे। इस प्रकार मुसलमानों के आने के पूर्व पूर्वी भारत में बौद्ध प्रभाव का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बंगाल की तीन चौथाई आबादी बौद्ध हो चुकी थी बौद्धों ने तांत्रिक बौद्धमत को इतने सरल रूप में प्रस्तुत किया था कि बिना ज्ञान के ही धारणी मंत्रों के आप से अथवा बोधिसत्वों की पूजा तथा ध्यान से सब कुछ प्राप्त हो सकता था। पनीर्ष के लिए बौद्ध पुराहित मन लेकर संज्ञा करते थे और फल पनवाना का होता था। धारा समाज अत्यधिक सरल और अंधविश्वास से पूर्ण धर्म आचारों के द्वारा इस जीवन में मुक्ति और मृत्यु के बाद मुक्ति की प्राप्ति सम्भव समझता था। ११वीं १२वीं शताब्दी की बौद्धमत का वास्तव्य वेबल आचार प्रधान (sacramental) रह गया था। विभिन्न बौद्ध इस आचार को दार्शनिक वृत्त-भूमि से परिचय होने के लिए नारन्दा बिन्धुमतीस तथा ओरन्तपुरी में लाते थे। परन्तु सामान्य जनता मंत्रयंत्र देवमूर्ति पूजा, गुण सेवा ध्यान, तथा चार्मिक कृत्यों तक ही सीमित थी। बुद्धसाधकों में, जिनकी सख्या पर्यप्त थी, आमाचार का प्रचार था। स्वयं विश्वविद्यालयों में भी आमाचारप्रधान बौद्ध-स्थापना का अत्यन्त आचार्य एक शिष्य विधिबन्ध करते थे। माना देवताओं तथा देवियों का अविष्कार और कर्मदानेन

एहस्यम्ब अनुभवों एवं उपलब्धियों का विस्तार इन विध्वंसिवाहनों द्वारा हुआ है। स्वतंत्र सायक भी इस तांत्रिक-साधना में रत रहते थे। संघों में सिंगु अविवाहित रहते थे, परन्तु ब्रह्मचर्या के प्रभावस्वरूप जो संघ के बाहर सायक विवाह नहीं करते थे। वे उसे विवाह नहीं करते थे शक्ति से रहा है विवाह में स्त्री के लिए वे धर्म नष्ट पाते थे।

ब्रह्मचर्या-सहजयान द्वारा मंत्र शक्ति-साधना के प्रचार के साथ-साथ 'काम चर्या' द्वारा भूत-जन-प्राण पुत्रा को अविष्ट बल मिला। इन मंत्र के अनुसार 'गौतम बुद्ध को एक भयंकर-देव demon के रूप में स्वीकार किया गया। भयंकर देवों की उपासना मंत्रों द्वारा होने लगी परिणामतः अन्य-विश्वास एवं बुद्धियों को सुनी छुट गयी। कामचर्या का साधारण १२ वीं शताब्दी में 'अनन्ता नामक विद्वान् में था इनके परमि प्रमाण है।'

संघों तथा बौद्धों से प्रभावित 'नायक' का भी १० वीं शताब्दी के आस पास विषय प्रचार हुआ। मधेश्वरनाथ नेपाल में अयोध्या-संघ के समान पूजित हैं परन्तु नायक ब्रह्मचर्या सहजयानी संयोग साधना के विरुद्ध बुद्ध हत्यारोपी ब्रह्मचर्या बौद्ध गुरुओं को उन्हे अपने संप्रदाय से बाहर मानते थे। परन्तु 'नायक' मंत्र बौद्धों से प्रभावित था। उनके मंत्र में ब्रह्मचर्या-सहजयान संघबन्धी का प्रयोग है पर धर्म बुद्ध निम्न है।

इस प्रकार बंगाल में १२ वीं शताब्दी में शक्ति-दृष्टि से यह परिस्थिति थी—

- १ शक्तिपरम—कैवल्य ८० परिवार (संप्रदाय)
- २ सहजयानपरम—उच्चस्तर के भिक्षुओं में प्रचलित।
- ३ ब्रह्मचर्या—मध्यवर्गीय वा धर्म-विवाहित बौद्धों का धर्म
- ४ नायक—नायकवादी तथा बुद्ध बौद्ध-जनता।
- ५ शक्ति—निम्नवर्ग द्वारा स्वीकृत धर्म।
- ६ कामचर्या—विशाल धर्म में प्रचलित था।

बंगाल में एक धर्मों की यह स्थिति थी तभी मुसलमानों का आक्रमण हुआ । ये भारतीयों को हिन्दू या ब्राह्मण कहते थे । अतः ब्राह्मणों ने इस परिस्थिति से काम उठाया और हिन्दुओं के अतिरिक्त बौद्धों का अस्तित्व प्रमाणित किया फलतः संघ द्विधर्म-मिश्र होने पर या तो मुसलमान हो गए अथवा निम्न हिन्दू जातिधर्मों में मिल गए, परन्तु इनके विचारों तथा आचारों में बौद्ध प्रभाव सर्वदा रहा, नाथपंथियों का भी यही हाम हुआ । पूर्ण मुसलमानों के पूर्व बौद्धअपने को स्वतंत्र धर्म एवं जाति के रूप में मानते थे अतः मुसलमान या निम्न हिन्दू जातियों को स्वीकार कर लेने पर भी इन्होंने अपने को बचीर की तरह 'ना हिन्दू ना मुसलमान' ही कहा । 'नाथ भी अपने को अस्व मान्त रहे' चूंकि बौद्ध परंपरा द्वारा इन्हें 'योग' एवं 'छ्दस्य साधनार्थ' प्राप्त हुई थी तथा आचारवाद बर्षं ब्यबस्था-आदि का ये उद्वेग करते बने आर्य थे, अतएव ये सब प्रवृत्तियाँ यवन-आक्रमण के पश्चात् भारतीय निम्न जातियों के संघा एवं भाषों में अब तक मिलती हैं यद्यपि इन सत्रों पर हिन्दू धर्म धर्म योग तथा वैदान्त का भी प्रभाव दिखना है, परन्तु बौद्ध-प्रवृत्तियाँ उनमें विलुप्त स्पष्ट हैं । अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि बौद्ध धर्म का भारत से नाश हो गया है, वह बहना अविक्रि सवीचीत होगा कि बौद्ध धर्म-प्रतिष्ठान-बौद्धमत-नाथमत संतमत ईश्वरमत इन प्रम से भारतीय समाज को एक विविष्ट रूप देकर क्पा स्तिष्ठित होमया भाव त्रिन्हें हम युद्ध वैदिक या स्पार्त आचार या उपासना सम करते हैं उनम तान्त्रिक-उपासना के अनेक तत्त्व रूप बरत कर आये हैं ।

बंगाल में बर्बन (माहीष्य) ब्राह्मण-योगी धर्मपरिषदा योगी बर्मन्दिना के उपासक उपासक, कर, अनाचरणीय बहुराजे वाली जानियाँ सुनार बर्बन बिजमर पैर, वायस आदि जानियाँ प्रथम बौद्ध थीं । नैपाल के ईश्व सुनार बर्बन, बिजमर आदि विवाहित बौद्धों की संताने हैं । यवनों के आक्रमण के पूर्व ब्राह्मण एवं बौद्ध बौद्धी जानि बर्म थे । परन्तु यवनों के आ-बौद्धों को भी ब्राह्मणों द्वारा निर्मित बर्ब-ब्यबस्था में सम्मिलित होना पड़ा अत बहुत सी जानियों ने ब्राह्मणों के 'बर्गमर' को मिश्रण को स्वीकार कर लिया, वे अपने मूल उद्गम की भूल गई अतः ब्राह्मण, जानियाँ शनिय बनने का प्रयत्न करने लगीं ।

नेपालमें सारे धर्म की भागों बंटी जाते हैं (१) बौद्धबुद्ध पूजक हैं (२) ब्राह्मण देवता पूजक । किन्तु नेपाल से कहीं अधिक विपश्य वेदानी मानों में हुआ उन यक्षों के परमात्मा के हिन्दू धर्म में गुरुवाद एवं देवतावाद कुछ मिस गया, संतों में यह गुरुवाद स्पष्ट दिखायी पड़ जाता है क्योंकि उन पर बौद्ध प्रभाव सबसे अधिक है । वेद्यों में भी 'गुरुवाद कम नहीं है । वह स्पष्ट तांत्रिक प्रभाव है । उच्च-वेदवादी ब्राह्मणधर्म तांत्रिक परंपरा से कम प्रभावित है, परन्तु वैतथ्यम्भ के बोत्वा विनों तथा भक्तों को भी-हुर प्रसाद गारुषी स्पष्टतः गुरुवादी मानते हैं ।

अय्यकुमार दत्त ने लिखा है कि महाराष्ट्र का 'विठोबा' बौद्ध देव मण्डल का अवरोप है ।^१ जगन्नाथ धर्मठाकुर, सहजिया बेण्णब नाथमत बंभाम के 'सपकी ताठिस' बौद्धों से प्रभावित है । सपकी स्पष्टतः 'यत्क' का अन्वय है ।

श्रीगुरु नन्दनाथ बभु ने लिखा है कि ११ वीं शताब्दी में बौद्ध मार्ग प्रवृत्तिमार्ग सम्य निवृत्तिमार्ग दो भागों में विभाजित हो गया था । प्रवृत्तिमार्ग में सहजिया छावना प्रचलित की अठ-यक्षों के पाठनकाल में भी सहजिया सम्प्रदाय प्रवृत्तिमार्गी गृह्यों को प्रमाणि करता रहा ।^२ वेण्णबधर्म के रूप में यह अवगण्य प्रमाणित है ।

निवृत्तिमार्गीय साहित्य में रामाई वंशित ने दून्वपुस्तक लिखा । धर्म-सम्प्रदाय के धर्मक रामाई ने । 'दून्व पुस्तक' को महायानमत स्वीकृत है । दून्व को एक निपाकार ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है ।

दून्वरूपं निपाकारं सहजविष्णुनाथम् ।

सर्वपदः पठेदेव तस्मात्सर्वं वरदाभव ।

रामाई के अनुसार 'दून्वपुस्तक' का न भावि है, न अन्त वह कर परमादि से रहित है । वह निपाकार है, वरदाभरण से रहित है सर्वलोको का स्वामी यह दून्व आत्मन्व है । अन्ते की नामनाएँ धनी भूमि के ध्यान से पूरी होती हैं ।^३

(1) Preface to Modern Buddhism—H. F. Sastri

(2) Modern Buddhism—N N Vasu

(3) यस्यान्तोन्नादिबध्यो न प कर अरणी नाभि वायो क्रिया ।

नाम्नरी नैववर्ष न च भयभरत्वं नास्ति यस्मिन्नि वरय ।

योवीर्द्धादिनय्यं तासद्वगने सर्वसोरेक नाथ

भक्तानां नामपूरं गुरुरवरन्दं किन्तयद् दून्वपुस्तिकम्—बहो

निराकार सूत्र्य (ब्रह्म) को शक्ति का विषय समझाई पंक्ति ने किस प्रकार बनाया है, यह स्पष्ट है। 'नियन्त्र शक्ति' के विकास में 'सूत्र्यपूजा' एक महत्त्वपूर्ण श्रुत है।

महान् आत्मज्ञ के पदपात् बौद्धों ने दक्षिणी भारत में—विजयनगर, कर्नाटक में अपने केन्द्र स्थापित किये। उड़ीसा में आज भी बौद्धधर्म प्रचलित है। उड़ीसा में 'बापुरी' शक्ति का विश्वास है कि प्रारम्भ में 'सूत्र्य' या इस 'सूत्र्य' की पुजा से बापुरी या बापुरी (पुजा से उत्पन्न) शक्ति की उत्पत्ति हुई है।

नेपाल के 'स्वयंभूपुराण' में शक्ति बुद्ध या स्वयम्भू को 'सूत्र्यमहाप्रभु' कहा गया है। वेदमता आदिमता तथा प्रजा भी इसी के नाम हैं। 'सिद्धान्तहम्बर' में बौद्धमत इस प्रकार है—

'ओं सूत्र्य ब्रह्मणे नमः'

इस शक्ति की गायत्री विधि है—

ओं-सिद्धदेवः सिद्ध धर्म बरेण्यस्य धीमही।

शक्तिं धीमही धीमही नः सिद्धदेवो भवेत्सदात्।

'बुद्ध धर्म' गण्ड्यामि शक्ति के स्थान पर इस गायत्री का पाठ होता है। इसमें 'सिद्ध' शब्द सिद्धार्थ (मीनम बुद्ध) के लिए सिद्धधर्म प्रज्ञापारमिता के लिए तथा सिद्धदेव सिद्धसंघ के लिए प्रयुक्त हुआ है।

'सिद्धान्तहम्बर' में तथा सिद्ध है। श्रीमत्तन्त्र नियम में एक 'बाहुमन्त्र' का उल्लेख है 'मदनपारिजात' में भी इस शक्ति का उल्लेख है। इस शक्ति में भी शक्ति शक्ति है अतः इस शक्ति का सम्बन्ध सम्भवतः 'बापुरी' शक्ति के साथ रहा होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

उड़ीसा में १९ वीं शताब्दी में अच्युतामन्दराज पद्मप्रसादास पद्मप्रसादास तथा शैल्यगाम नामक महान् वैष्णव कवि हुए हैं। अच्युतामन्दराज की रचना है 'सूत्र्य-शक्ति' इति शैल्यस्यप्रशय के सिद्धान्तों के साथ-साथ सूत्र्य उपासना एवं स्तवन भी मिलता है। इनके 'निराटवीरा' में कहा गया है कि सूत्र्य ही ब्रह्म है,

(१) सिद्धान्तहम्बर—१९ वीं शताब्दी में उड़ीसा में बनपदसदास द्वारा रचित यह 'नियन्त्रशक्ति' नामक ग्रन्थ की टीका है—इत्यम्—

इसमें 'निरंजन' हुआ ^२ इस प्रकार एक परम अवतार हुआ। महामुन्य शुभ्यपुत्र्य तथा नाम एक ही ब्रह्म की संज्ञा कही गई है। शुभ्य पुरुष ही जीव के रूप में बरस जाता है। यह शुभ्य पुरुष बड़ा गटबट है। २३ कारण ३ मत, ६ षड्, २० अक्षर एवं ३२ माङ्गिमां छत्र 'शुभ्य' की रक्षाक हैं, वहीं शुभ्य छटस्य होकर संसार का भीम करता है।

बाबुरी काति आनन्दस उड़ीसा में अस्पर्श है, परन्तु 'सिद्धान्तसम्भार' में उसकी भी यह कारण दिया गया है कि कलिभुज में बाबुरी अस्पर्श रहेंगे परन्तु उनके शरीर के स्पर्श से सारे पाप बुल लकटे हैं विष्णु ने मायाशक्ति से उन्हें गुप्त कर रखा है। सोच इस रहस्य से अपरिचित हैं अथवा बाबुरियों को स्पर्श कर पापों से मुक्त न हो पाते।

बाबुरी काति आनन्दार का कबीर की तरह ही खंडन करती है। कंतमुंठ होकर सुन्यमंत्र रूप से त्रिपुटी में ध्यान लवाने से युक्ति होती है।

उड़ीसा का राधा-कृष्ण सम्बन्ध भी शुभ्यवाद से प्रभावित है। बुन्दारक्त मधुरा एवं बन्धुजीर्ण महामुन्य में स्थित हैं। गुप्त बुन्दारक्त को कोई नहीं जानता। कृष्ण शुभ्य पुत्र्य है। बल्लुगः यह बौद्धमत है। ब्राह्मणों को भोक्ता देने के लिए केवल कृष्ण बुन्दारक्त का नाम शुभ्य के साथ जोड़ दिया गया है। पीठाभागत रूप पीठ लक्षण किया गया है।^३

बलरामदास ने एक 'गुप्तपीठा' की रचना की है। इसमें लिखा है कि कृष्ण के पुत्र अनिस्त उड़ीसा के राजा प्रतापराज के समय बलरामदास के रूप में अवतार

(१) अत्रुन—पीठर रूप रति नाहीं शुभ्य पुरुष देखी ।

कृष्ण—धीरि बोलने हो गुप्त पाण्डुन ।

ब्रह्ममहिमा ठले कहिवा वैरान्त

महामुन्यहु जो ब्रह्म बोलि कहि

से ब्रह्म रूप होइला निरंजन देखी ।

निरञ्जन छार-हीला परम अवतार

परम आनन्द बीम होइला बाह्यर

(२) पीठाभागत पुराण पढ़िवा कहिवा बाबुरी बिब ।

उरम अनाचार नाम ब्रह्मभेद न पाई ध्यपदिष—

अनाचार छटिना-अधुना नददास

मेमा । इन्द्र प्रलयान भी में 'दाकबहा' बनेमे । बमराम के 'प्रलयगीता' में एक मनोरंजक कहानी है । राजाप्रणयद्वय को पता चला कि बमराम ने गीता की रचना की है । ब्राह्मणों ने कहा कि शुद्ध घास मिथता है, अतः यह बडनीय है । तब बमराम ने कहा कि श्रीमति भयवान पर किसी का एकाधिकार नहीं है । ईश्वर भक्त का है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल ।^१ बमराम ने तब छिड़ दिया कि यह ज्ञान के अधिकारी है, उन्होंने ब्राह्मणों को यह वेदान्त (कस्तुतः शुन्धवाद) सुनावा ब्राह्मण पराजित हो गए ।

इस कथा से स्पष्ट है कि निम्न जातियों को अपने अधिकार के लिए घास निपटते-बड़ते से और क्षय रूप में अपनी परंपराओं की रक्षा करनी पड़ती थी । वर्गाध्ययन एक ब्राह्मण आचारवाद के विरोधी धर्मों संग और भक्त दत्तान्तियों तक ब्राह्मणधर्म से लड़ते रहे । भारतीय धर्म संघर्ष के लिए इस 'बिष्णु-बीड' सम्प्रदाय का अनुशीलन आवश्यक है ।

शैत्रयदास ने 'बिष्णुधर्म' में लिखा है कि बिष्णु एक तृती पीच है । अनेक (अनेक) ही शुन्ध है, अमल का माया से उत्पन्न रूप है 'निराकार । निरकार से धर्म का विकास हुआ है ।

तब अनेक से ६ रूप उत्पन्न हुए ६ रथों से ६ बिष्णु उत्पन्न हुए । अनेक ने ही ब्रह्मा की रचना की । चार निराकारों से चार ब्रह्मा बने । नेपाल में अनेक को ही 'महाबिष्णु' माना गया है । चूंकि 'बधमान' में अर्धोमादि ध्यानी बुद्धों के पीचरथ वर्णित हैं अतः १ रथों में १ बिष्णु तथा अनेक इन प्रकार ६ बिष्णु उत्पन्न हुए यह मान लिया गया ।

उड़िया 'बिष्णु-बीडों' में सा सम्प्रदाय है १ धर्म मही निरंजन है । यह शुन्ध रूप है मृत्ति का करण है । २ धर्म हीनत्व है । नेपाल में भी धर्म को ही कहा गया है, उत्तरी मूर्ति भी एक देवी के रूप में है ।

(१) प्रतापद्वय महाराजा बने बौद्धे बहूपर्मा ।

प्रथम वेदवादमान कि अधिकारे पूद ज्ञान ।

शुभ है शुभ प्रकृति बाह्यारि मोहन्ति थीपति ।

मत्तजनकर से हरि, रिप चाण्डाल से जानि करि—

उसमें 'निरंजन' हुआ ^२ इस प्रकार एक परम अन्तार हुआ। महाशून्य शून्यपुरुष तथा नाम एक ही ब्रह्म की संज्ञा कही गई है। शून्य पुरुष ही जीव के रूप में बदल जाता है। यह शून्य पुरुष बड़ा मटकटा है। २५ कारण ५ मन ६ अक्ष, ५० अक्षर एवं ७२ मात्रिका उस 'शून्य' की रक्षक हैं। वहीं शून्य लक्ष्य होकर संसार का मोक्ष करता है।

बाबुरी जाति आजकल उड़ीसा में अस्पृश्यों है, परन्तु 'सिद्धान्तदम्बर' में उसकी भी यह कारण लिखा गया है कि कसियुग में बाबुरी अस्पृश्य रह्ये परन्तु उनके शरीर के स्पर्श से सारे पाप बुझ सकते हैं। बिष्णु ने मायाशक्ति से उन्हें पुनः कर रखा है। मोक्ष इस रक्षक से अपरिच्छिन्न है। अन्यथा बाबुरियों को स्पर्श कर पापों से मुक्त न हो जाते।

बाबुरी जाति बाह्याचार का कबीर की तरह ही खंडन करती है। अंतर्मुख होकर शून्यमंत्र जप से, त्रिमुटी में ध्यान लवाने से मुक्ति होती है।

उड़ीसा का उषा-कृष्ण सम्प्रदाय भी शून्यवाद से प्रभावित है। कृत्याकन मधुरा एवं अन्यतीर्थ महाशून्य में स्थित हैं। पुनः कृत्याकन को कोई नहीं जानता। कृष्ण शून्य पुरुष है। बस्तुनः यह बौद्धमत है। बाह्यनों को बोधा देने के लिए केवल कृष्ण कृत्याकन का नाम शून्य के साथ जोड़ दिया गया है। गीताभागवत का मोक्ष खंडन किया गया है।^१

बलरामदास ने एक 'पुस्तकीता' की रचना की है। इसमें लिखा है कि कृष्ण के पुनः अनिदह उड़ीसा के राजा प्रतापराज के समय बलरामदास के रूप में अन्तार

(१) अर्जुन—तोहर रूप रवि नाही शून्य पुरुष देही।

कृष्ण—भीहरि बोधते हो शुभ पाण्डुपुत्र।

ब्रह्ममहिमा तबो कहिवा बेदास

महाशून्यपु जो ब्रह्म बोधि कहि

से ब्रह्म रूप हीना निरंजन देही।

निरंजन बार-हीना परम अन्तार

परम बापद जीव होइना बाहार

(२) गीताभाष्यन पुराण पढ़िवा कहिवा बाबुरी विव।

उत्पन्ननाचार नाम ब्रह्ममेव न पारं अपरिच—

मनाचार उद्दिना-अध्यात्मरत्नाम

मेगा। इन्में अग्रप्रथम श्री म 'वास्तुब्रह्म' बनेये। बभराम के 'प्रणवगीता' में एक मनोरंजक कहानी है। राजाप्रभाषकर को पता चला कि बभराम ने गीता की रचना की है। ब्राह्मणों ने कहा कि शूद्र घाघ सिलसला है, अतः वह बंधनीय है। तब बभराम ने कहा कि धीपति भगवान पर किसी का एकधिकार नहीं है। ईश्वर भक्त का है, चाहे वह ब्राह्मण हो या बाम्बाल।' बभराम ने तब किछु किया कि वह ज्ञान के अविनाशी है, उन्होंने ब्राह्मणों को यह वेदान्त (वस्तुतः शून्यवाद) सुनाया ब्राह्मण पराजित हो गए।

इस क्या से स्पष्ट है कि विष्णु जातिवों को अपने अधिकार के लिए घाघ नियते-पड़ते ने और छत्र रूप में अपनी परंपराओं की रक्षा करनी पड़ती थी। बर्चस्वमयर्ष एक ब्राह्मण आचारवाद के विरोधी मर्षी और भक्त एतादृशियों तक ब्राह्मणवर्ष से सड़ते रहें। भारतीय धर्म संघर्ष के लिए इस 'बीजव-बीज' सम्प्रदाय का अनुशीलन आवश्यक है।

वेगम्यवास ने 'विष्णुगर्भ' में लिखा है कि विष्णु एक नहीं पाँच हैं। अनेक (बभराम) ही शून्य है, अनेक का भाव य अल्प रूप है 'निराकार'। निराकार से धर्म का विकास हुआ है।

तब अनेक से ६ रंग उत्पन्न हुए ६ रंगों से ६ विष्णु उत्पन्न हुए। अनेक ने ही ब्रह्मा की रचना की। चार निराकारों से चार ब्रह्मा बने। नेपाल में अनेक को ही 'महाविष्णु' माना गया है। चूंकि 'बध्यमान' में अद्योनादि प्यानी बुद्धों के पाँचरंग वर्णित हैं अतः २ रंगों में २ विष्णु तथा अनेक दस प्रकार ६ विष्णु उत्पन्न हुए, यह मान लिया गया।

उड़िया बीजव-बीजों में दो सम्प्रदाय हैं १ धर्म यही निरंजन है। यह शून्य रूप है, मूर्ति का रूप है। २ धर्म एतीतल है। नेपाल में भी धर्म को एही कहा गया है उधर ही मूर्ति भी एक देवी के रूप में है।

(१) पत्रावट महाराजा, बीजे बीजे ब्रह्मप्या।

प्रणव वेदवादभास कि अधिकारे धूत मान।

शुभ है मुर यजपति, वाहारि मोहमि धीपति।

मत्तनकर से हरि, विप्र बाणनाम से आर्ति करि—

उसमें 'निरंजन' हुआ ^२ इस प्रकार एक परम अवतार हुआ । महासूक्त्य शून्यपुरुष तथा नाम एक ही ब्रह्म की संज्ञा कही गई है । शून्य पुरुष ही जीवके रूप में बतल जाता है । यह शून्य पुरुष ब्रह्म मण्डल है । २५ कारण २ मन १ ब्रह्म ५० अक्षर एवं ७२ भावियाँ उस 'शून्य' की रक्षक हैं । ब्रह्मी शून्य तन्मय होकर संसार का भोग करता है ।

बाहुरी जाति आजकल उड़ीसा में अल्पसंख्य है, परन्तु 'सिद्धास्तम्बर' में उसकी भी यह कारण दिया गया है कि कलियुग में बाहुरी अल्पसंख्य रहेंगे परन्तु उनके शरीर के स्पर्श से सारे पाप क्षुण्ण सफ़्तो हैं । विष्णु ने मायाशक्ति से उन्हें गुप्त कर रखा है । सोच इस रहस्य से अपरिचित हैं, अन्धकार बाहुरियों को स्पर्श कर पापों से मुक्त न हो जाते ।

बाहुरी जाति बाह्याचार का कबीर की तरह ही लंघन करती है । अंतर्मुंढ होकर शून्यसंज्ञक रूप से त्रिकुटी में ध्यान मनाने से मुक्ति होती है ।

उड़ीसा का राजा-कृष्ण सम्प्रदाय भी शून्यवाद से प्रभावित है । कृष्णकल मधुरा एवं अन्वतीर्थ महाशून्य में स्थित हैं । गुप्त कृष्णवन को कोई नहीं जानता । कृष्ण शून्य पुरुष है । बस्तुतः यह बीजमण्डल है । बाह्यार्थों को धोखा देने के लिए केवल कृष्ण कृष्णकल का नाम शून्य के साथ जोड़ दिया गया है । गीताभागवत का घोर लंघन किया गया है ।^१

बसंतमवांस में एक 'कुमवीता' की रचना की है । इसमें लिखा है कि कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध उड़ीसा के राजा प्रतापराज के समय बसंतमवांस के रूप में अवतार

(१) अर्जुन—तीर्थ रूप रवि नहीं शून्य पुरुष देखी ।

कृष्ण—भीहरि बोधने हो शून्य पाण्डुसुत ।

ब्रह्मसहिमा लोटे कहिबा वेदान्त

महासूक्त्यु जो ब्रह्म बोधि कहि

से ब्रह्म रूप हीहमा निरंजन देखी ।

निरंजन बर-हैमा परम अवतार

परम बाबब जीव होइना बाहार

(२) नीताभागवत पुराण पढ़िबा कहिबा आनुरी दिव ।

तरप बनाहार नाम ब्रह्मभेद न पाई व्यर्थहेक—

बनाहार उठिना-अधुनामंरराज

सेवा । कृप्य जगन्नाथ भी में 'वारुण्य' बनेंगे । बसुराम के 'प्रणवपीठा' में एक मनोरंजक कहानी है । राजाघनापराह को पता चला कि बसुराम ने गीता की रचना की है । ब्राह्मणों ने कहा कि शुक घाघ मिथठा है, अतः शुक दंडनीय है । तब बसुराम ने कहा कि धीपति भगवान पर किसी का एकधिकार नहीं है । ईश्वर मक्त का है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल । बसुराम ने तब सिद्ध किया कि वह ज्ञान के अधिकार है, उन्होंने ब्राह्मणों को यह वेदान्त (स्तुत शून्यवाद) सुनाया ब्राह्मण पराजित हो गए ।

इस कथा से स्पष्ट है कि निम्न जातियों को अपने अधिकार के लिए ध्यान सिध्दते-श्रुते ने और छत्र रूप में अपनी परंपराओं की रक्षा करनी पड़ती थी । वर्णभेदधर्म एक ब्राह्मण आचारवाद के विरोधी धर्मों से और मक्त सत्ताधियों तक ब्राह्मणधर्म से सड़ते रहे । भारतीय धर्म संपर्क के लिए इस 'बौद्ध-बौद्ध' सम्प्रदाय का अनुशीलन आवश्यक है ।

वैतन्म्यशास्त्र में 'विष्णुगर्भ' में लिखा है कि विष्णु एक नहीं पाँच हैं । अनेक (अनेक) ही शून्य है, अनेक का माया से उत्पन्न रूप है 'निराकार' । निराकार से धर्म का विनाश हुआ है ।

तब अनेक से ६ रंग उत्पन्न हुए ६ रंगों से ६ विष्णु उत्पन्न हुए । अनेक ने ही ब्रह्मा की रचना की । चार निराकारों से चार ब्रह्मा बने । नेपाल में अनेक को ही 'महाविष्णु' माना गया है । चूंकि 'बच्चाल' में अतीमात्रि ध्यानी कुओं के पाँचरंग बर्णित हैं अतः ३ रंगों से ३ विष्णु तथा अनेक इन प्रकार ६ विष्णु उत्पन्न हुए, यह मान लिया गया ।

उद्दिष्टा बौद्ध-बौद्धों में ही सम्प्रदाय हैं १ धर्म यही निरंजन है । यह धूम रूप है मृत्ति का करण है । २ अथ एतन्नरुण है । नेपाल में भी धर्म को एही जन्म गया है उसी भूमि भी एक देवी के रूप में है ।

(१) पञ्चापराह महाराजका नये बौद्धके कल्पवर्षः ।

धर्मक वेदवाहमान कि अधिपारे धूम ज्ञान ।

शुभ है शुभ यज्ञपति, पाहारि नोहृमि धीपति ।

मत्तन्नरुण से हरि बिच चाण्डाल से जानि करि—

उसमें 'निरंजन' हुआ ^२ इस प्रकार एक परम अवतार हुआ। मन्दाग्न्य शून्यपुरुष तथा नाम एक ही ब्रह्म की संज्ञा कही गई है। शून्य पुरुष ही जीव के रूप में बदल जाता है। वह शून्य पुरुष बड़ा नटखट है। २५ कारण ५ मन १ चक्र, ५० अक्षर एवं ७२ नादियाँ उस 'शून्य' की रसक हैं। वही शून्य उदस्य होकर संसार का भोग करता है।

बाबुरी जाति आशकल जड़ीसा में अस्पर्स्य है, परन्तु 'सिद्धान्तदम्बर' में उल्टी भी यह कारण लिया गया है कि कमिपुत्र में बाबुरी अस्पर्स्य रहते परन्तु उनके शरीर के स्पर्श से छारे पाप कुल लफटे हैं। विष्णु ने मायाशक्ति से उन्हें कुल कर रखा है। मोक्ष इस रहस्य से अपरिचित है, बन्धना बाबुरियों को स्पर्श कर पापों से मुक्त न हो जाते।

बाबुरी जाति बाह्याचार का कबीर की तरह ही खंडन करती है। अंतर्मुख होकर सून्यमंत्र काप से, निकुटी में ध्यान सजाने से मुक्ति होती है।

जड़ीसा का राधा-कृष्ण सम्प्रदाय भी शून्यवाद से प्रभावित है। कृष्णाकल मधुरा एवं अन्पतीर्थ महाशून्य में स्थित हैं। गुप्त कृष्णवन को कोई नहीं जानता। कृष्ण शून्य पुरुष है। बल्लुनः यह बीडमंत्र है। बाह्यार्थों को बोझा देने के लिए केवल कृष्ण कृष्णाकल का नाम शून्य के साथ जोड़ दिया गया है। पीठानागवत का घोर खंडन किया गया है।^३

बल्लुनवाच ने एक 'सुसमीठा' की रचना की है। इसमें लिखा है कि कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध जड़ीसा के राजा प्रतापराज के समय बल्लुनवाच के रूप में अवतार

(१) अर्जुन—तोहर रूप रवि नाही शून्य पुरुष बेही।

कृष्ण—बीहरि बीदने हो शुभ पाण्डुमुठ।

ब्रह्मनिहिमा लोले कहिषा बेदान्त

मन्दाग्न्यकु जो ब्रह्म बोनि कहि

से ब्रह्म रूप होहमा निरंजन बेही।

निरञ्जन बाह-हेमा परम अवतार

परम बाधक बीज होहना बाहार

(२) पीठानागवत पुराण पढ़िवा रहिवा चानुदी विष।

तत्त्व अनाचार नाम ब्रह्मिद न पाई ध्यर्षिद—

अनाचार संहिना-अध्ययानरदास

सिगा। इन्म जगत्प्राय भी में 'शालग्राम' बनेगे। बलराम के 'प्रणवगीता' में एक ममोरंबक कहानी है। राजाप्रतापराज को पता चला कि मगराम ने गीता की रचना की है। ब्राह्मणों ने कहा कि शूद्र धात्र मिथता है, अतः वह दहमीय है। तब बलराम ने कहा कि धीपति भगवान पर किसी का एकविचार नहीं है। ईश्वर मरुत का है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल।^१ बलराम ने तब सिद्ध किया कि वह ज्ञान के अधिकारी हैं उन्होंने ब्राह्मणों को यह शैबान्त (बलुत शुभ्यवाद) सुनाया ब्राह्मण पराजित हो गए।

इम कथा से स्पष्ट है कि निम्न जातियों को अपने अधिकार के लिए क्षान्न सिद्धते-सङ्गते से और उच्च रूप में अपनी परंपराओं की रखा करनी पड़ती थी। वर्णाश्रमधर्म एक ब्राह्म आचारवाह के विरोधी मर्मों संग और भक्त घटावियों तक ब्राह्मणवर्ग से सङ्गते रहे। भारतीय धर्म संघर्ष के लिए इस 'बीजक-बीज सम्प्रदाय का अनुसंधान आवश्यक है।

शैवस्यराज ने विष्णुमर्म में लिखा है कि विष्णु एक नहीं पाँच हैं। अनेक (प्रसंग) ही शून्य है असत का माया से उत्पन्न रूप है 'निराकार'। निरकार से धर्म का विकास हुआ है।

तब असत से १ रग उत्पन्न हुए १ रंगों से १ विष्णु उत्पन्न हुए। असत ने हा ब्रह्मा की रचना की। चार निराकारों से चार ब्रह्मा बने। नेपाल में असत को ही महाविष्णु माना गया है। चूंकि 'बय्याज' में अणोभादि ध्यानी कुर्षों के पाँचवें वर्णित हैं अतः १ रंगों से १ विष्णु तथा असत इम प्रकार १ विष्णु उत्पन्न हुए यह मान लिया गया।

उद्दिष्टा बीजक-बीजों में दो गणप्रदाय हैं १ धम मही निर्जन है। यह शून्य रूप है, मृच्छि का करण है। २ धर्म रजोत्पन्न है। नेपाल में भी धर्म को रती कहा गया है उठरी मूर्ति भी एक देवी के रूप में है।

(१) प्रशापराज महाराजा को भोइसे बहपन्या।

पणव वेदवाटमान कि अधिकारी दूड मान।

शुभ है मूड मरुपनि, बाहारि मोहृमि धीपति।

बलरामकर से हरि, गिप चाण्डाल ने जानि करि—

धनवयोगा—धमराजदास

१८वीं शताब्दी में बुद्धपुत्र तथागत माथ नामक बुद्धमिस्र, तिब्बत से भारत-यात्रा करने आया था, वह उड़ीसा के 'हरिमंत्र' चैत्य में ठहूँटा था अतः बौद्धधर्म उड़ीसा में मृत नहीं हुआ था।

बौद्ध धर्म की अवस्था के बारे में हमें बौद्ध-बौद्ध की महाशक्ति या निर्वाण की ही बौद्ध कहते हैं।

इसमें इष्टयोग का भी प्रचार था। बलरामदास के अनुसार योरथनाम इष्टयोग के प्रवर्तक थे। यौग अतिरिक्त शक्ति भी इनके यहाँ स्वीकृत है। उड़ीसा के बौद्धों ने प्रजापद राजा के दमन से विचलित होकर बौद्धधर्म को स्वीकार कर लिया था परन्तु गुप्तकाल से वे अपने को 'गुप्त बौद्ध' कहते थे उनका विश्वास था कि कस्मिन्सुप में बौद्धधर्म पुनः उत्था है। अतः बुद्ध का वास्तविक ही अवतार है गुप्त रूप 'बुद्ध' है। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर यह बौद्ध देते हैं कि ज्ञान में प्रथम प्रथम करने के लिए वैदिक युवा का नाश करने के लिए तथा निरुक्त ब्रह्म की आराधना के लिए ही बुद्ध का अन्तर्गत होगा। धर्मधर्म में इसके विच्छेद महत्त्व था कि अनुष्ठान को मोहित करने के लिए ब्रह्म बुद्ध का रूप हीकर देव में (उत्तम ?) अन्तर्गत लगे। इस प्रकार बौद्धधर्मधर्म से विचलित होकर ही बुद्ध को द्वावतार में अभिहित किया था और साथ ही बौद्धधर्म के विच्छेद पुनः भी प्रवृत्त की थी। इसके विपरीत अन्वेषणधर्म में लिखा है कि धीन सहस्र बौद्ध अपने को बुद्ध रचकर समय पाठ रहे हैं और बुद्ध के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उड़ीसा में अभी हाल में 'ब्रह्मधर्म' नामक एक चैत्य खोज में मिला है। शीतला एक चर्मदेवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ एक चैत्य पाठि है जो अभी तक 'चर्मदेवी' के नाम पाठी है।

उड़ीसा में १६वीं शताब्दी से प्रचलित 'महिमा-धर्म' भी बौद्धधर्म का ही एक रूप है। इस धर्म में भी कहते हैं।

(१) वेद धर्म सुदृश्य विद्युत् रूप में प्रचारिते ।

सामान्य इह द्वारे, बनि अत्रिच गुण रे ।

(२) तत्र बनी तत्र-बुद्ध चर्मदेव्य सुप्रतिपासु

बुद्ध नाम्ना ब्रह्मपुत्र रचिरेणु भविष्यति—धीन-आपराज

भीमभीह खरसिद्धास ने महिमाधर्म का प्रचार किया। कमिभायवत इसकी प्रसिद्ध रचना है। स्वयं 'अशेष' (शुद्ध) ने भीम को बौद्धधर्म के प्रचार के लिए प्रेरित किया था। यद्यपि भीमभीह मीथ जाति का था परन्तु भक्ति द्वारा इसने जाति-प्राति के बन्धन तोड़ने में बड़ा योगदान दिया है। उच्चजाति के लोग भी इसके विषय बने।

उड़ीसा में बौद्धधर्म का यह रूपान्तर भारतीय धर्मसाधना का अत्यधिक मनीरंजक एक चिरायत उदाहरण है। यन्त्रों के आक्रमण के पश्चात् बौद्धधर्म किस प्रकार आज तक इस देश में माना एवं बरत कर जीवित रहा है, उत्पन्न का वैष्णव धर्म इसका सारी है। उड़ीसा तथा बंगाल के अतिरिक्त मध्यदेश के वैष्णव धर्म एक संन मत की पुण्डभूमि में बौद्धमत का महत्त्वपूर्ण हाथ पड़ा है। तांत्रिक बौद्धमत से प्रभावित बंगाली वैष्णवों ने बल्लभ हरिदास हितहरिवंश आदि की विचारधारा और साधना-मूर्ति को दूर तक प्रभावित किया है। संनमत तो बौद्ध सिद्धों की परंपरा की ही एक शृंखला है।

वैष्णव तथा संनमत के अतिरिक्त अनेक स्थानीय देवी-देवताओं उनकी उपासना-मूर्तियों तथा मोहाचारों में तांत्रिक बौद्धमत अब भी जीवित है।

संत-वैष्णव सम्प्रदाय तक पहुँचने वाली तत्त्व

संत काव्य

(१) पारमार्थिक गंगा प्रायः अमावस्य में परे है। खीर-दादु आदि क
ब्रह्म पर प्रणव ।

(२) आत्मा या केला निन्द्यं च है जगत् परम है ।

(३) कुंडलिनीयोग

(४) महामुग्ध

(५) महत् उग्रम पापम आदि विनोय अनुभव

(६) भक्तिभाव

(७) बाह्याचार का गहन

(८) धारत निरपेक्षता स्थानुभव पर बर

- (९) किररीत कफन-पद्धति तथा प्रतीक-पद्धति
 (१०) वेदव्यसूक्तशा

वैष्णव सम्प्रदायों पर प्रभाव

- (१) संसार (जगत नहीं) दुःखमय है (बल्लभ)—इस बारम्हा पर बौद्ध प्रभाव ।
 (२) जगत् प्रलय है, दुःखमय है—दुस्तही-जस
 (३) सत्ता अनाङ्गमनसपोषर
 (४) सुग्रावती स्वर्गनाथ का वृष्णभक्तों के योसोक्तवाच पर प्रभाव ।
 (५) मुनन्द—यत्किंयुक्त वेकना का ध्यान
 (६) यय्याय बावता
 (७) काया-विहाय
 (८) मुक्ति की आनेववादी कल्पना
 (९) राम एक वृष्ण के जगत उधारक रूप पर बुद्ध का प्रभाव ।
-

पाञ्चरात्र-मत

यथा भगवते सस्मै, स्वकीयात्मसमर्पणम् ।
विपुक्तं प्रहृतेः शुभं, दद्यादात्मदृवि स्वमम् ।
अहिर्बुध्न्यमंहिता ।

इन्द्रव को आत्मसमर्पण कर देना ही आत्महृत्वि अथवा आत्मयज्ञ है, मह तमी सम्भव है, जय जीव प्रकृति के आकर्षण से अपने को मुक्त कर से !

पाञ्चरात्र मत

सांख्य दर्शन एक साधना के इतिहास में पाञ्चरात्र मत का स्थान महत्वपूर्ण है। पाञ्चरात्र-संहिताओं अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार सांख्य और अन्य शाक्त मत, वैष्णव या भाष्यतत्पर्य के साथ मिश्रित रूप में प्राप्त होये हैं और फिर किस प्रकार इसी मिश्रित रूप से सांख्य तथा वैष्णव साधनाएँ और दर्शन भिन्न भिन्न मार्ग ग्रहण करते हैं यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार ये भिन्न-भिन्न रूप परस्पर विरोधी मत नहीं हैं, बरिन्तु इनमें आपार भूत एकता सर्वत्र दिखायी पड़ती है।

थेडर के अनुसार पाञ्चरात्र संहिताओं की संख्या २१० है जिसका नाम भी थेडर न दिये हैं। इनमें पौन्डर सात्त्विक एवं अनात्म्य संहिताएँ सबसे अधिक प्रामाणिक और प्राचीन मानी जाती हैं। दार्शनिक साधना की दृष्टि से अद्वैतस्य संहिता की अधिक महत्व दिया जाता है। अन्य महत्वपूर्ण संहिताओं में अष्टादश, ब्रह्मवैवर्त, सतकुमार परम पद्योद्भव माहेन्द्र नामक षड तथा ईश्वर संहिता के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त संहिताएँ ८ की पठायी तक अवश्य निमित्त हो गई होंगी, किन्तु उपर्युक्त संहिताओं के अतिरिक्त अन्य संहिताओं का समय अनिश्चित है। प्रायः वे ८ की पठायी के बाद लिखी जाती रहीं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'तार'-पाञ्चरात्र से प्रचलित संहिता का भी थेडर अनौद्योगिक मनीय रचना मानते हैं और उसे पाञ्चरात्र प्रामाणिक नहीं मानते (१) डॉ० अंदाकर एवं डॉ० पद्मिभूषण दास मृत भी उनके साथ सहमत हैं।

(1) Introduction to the Panchratra and the Ahirbudhnga Sambhita Tr O Schrader Adyar Library, Madras 1916

(२) श्री राधा का रूप विकास-दर्शन और साहित्य—पृष्ठ २३ डॉ० पद्मिभूषण दास मृत, हिन्दू प्रचारक पुस्तकालय, बाराणसी

प्रथम संस्करण, संवत् २०००

(3) Introduction to Panchratra—Page 3

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यहिर्भुज्य संहिता की रचना कश्मीर में हुई थी। उपर्युक्त केन्द्र ने इस संहिता का भी अन्य संहिताओं के साथ उल्लेख किया है।^१ याने के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार कश्मीरी शैव दर्शन एवं पाञ्चरात्र दर्शन में आचारमूत्र एकता दिखायी पड़ती है।

स्रोत—पाञ्चरात्र मठ प्रार्थनामन्त्र है। डॉ० एच० एन० दास गुप्त के अनुसार पाञ्चरात्र का स्रोत ऋग्वेद का पुरुषसुक्त है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि नारायण पाञ्चरात्र नामक यज्ञ को सम्पन्न कर सर्वोपरि प्रतिष्ठित हुए थे।^२ शतपथ में 'पाञ्चरात्र एव यज्ञ विद्येय के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। महाभारत के शांतिपर्व में स्वेतशीप की कथा है, बहुत आकर नारद को त्रिकुटा का उपदेश नारायण से मिला। यह स्वेतशीप कहाँ है, इस पर विद्वानों में विचार रखा है, श्री धेंडर का अनुमान है कि स्वेतशीप की कथा से भारतवर्ष के उत्तरीय पर्वत-प्रदेश संकेतित है। यह अनुमान सत्य प्रतीत होता है, क्योंकि पाञ्चरात्र संहिताओं का निर्माण सर्वप्रथम उत्तरी भारत में हुआ है। तत्परवान् उपर्युक्त निर्माण बलिष्ठ में भी होमे मया।^३

महाभारत को यदि पाञ्चरात्र मठ का आविर्भाव माना जाय तो यह कहना शक्य है कि महाभारत के समय में ही पाञ्चरात्र-भावना प्रबलित थी। यद्यपि इसका यह रूप जो प्राप्त संहिताओं में मिलता है, महाभारत से पर्याप्त निम्न है। उदाहरण के लिए महाभारत के शांति पर्व में 'तांत्रिक ठाणों का ध्यान' मन्त्र है^४ जबकि पाञ्चरात्र संहिताओं में 'तांत्रिक ठाणों का आहुत्य' है। इसके अतिरिक्त महाभारत में पाञ्चरात्र मठ में बर्णित पुनर्विधि एवं आचार (Rituals) नहीं मिलता।

डॉ० एम० एन० दास गुप्त ने बताया है कि हम यह निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि पाञ्चरात्र मठ वैदिक है या अवैदिक। यदि वैदिक माना जाय तो स्मृतिमानों में इसकी निम्न कथाएँ भी गई हैं? ^५ पाञ्चरात्र या भावधर्मों को उच्च

(१) यही पृष्ठ १६

(२) शतपथ ब्राह्मण (१३ ११)

(३) Introduction to Panchrastra, Page 16

(४) धेंडर के अनुसार महाभारत में भी 'तांत्रिक ठाणों का ध्यान यज्ञ' मन्त्र है, यद्यपि शांतिपर्व में उक्त मन्त्र है—यही पृष्ठ १२

(५) History of Indian Philosophy Dr S. N. Das Gupta Vol III (1940) Page 15, Cambridge

शास्त्रों के साथ भोजन में नहीं बैठने दिया जाता था। डॉ० दास गुप्ता के अनुसार 'सात्वत' का अर्थ ही 'निम्न जाति है' व्यवसाय की दृष्टि से सात्वत लोग मूर्खि पर खड़ी हुई बोट, दीसा एक वान पर निर्भर रहते हैं। वे वैदिक यज्ञ नहीं करते। ब्रह्मि पुत्रा को सात्वत लोग व्यवसाय बना सके हैं। अतः उन्हें निम्न स्थान दिया गया है।^१ डॉ० दास गुप्त का अनुमान है कि पाञ्चरात्र में इच्छसिप पाञ्चरात्रों का संकलन किया है।

पाञ्चरात्र-शास्त्र वैदिक कर्मकाण्ड को 'कर्मसिद्धि' के लिए करणीय मानता है। सांख्य, योग और पाशुपत मतों को छाषना-छोषान के रूप में स्वीकार करता है, अर्थात् सांख्य, योगादि के परषदात्त श्रमता पाञ्चरात्र मत में प्रवेश होता है।

अर्थात्सा एव सिध्यन्ति सांख्यादिष्वपि च त्रिषु ।^२

आरोहन्तीच्छया तेष्वपि सात्वतं शासनं परम्—

पाशुपत और सांख्य स्पष्टतः अर्थात्क मत हैं, किन्तु पाञ्चरात्र उन्हें स्वीकार करता है। पाञ्चरात्रों में योसा की तरह कर्मकाण्ड और अथवान की उपासना में दूसरी 'रीति' को अधिक महत्व दिया है। यह भी एक कारण है कि 'वैदिक पाञ्च' को अर्थात्क कहने आए हैं—इष्टम्—

वेङ्कट महोदय के अनुसार 'पाशुपत मत' का अर्थ पाञ्चरात्र संहिताओं के अनुसार उद्यु बर्बर और सामनाशी 'पाशुपत मत' से नहीं है जिनकी निन्दा बर्णिक मतावर्गों करते रहे हैं। उनके अनुसार पाशुपत मत का अर्थ 'आममवादी' ही मत से है जिस पर बाद के हीन-सम्प्रदाय (उदाहरणतः बरवीर हीनमत) आधारित है। किन्तु 'आममवादी' हीनमत को भी अपनी सामानिकता सिद्ध करने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ा है और उन्हें संशुचित अर्थ में वैदिक माना भी नहीं जाना, यद्यपि उनमें बहुत से वैदिक सिद्धांत अथवा मत हैं, अथवा पाशुपत शब्द का कुछ

(१) वही, पृष्ठ १३

(२) वही

(३) अर्थात् संहिता, त्रितीय त्रिषु पृष्ठ १३२

(४) Introduction to Panchratra, Page 17

पाञ्चरात्रमत की 'ईश्वरसंहिता' में कहा गया है कि पाञ्चरात्रमत का नाम 'एकामय वेद' है। यह वेद से भी प्राचीनतर माना गया है, किन्तु बामुदेय ने सन, तनक एकस्मृजाति सनन्दा सनन्कुमार बरिषत तथा समाधन के सम्मुख इस मुद्रा मत का जन्माटन किया। ॥१॥ मत इसलिए उद्घाटित हुआ कि बेरों के पाठ परमार्थ तत्व को विस्मृत कर भौतिक भोगविसास में मग्न हो गए थे। इस धारणा का अर्थ है कि 'ईश्वरसंहिता' पाञ्चरात्रमत को वेद से भी प्राचीनतर मानती है और वेद को उसी की एक शाखा मानती है।^१ इसी संहिता में यह भी कहा गया है कि मूल 'एकामय वेद' ही सांख्यिक शास्त्र है, किन्तु जाने बलकर इस सांख्यिक पाञ्चरात्र शास्त्र में कुछ ऋषियों ने अपने नये सिद्धान्त मिलाए तब यह 'पाञ्चरात्र' हुआ और जब ऋषियों ने इसमें विषय किया तब यह शास्त्र 'उससात्र' हुआ।^२ इस कारण से भी यही पुष्ट होता है कि पाञ्चरात्र मत शुद्ध वैदिकमत नहीं है, इसमें अवैदिक लोगों से बहुत सी सामग्री आयी है।^३

वैदिक पद्धति पर ब्रह्म-याग करना ही बापों का पार्ष्वानुम धर्म है अतएव इस वैदिक धर्म में अन्य जानियों के विवाह एक साधनाएँ अंतर्भूत होती गईं। अद्वैत इन विराट् समन्वय का प्रथम प्रमाण है। उपनिषद्, गीता तथा महाभारत में वैदिक महाभार के अनिर्दिष्ट अनेक सम्प्रदायों एक साधनाओं को वैदिक धर्म के ऋषि में समेट लिया गया है जिन्हें मार्ग समाप्ती आनन्द वैदिक नहीं मानते। इसी प्रकार महाभारत के समय प्रचलित आनन्द या पाञ्चरात्रमत ने अवैदिक किन्माओं को स्वीकार कर लिया है। अति भुक्तिभोगा बुद्धययोग शक्तिवाद आदि तत्व को पाञ्चरात्र न मानते हैं बाहुर न भाव हैं। बाद में इन्हें वैदिक मित्र करने की चेष्टा की गई है जैसा कि उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट होता है।

भारतवर्ष के विचारक एक साधक की यह विवेचना रही है कि वह पृथ्वीय बन्धु को पक्ष कर छोड़ें किन्ती न किन्ती रूप में वेद के साथ अवश्य जोड़ने का प्रयत्न करना है। मन उनके मत को स्वीकृति मिला जानी है। पाञ्चरात्र मत भी ऐसा

(१) बरी पृष्ठ २१

(२) बरी पृष्ठ २१ ऋषिों द्वारा विभिन्न यज्ञ शास्त्र में दो वेद लिखे गए हैं—वेदान्त और पाषाण।

(३) The general trend of the panchrastra is clearly non—vedic—Schrader page—91

अपवाद नहीं है, किन्तु इतिहास के प्रकाश में यह स्पष्ट है कि भारतीय भागवत मत अनेक अथवा अन्य अनाथ जातियों से आर्य जातियों में स्वीकृत हुआ है और एकबार स्वीकृत होने के पश्चात् उसे वेद के अनुकूल धारण करने का अधिकारिक प्रयत्न हुआ गया है। मेघर महाशय ने भी स्वीकार किया है कि सामान्यतः पाञ्चरात्र मत अर्थात् है।

पाञ्चरात्र शब्द का अर्थ—'तत्त्व मुक्तिप्रद भक्तिप्रद, वैश्विक तथा वैदिक इन पाँच' प्रकार के ज्ञान वर्णन होने के कारण 'पाञ्चरात्र' शब्द व्यवहृत होता है। 'रात्र' शब्द का अर्थ ज्ञान किया गया है। 'तत्त्व' का अर्थ सृष्टि की उत्पत्ति है। मुक्ति प्राप्त करने के उपाय बताये गए हैं। भक्ति एवं योग ऐसे ही उपाय हैं। वैश्विक में इन्द्रियों के विषयों का वर्णन है।

भारत पाञ्चरात्र में 'रात्र' शब्द का अर्थ है 'दिवस' प्रकार 'हम ज्ञात नहीं' 'रात्र' में 'रात्र' शब्द का अर्थ 'रात्र' है जो पाँच दिन तक होता रहता था। ऐसा भीत होता है कि रात्रय में 'रात्र' शब्द को स्वीकार कर पाञ्चरात्र शब्द स्वीकार किया गया है और 'रात्र' का अर्थ 'ज्ञान' कर लिया गया है। इसका कारण यह है कि जिन प्रकार पाञ्चरात्र मत के कर्ता पाञ्चरात्र वेदाङ्गों में अन्तर्भाव, उन्हीं प्रकार पाञ्चरात्र मत का अन्तर्भाव वेदाङ्गों में अन्तर्भाव है। इसके अन्तर्भाव स्पष्ट भी पाँच है जिन पर इन शास्त्रों में बहुत जोर दिया गया है। अन्तर्भाव 'पाञ्चरात्र' शब्द से 'वैश्विक तत्त्वप्रद' यह अर्थ दिया जाना है।

विषय—पाञ्चरात्र शास्त्र में १० विषय हैं, दर्शन मंत्र यज्ञ माया योग अन्तिर-निर्माण प्रतिष्ठाविधि उत्सव वर्णनयन धर्म और उत्सव।

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि इन शास्त्रों में वेदों में भक्ति का विशेषत्व नहीं है, किन्तु योग मंत्र यज्ञ की भी विस्तृत चर्चा है और एही से स्पष्ट इन वेद-शास्त्रों में विभिन्न शास्त्र माना है।

द्वार—पाञ्चरात्र—अर्द्धिष्य अर्द्धिष्य में दुर्वासा से भारद्वाज प्रसन्न हुए थे और दुर्वासा उत्तर देते हैं। दुर्वासा कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वप्रथम भारद्वाज को अर्द्धिष्य से प्राप्त हुआ था अतः भारद्वाज और अर्द्धिष्य के संवाद द्वारा दुर्वासा भारद्वाज के सम्मुख इन शास्त्रों का आशय करते हैं। अर्द्धिष्य ११ पदों में से एक पद है। विषय का शाब्दिक रूप ही अर्द्धिष्य कहा जाता है। इसमें यह स्पष्ट है कि

मध्य आयनों का तरह पाञ्चराम भी एक आयन है जो द्वितीयपुत्र है, इस रूप से यह भी प्रभावित हो जाता है कि शेष सात एक बेजब मनों में आधारभूत एका इानी चाहिए क्योंकि तीनों मत शिव द्वारा ही उद्भूत हुए हैं। साथ ही यह भी पता चल जाता है कि शिव के मुख से उत्पन्न शालों में आयनेतर तत्त्वों की धर्मरुक्ति सबसे अधिक हुई है।^१

०

ब्रह्म—ब्रह्म अनारि अनन्त अघर, अण्ड्य अनाम अरुण एक अबाद्धमनस पावर है। शिन्नु इनने विशेषों काण निराकार ब्रह्म के वर्णन के परबालु पुनः अहिर्बुध्न्य ब्रह्म के सकुण रूप का भी वर्णन करते हैं। ज्ञापक यह ब्रह्म सर्वोत्तिमान है, पदुणों से मुक्त है। अपनी अनन्त शक्तियों के कारण ब्रह्म स्यक्त भ है और अम्यक्त भी साधार भी है और निराकार भी है। पुणों के बोध से पती ब्रह्म मयान ब्रह्माणा है, समस्तमृतपासी होने से उसे 'बामुदेव' कहते हैं। शिव एक रमणीयता के धर्म होने से उसे ही 'द्विरभ्यागर्भ' कहते हैं। कल्याणकारक होने से उसे 'शिव' कहा जाता है।^२ ज्ञान, शक्ति ऐश्वर्य, बल वीर्य और तेज इन छह गुणों से युक्त ब्रह्म इन पात की रचना में समर्थ होता है यद्यपि वह इन्द्रानीत है, यद्यपि अपनी शक्तियों से मृदुन करता है। पुना की व्याख्या से ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

मान का अर्थ है 'वितनउत्थ अघनि ब्रह्म का प्रथम गुण वितनता है। शक्ति का अर्थ है अघनि की उत्पत्ति एक प्रथम करने की सामर्थ्य। ऐश्वर्य का अर्थ है स्वतन्त्रतागुर्भट काय करने की शक्ति^३ बल वा अर्थ है जगत् रचना करने का भी

(१) अहिर्बुध्न्यश्रुति—एम०डी० रामानुजाचार्य द्वारा उपादिन त्रिन्व १
पृष्ठ १२

अठवार भागवती मंत्रम १६१६ ६० (प्रथम संस्करण)

(२) श्री गुरु १३ १६

(३) अत्रई स्यात्प्रथमं वि निर्णयं सर्वानुग्रहम्
मानं मानं गुणं प्रथमं गुणविश्रुता
अपन्निमानं व वा शक्ति परिशीलिताना
वर्णनं नाम प्रथमं स्यात्प्रथमं परिवृष्टिाम्
ऐश्वर्यं नाम तन्मोहं.....की, पृष्ठ १६

धाम्य न हुना । इते धमहानि' कहा गया है । उपादान होने पर भी बिन्दार से रहित रहना यह भी है । तेज का अर्थ है 'सहकार्यनेषा । किसी की सहायता क बिना ही ब्रह्म सृष्टि करने में समर्थ है ।' इस प्रकार ब्रह्म अपने गुणों द्वारा जगत् का उपादान होकर भी बिन्दार से रहित होता है । कर्ता होकर भी अकर्ता है । जेजना होकर भी पद तत्त्व की सृष्टि करता है, वह परम स्वच्छन्द और स्वामा है वही मोक्षा है और अमोक्ष भी है । परस्पर विरुद्ध गुणों का धायम है ।

द्वान में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ब्रह्म यदि 'उपादान' नहीं है तो ब्रह्म के अतिरिक्त किसी बाह्य पदार्थ को उपादान कारण मानना पड़ता है, जैसा कि सांख्य ने किया है ब्रह्म प्रकृति एवं पुरुष अन्वय-अलग है किन्तु इनसे 'ईत' का समघन होता है जो अन्वय अनेक कठिनाइयाँ लाता है परन्तु यदि ब्रह्म को ही उपादान कारण माना जाय तो उक्त 'बिन्दार' आने का भय रहता है, क्योंकि जेजम तत्त्व के बिन्दार आये बिना पद को उत्पत्ति केम हो सकती है? इसीलिए आषाय संकर के बिन्दार बाद का मिश्रण जोर निवास या और जगत् की सत्ता को अनिबर्धनीय माना या किन्तु मागबत मन को यह भी दृष्ट नहीं था । जगत् भी रहे और ब्रह्म भी, दोनों की सत्ता की रक्षा 'दक्षि-सिद्धांत' से इसीलिए कर गई है । ब्रह्म तो मन्वसक्ति मान है अतः वह उपादान कारण होकर भी अविच्छादी रहता है किता यदि मान किया जाय ता अज्ञ की भी रक्षा हो जाती है और जगत् की सत्ता भी निष्ठ हो जाती है । दक्षिण एवं शक्तिधाम की एकता स्वयं सिद्ध है और जगत् ब्रह्म का नहीं उद्यमी दक्षिण का कार्य है, अतः त्रिम प्रसार शेष एवं दक्षिणों के दक्षिण के मिश्रण द्वारा अज्ञ की रक्षा की है उसी प्रकार पाञ्चरात्र मन भी जगत् के अन्विष्य तथा ब्रह्म के अविचारस्व दोनों की रक्षा कर लेता है अतः मिश्रण शेष शास्त्र एवं अन्विष्य मय एक है ।

शक्तिवाद त्रिध दक्षिण से पाञ्चरात्र मन ब्रह्म को नारे भागों का कर्ता बनाकर भी उसे अविच्छादी रखता है, उसका स्वप्न क्या है ?

१ धमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्येनी जगत् ।

बर्न नाम गुणान्तस्य, ब्रविजो गुणबिन्दारके । अर्बुच्य गीहता पू० १८

तस्योपादान भावेऽपि बिन्दार बिन्दो १० य

कार्य नाम गुणः..... । पू० ११

सहकार्यनेषा या ततोऽनं समुदाहनम्—पू० ११

शक्ति अवशोमीय है, अभिनया है, ब्रह्म से उसकी अवयव स्थिति है। उसे स्वरूप नहीं देखा जा सकता किन्तु शक्ति जब कार्य रत होती है, तब उसको नाम या शक्ति है। वह मूढमा है, सारे पदार्थों में व्याप्त है। वह 'यह है', 'यह नहीं है' ऐसा बुद्ध नहीं कर पा सकता।^१ वह ब्रह्म के साथ उसी प्रकार एकाकार है जिस प्रकार ब्रह्ममा में ज्योत्स्ना।^२

'जवाह्यसंहिता' में बुध को सूर्य और शक्ति को रश्मि तथा ब्रह्म को शक्ति एवं शक्ति को स्फुरितज्ञ और ब्रह्म को अम्बुधि और शक्ति को ऊर्मि कहा गया है।^३

यह शक्ति 'स्वच्छन्द शक्ति' है, इसका स्फुरण ही जगत है। यह उदित और अस्त होने वाली तथा निरोध और उन्मेषधामिनी है।^४ यह शक्ति निरोध है आनन्दमयी है, नित्यपूर्ण है, आत्मशक्ति पर अपना ही उन्मीलन कर यह शक्ति जगत के रूप में परिणत होती है और उसके परे भी रहती है। जगत् से स्वतंत्र होने से यह निरवा आकार न होने से पूर्ण, देशों में विभाजित होने से बहु व्यापिनी है, यह रिक्त भी है और पूर्ण भी है। जगत् को देखकर शक्ति अद्विष्ट होती है, अतः वह 'नदमी' है विष्णुनाम का आशय देने के कारण यह भी है। काम (ब्रह्मा) पूर्ण करने के कारण 'कमला' काम से परे होने से तथा है। किन्तु की सामर्थ्य शक्ति होने से यह 'विष्णुशक्ति' है और अपने कार्यों से पति का प्रसन्न करती है, अतः वह विष्णु 'पत्नी' है। जगत् को अपने भीतर लुप्त करती है, अतः बुद्धिनी है। मन एवं बचन से वह अदृष्ट है, अतः वह 'अनाहता' है। शुद्ध सत्त्वाधमा होने से वह 'बीठी' है। स्वसंश्रित से जगत को पाल देती है अतः वह जगत्पामा है। नाचने की शक्ति है अतः नाचनी है। जगत का सृजन करती है,

(१) शक्त्या सर्वत्रावाप्तमभिनया अवयवस्थिताः ।

स्वरूपैव दृश्यते दृश्यते चार्थरत्नम् ॥

मूढमावस्था हि सा तथा सर्वत्रावाप्तमभिनया ।

इदन्तया विद्या सा न निरोधे च दृश्यते—अहि० संहिता निबन्ध १ पृष्ठ २०

(२) सर्वत्रावाप्तमभिनया शक्तिर्ज्योत्स्नीय हिमवीथतेः वही, पृष्ठ २०

(३) जवाह्य संहिता—६—७३ एकम् १३—१०२—०६

(४) स्वात्मन्यस्या सा विष्णोः प्रस्फुरता जगत्पामा ।

उदितानुदितानां निमेषोन्मेषशक्तिः—अहि० संहिता पृष्ठ २३

अथ बहु 'प्रकृति' कहलाती है। माता पिता तरणी तारा मोहिनी, इडा, रति, सरस्वती महामाता बीजनी उरी के नाम हैं।^१

एक के इस स्वरूप को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि वाचराज में शक्ति एवं शक्तिमान ब्रह्म की एकता दोनों की ही तरह भयं तथा यमी की एकता के सिद्धांत पर प्रतिष्ठित है।^२ जिस अर्थ में अन्त-बन्धिका, समुद्र-तमि, सूर्य रश्मि की एकता है अथवा गुणों एवं गुणों की एकता है, उरी अर्थ में ब्रह्म (विष्णु) तथा शक्ति (लक्ष्मी) की एकता है। स्वतंत्रता ही शक्ति का स्वभाव है। इसीलिए वह षड् रूप धारण कर भी ब्रह्म से अलग नहीं है। लोगों को शक्तियों की तरह वाचराजों ने 'स एकाकी न रमते' श्रुति को आधार मानकर बताया है कि यह ब्रह्म में श्रुति-इच्छा उत्पन्न होते ही ब्रह्म की स्वतंत्र शक्ति 'उत्प्रेष' को प्राप्त होती है, अथ यह श्रुति ब्रह्म की इच्छा का उत्प्रेष मात्र है, अथ उससे अलग है। ब्रह्म की श्रुति-इच्छा ही शक्ति का प्रथम कल्प है। लोगों, शक्तियों ने किस प्रकार श्राव श्रुति कार्य-शक्ति द्वारा करवाया है और ब्रह्म को 'तटस्थ' रखा है उरी अथवा वाचराज अथ भी श्राव श्रुति-कार्य शक्ति द्वारा ही कथना है। इनमें ब्रह्म में कृतत्व का दोष नहीं आता है और श्राव ही ब्रह्म में अलग शक्ति द्वारा यह श्रुति-कार्य होने से ब्रह्म को वा श्रुतियों में कर्ता कहा गया है वह भी सार्थक हो जाता है। परस्पर विच्छेद पर्याप्त ब्रह्म की स्थिति रखा शक्तिवाद श्राव ही की गई है।

सृष्टि-विकास ब्रह्म में सर्वप्रथम श्रुति-संश्लेष उत्पन्न होता है।^३ यदि यह पूछा जाय कि ब्रह्म ही पूर्ण है, उसमें संश्लेष क्या उत्पन्न होता है, तो इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता क्योंकि 'केसे श्रुति-विकास होता है, वह समझना श्राव का काम है न कि अज्ञानमनसात्पर ब्रह्म करों श्रुति रचना है, इसका उत्तर देना। फिर भी श्राव उत्तर देता है कि 'ब्रह्म' आनन्दस्वरूप है, अथ श्रुति या आनन्द के लिए ही यह श्रुति रचना है। यही श्रुति का विद्यालय जाने सीता के विद्यालय

(१) गौरी, पृष्ठ २१ ००, २३

(२) देवावर्द्धनमंत्रो भिन्ना ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।

एव शेषा च दारभ्ये भयं शक्ति स्वभावः—अहि०—श्रुति, विष्णु,

१—पृष्ठ २१

(३) तस्य स्वाधिन संश्लेषो मायतोऽभावोऽपि वा।

स्वानन्त्याननुधोऽयं-शेष परिचरति—अहि०—विष्णु १ पृष्ठ १२

में निश्चित हो गया है। मृष्टि ब्रह्म के स्वर्ण संकल्प का स्वतः विस्मय है उसमें कोई बाह्य उद्देश्य नहीं है।^१

सुदूरान 'महनी अपने एक (Aspect) को क्रिया शक्ति के रूप में प्रकट करती है, यह 'क्रियाशक्ति' सुरर्षम' कहलाती है। यह 'सुरर्षम' देव एवं काम से परे है। 'मृष्टि शक्ति लक्ष्मी का प्रसन्न अंश है जो सुरर्षम से आने की स्थिति है क्रियाशक्ति 'निमित्त' कारण है और मृष्ट शक्ति 'उपादान कारण' है, यही दोनों म अंतर है।^२ विष्णु (ब्रह्म) सर्वोच्च तत्त्व है, मृष्टि प्रक्रिया में हमारा सम्बंध है उस 'शक्ति' का साथ है जो शक्तिमान के संकल्प को पूरा करती है। जो मृष्टि शक्ति के द्वारा मृष्टि रूप कारण करती है और क्रिया शक्ति के रूप में मृष्टि की प्रेरणा बनती है और मृष्टि का घासन करती है।

शुद्ध-मृष्टि प्रशान्त समुद्र में स्वप्न के रूप में क्षुब्ध शक्ति 'अशास्त गुणों की मृष्टि' करती है। ये गुण एतत् एव तम से परे, अशास्त गुण है। ये गुण ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल भी-भीर तेज एह हैं। इन अशास्त गुणों के उपादान से वासुदेव के शरीर की रचना होती है और 'लक्ष्मी' का शरीर भी इन्हीं से बनता है। इन्हीं 'अशास्त गुणों' में निमित्त वासुदेव तथा लक्ष्मी अर्थात् म अर्थों द्वारा प्राप्त होते हैं। मत्त बर्तव्या का आराध्य और श्रेष्ठ यही वासुदेव एवं लक्ष्मी है।

'बिभृत्' का रचना भी अशास्त तत्त्वा से होती है। परन्तु 'विष्णुमूर्ति और धर्मभूमि' के निर्माण में अशास्त गुण इन्द्र प्रणामी अपनाते हैं और ये अशास्त गुण मृष्टिशक्ति से भी सहायता लेते हैं—

ज्ञान ऐश्वर्य तथा शक्ति + मृष्टि शक्ति = विष्णु मूर्ति
बल भी-भी तथा तेज + क्रिया शक्ति = धर्म भूमि

अशास्त गुणों द्वारा तथा अशास्त गुण भूमि एवं क्रिया शक्ति के संयोग द्वारा शुद्ध-मृष्टि की रचना होती है उस स्वरूपण 'आभासित मत्ता' कहा गया है यह आभासित सत्ता विचारी न परे है जैसे मूर्त से प्रकाश उत्पन्न होता है उसी प्रकार 'बिभृत्' आभासित होने है।^३

(१) सर्वेश्वरमुद्रोपदेशं सत्त्वराजस्यं विष्णुवीरिणः ।

अज्ञान विषयानुपेक्षि मीदने राजवशी—अहि० त्रि० १ पृष्ठ १२४

(२) An Introduction to Panchratra, Page 31

(३) Do Page 34

पाञ्चरात्र-मत

व्युह-सृष्टि पद्धतियों के ३ इन्हीं से संसर्ग्य प्रयुक्त एक अनिष्ट प्रकट होते हैं इनका क्रम इस प्रकार है—



(बामुदेव का) अथ आत्मा

पुत्र

शक्तियाँ

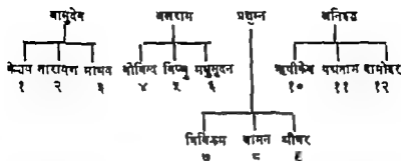


बामुदेव 'ब्रह्म' है जो शान्ति और रति (संसर्ग्य) को उत्पन्न करते हैं प्रयुक्त, ब्रह्मा है और संस्वजी उत्पत्ति है, अनिष्ट को 'पुत्रपोतम' कहा गया है और रति उत्पन्न शक्ति है। यह शुद्ध मूर्ति है अविधारी है।

'संसर्ग्य' के रूप में ब्रह्म 'बल' द्वारा अव्यक्त प्रवर्ति' को अस्तित्व में लाता है। प्रयुक्त के द्वारा शक्ति एवं पुत्र का इन्द्र व्यक्त होता है। फल प्राप्ति और आत्मा प्राप्त होते हैं और अनिष्ट के द्वारा इन मूर्तियों की रक्षा होती है। मनीष संहिताओं में वही इन्हीं अनिष्ट का मूर्तिरूपी संसर्ग्य को संश्लेषण के अर्थ में अतिरिक्त 'नेत्रिक' कार्य भी करते हैं। बनराम (संसर्ग्य) एसा निष्ठ पत्थक करते हैं जो अनिष्ट इन शान्ता का पत्र देते हैं।^१ इन तीनों मूर्तियों की ब्रह्म के माय अभिप्राय निम्नान तथा अथ मूर्ति निम्नान के लिए बामुदेव इन्द्र के १२ माय पुत्र निये गए हैं, जिनसे १२ माय उत्पन्न होत हैं—

(1) An Introduction to Panchratra, Page—37-38

(2) वही, पृष्ठ ४०



उपर्युक्त देवता बारहमासी के 'अविदेवता' के रूप में स्वीकृत हैं। इन देवताओं (शक्तियों) के बेश प्रथा बद्य अस्त्र आदि का अन्ध तर्कों की तरह वर्णन किया गया है। अटक पर लेखक सोम जो अन्ध आदि स पढ़ी रेभाएँ सींचते हैं वे इन्हीं देवताओं की प्रतीक हैं। 'तिलक' का यही रहस्य है।^१

अवतार शब्द मूल में 'अवतार' या 'विभव' (Manifestation) की भी मयना होती है। अद्विबुद्धय संहिता में ३९ विभवों की मयना है।^२ इनमें बलिभ सोमनाथ हस्ताभेद परशुराम राम और कल्कि भी सम्मिलित हैं। इन प्रथम सूची में 'बुद्ध' या 'अपम' को स्वीकृत नहीं किया गया है, जेदा हि बाद के लेखक पुराणों (श्रीमद्भागवत) में दिया गया है। परन्तु 'अनेर बुद्धि' की दृष्टि से बौद्ध एवं जैनधर्म प्रवर्तक भी स्वीकृत हैं।^३

अवतार विज्ञान में दीव्यिया का विज्ञान स्वीकृत है। जिन प्रकार दीव्यिया से ज्योति का प्रवाह सम्भव होता है, उसी प्रकार अवतार-परंपरा विष्णु ज्योति की प्रवाह-परंपरा है। इन ज्योतिश्यों में से किसी एक की साधना से मुक्ति प्राप्त होती है। उपर्युक्त ३९ अवतार मुद्रावतार बहे गए हैं परन्तु कुछ गौण वा 'बावेयावतार' भी होते हैं। जब विष्णु-शक्ति से प्रेरित होकर कोई 'बीधारना'

(१) यही पृष्ठ ४१-४२

(२) अहि० जिल्द १ पृष्ठ ४६-४७

(३) बुद्धात्मा व बौद्धाना स एव जयति स्थिर ।

स एव साम्बराणां व निगारणक्यबुद्धि—अहि० जिल्द २, पृष्ठ ११२

क्रिती विधि-कार्य के लिए अर्पित होती है, जो उसे 'आविष्ट' करता है।
इन्द्र-मूर्ति के लिए ये द्वितीय प्रकार के अर्पण पूज्य हैं।^१

अवेदाह्य नवीन संहिताओं में इन वेदों की शक्ति से 'आविष्ट' अर्पणों में
प्रथम विष्वक् भुवः व्यास अर्चन, परशुराम भुवः तथा कुवेर की लज्जा की गई
है।^२ इसका अर्थ यह है कि मुख्य तथा गौण अर्पणों के विभाजन में संहिताओं में
प्रत्येक विभागों में पशु, मानव पक्षी वही भी अर्पण
ही रहते हैं। देवताओं की और अर्पणों की मूर्तियों में पाञ्चरात्र विधि से पूजित
होने पर 'अर्पण' हो जाती है, क्योंकि उनमें विष्णु-शक्ति अर्पित होती है।^३
इन मूर्तियों को इसीलिए 'अर्पण' कहा जाता है। मूर्ति पूजा बलुग
'दत्तपूजा' है, अर्पण पूजा नहीं। क्योंकि सावक ३ वर्षी गौ और संकल्प के
अनुसार किसी भी मूर्ति को पुनः मंत्र है और वह मूर्ति वेदों की शक्ति से अर्पित
होने के कारण फल देती है, शक्ति द्वारा (आत्मशक्ति) शक्ति की उपासना ही
मूर्तिपूजा का रहस्य है।

एक और अर्पण 'अर्पण' के नाम से स्वीकृत है। अग्नि-मन्त्र
आत्मों में शान्त है, अर्पण वह सब में व्याप्त रहता है। यह अर्पण अर्पण
पुनः संहिताओं के रूप में इन्द्रदेव में प्रतिष्ठित रहता है। अर्पण अर्पण द्वारा
इन अर्पणों में अर्पण शक्ति को आर्पण किया जाता है।^४

स्वर्ग-सिद्धान्त गुण मूर्ति में अर्पणों के अर्पण अर्पण का भी
अर्पण है। इसे 'अर्पण' कहा गया है। अर्पण अर्पण, अर्पण अर्पण अर्पण

(१) वही, पृष्ठ ४७-४८

(२) An Introduction to Panchratra. Page 43

(३) वही पृष्ठ ४८

(४) वही, पृष्ठ ४९

प्राप्त है, परन्तु यह सब अपाङ्ग और विकार रहित है।^१ यह 'परम स्योम बिष्णु' की तीन शीघ्राई शक्ति से रचित है। यह 'परम स्योम' ब्रह्माण्ड से परे है, ब्रह्माण्ड के स्वर्ग जनेष्ट है जो बिष्णु की एक शीघ्राई शक्ति से बनते हैं। परमस्योम या बेहुँठ में पञ्चम एक मुक्त प्राणी दोनों रहते हैं, परन्तु जिस सुतत्त्व से बेहुँठ के पुष्प, माता बदल, मोठी जवाहर बस्त्रादि की रचना होती है, वह सुतत्त्व अपाङ्ग है, यह बिधेपठा है। इस 'परमस्योम' में बामुबेब ब्यूह, बकशार और मुक्त जीव नियम के आनन्द, श्रिया और सुखयोग में तल्लीन रहते हैं।^२

इस परम स्योम में मुक्त जीव सदा मुक्त चलवान के दर्शन का साम उठाते हैं। जगदान का यहगुणमापी अपाङ्ग रूप कबल मुक्तों को ही सुलभ है। बेहुँठ भस्वान का गिरम बिहार का स्वल है। महाप्रलय वा भी इस परम स्योम पर कुछ प्रभाव नहीं होता। बेहुँठमीमा अपतिहृत रूप हैं। मूर्ति एक सय से अपभाबित होकर बनती रहती है।^३ यद्यपि 'प्रकाश संहिता' के अनुसार यह 'परमस्योम' भी महाप्रलय के समय ब्रह्मा में सय ही जाता है^४ बामुबेब परम स्योमबासी कौस्तुभ मीनल्य म्हा दण्ड धनुष अग्नि धसिन्धु पृष्ठ बाब हार मादि आनुपग धारम करते हैं।^५ तांत्रिकों की तरह इन आधुपनों के पारमात्रिक अर्थ भी दिये जाते हैं जिसमें जगता है कि 'परमस्योम' का अर्थन भी उच्चतम सला की प्राप्ति के लिए एक प्ररणा के रूप में ही ग्रहीत हुआ है—

कौस्तुभ—आत्मा

बद—मम

श्रीपद्म—प्राणि

बाब—दग्निवा

- (१) शुद्धा पूर्वोक्तिना मूर्त्तिर्वा वा व्युद्भाविबेरिनी ।
 मुदरुनाम्भारामेकस्यात्तत्या एव प्रभोग्मन्वा ।
 ज्ञानानन्दमया सत्याना देवमात्रं वज्रसुत ।
 न देव वरुम स्याम निर्ममं पुद्गात्परम्
 त्वानन्दमयोपा सोपावचामन्दसत्त्वा
 ज्ञानानन्दमया देहा मुक्तनां भावितारम्भाद्—

अहि० विष्णु १ पृष्ठ १२ २३

(२) Introduction to Panchratra—Page 50-52

(३) वही पृष्ठ १०

(४) वही पृष्ठ २०

परा—महर्ष

हार—तत्त्व

शब्द—सांख्यिक बहुकार

अग्नि—शाप

अतिक्रोप—अज्ञान

इस परमम्योम या वेदुंठ में स्थित वासुदेव को ब्यूह-वासुदेव से अलग करने के लिए 'परवासुदेव कहा गया है।^१ शेष भी सर्वज्ञीय तत्त्व को परमदिय कहते हैं। ब्यूहवासुदेव (शेषों का 'शिव') परवासुदेव से ही उत्पन्न होना है। यह परवासुदेव परमम्योम में कभी 'मदमी के साथ और कभी कभी-तीन और आठ दक्षियों के साथ बिहार करता है। इनमें धी, भूमि और नीला जैसी देवियाँ हैं। अहिर्बुध्न्य संहिता में कहा गया है कि परवासुदेव के साथ-साथ अन्य देवताओं तथा दक्षियों की उपासना भी करनी चाहिए इनके अलावा शेष शेष भूगादि का ध्यान और मंत्र-वाचना का विधान भी मिलता है।^२ संतोषनिपथु में स्पष्ट कहा गया है कि धी, भूमि एवं नीला इच्छा, क्रिया तथा साक्षात् शक्ति के साथ सम्बन्ध की गई हैं।^३ उक्त प्रकार शेषों एवं साक्षो में इच्छा क्रिया ज्ञान की दक्षि ही रूप स्वीकार किया है। धी को हीमाय भूमि को प्रभाव तथा नीला को मूर्ध्न्य अथवा अग्नि स्वीक भी माना गया है। 'धी' शक्ति के तीन रूप बनाए गए हैं I योग II भोग III बीर शक्ति इनका प्रमत्त यज्ञ माहोत्सव तथा मंदिर-युजा से सम्बन्ध स्थापित किया गया है।^४ अत्र 'परमम्योम का सम्बन्ध केवल ब्रह्माण्ड के पट्टर सिद्ध बन्ध्या स्वर्ग में ही नहीं है, अपितु वह आंगिक एवं बाह्यवापना का भी परमम्योम में बर्णित आठ दक्षियों में बलि धी पित्रया श्रुता स्मृति तथा धुनि तथा क्षमा की उपासना का वर्ण है।^५ स्पष्ट है कि वे

(1) An Introduction to Panchratra—Page-53

(2) तथात्र्य परिवाराणां देवानां दक्षियोपिनाम् ।

मन्त्राणामख्यराणां स्ये स्वेर्नामिभिरधनम् । अहि० संहिता

त्रिन्द १ पृष्ठ २१८

(3) An Introduction to Panchratra Page 54

(४) वही पृष्ठ ३२

देवियाँ पिण्ड-स्वित भी हैं और स्वर्गस्वित भी अतः स्वर्ग भीतर भी हैं और बाहर भी ।^१

इस 'परमध्योम' में जो जीव रहते हैं उनका भी विभाजन किया गया है । नित्य या सूरि जीव परबामुदेव द्वारा आरेपित कुछ विशेष कार्य करते हैं । इनके कार्य रहस्यमय हैं अथवा प्रच्छन्न अथवा सुगम आदि ऐसे ही नित्य जीव हैं । इनमें बामुदेव के 'पारिपत्र' भी हैं यथा 'अनन्त' (सर्पराज) अपवाण की सेवा का काम करते हैं और 'मदक' बाह्य हैं । ये 'नित्य' जीव हस्तामुखार मन्तार भी धारण कर सकते हैं ।^२

नित्य जीवों से कुछ हीनतर जीव 'मुक्त जीव' कहलाते हैं जो 'मसुरेणु' के आकार के हैं । इनका शरीर आध्यात्मिक है, वे सुख शरीर धारण कर सकते हैं और जगत् में विचार सकते हैं परन्तु जपत के विधान से हस्त्याप नहीं कर सकते बल्कि 'नित्य-जीव' करते हैं । बामुदेव की सेवा एक श्रद्धा में ये जीवमाम से करते हैं ।^३ पांचरात्रों ने 'परमध्योम' की कल्पना द्वारा जीवों को आध्यात्मिक उपनि के लिए अवबिक्त प्रेरित किया है । शेषों के केशवा' की कल्पना भी इसी प्रकार की थी ।

आगे चलकर रामानुजीय वेद्यों ने ज्ञानी जीवों की केशवाचरणा के वर्णन में बताया है कि भक्ति द्वारा जो बामुदेव की उपासना करते हैं उन्हें परमध्योम प्राप्त होता है, परन्तु जो 'आत्मस्वरूप' पर विचार करते हैं वे ब्रह्माण्ड एक स्वर्ग के बाह्य नहीं किन्ती होने से उस रीति के समान पड़े रहते हैं जिसका परिणाम हो गया है^४ इस प्रकार भक्तों का महत्त्व ज्ञानियों से बड़ी अधिक है इन पर वेद्यों ने हनेच जोर दिया है ।

(१) शास्त्रन संहिता में मण्डी पुष्टि तथा निम्न तथा कानि धरम्बनी पुष्टि मन्त्री रति पुष्टि तथा मति से बाह्य घटितियों के नाथ है—
An Introduction to Panchratra, Page 55

(२) वही पृष्ठ १०

(३) वही पृष्ठ १८

(४) An Introduction to Panchratra-Page. 58-59

शुद्धेतर सृष्टि

‘मृतिशक्ति’ का विकास जाने मतकर ‘कूटस्थ’ एवं ‘मायाशक्ति’ के रूप में होता है। यह सृष्टि शून्य और अच्युत शक्तियों के मिश्रण से विकसित होती है।

कूटस्थ सृष्टि शक्ति के शून्य एवं अच्युत तत्त्वों से पुरुष या कूटस्थ की उत्पत्ति होती है। कूटस्थ या पुरुष को सभी आत्माओं की समष्टि कहा गया है। यह कूटस्थ अनादिवास्तव से कुण्डलित रहता है, अतः ‘कूटस्थ’ से ही अनेक जीव उत्पन्न होते हैं। इन मिश्र-विश्र स्रष्टि जीवों की समष्टि का नाम ही कूटस्थ या पुरुष है। पुरुष शुद्ध है, परन्तु वास्तव के कारण अशुद्ध भी होता है, स्रष्टि जीवों में भी यही विशेषता देखा जाती है। कूटस्थ या पुरुष प्रपुम्प से उत्पन्न होता है। इसी कूटस्थ से कर्तृत्व,—आत्म्य, अस्मिन्, मेस्व, शून्य उत्पन्न होते हैं ‘अज्ञेय’ के बुद्धिमत्त को आधार बनाकर इन ब्रह्मों की उत्पत्ति बताया गई है। कूटस्थ की क्षमता में पाञ्चरात्रों में अन्य तांत्रिकों की तरह यह ध्यान रखा है कि परमशिव या परमात्मुदेव के सर्वांगीय रूप में बाया व पदे अतः जीवों की समष्टि के रूप में ‘कूटस्थ’ की क्षमता की गई है। उपनिषदों के ‘ब्रह्मपति’ से इस कूटस्थ का सादृश्य स्पष्ट है।

मायाशक्ति इन भवतत् शक्ति, मूलशक्ति शास्त्रविद्या या विद्या भी कहा गया है। यह भौतिक शक्ति के पदावली का समष्टि रूप धर्म है। पुरुष या कूटस्थ के साथ मायाशक्ति या मूलशक्ति की उत्पत्ति होती है और इन दोनों के संयोग से भौतिक दृष्टि स्थित जीवों की उत्पत्ति होती है।

शक्ति के नियति एवं नियति से काल की उत्पत्ति होती है। काल से ‘शुभ’ उत्पन्न होते हैं। नियति पुरुष नियामक शक्ति है जो विष्णु के संश्रय (सुदर्शन) से

(१) सर्वात्मनी समष्टिर्वा बोधो मपुत्रात्मिक ।

शुद्धप शुद्धिमयो भावो भूते स पुरुष सपुत्र ।

अनादिवास्तवारेणु कुण्डलिते चैतान्यभिहितः—अदि० मंहिता,
निरु १, पृष्ठ २४

(२) वही, पृष्ठ २०

उत्पन्न होती है। काम क्रमनाशक वृत्ति है करना का अर्थ 'पचना' (Measure) काम पचाने का पाचन (Cooking) भी करना है।^१

क्रम से सत्त्व गुण उत्पत्ते रज और रज से तमस् की उत्पत्ति होती है और इस प्रकार 'जीव' के भौतिक घट्टीर भी रचना पूर्ण होती है।

विद्या (माया) नियति एवं काम नामक वृत्तियों का यह वर्णन शैवाग्र्यों से अद्भुत सादृश्य रखता है। शैवाग्र्यों में दूहे 'कंचुक' कहा गया है। 'कंचुक' जीव की पूर्णता की सीमिन करने वाला वृत्तियाँ हैं। शैवाग्र्यों में कंचुकों की संख्या छद्म है—माया क्या विद्या रज नियति और काम। थी यद्वर भी इस तथ्य ॥ सहस्रन है कि ज्ञाने बसकर शैवों के आश्रयों में पाश्चात्त्यों के तीन कंचुकों या कोशों या संश्लेषों का विस्तार किया गया है। मेरी मान्यता यह है कि काश्यों का कल्पना तो उपनिषदों में भी है, और उपनिषदों का इसी कोश सिद्धान्त से पाश्चात्त्यों तथा शैवों में प्रेरणा ली है। पाश्चात्त्यों में प्रातः वेदब्रह्मवत् प्राचीन शैवाग्र्यों से अभिन्न मंत्र है। हिन्दु प्राचीन शैवाग्र्यों हमें प्रातः नहीं है पाश्चात्त्यों आगम की मिश्रित शैव-ब्रह्मवत् साधना का ग्रन्थ है और उत्पत्ताधार्य में पाश्चात्त्यों संश्लेषा का अनेक बार चर्चा की है उन्हे प्रामाणिक माना है।^२ पाश्चात्त्यों की नियति का नियामक माना गया है जो जीवों की प्रत्येक क्रिया दृष्ट्या और ज्ञान का नियामक है। शैवाग्र्यों की विद्या राम तथा कला के कार्य भी पाश्चात्त्यों केवल नियति शक्ति द्वारा करते हैं। अतः यह 'सर्वनियामक' कथ्य मंत्र है। काम का कार्य क्रम ॥ जो शैवाग्र्यों से सादृश्य रखता है। अतः प्रत्येक पद्य एवं जीव का परिवर्तन के लिए धेरित करता है, काम म हां वरदा परिवर्तना प्रातः

(१) कामस्य नियन्त्रिणो गृह्यः सर्वनियामकः ।

उदतिं प्रथमं शास्त्रं जन्तुं शास्त्रचोदिना

कामस्य पाचनं रपं यन्तु उत्पत्तनामस्य

उदतिं नियतेः सद्यः नागः संश्लेषचोदिना

अहि० संहिता वि० १ पृष्ठ १७

(२) द्रव्य-स्यन्द इदीरिवा-उत्पत्ताधार्यं (कर्त्वीर—१०वीं पृष्ठांकी में)

प्राये पद्याध्य इत्तारमेन्दर ब्रह्मवत् वारमेन्दर संहिताओं की चर्चा

मिलती है—Introduction to Pan.hratra, Page--18

होती है, उट में सगितापारा के तुल्य काम में ही यह जप्यो का प्रवाह चल रहा है।^१

काम के दो रूप हैं I जिस हम 'काल (Time) कहते हैं, मूल मबिष्य वर्तमान इत्यादि यह काम का स्वरूप है II मूल्यकाल, यह काम स्वरूप काम की प्रमात्रि करता रहता है।

प्रथम काम 'कार्यकाल' है और द्वितीय 'अनुभवकाल' है, मूल्य है। एक तृतीयकाल और है जो शुद्ध सृष्टि में स्थित है, वह 'पर' काम है। यह परकाल मूल्यों की चेष्टा में प्रकट होता है^२ परमासुदेव काम से अतीव उत्सव है।

अशुद्ध सृष्टि अशुद्ध सृष्टि के विकास में पाश्चराज सांख्य से सहायता लेता है सांख्य पुराण एक प्रकृति में सृष्टि का प्रारम्भ करता है जबकि पाश्चराज पुरुष (ब्रह्म) प्रकृति तथा काग हीन शक्तिया का स्वीकार करता है। प्रकृति एक पुण्य का सम्बन्ध सत्त्व के अनुसार परिणामकाल' के अनुसार बलित है, रूप से दमि का विकास किस प्रकार होता है, उसे मूल प्रकृति से पत्तियों का विकास होता है। पुराण के सम्बन्ध से ही प्रकृति (पृथ्वी-जोह म्याय) कार्य करती है। परन्तु पुराण एक प्रकृति बलों का काम पति द्वारा वापस होता रहता है^३ पाश्चराज इसी कामपति' डाए प्रकृति एक पुराण का स्वीकार तथा सास्वतता को सीविन करता है और परम उत्सव के संवत् (दृष्ट) को अजिह महत्त्व देता है। हमारे सांख्य पहा अनज पुराणों की सत्ता स्वीकार करता है, यही पाश्चराज केवल एक ब्रह्म' की सत्ता मानता है जो अनज कीर्ति का सौन है। ईन और अति बला की सत्ता का यही पाश्चराज प्रकल है।

(१) कल्याणिसं वास्य (वामशु) मनीमूलं यथा रम —बहि० मंहिता
त्रिस्त्र १, पृष्ठ २७

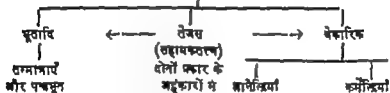
(२) त्वमो मदादिमायवाम' मूल्यस्तत्परिणयक' ।
मूहाना चेष्टितप्यापी परः कानो निरूप्यते—बहि० मंहिता
त्रिस्त्र २ पृष्ठ ५२२

(३) पयोमुदा'वलत्र प्रकृति' परिणामिनी ।
पुमानपरिणामी मन् मनिपामेन वारणम्
काम' वर्जित तत्त्वे हे परनि पुण्य च ह—बहि० मंहिता त्रिस्त्र १
पृष्ठ ११

उपर्युक्त तीन शक्तियों पुरुष प्रकृति एवं काम के संयोग से 'महत्तत्त्व' (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। इसे भी 'देवी' के रूप में स्वीकार किया गया है। अहिर्बुध्न्य संहिता में इसके अन्य नाम हैं—विद्या गो अरुणि ब्राह्मी वधू, बुद्धि, मति, मनु, अस्माति, ईश्वर तथा प्राज्ञ^१। सांख्य में बुद्धि तथा महत् एक ही शक्ति है, जबकि पाञ्चरात्र में महत् के सांख्यिक रूप का नाम 'बुद्धि' है। पाञ्चरात्र में 'महत्' के तीन रूप हैं—बुद्धि, प्राण एवं काम। इसके पञ्चात् सृष्टि क्रम इस प्रकार है—

महत्तत्त्व (बुद्धि, प्राण काम)

अहंकार (सांख्य के साथ सांख्यिक)



इस प्रकार पदार्थों से निर्मित भौतिक शरीर में मनु (बचना) का अवतरण या पतन होता है। आदम और ईश की तरह ही पाञ्चरात्र में ज्ञान से रहित जीव बाधन प्राप्त होता है। बुद्धि इस पतन या अवनयन में 'परवासुदेव' की इच्छा या शक्त्य ही कारण है, अतः मगधान पर निर्भर रहकर उसकी वृत्ता से ही उद्धार संभव है।

सृष्टि और क्षय ब्रह्माण्ड (Cosmic Cycle) के विषय के प्रारम्भ में पराशरों की सृष्टि उक्त क्रम से होती है। ब्रह्माण्ड का देवता ब्रह्मा वा निरवक है। ब्रह्माण्ड का एक दिवस चार करोड़ बत्तीस लाख मानुषी वर्षों के बराबर होता है। तब इसके पञ्चात् ब्रह्मा की शक्ति प्रारम्भ होती है जिससे सब रूप सृष्ट हो जाते हैं। परन्तु पञ्चात् एक ब्रह्माण्ड अवशिष्ट रहते हैं। यह 'अवशान्त' प्रलय है। अनेक अवशान्त या नैमित्तिक प्रलयों के पञ्चात् ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है और तब महाप्रलय होती है। प्रथम पञ्चभूत तथा ब्रह्माण्ड भी लय हो जाता है। महाप्रलय की शक्ति भी ब्रह्मा की पूरी आयु के बराबर होती है। तब पुनः 'पुरुष'

(१) अहिर्बुध्न्य संहिता—विषय १, पृष्ठ ६१

(२) Introduction to Panchratra, Page 72-73

ब्रह्मा द्वारा सृष्टि कराता है। जय वर क्रम इस प्रकार है। पृथ्वी वन में वन तेज में तेज वायु म वायु आकाश म आकाश बहूकार बुद्धि में बुद्धितमसि में, तम रज में रज सत्व म सत्व गुण काम में काम निपति में निपति शक्ति म शक्ति वृत्त्य मे वृत्त्य अनिरुद्ध मे अनिरुद्ध प्रसुप्त म प्रसुप्त संकर्मण में, और, संकर्मण वासुदेव में जय हो जाता है।^१ केवल 'शक्ति युक्त वासुदेव, जेव एते है इन्हीं शक्ति एव' शक्तिमात्र से पुनः सृष्टि इधी है।

इस प्रकार जन्म शक्तिवादी शास्त्रों—शैवाचार्यों तथा शाक्तदर्शनों की तरह ब्रह्म विवाहन क्षेत्रों को छोड़कर, एक ही 'शक्ति-सिद्धान्त' पर पाञ्चरात्र-दर्शन प्रतिष्ठित है। शाक्त्य में जो यह 'शक्तिवाद' हा स्वीकार किया गया है। संकटाचार्य का विस्तारवा 'माया' को 'आवरण-विरोधमय' मानता है और यह नहीं सिद्ध कर पाता कि माया की स्थिति ब्रह्म के साथ क्या है, अथवा 'माया' को ब्रह्म आवरण के रूप में क्यों स्वीकार करना है? किन्तु पाञ्चरात्र श्रीका मा श्रीका का सिद्धान्त स्वीकार करता है—

श्रीका क बाल्य के लिए ही ब्रह्म अपनी शक्ति से अपने अंग रूप में 'जीव' की और हमारे अंग से शक्ति की रचना करता है और साथ ही यह साथ कार्य शक्ति हाथ होने पर यह बलुक्त 'उत्सव' रहता है, इस प्रकार जेव और अन्धे दोनों की रसा हो जाती है। माया को संकटाचार्य शक्ति नहीं मानते किन्तु पाञ्चरात्री शैव एक शाक्त सभी 'शक्ति' क रूप में स्वीकार करते हैं। परिणामतः शक्तिवादी अद्वैतज्ञान को भी शक्ति के ही एक रूप में स्वीकार करते है जबकि संकटाचार्य अद्वैत की केवल प्रतिभाषिक सत्ता मानते हैं। पाञ्चरात्रों, शैवों एव शाक्तों में शक्ति शक्ति है आभारभूत एवता है, यह स्पष्ट है।

साधना साधना के पूर्व जीव ब्रह्म वा सम्बंध जानना आवश्यक है। ब्रह्म-पर वासुदेव की सृष्टि, एता एव नाथ एत तीन शक्तियों के अतिरिक्त दो शक्तियाँ और हैं—निष्क और अनुपह। निष्क शक्ति से ब्रह्म कीर्तार्य अपने अंग को (जीव) बन्धन में जोपता है और अनुपह शक्ति से मुक्त कर देता है। अपनी शक्ति द्वारा 'जीव' को बन्धन एव्य करना और मुक्त कर देने के इस सिद्धान्त पर शैव प्रमान है।^२ जीव को जो पाञ्चरात्र में 'जपु' कहा गया है, उसका अर्थ है कि

(१) अद्वैतसिद्धि संहिता जिम् १ पृष्ठ २० से ३० तक

(२) Introduction to Panchratra, Page 90

जीव ब्रह्म के सर्वव्यापकता सर्वव्यक्तिमत्ता आदि गुणों में उसके समान नहीं है जीव साधना द्वारा मुक्तबन्धना को प्राप्त करता है जब वह परब्रह्मसुख के साथ अभिन्न हो जाता है, परन्तु यह स्मरणीय है कि इस एकता में जीव जीव का व्यक्तित्व सुरक्षित रहता है। पाञ्चरात्र मठ की यह विशेषता है, परन्तु जाने के शेष धातु पाञ्चरात्र या भाष्यवत् मठ के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं, वे पूर्ण ब्रह्मत्त ब्रह्म के साथ पूर्ण अवेद चाहते हैं। अतः 'अनु' रूप जीव को पूर्ण विद्युता की प्राप्ति कराना ही साधना का लक्ष्य है, परन्तु विद्युता के अर्थ में विद्युता है। पाञ्चरात्र 'विद्यु' का अर्थ यह है कि जीव मुक्त हो जाने के पश्चात् 'अनुता' के स्थान पर विद्युता प्राप्त कर लेने पर भी 'परब्रह्मसुख' के समान 'पूर्वविद्यु' नहीं हो सकता।

जीव की अनुता का अर्थ है अज्ञान की निवृत्ति। यह शक्ति ईश्वरीय गुणों का निरोपान करती है। आचार के निरोपान से अज्ञान ऐश्वर्य के निरोपान से अतिविस्फुरण है और विज्ञान के संश्लेष से अज्ञान प्राप्त होती है। अज्ञान की इन निरोपान शक्ति से अति जीवियों को देखकर अज्ञान में अनुपलब्ध शक्ति वागुन हो जाती है।^१ और इस अनुपलब्ध शक्ति से अज्ञान अतिविस्फुरण तथा अज्ञान का नाश करने के लिए जीव उन्मुख होता है। अज्ञान की अनुपलब्ध शक्ति के बिना जीव अज्ञान से जन्म-मरण के बन्धन (निरोपान-परिपत्र) में मुक्त नहीं हो पाता।^२ विद्यु का अर्थ जीव पर

(१) १४ गुरुनिपत्रस्थ धाम्यवाणी स्वर्गमणि:

जीवो दुःखा नून विज्यो वृषा वाऽनुपदभाषत ।—अतिर्विज्य विन्द १
पृष्ठ १२६

विद्यु की वृषा का निदान बौद्ध 'अवरोक्षितेय' की
ब्रह्मा से अनुपलब्ध वागुन्य रचना है।

(२) 'अतिविज्य' का यह निदान शैवान्त में अनुपलब्ध वागुन्य रचना है।
पाञ्चरात्र पर शेष अतिविज्य निदान का प्रभाव स्वीकार करते हैं—
अद्वैत-ग्रन्थ भी। Introduction to Panchratra Page 115

कृपा' उत्पन्न हो जाती है, उस पर उसका 'वक्तिमात्र' होता है ।^१ वक्तिमात्र ही जीव को इस संसार से पार उतारता है ।^२

वक्तिमात्र की पहिचान यह है कि इसके पश्चात् जीव 'मोक्षसमीक्षा' से मुक्त हो जाता है । बहु बेराम्य में प्रवर्तमान तथा विवेक में अविनिवेश प्राप्त करता है^३ बहु सांख्य, योग तथा उपनिषद् (पारुपुत्र मत) धारण करता हुआ 'स्मृत' जन्तु में विलयनप्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है और अनादिम वेदाङ्गपर को प्राप्त होता है ।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य है, दुःखसंतति से आत्यन्तिकी मुक्ति प्राप्त करना और आत्यन्तिक ज्ञानान्ध प्राप्त करना^४ ज्ञानान्ध या निरत्य सुख भवव्यगमता प्राप्ति से ही सम्भव है, अर्थात् ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति से ही जीव निरत्य सुख का अविच्छिन्न बनता है ।^५ इस प्रत्यक्षमयता को 'ज्ञान और धर्म' ही प्राप्त किया जा सकता है । इनमें ही धर्म प्रथम सोचान है ।

ज्ञान के दो प्रकार हैं—(१) साक्षात्कारमय ज्ञान (२) परोक्ष ज्ञान^६ परोक्ष ज्ञान साक्षात्कारमय ज्ञान का सोचान भाग है । धर्म के भी दो प्रकार हैं—

(१) व्यवधान धर्म (२) साक्षात् आराधना धर्म । व्यवधानधर्म में बामुदेव के निरती प्रतिनिधि देवता या अवतार की आराधना की जाती है यथा ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र आदि किसी देवता की आराधना । साक्षात् आराधना का तात्पर्य है 'बामुदेव' उपासना । इन्द्रम अन्य देवताओं की उपासना नहीं की जाती । पाञ्चरात्र उपासना साक्षात् उपासना है जब कि वैदिक एवं पारुपुत्र उपासना व्यवधान

(१) वक्तिमान् वक्तिमात्र तथा वक्तिमात्र ये तीन पाठ ब्रह्मसूत्रस्य संहिता में मिलते हैं—ब्रह्मि० तिलक १ पृष्ठ १२७

(२) वक्तिमात्र स ही जीवमुत्तारयति संश्लेषे—ब्रह्मो, पृष्ठ १२७

(३) तत्प्राप्तमन्त्रं अनुपुत्रो मोक्षसमीक्षा]

प्रवर्तमानवैराम्यो विवेकेऽविनिवेशवान्—ब्रह्मो, पृष्ठ १२७

(४) आत्यन्तिकी निवृत्तिष्णु पुंगो या दुःखसंतते ।

तयोपसर्तितं निरत्यं मुञ्च परतन्त्रितं स्मृतम्—ब्रह्मि० तिलक १ पृष्ठ ११४

(५) ब्रह्मो पृष्ठ ११६

(६) ब्रह्मि० तिलक पृष्ठ ११६

उपासना है।^१ इसी प्रकार सांख्य परंपरा (Indirect) ज्ञान है और 'वेदान्त साधनाकारण्य ज्ञान है।^२ 'योग' भी पञ्चरात्र साधनात्मक ज्ञान के लिए उपासना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। योग दो प्रकार का वर्णित है] निरोध योग II कर्मयोग। निरोध योग में चित्त वृत्ति का निरोध ध्येय है इसके भी बाह्य एक आभ्यन्तरिक दो भाग विद्ये गए हैं। कर्मयोग में अनेक कर्मों तथा धार्मिक क्रियाओं को स्वीकार किया गया है और इसके भी बाह्य एक आभ्यन्तरिक दो भेद किए गये हैं।^३

हीना साधना का अधिकारी कौन है, इस विषय में पञ्चरात्र का मत बहिष्कृत से साक्ष्य रखता है। पञ्चरात्र सबकों को ही साधना का अधिकारी मानता है। शूद्र के लिए ब्राह्मणों की सेवा ही धर्म है।^४ वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण समर्पण पञ्चरात्र संहिताओं में किया गया है। संन्यास-धर्म केवल ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के लिए है। संन्यासी निर्वाण प्राप्त होता है, परमव्योम प्राप्त नहीं होता। निर्वाण का अर्थ है 'वीरव्योति क समान शान्त हो जाना'।^५

पञ्चरात्र मत के दोरागुरु को अन्य सभी गुणों के साथ योगसाध्यात्म उत्तर, तन्त्रान्तर विचक्षण तन्त्र संतुष्ट मंत्रज्ञ और यन्त्रविष्णु भी कहा गया है। स्पष्ट है कि पञ्चरात्र गुरु बड़ेरा मठ नहीं २. किन्तु वह योगी तथा मंत्र-यंत्र विशेषज्ञ भी होता है।^६

(१) वही पृष्ठ ११७

(२) यहाँ वेदान्त का अर्थ 'वैष्णव अद्वैतवाद' है, न कि सांख्यिक का मायावाद।

(३) मनु-रीश पञ्चरात्र भी योग क योग तथा कर्मयोग दो भेद करते हैं। कर्म योग का अर्थ उनके अनुसार है 'ध्यान मंत्र आप आदि क्रियाएँ'। महामो-
तन म योग के दो भेद विदे गए हैं I संयम II मनाधि।
Introduction to Panchratra, page 111

(४) शूद्रः शुभ्रुचया सेवां जगत्सर्वनाचनाम्।

अध्यात्मयोगीनां सम्यग्दर्शनादि हरेः परम्—अहि० विस्व १, पृष्ठ १४०

(५) वही पृष्ठ १४०

(६) वही पृष्ठ १८४ १८५

शिष्य का 'सिद्धान्त' होना आवश्यक है। उसे महाशय परमापी शक्त के भंजारों के मध्य अपने कर्मों के दाह से कुन्ही शिष्य 'में गुम्हारी शरण में आया है' ऐसी वृत्ति रखने वाला शिष्य ही पाञ्चरात्र मठ का अभिप्रायी है। 'शरणार्थी के सिद्धान्त पर यहाँ विशेष बल दिया गया है।

दीक्षाक्रम शिष्य को शपथ लेनी पड़ती है कि पाञ्चरात्र शास्त्र के रहस्य को बह भुज रहेगा।^१ अन्य तांत्रिकों की तरह प्रथम अगम्यास किया जाता है। 'मानुषा' एक मंत्रोच्चारण द्वारा शिष्य के विभिन्न अंगों पर स्वर इन्द्रजनों तथा देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है।^२ पुनः 'सुदर्शनमंत्र' दिया जाता है। इस मंत्र के तीन शक्ति हैं। मंत्र के पराक्रम के शक्ति हैं परमात्मा, सूक्ष्म रूप के संकल्प और मंत्र के स्पृश रूप के शक्ति हैं अद्विर्बुध्य अर्थात् तांत्रिकों की दाह पाञ्चरात्र आध्यात्मिक धर्म पर सर्वत्र बल होता है। 'सरीर के भी मंत्र की तरह तीन रूप बताये गए हैं; प्रत्यक्ष (Gross body) पुष्पक वा सूक्ष्म तथा आणव (Atomic)^३।

मंत्रोच्चारण के समय इस बात पर बल दिया गया है कि मंत्र का प्रयोग दुष्ट शक्तों के लिए न किया जाय। मंत्र का प्रयोग शोककला रागकला आदि परोपकार के लिए किया जा सकता है, दुष्टों के नाश के लिए नहीं।^४ पर्वत नदी-शीर, विष्णुमंदिर आश्रम, सिद्धाश्रम या शिवमंदिर साधना के स्थान हैं। एक सप्ताह या अधिक बार शपथ करने से 'मंत्रनाश' प्रसन्न होते हैं।^५

योग : पाञ्चरात्र मठ में योग-साधना पर भक्ति से अधिक बल दिया गया है। बलुन भक्ति योग के ही एक रूप में यहाँ स्वीकृत है। यों-एक घातों के यहाँ भी भक्ति तथा योग बतों को 'योग' ही माना गया है। परन्तु फिर भी पाञ्चरात्रमठ

(१) संसारज्ञान मध्यस्थ-पञ्चरात्र स्वकर्मिणः।

मन्त्र-धारणं प्राप्त जगन्मोक्षमपीदं मो—बही पृष्ठ १८२

(२) अहि० विष्णु १, पृष्ठ १८२

(३) बही पृष्ठ १८२

(४) बही, पृष्ठ १८८

(५) बही, पृष्ठ १९१

(६) मन्त्रनाश-प्रतीति—बही पृष्ठ १९२

में प्रति के लिए अधिक स्थान है। यहाँ 'योग' को 'आत्महविष्' (Self sacrifice) कहा गया है। देवता को स्वकीय आत्म-समर्पण करना ही आत्म हविष् है। यह 'आत्माहविष्' सभी सम्भव है जब भी अपने को प्रकृति के आकर्षणों से मुक्त कर लेता है।^१ प्रकृति के बन्धनों से रहित भी आत्महविष्पावस्था में सर्वज्ञ, सर्वभूत ज्ञानरूप विस्तार रहित सर्वभूतस्य जलर मनासक्त और शान्त हो जाता है।^२ अठ योग का अर्थ भीकारमा तथा परमात्मा के संयोग का नाम है।^३ प्रत्येक क्षण परमात्मा के साथ एकता की अनुभूति का नाम ही 'योग' है। इस एकता की अनुभूति के बिना बाह्य क्रियाएँ फल नहीं देती यह तात्पर्य जीव-परमात्मा के संयोग पर से स्था' स्फुरित होता है। इस योग के आठ अंग हैं जिनमें यम, नियम आसन प्राणायाम, ध्याहार, धारण ध्यान एवं समाधि को स्वीकार कर लिया गया है। समाधि की स्थिति से सभी निद्रिणा प्राप्त होती है इनका भी वर्णन मिलता है।^४

जयाक्यसंहिता में भी साधक को 'योगी' कहा गया है। अंतिम व्रता की प्राप्ति के दो उपाय हैं I सर्वांग द्वारा II अर्थों पर ध्यान के द्वारा। योग के तीन प्रकार बताए गये हैं I प्राकृत II वीर्य III ऐश्वर्य। प्रथम में भूतप्रभृति का द्वितीय में पुरुष वा और तृतीय में सिद्धि प्राप्त करने के लिए देवताओं का ध्यान किया जाता है। अथवा ध्यान निष्कन और विष्णु इन तीन योगों का उल्लेख है। शम्भु, श्याम एवं सविषह यह एक और विभाजन मिलता है। सविषह योग में 'मूर्ति' पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। पुनः शम्भु चक्र का ध्यान करता है फिर अमरा लपु बस्तुओं का ध्यान करता है इससे अंत में साधक का 'ब्रह्मरूप' गुण जाता है। निष्कन योग में साधक 'सूक्ष्म शक्त' पर ध्यान केंद्रित करता है। फलतः उसकी आत्मा का अज्ञ के रूप में उसके लिए उद्घाटन हो जाता है। योग के

(१) यथा भवते तस्मै स्वकीयात्मसमर्पणम् ।

विद्युत्के प्रकृतेः शुद्धे, दयाध्यात्महविः स्वयम्—अधि० त्रिप २
पृष्ठ २६०

(२) यही पृष्ठ २६०-२६१

(३) श्योतो योग इत्युक्तौ जीवार्थापरमात्मनोः ।—अधो पृष्ठ २६२

(४) यही, पृष्ठ १०८

तृतीय रूप में 'मंत्र' पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। मंत्र प्रक्रिया द्वारा ब्रह्म रंध्र भेद कर जीवात्मा अंत में 'वासुदेव' को प्राप्त करती है।^१

परमसंहिता में 'योग' को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।^२ योग में सांख्यिक से किन्हीं बस्तु या देवता पर ध्यान एकत्र किया जाता है, इस योग द्वारा भक्त या सांसारिक कार्य करते हुए (कर्म योग) 'विष्णु' में चित्त को जय दिये रहने से वासुदेव उल्लेख की प्राप्ति हो जाती है।

नाड़ी योग ध्यान की एकाग्रता के लिए 'नाड़ीयोग' अनिवार्य है। पाञ्चरात्र के नाड़ीयोग में कुछ नवीनता प्राप्त होती है। नाड़ियों का केन्द्र 'नाभि स्थल' है। इन 'नाभिचक्र' में १२ सर (spokes) हैं।^३ कुंडलिनी इस नाभिचक्र की आवृत्त किए हुये स्थित है। यह कुंडलिनी अष्टशुद्ध शक्ती है और मुमुक्षा नाड़ी का रजस बन्ध किए हुए है।^४ नाभिचक्र के केन्द्र में अक्षय्यपुत्रा व सुपुत्रा नाड़ियों हैं, मुमुक्षा के पासों पर ब्रह्म ब्रह्मा, यदास्विनी विद्यता पूषा पयस्विनी, सरस्वती वासिष्ठी, नाभाटी, इडा हस्तिजिह्वा, तथा विश्वोदरा के बाह्य नाड़ियाँ स्थित हैं। इस प्रकार नाभिचक्र में कुल मिलाकर बीसह नाड़ियाँ हैं। वे मुख्य हैं यों सारे धारीर में ७२००० नाड़ियाँ हैं जिन प्रकार मन्त्री आस में रहती है उसी प्रकार प्राणयाम के साथ जीवात्मा इस नाभिचक्र में भ्रमण करती है।^५

इन नाड़ियों में अन्य तांत्रिकों की तरह इडा रिक्ता एक मुमुक्षा को ही मुख्य कहा गया है। इडा एक रिक्ता का चन्द्र तथा सूर्य नाड़ी भी गना गया है।

अन्य तांत्रिकों में नाभिचक्र का ऐसा वर्णन नहीं मिलता। अन्वय कुंडलिनी का स्थान मूलाधार चक्र (जिस एक पापु के मध्य में स्थित) में बताया गया है यही पाञ्चरात्र तथा अन्य तांत्रिकों में अंतर है। नाड़ियों के नामों में भी अंतर स्पष्ट है।

(1) A History of Indian Philosophy Vol. III page 30-31

(२) वही, पृष्ठ ३३

(३) सर्वत्र नाभिचक्रं तु ह्यवधारं प्रतिष्ठितम् ।

राटीरं धियते येन, तस्मिन्मन्त्रि कुण्डली ॥ बहि० त्रि० २, पृष्ठ २१८

(४) वही पृष्ठ २११

(५) पापासङ्गो भोग्योऽप्यवेतिमग्नमने सरा ।

कर्त्तव्यमिवा, मनुष्यराज्यमर्धविराज—वही, पृष्ठ ३०१

प्राणायाम द्वारा भाड़ी शोभन-विधि प्रायः पिट्ट पेटिट है। ध्यान योग में अन्य तांत्रिक देवताओं की तरह बिन्दु रूप का वर्णन किया गया है। यह रूप अनुसूत अमिक है, इसमें अयंकरता मनीहृत्ता वस बीर्य, ऐत्थर्यं उमी वम उम्भितन है। जाने के वेज्यवर्धन में केवल 'मृदुल' रूप का बिकास हुआ है। यहाँ बिन्दु विमकेत, बंधुकरामवदन, भीमभृदुटिबाधु, बट्टभुज, बाधुववानु, अमयप्रव रूप में ध्यान के विषय हैं।^{११}

संज्ञयोग यह कहा जा चुका है कि सृष्टि ब्रह्म की संकल्प शक्ति या सुरार्ण शक्ति का परिणाम है। 'सुरार्ण' का एक रूप 'क्रिया शक्ति भी है। शक्ति 'स्यन्दतत्त्व' ॥ यह 'स्यन्दतत्त्व' ही प्राण का आधार तत्त्व ॥ इसीलिए सुरार्णतत्त्व को 'चलनचक्र' (Wheel of Motion) कहा गया है।^{१२} संकल्प का यह 'चलन' ही सर्वप्रथम 'माद' के रूप में प्रकट होता है। 'माद' एक दीर्घ अष्टापोष के रूप में प्रकट होता है।^{१३} इसे केवल योनी ही सुन सकते हैं।

ब्रह्म की क्रियाशक्ति का प्रथम प्रकट रूप जो माप है, वही 'बिन्दु' के रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार प्रयान्त समुद्र में प्रथम कुछ 'उम्भेप' (स्फुटन) होता है और कुछ बुदबुद के रूपों में वह उम्भेप मखित भी होता है, उसी प्रकार 'माद' बिन्दु का रूपधारण करता है।^{१४} यह बिन्दु 'ओ३शु' में 'अनुस्वार' के समान प्रकट होता है। यह बिन्दु जो प्राण का होता है। I तस्य ब्रह्म II सृति। 'सृति' की स्थिति में माप का उदय हो जाता है और तब बिन्दु स्वर एवं व्यञ्जन के रूप में अमरा व्यक्त होता है।^{१५}

(१) बहि० तिस्र २ पृष्ठ ३०७

(२) अमतापूर्वकं व संरत्वास्तत्र बरति।

अरुं नाम तच्छर्कं, सुरार्णमयं महन्—बहि० तिस्र १, पृष्ठ ८७

(३) उच्यते ता क्रियाशक्तिर्भवते मादरपताम्।

तं मादं परतं बिद्धि बीर्यपष्टानरीपमम्—बही, पृष्ठ १४७

(४) स बुदबुदवन्मोपी कर्वाचुम्भीपमृच्छति।

अनुदमने- सोऽत्र योनिर्विबिन्दुरभ्यने—बही, पृष्ठ १४८

(५) ता हि बिन्दुमयो शक्तिः स्येज्यतया नामतां गता—बही, पृष्ठ १४८

स्वरों में 'अ' को शीर्ष की तरह ही 'अनुत्तर' कहा गया है। अ, इ और उ और इनके संयोग से अन्य स्वर व्यक्त होते हैं। और पुनः ध्वनन व्यक्त होते हैं।

बर्णोत्पत्ति की यह प्रक्रिया अथ तान्त्रिकों की तरह पद्य, परस्त्री, मय्यमा एक बेचरी के बर्णों में ही पाञ्चरात्र में वर्णित है।^१ शृङ्ग के निनाद के समान मुमापारात्त्वमुद्यम्नी वा वात्या वा निरञ्जना—अग्नि०, त्रिपु० पृ० १२१

एक बेचरी के बर्णों में ही पाञ्चरात्र में वर्णित है।^१ शृङ्ग के निनाद के समान मुमापारात्त्वमुद्यम्नी वा वात्या वा निरञ्जना—अग्नि०, त्रिपु० पृ० १२१

मुमापारात्त्वमुद्यम्नी वा वात्या वा निरञ्जना—अग्नि०, त्रिपु० पृ० १२१

मुमापारात्त्वमुद्यम्नी वा वात्या वा निरञ्जना—अग्नि०, त्रिपु० पृ० १२१

विष्णु शक्ति छत्र शक्ति एवं देवी का अलग-अलग प्राराधना के लिए बर्णों की योजना को भी विरोध रूप देना पड़ता है। यथा 'क' बर्ण से वैष्णवमत-सिद्धि न कर्मन, कलास आदि और शैवी शक्ति की सिद्धि के लिए शैवीय तथा देवी (शक्त) की सिद्धि के लिए उसके दक्षिणहस्त के अंगुष्ठ के साथ 'क' की एकता स्थापित करनी पड़ती है।^२ शक्तियों की निराला के कारण ही मंत्रों में निराला है। सामक शक्ति के अनुसार विष्णु, छत्र वा शक्ति त्रिसरी भी सिद्धि कराना पड़ता है, उस देवता विरोध के ही मंत्र विरोध का फल करता है। सामना में विरोध मंत्रों के बाधक का यही कारण है। यह तर्क नहीं कि शैवी देवता के मंत्र का प्रयोग किसी अन्य देवता के लिए किया जाय तो छत्रवा निराला। पाञ्चरात्रों का 'मंत्रविरोध' एवं 'मंत्रसाधना' अन्य तान्त्रिकों का साथ पूर्व सादृश्य रखती है।

अष्ट-साधना पाञ्चरात्र मत में अष्ट सामग्री अष्ट-साधना स्वीकृत नहीं है यद्यपि उपसाधनाओं का बहू संकेत नहीं करता। पाञ्चरात्री अष्टसाधना का अर्थ है 'सु-सैनिक' वा ध्यान और अथ। त्रिषु प्रकार सामग्री 'अष्ट' को तारे ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधि मानते हैं वेने ही पाञ्चरात्रमत में ब्रह्माण्ड को सु-सैनिक-

(१) मुमापारात्त्वमुद्यम्नी वा वात्या वा निरञ्जना—अग्नि०, त्रिपु० पृ० १२१

(२) मन्त्रयोनिरिबं देवी मातृमूर्तिपत्त्रिता तथा—बही १४ १२८

(३) An Introduction to Panchratra, Page 120

मम माना गया है। इस ऋक के 'अरों' का विसृत और कवित्वपूर्ण वर्णन मिलता है, इस ऋक का ध्यान एक संभ्र जप करने से शक्तियों बरा में हो सकती हैं।^१

रक्षा या यंत्र संभ्रों की तरह पाञ्चरात्रमत में संबन्धित देवताओं का ध्यान भी स्वीकृत है। संभ्रसाधना में 'ध्यान' की ही प्रशंसा है। रक्षा के दो प्रकार हैं ॥ ज्योतिर्मयीरक्षा ॥ मन्त्रमयी। प्रथम में अक्ष नाभि, मेदि, तथा शक्तियों के रूपों की कल्पना की प्रधानता है और दूसरे में संभ्रों पर विशेष बल दिया गया है।^२ संभ्र रचना में विष्णु के 'ऋक की रक्षा का विसृत वर्णन किया गया है, इस ऋक को किसी ब्रह्मादि पर अंकित करके पूजा की जाती है, इससे विष्णु पर विषय शत्रुनाश बल बीर्वादि की वृद्धि होती है। संभ्रसाधना में सुपठित है। संभ्र में जिस प्रकार के देवता का ध्यान दिया जाता है, वैसा ही यज्ञ मिलता है। संभ्रों के वितरण में 'द्विज को ही सर्वाधिकार दे दिया गया है।^३

संभ्रसाधना में देवता के बंध भूषा अथ भावि का विस्तार है और 'अपर्ववेद' की परंपरा में राजाओं द्वारा विजय-शक्ति शत्रुनाश आदि अस्त्रियों का वर्णन है, परन्तु इनमें 'विजय' पर अधिक बल दिया गया है।^४ रोगों और उनके नाश के लिए 'अपर्ववेद' की ही तरह आध्यात्मिक उपाय वर्णित हैं। सारे रोगों का केवल एक उपाय 'महाभिषेक' बताया गया है। यह एक प्रकार का 'होम' है जो ८ पुरोहितों द्वारा ६ पुत्रों की स्थापना द्वारा होता है।^५ संभ्रसाधना में प्रसूक्त संभ्रों के लिए स्पष्ट कहा गया है कि वे 'अपर्ववेद' से लिए गए हैं —

आपर्वनाम्नया वेदान्तहामन्त्र परिपृतात्।^६

निबन्ध (१) ऐतिहासिक बुद्धि से पाञ्चरात्रमत उपनिषद्-भुज के अंत में विकसित हुआ है। पाञ्चरात्रमत के प्रारम्भ के पूर्वे प्राचीन उपनिषदों—
छान्दोग्य बृहदारण्यक आदि का निर्माण हो चुका था।

(१) अद्विर्बुध्य शक्ति—जित्य १, पृष्ठ ७१-६३

(२) अहि० जित्य १ पृष्ठ—१६१-२०४

(३) अरों पृष्ठ २०३

(४) अहि०—जित्य १ पृष्ठ २३७—२७१ तथा जित्य २ पृष्ठ ४१७

(५) अहि०—जित्य २ पृष्ठ ३८६-३९१

(६) अरों, पृष्ठ ४१६

- (२) पाञ्चरात्रमत ऋग्वेद के 'पुरुषसूक्त' तथा यजुष्य ब्राह्मण के 'पाञ्चरात्रसत्र' से सम्बंध जोड़ता है।
- (३) अर्धवेद की परंपरा में विकसित योग का प्रभाव पाञ्चरात्रमत पर परमि मात्रा में दिखायी पड़ता है।
- (४) सोम्य के 'सृज-विद्यालय' ने पाञ्चरात्रों को प्रभावित किया है। किन्तु सोम्य का प्राचीन रूप ही पाञ्चरात्रमत में प्राप्त होता है, इससे इस मत की प्राचीनता पुष्ट होती है।
- (५) 'पाञ्चरात्रमत' का शैव एक शाक्त-साधना तथा दर्शन से घनिष्ठ संबंध है। किन्तु शिव एक शक्ति के सम्प्रदाय धारण में द्विष्ट प्रकार, वैदिकधर्म के समानान्तर विकसित हुए होने, यह तथ्य पाञ्चरात्रमत से स्पष्ट होता है।
- (६) दार्शनिक दृष्टि में पाञ्चरात्रमत 'सृष्टिवादी' है मायावादी या विवर्तवादी नहीं। जगत जीव एक परब्रह्म की भिन्नता तथा अभिन्नता दोनों ही यहाँ स्वीकृत है।
- (७) शैवों का आमासवाह (त्रिक-वर्तन) इस मत में व्युत्पन्न का रूप में स्वीकृत है। बुद्ध एक अव्युद्ध मूर्ति का शैव विद्यालय भी इस मत को धारण है शैवों को कंबुक विद्यालय पाञ्चरात्रों का मायाकोष या संशोधन विद्यालय का ही परमि है। पुरुष एक प्रकृति में परे किम्बद्वयता से शैव तथा पाञ्चरात्र दोनों मूर्ति का विभाग दिखाते हैं।
- (८) यद्यपि पाञ्चरात्रमत शैवों के समान भक्ति को स्वीकार करते हैं तथापि मंत्र यंत्र मृग श्याम भुजगिच्छि कुंठमिनी यंत्रा मंदिर तथा मूर्ति का निर्माण (विद्या) कर्षा, उत्तर एक मायायोग (स्वावहारिक योग) यहाँ दर्शन की तरह स्वीकृत है।
- (९) पाञ्चरात्रमत ही एक शून्य के प्रति उत्पन्न उत्तर नहीं जितना उत्तर दीवमत है। वर्णापनधर्म पर पाञ्चरात्रमत अधिक बल देता है। 'वामाचार' के लिए इस मत में श्याम वर्ण परशु तंत्रों में वर्णित 'दक्षिणाचार' को स्वीकार करना है।

- (१०) पाण्डुराज-मत के अध्ययन से स्पष्ट है कि पारम्भिक वैष्णवमत एवं चौबिसा मूलतः एक ही मत या कान्ठान्तर में ये पृथक्-पृथक् विकसित हुए। पारम्भिक वैष्णवमत 'वसिष्ठाचारी तांत्रिकमत' है और वैदिक कर्मकाण्ड के समानान्तर विकसित हुआ है।

परवर्ती वैष्णवों तक पहुँचने वाले उत्त्व

- (१) शक्तिवाद
- (२) शक्तिमात्र या अनुग्रह का सिद्धान्त।
- (३) अस्त्रारवाद या शूद्र उपासना।
- (४) मीमांसा।
- (५) शक्तिवाद पर सर्वाधिक बल।
- (६) मोक्ष ज्ञान एवं मति का अविरोध।
- (७) भक्तियों के स्थान पर राजा सीता आदि की उपासना की वृद्धि।
- (८) वैदिक कर्मकाण्ड वर्णव्यवस्था की स्वीकृत किन्तु मति के क्षेत्र में सभी वर्गों की स्वीकृत।
- (९) गाम जल बुद्धि, देवताध्यान मन्त्र आदि।

शाक्त-मत

अयं तु परमं कौल मार्गः, सम्पद्महेश्वरि
असिधारणव्रतसमा, मनोनिग्रहेतुक ।
स्तिरचित्तस्य सुलभः, सफलस्तूर्णसिद्धिद ।

—परशुराम तंत्र

यही श्रेष्ठ कौल मार्ग है ! इसकी साधना, तसवार पर चलने के समान दुष्पर है । यह साधना मन को धरा में करने के लिए है । यह स्तिरचित्त धारणा के लिए सुलभ और अस्तिर चित्रवान्ता के लिए दुर्लभ है । इसमें सफल होने पर शीघ्र ही सिद्धि मिलती है !

शाक्त-साधना का विकास

सक्ति्यों की उपासना भावों में सामान्य जनता से ग्रहण की गई है। सक्ति्यों को पूजा परंपरागतिक काल में भी मिलती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने वाले सभी विद्वान एक मत से यह स्वीकार करते हैं कि तंत्रों में निम्न जनता के विश्वास ही प्रदीप्त हुए हैं। डॉ० कोसाम्बी ने बताया है कि तांत्रिक क्रियाओं के रूप में प्राचीन काल एक भाषा पर किये जाने वाले आचारों को भावों में स्वीकार लिया था। कुछ उदाहरणों में जाहू की क्रियाओं द्वारा बाह्य कठोर शोकन और अणु को अधिक अनुकूल बनाने की भाषना से ही, जाहू, मूय, चित्रकला, कविता तथा संगीत का उद्भव हुआ है। शक्तिओं ने इन क्रियाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करके इनका आधुनिक बनाने का किया।

स्थानीय देवियों को भावों में कामी शक्ति मानकर स्वीकार कर लिया है। जापान में देवता अब तक शक्ति माने करती हैं। भारतवर्ष में भी इसका प्रचार है।

असम में 'त्रिपुरावामा की पूजा के लिए एवं कुमारी की उपासना करते हैं पश्चिम में भी प्रचलित करते हैं, 'शबरोत्सव' कहा जाता है। वर्षान् शबर जाति से यह शाक्त-वर्द्धित ग्रहण की गई है। बेनीकांत काकाठी के अनुसार यह शबरोत्सव सम्भवतः विष्णु-काल के प्रवेश से असम में प्रचलित हुआ इसका तात्पर्य यह हुआ कि मध्य प्रदेश में भी यह मनाया जाता होगा।

संस्कृत-शास्त्र के अनुसार यह शाक्तपूजा विद्वानों से ग्रहण की गई है।

(१) E D Kosambi An Introduction to the study of Indian History Bombay 1936, page 23-48

(२) The Mother goddess of Kamakhya—Beni Kanti Kakati, Gohati, 1948, Page 40.

(३) पृ०, पृ० ४८

(४) पृ०, पृ० १०

निम्न जातियों के मूल्योंन सम्बंध को स्वीकार कर आर्यों ने परमर्ती पुरुषों में यह स्वेच्छाचार बेज्जाओं में भी दिखाकर 'धार्मिक जाति' स्वयमेव स्वीकार कर ली है। 'कालिका पुराण' में ब्रह्मा तथा उनकी पुत्री सम्भवा बराह, पृथ्वी क्षीप्र मुनि, तारावती, अक्षुष्य उर्वशी, शिव सावित्री आदि के यौन सम्बंध के उदाहरण देकर क्षीप्रमुनि द्वारा कहाया गया है "पुरातन काल में भद्राज में विवाहिता पद्मा को जिस प्रकार भोगा था, उसी तरह में भी किसी की विवाहिता 'तारावती' को चाहता है" १

असम में प्रचलित 'त्रिपुरासम्प्रदाय' को विज्ञान दृष्टि से आया हुआ मानते हैं। क्योंकि उस सम्प्रदाय में कुमारी को पूजा होती है और कुमारी पूजन काशी पुर में होता है, अतः इस अनुमान के पुष्ट साधारण हैं। 'उदयि' के लेखक एन० बैक्टरमिया का भी यही विश्वास है। बैक्टरमिया के अनुसार केरल के त्रावनकोर में अब भी इसके अवशेष मिलते हैं। उचित वेद्य के लक्ष्यरूप विवाह के पूर्व अब भी कन्या का वेद्य आरण करते हैं। वेद्यवती प्रथा भी दक्षिणी है २

असम में हयवीर, मत्स्य भाषण, बाराह एवं बामुदेव के पीठ हैं। इनमें हयवीर के विषय भी में कैनीकांत का मत है कि यह वेज्जा निम्न उत्पत्तिका है, वेज्जाओं ने इसे गृह्य कर लिया है, इसके साथ जाजाचार संयुक्त है, घुटनी नीचे इसे अब भी पूजते हैं ३ कैनीकांत जी का यह भी स्पष्ट मत है कि वेज्जाओं की पाश्चात्य संस्कृतियों में सर्वप्रथम घातकत्वों को स्वीकार किया गया था ४ और ये घातकत्व रामायण काल में प्रचलित थे। वेज्जावर्ष में माण्डुना की छाया 'नायिका' के रूप में बराबर रही है ५

दक्षिणी भारत के दक्षिण पूर्व को आर्यों ने जंगी प्रकार समेट लिया है, जिस प्रकार अन्य प्रदेशों के जिन लोगों और प्रियाओं को। फिर भी आर्यों में इस स्वीकृति के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा जाता रहा है। अन्तर्गत जनों को शिव के साथ सम्बन्ध कर

(१) कैनीकांत काकनी—पृष्ठ २१

(२) बरी, अध्याय २ में विलुप्त वर्णन

(३) बरी (४) बरी (५) बरी

दिया गया है। श्लोक एवं हनुमान सम्भवतः टाटेम से बाद में इन्हें विकसुत्र बना दिया गया। हनुमान को राम का संरक्षक बना दिया गया जो स्पष्ट ही सामंती प्रवृत्ति के अनुकूल था।

दक्षिणी भारत में सतमाताओं की पूजा प्रचलित है। इन देवियों का रूप जानों द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय शाक्तमत से पर्याप्त सादर्य रखता है—ये देवियाँ कृष्ट देकर अपनी पूजा के लिए विषय कर देती हैं^१ पोलरैम्मा देवी तैमगु प्रदेश में केशव की देवी है। यह अम्य वृष्ट भी देती है।

देवी को भगाने का उपाय यह है कि नावधनी की पत्तियों को द्वार पर टालना चाहिए इसमें धातु की भावना यह है कि इन पत्तियों को देखकर देवी समझ लेगी कि यह अम्य बस्ती रहित है। आर्य-शाक्त-धर्म की पूजा-प्रवृत्ति में यह बाहुमिथित आचार सर्वत्र मिलता है।

इन देवियों की प्रशंसा के लिए दक्षिण में 'जात्रा' निकाली जाती है, देवी की मूर्ति का उत्सव मनाया जाता है। इसमें बलि भी होती है।

त्रिबन्धन श्लोक में शाक्त पूजा में अनेक भयंकर दृश्यों का उल्लेख किया है।^२ इन दृश्यों को इबिडादि जातियों से ही लिया गया है। इबिड चापक भी देवियों को पार्वती का अक्षर मानते हैं तंत्रों में यही विरवास बुझाया जाता है।^३

शाक्त-शैव धर्म से सम्बन्ध कथाओं में भी इबिड तत्व मिलते हैं^४ इबिडों में माटी मानवी और देवी—दोनों रूपों में प्रभावशालिनी एवं प्रबल है। उसके प्रेम तथा शाप शब्द भी पुराणों पर प्रभाव डालने वाले माने जाते हैं जब मृत्यु के बाद श्मशान में ही प्रलय हो कर देती है^५

(१) इनका नाम ये हैं, Poleramma, Ankamma Muthyalamma, Dilli Polasi, Bangaramma, Mathamma, Renuka—
Dravidian Gods in Modern Hinduism—

W Theodore Elmore Madras 1925 Page 11

(२) वही पृष्ठ ३७ (३) वही (४) वही,

(५) वही अध्याय—इबिड शैव पूजा

पुत्रों, मदी नामों दीर्घों पदों या अन्य किसी वस्तु की पूजा अब तक आने नादियों में प्रचलित है, यह पूजा भी अन्विकागत अनायों से ग्रहण की गई है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आर्यों में सभी अंधविश्वास अनायों से ही आया है, परन्तु उनके अंधविश्वास के स्वरूप में आर्य-अंधविश्वास को दूर तक प्रभावित किया है, यह भी सत्य है।

इसा की छद्मी उदासी तक यह आवाज उस सीमा तक पहुँच चुका था जबकि उसने साहज्य धर्म-साहित्य, दर्शन कला आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था।

यह प्रभाव केवल साहज्य धर्म पर ही नहीं पड़ा उसने बौद्ध एक बौद्ध सम्प्रदायों को भी प्रभावित किया फलतः ब्रह्मचर्या शैव तथा वैष्णव साधना का धार्मिक रूप जनता के सामान्य धर्म से अलग करके नहीं समझा जा सकता।

शाक्त-दर्शन और साधना

पञ्चमूर में १०० ई० से १०० ई० तक के युग को शाक्त-युग कहा है और यह नामकरण प्रमाओं से पुष्ट होता है। इसी युग में शाक्त दर्शन और साधना का रूप निर्दिष्ट होता है और उसका अन्व साधनाओं पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी युग में पञ्चमूर में अनुसार 'बन्धीमाहात्म्य' लिखा गया है जब कामन्देय ने 'बन्धी उतक' लिखा। फिर तो धारम-धारा बढ़ता ही जाता है, इसी युग में बौद्ध शैवधर्मों एक युगों में शाक्त प्रभाव का विपुल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, अतः उपर्युक्त युग को हम शाक्त युग कह सकते हैं।

पञ्चमूर में इस युग की निम्नविशेषताएँ बताई हैं—

- १ बेबी या शक्ति की महात्म्य-बुद्धि
- २ मंग-प्रयोग-बुद्धि
- ३ कुंडलिनीयोग में चिरगास-बुद्धि
- ४ पाञ्चतारोपासना की प्रभाव-बुद्धि

(1) The Religious Quest of India—J N Farquher, Page 167

(2) Ibid—Page 190.

शास्त्रों में अनेक सम्प्रदाय हैं, प्रत्येक एक-एक उपनिषद् एक-एक क्रिया विद्या की पुस्तक (Manuals) को लेकर प्रचार करता है। प्रत्येक में गुरु तथा शिष्या का अतिव्यक्त साहाय्य माना जाता है। प्रत्येक सम्प्रदाय का अपना अलग मंत्र है।

शास्त्रों के सर्वप्रथम हैं, 'तंत्र'। इन तंत्र का निर्माण शास्त्रमय में ही अधिक हुआ है, यद्यपि 'गुरु' सम्प्रदाय के रूप में यह शास्त्र सम्प्रदायों के विभिन्न रूप प्राचिनतम सम्प्रदायों में से हैं। तंत्रों की बहुत सी सामग्री पुराणों में भी पायी जाती है।

शास्त्र तंत्रों के विषय में सब कुछ अनिश्चित है। फर्ग्युहर के अनुसार बुद्धि मंत्र तंत्र (७ वीं शताब्दी?) परमेश्वरव्यक्ततन्त्र तथा महाकौशल नाम विनिर्भय तंत्र प्राचीन तंत्र माने जाते हैं।^१ कश्मीरी शैवदर्शन में शास्त्रमय भी स्वीकृत है, जहाँ कश्मीरी शैव शास्त्र भी हैं और शैव भी। शास्त्र दर्शन के विकास में कश्मीरी शैवों का ही मुख्य योगदान रहा है।

फर्ग्युहर के अनुसार १०० से १३२० ई० के बीच 'यामल' साहित्य बहुत लिखा गया। ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, शिवयामल, उमायामल, सत्ययामल, मनेशयामल आदि। इनमें सबका अक्षरों के साथ 'तंत्र नियम' दिखाये गए हैं—श्लोकों एवं श्लोकों में भी इन रूप में वही विशेषता दिखाई पड़ती है। इसी युग में 'शैव उपनिषद् तथा 'परशुरामकल्पसूत्र' की रचना हुई है। परशुरामकल्पतंत्र शैवधर्म का श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है।

त्रिपुरतान्त्रिक, त्रिपुरसूक्तक भास्करा तथा देवीउपनिषद् भी इसी युग की हैं। चारवाडिनकर मंत्रशास्त्र की बुद्धि से श्रेष्ठ तंत्र है, यह भी इसी युग का है।

इसी युग में दत्तिलगंधरी शास्त्रमय की ओर (वंशव्यार का प्रयोग न करने वाले) प्रवृत्ति अधिक दिशायी पड़ती है। मात्र अक्षरों में दत्तिलगंधरी शास्त्रमय का ही प्रभाव अधिक है। वैदिक आचार्यों की ओर उन्मुखता १३वीं शताब्दी के बाद बढ़ती जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि १३वीं शताब्दी के बाद शास्त्रमय में सुधार होता जाता है, परंपरा कड़ी है कि शंकराचार्य ने शिवधर्म की अग्रदत्तिलगंधरी साधना प्रवृत्ति की हमने भी उक्त सुधारकार पुष्ट ही होता है। इस सुधारवाद के प्रसंग इसी युग में (१२६० ई०-१३०२ ई०) मन्मथक मन्मथपर

या विद्यानाथ ने ; सद्दीनार ने सोन्दरलहरी की टीका में १४ तंत्रों के नाम दिये हैं । सद्दीनार ने कौस मिस्र तथा समय—इन तीन भागों का उल्लेख किया है ।

समयमठ के तंत्र 'शुद्धतंत्र' कहलाते हैं, इसमें केवल मुक्ति प्राप्ति का उपाय वर्णन ही प्रमुख है । इस मठ के आचार्यों के बलिष्ठ संकट पृथक् सनन्दन तथा सनन्दनार श्री गणेश की षाठी है ।

बौद्धमार्ग नामाचारी तांत्रिक हैं, भोग के द्वारा मुक्तिप्राप्ति ही इसमें वर्णित है निश्चयमार्ग में भोग एवं मुक्ति दोनों का विधान है अर्थात् बौद्धिक सिद्धि तथा मुक्ति—दोनों पर बल देने वाला तंत्र निश्चयमार्ग है—इसमें चन्द्रकला अन्तस्तावती कला-निधि कुसावधि आदि अनेक आठ मार्ग हैं ।

मिस्र-मिस्र आचार्यों के नाम से भी अनेक तंत्र मिलते हैं । उदाहरण के लिए पद्मपुराणकल्पना आचार्य वल्लभेय का तंत्र मन्ना जाता है । अगस्त्य के अकिन्तुष'

(१) रामदास षोडश ने आयन-नख्खिलास से १४ तंत्रों के नाम दिये हैं—
 त्रिभुक्त—उपवास षोडश—पृष्ठ ४८२ षोडश महापाय ने 'बुद्ध और तंत्र' टीपिक से ८३ अन्य तंत्रों (१४ तंत्रों के अतिरिक्त) के नाम दिये हैं (पृष्ठ ४८२ ४८६) महासिद्धि सारस्वत के आधार पर गौड़ जी ने सिद्धिनिर्वाह-नित्यतंत्र उपासना कर्ममाध्यात्म आदि का उल्लेख किया है । (पृष्ठ ४८६) । कुछ अन्य 'प्रबन्धितंत्र' टीपिक से षोडश जी ने अनेक तंत्रों का उल्लेख किया है (पृष्ठ ४८६) तथा बापही-तंत्र से भी एक सूची दी है जिसमें बसोह संख्या भी दी गई है । बापही तंत्र के मठ में अन्य भागों के तंत्रों के बसोह की संख्या १ लाख है । (पृष्ठ—४८४) भारत वर्ष में तंत्रों की संख्या १ लाख है । (पृष्ठ ४८४)

इस प्रकार तंत्र-साहित्य का विराट साहित्य है, इसमें से अभी बहुत कम तंत्र प्रकाशित हुए हैं । तांत्रिक-कर्म सीरीज' बमबस्ता तथा गावर्वाड अोरियंटल सीरीज आर्यभट्ट (मद्रास) तथा भीमर स बुद्ध संघ प्रकाशित हुए हैं । 'तांत्रिक और' स्युयार्क में 'तांत्रिक-कर्म' कुला में प्रायः सभी तंत्रों के अंगरेजी अनुबाध प्राप्त हैं परन्तु मुनी पत्र-स्युयार्क द्वारा यह ज्ञात जाता है कि स्युयार्क या अन्यत्र तांत्रिक आरंभ जैसी संख्या का अब अतिरिक्त ही संकट नहीं रह गया है । पाठकों को External Issue International Journal of Tantric Order Vol V No.1 बमबस्ता व National Library में प्राप्त हो सकता है ।

कविराज गोपीनाथ ने प्रकाशित कराये हैं। गौड़पाद के सुमनोन्मत्त तत्र तथा श्री विद्यारत्नसूत्र तत्र पण्डित तत्र हैं। संकराचार्य की 'शोन्वर्त्यमहर्षे' का उल्लेख ऊपर हो चुका है (छत्रुंहर इसे संकराहृत नहीं मानते) 'शोन्वर्त्यमहर्षे' की टीका में भावनात्मक भक्ति का सधर्मीपर (१३वीं शताब्दी) सुन्दर विवेचन हुआ है। छत्रुंहर का अनुमान है कि श्रीमद्भागवत पुराण के प्रभाव से शाक्तों में भक्ति का प्रचार बढ़ा है। उनके अनुसार 'श्रीश्रीभागवत' एक उपपुराण है जो श्रीमद्भागवत के परवार्त्त तथा भागवत के टीकाकार श्रीपर (१४वीं शताब्दी) के बीच कभी लिखा गया है इस पुराण में नारद-शास्त्रिण्य सूत्रा की तरह भक्ति का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

श्रीगण बाह्यण आरभ्यन् उपनिषद् साहित्य के अंतर्गत शाक्तिवाद पर ध्यायनाचार्य (१३०० ई०) भास्करराय (१७२४ ई०) उपनिषद्ब्रह्म (१७३० ई०) तथा कौलाचार्य सदानन्द के भाष्य हैं। इनमें केवल भास्करराय के भाष्य शाक्तमत के अनुकूल विवेचन हैं। ज्योतिषी (शिवार्जित मठासम्प्रदायी) की भावनामहर्षी तथा उग्रही व्याख्या मानिक है। भास्करराय ने श्रीमूत्र कौल उपनिषद् समितासद्वत्तनाम दुर्गास्तोत्रकी योगिन्य हृदयवर्त्तन पर टीकाएँ लिखी हैं, उनका 'श्रीरक्त्याहृत्य' संघ मनदास्य एवं उपासना कांड के लिए प्रायोगिक माना जाता है। भास्कर के शिष्यों में उमानन्द नाथ ने भी किया सम्प्रदायी 'नित्योत्सव' लिखा तथा उनमें शिष्यों में रामेश्वर (१८३१) में परशुराम वत्स पूज पर श्रुति लिखी है।

एहत्वस्तोत्रों में गौड़पादाचार्य का सुमनोन्मत्त संकर की शोन्वर्त्यमहर्षी भावनामहर्षी ज्योतिषीशिव की भावनामहर्षी दुर्गाया नागिपुरमहिम्न त्रिगात्रिजोती (संकराचार्य का भाष्य) तथा आर्यपञ्चास्य आदि ग्रंथ हैं।

श्रीराजिक साहित्य में देवी मानवत ब्रह्माण्डपुराण के शिवाय भाग में 'सतिवातहृत' मानव्येय पुराण में देवीमाहात्म्य तथा तत्सज्जी श्रुतश्रुति का चर्चितोत्र। बालिना पुराण चर्चितवाद का मुख्य ग्रंथ है।
शाक्तों की प्रयोग-व्यवस्थाओं का सर्वोत्तम योगिनी-संघ बाघहीनंश कात्यायनी ६.३ मरीचिर्त्तन आभरत्तन हरवीरीतन योगि श्रमयात्र तथा सधर्मीतन आदि में बर्णित है।

(१) श्रीमद्भागवत पुराण में भी उपनिषत्त शाक्ति सम्प्रदायी उन्मत्त और शक्त का ही वर्णन है—शक्ति या (वन्द्या) पृष्ठ १२८

देवी भावराज के टीकाकार नीलकण्ठ का 'सक्तिप्रबन्धविमर्शिनी' ग्रंथ विह्वला प्रथम है।

कन्नड़ी छापकों के संक्षिप्त, बड़ा प्रमाणसिद्धि, तन्मासोट, तन्मवार, तन्मसुवा तन्मवटमानिका पद्यविज्ञाना प्रपञ्चिन्नासुच, महार्थपंचमी मालिनी विजय, कामनताविमाल, स्वप्नकारिका तथा स्वप्नसंधोह आदि ग्रंथ शक्त-मत पर प्रकाश प्राप्त हैं, इन ग्रंथों को 'त्रिपुरसुंदरी या श्रीविद्या तन्मय का माना जाता है। ऐतिहासिक पक्ष इन्हीं से व्यक्त होता है।

'श्रीप्रबन्धविमर्शिनी' के प्रसिद्ध लेखक पुनःलिख (१४४८-१६९६) के इसी वा कथ प्रकरण 'कृष्णविमर्शण' नाम से ज्ञान प्रसिद्ध है।

छात्रों ने भारतवर्ष तथा एशिया महाद्वीप को तीन भागों में विभाजित किया है—

बिष्णुप्रान्ता—भारत का उत्तरपूर्वीय प्रदेश—विष्णुप्रान्त से लेकर कर्नाट तक।

रघुप्रान्ता—उत्तर पश्चिमी भारतवर्ष—विष्णु से लेकर विष्णु तक

अरुणप्रान्ता—दक्क के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोग इसे 'दक्षिणीभारत' तक सीमित रखते हैं और कुछ 'जावा' द्वीप तक का मान मानते हैं।

नामाख्या कश्मीर एवं वाष्ठी शाक्त युवा के गढ़ माने जाते हैं। इनमें नामाख्या (कन्नड) नीलमन का तथा कश्मीर तथा वाष्ठी श्रीविद्या के उपासक (दक्षिण-पंचमी) माने जाते हैं। अतएव 'कश्मीर में नीलमन का प्रभाव विद्यमान है। 'वाष्ठी वा इन विधियों का मध्यविष्णु' माना जाता है, यहाँ उक्त तीनों रूपों की विशेषताओं का समन्वय बंध विद्यमान है। कश्मीर में त्रिगुण के रूप में तारा तथा मोक्षेय में वाष्ठी की युवा होती है।

ऐतिहासिक विज्ञान के अनुसार कन्नड प्रान्त के जन्म करने १४ मंथ है, जो द्रुमती प्रान्तों से मिले हैं इन प्रकार १५८८ वर्षों का प्रचार तिसी युग में इन तीन प्रान्तों में रहा होगा ऐसा कहा जाता है।

यिह के बाद मुग़लों ने तर्कों का प्रयोग माना जाता है। मुग़लों-द्वारा के अनुसार पूर्वाप्रान्त शक्तिप्रान्त और पश्चिम है, दक्षिणप्रान्त शक्तिप्रान्त और शक्ति

योग पश्चिमान्नाय सहार रूप तथा कर्मयोग है, उत्तरान्नाय अनुपहरण और शान्तयोग है। ऊर्ध्वान्नाय से कौसभत का प्रकाशन होता है।^१ उत्तर जान मुद्राएँ क अनुसार प्रत्येक शिवमुख से निम्न-निम्न देवियों-देवताओं का उद्भव होता है। देवताओं में सभी वैदिक-अवैदिक देवताओं की गणना कर ली गई है।^२ पूर्वान्नाय से भुवनेस्वरी, त्रिपुरा तमिता, पद्मा धूमिली उत्तरस्वरी, स्वरिता तिया अन्न-पूर्णा म्हाामहरी, आदि देवियाँ प्रकट हुई हैं। पश्चिम मुख से पञ्चावसदादिब बट्ट, मञ्जुपतेय (यह बीद देवता है) भैरव आदि पश्चिममुख से—गोपाल कृष्ण, नारायण, वासुदेव कृष्ण, बभ्रु, वरह, रामचन्द्र, अग्नि, ब्रह्म सूर्य हनुमान आदि। उत्तर-मुख से महाकाली, गुह्याकाली शमशानकालिका अत्रकाली आदि तथा ऊर्ध्वमुख से त्रिपुरासु बरी, भैरवी आदि प्रकट हुई हैं।

‘अधान्नाय’ से देव स्वाम आसन मासा नेवेष्ट शनिदान, सावना पुत्रव्रत, मंत्रसिद्धि आदि प्रकट हुए हैं। परशुराम वस्त्रांश मं केवल त्रिभु के पाँच मुखों का उल्लेख है। सद्योजात, कामदेव अशोर, तत्पुत्र तथा ईशान।

आन्नाय उल्ल के अर्थ भुनि, ली तथा वेद श्रित्ये गए हैं। यहाँ आन्नाय का अर्थ तंत्र ग्रहण किया गया है। इस तंत्र में कहा गया है कि वेद न जानने वालों के लिए तंत्र प्रकट किया गया है।^३

मुक्त परंपरावादी विद्वानों का विचार है कि छंदोग्य उपनिषद् में सूक्तबिन्दु की देवतानु कहा गया है। इसकी छिरणें चारों वेदों के पुष्परत्नों की धीबनी हैं। एक सूर्य का ऊर्ध्व-मुख है। इसकी छिरणें मुख्य-आदेय की धीबनी हैं। इस मुख आदेय को ही ‘आपम’ कहते हैं। आपमवादी इसे ही त्रिभु का पंचममुख कहते हैं।^४

यह आपमवादियों द्वारा बलुत्त छंदोग्य उपनिषद् की अपनी व्याख्या मान है।

यह जो कहा गया है कि गौतम बृह की मृत्यु के बाद तंत्रों का आविर्भाव हुआ है, यह सही है। हमें पंचरात्र सात्वत, पाप्पण्य धीब तथा चतुर्णों की म

(१) वही अदुर्लभस्वरम् काशी

(२) Shakti and Shakila—Sir John Woodroff Page 149 Edition IV 1957 Madras

(३) परशुराम वस्त्रांश—आयकबाई भोरिस्टन सीरीज १९२३ पृष्ठ २०

(४) ‘तन्त्र-शक्ति’ (वस्याम, मोरारजुर) पृष्ठ ६२४-२३

पटना है। वेन एवं बीजलिंग भी इसी समय से प्रारम्भ हुए हैं।^१ यद्यपि इनका प्रचार ई० पद्मे यत्ताजी के बाद अधिक विज्ञापी पड़ना है।

परन्तु के अनुसार घाल-सम्प्रदाय निम्नलिखित है—

सन् १६५६ ई० के आसपास, मन्मथ अन्तर्गत अग्नि यूर्गे इन्द्र नाम्, तिस ठका कुबेरा सम्प्रदाय। इनमें लोचामुद्रा एवं मन्मथ सम्प्रदाय सब भी प्रचलित हैं। अब मन्मथ सम्प्रदाय का प्रचार ही मुख्य रह गया है। यह विवक्षित है कि संस्कार के द्वारा मन्म हो जाने पर वाग्देव ने पीबिठा की उपायना से जीवन प्राप्त किया था।

युरोप में १६११ ई० के बाद शाल्मर्ये के जन्मपत्र संघों का प्रचार हुआ। मार्चर ऐनेनान या सर जान बुडरक ने घाल संघों की प्रथम बार अंगरेजी भाषा में व्याख्या की। पादने के अनुसार वे दो भिन्न व्यक्ति हैं। परन्तु एवेमान अपना बाह्यनिक नाम प्रकाशित नहीं करता चाहते। इन पाठकों को इनमें भिन्न-भिन्न दो व्यक्ति मान कर इनके संघों को पढ़ना चाहिए। ये दोनों मुख्य विचारों के इतिहास में लक्षित नहीं लेने केवल के व्याख्याएँ प्रस्तुत करना चाहते हैं जो एक लक्ष्ये कायक को भारतवर्ष में ज्ञान हैं।^२ जर्मन लेखकों में ग्लेसैप (Glennapp) ठका कोनी (Konow) ने इन मन्म पर लिखा है। दिमर ने भी इन मन्म पर प्रकाश डाला है, जिन्से इन तीनों ने मार्चर एवेमान एवं बुडरक को आधार बनाया है। इन प्रकार एवेमान एवं बुडरक शाल्मर्ये के प्रचार में सबसे महत्वपूर्ण लेखक हैं।

दोनों संघों के दो रूप लिखायी पढ़ने हैं I दार्शनिक या वैज्ञानिक II प्रचलित (Popular) दार्शनिक मार्कमौदिक तथा प्रचलित रूप स्थानीय होता है। दार्शनिक रूप व्यापकितता प्रमाण होता है जबकि प्रचलित रूप में प्राणु या अल्प-वित्तसंग विद्यमान है। पाठकाय लिखकों में हार्मिंग विविध बार्ड विचमन मानियर विविधम बार्ड विविधम अरु आदि के जो पाठकाय की लिखत है। उक्त कारण यह यह है कि इन मन्म कश्चालों में प्रचलित रूप पर

(१) श्री कृष्ण

(२) The Saktas—Ernest A. Payne page 23

ही ध्यान दिया है।^१ धर्म के सैद्धान्तिक रूप की कम से कम उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

शाक्तमत के विषय में यह स्मरणीय है कि यह मन शैवधर्म के सम्बन्ध रहा है, काली दुर्गा बड़ी भैरवी पार्वती कुमारी उमा गौरी स्वर्ण स्वामीय देवियाँ थीं इनके नाम के साथ अनेक कथाएँ जुड़ती गईं।^२

शाक्तमत के उद्भव के विषय में कहा यह है कि छत्ती के शरीर का लेकर शिव विश्व भ्रमण करने लगे। बिजु ने छत्ती के शरीर को काट डाला जहाँ जो अंक गिरा वहीं उछली पूजा होने लगी—कामाख्या में मोनि एवं ज्ञानामुखी (पंजाब) में जीम विरी अत्र जहाँ इन्हीं अंगों की पूजा होती है। काँगड़ा उज्जैन, काशी, काशी आदि में शक्तिरूठ है।

इन पीठों में शाक्तों द्वारा अनेक उद्योग होते थे। भर-बलि तो १८१५ ई० में वैरकानुनी की गई है, उसके पूर्व भर-बलि तो था जानी थी।

द्वारि शाक्त-दर्शन में सांख्य तथा बौद्ध वेदान्त का समुचित रूप मिलता है। उपनिषद् के बौद्धवाद (Monism) की प्रतिक्रिया में सांख्यमत का उद्भव हुआ था। बौद्धवाद के साथ बटलाई यह थी कि यदि वेदान्त ही सग है तो जड़ ब्रह्म को निश्चिन्त जड़ वेदान्त के साथ वेद स्वीकार की जा सकती है? सांख्य प्रतीतिर पुरुष (वेदान्त) और प्रकृति को मिश्र मिश्र स्वभाव होता मानता है, किन्तु यह स्पष्ट ही बौद्धवाद है, और सांख्य को 'मूर्च्छि' केने और बर्षे प्रारम्भ होती है यह समझाने में बड़ी उत्सन्न हुई है, अत्र शैव-शाक्त और वैष्णव धर्मनिरों ने 'शक्तिवाद' को अपना कर पुरुष और प्रकृति के मेल का सिद्धांत स्वीकार किया है अर्थात् शक्ति और चक्रिमान पर ही सत्ता है। शक्ति शक्तिमान का ही रूप (Aspect) है, अन्त-अद्विष्ट विम प्रकार अमिश्र होने पर भी मिश्र है और अमिश्र होने पर भी अमिश्र इसी प्रकार चक्रिमान की शक्ति ही प्रकृति का रूपधारण कर लेती है। इस धरिया में चक्रिमान को निश्चिन्त सर्वज्ञ निराकार सत्ता के रूप में स्वीकार दिया जाता है और शक्ति को उन्नी चक्रिमान का दिव्यातीत रूप माना जाता है और इसमें बौद्धवाद एवं अज्ञानवाद दोनों की बट्टियाँ ही समाधान हो जाता है।

1 Ibid—page 1

2 Ibid—page 7

साक्षात्पक्ष विष्णु-पिब (दक्षिणमात्र) की शक्ति के रूप में मानवीकृत करके उपासना का विषय बताया है । शक्ति और दक्षिणमात्र की एकता को ही सारे शक्तियों का आधार मान्य मया है । शक्ति को सहायक कारण प्रकृति को उपादान कारण तथा पिब को निमित्त कारण माना गया है ।

साक्षात्पक्ष का विचार कर्त्तिक रूप में पञ्चीकृत शैली द्वारा हुआ है । हम 'पञ्चीकृत-सौमन-अभ्यास' में विद्वान्शक्त के आधार पर साक्षात्पक्ष पर कुछ प्रकाश डाल चुके हैं । वहाँ उनकी पुनःप्राप्ति की आवश्यकता नहीं है ।

साक्षात्पक्ष शक्ति को अष्टि महत्त्व देना है । इस शक्ति को 'पराशक्ति' कहा गया है । इसे ब्रह्म या पिब की 'स्वभाव शक्ति' कहा गया है । शक्ति को 'स्वभाव' इमतिष्ठ कहा गया है क्योंकि यह पिब की दृष्टानुसार सृष्टि करने में स्वभाव है ।

अब उपासना की उत्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि ब्रह्म या वेगम्य में कोई बर्ण मानना पड़ना है, यह बर्ण है 'स्वरूपसृष्टि' यह सृष्टि दो प्रकार की है—ब्रह्म और इन्द्र । इन्द्र-इन्द्र सृष्टि में पर की अवस्था की आशक्ति में वेगमा में ब्रह्म की सृष्टि होती है यही पञ्चीकृतमात्र श्रेय आदि है । इस सीमा की अनुसृष्टि ब्रह्म द्वारा शेरिन बना-याया आदि आवश्यकताओं या कर्तव्यों द्वारा होती है । अष्टिपक्ष जगत्पक्ष मानसि शक्ति को ही पूर्णतया बना पाया है, आवश्यकताओं में परे शक्तिपक्ष वेगम्य की अनुसृष्टि में ही जब सृष्टि शीघ्रतया ब्रह्म ही हो पाती है तब 'पूर्णतया' की अनुसृष्टि होती है । यह 'पूर्णतया' (समष्टि ब्रह्म) सृष्टि के आदि में सृष्टि की दृष्टा करती है, यह सृष्टि करने में स्वभाव है जगत्पक्ष ब्रह्म की साक्षात्पक्ष भी ब्रह्म है । शक्तिपक्ष की 'साक्षात्पक्ष' यह ब्रह्म के साथ एकीकृत (Identified) नहीं है जबकि शेर-साक्षात्पक्ष के ब्रह्म 'शक्ति वेगम्य' का ही एक रूप है यह अनुसृष्टि है । यही 'शुद्धिपक्ष' सृष्टि करती है जगत्पक्ष की ही सृष्टि शक्तिपक्ष सृष्टि भी अनुसृष्टि है ब्रह्म नहीं ।

शुद्धिपक्ष वेग शक्ति में तो नियन्त्रीय शक्तिपक्षपक्ष है और वे शक्तिपक्ष रूप शक्ति ब्रह्म शक्ति-शक्तिपक्ष के अवमानकता शक्तिपक्षपक्ष है अतः उपासना ब्रह्म का शक्ति ब्रह्म का शक्तिपक्ष है ।

यह अन्तर्माधुर्य का सक्ति ज्ञान, इच्छा क्रिया—तीन रूप धारण करती है। यह काम-बोध पाशादि से स्वतंत्र है यह स्वतंत्र शक्ति अपने को दो रूपों में विभाजित करती है १ अर्ध अहम्भाव २ पूर्वाह्विता।

परिच्छिन्न अहंभाव युक्त चैतन्य का अंग सबाधिब कहलाता है। उपनिषदों में इसी को 'ईश्वर' कहा गया है इस प्रकार चैतन्य अपने ही अंग (अर्ध शक्ति) के आचरण से अभिमानयुक्त हो जाता है।^१

सृष्टि प्रलयकाल में यह अर्ध शक्ति की कुक्षि में रहता है। भावों का भी कुछ व्यक्तित्व घेष रहता है परन्तु उनमें आत्म चेतना (Self conscious-ness) नहीं रहती। सृष्टि के आरम्भ में परावृत्त शक्ति या अर्ध ब्रह्म 'सर्वातीत पर ब्रह्म' को व्यक्त करता है। यह परावृत्त या अर्ध ब्रह्म से संयुक्त रहता है जो अन्तः अतीत एक असीमित तत्त्व है 'पराब्रह्म' की प्राप्ति का उपाय है 'परावृत्त-शक्ति' का आचरण इसीलिए 'शक्त शक्ति को आशुत करने में विश्वास करते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म की क्रियाशक्ति अपने को उलघाटित (unfold) करती है और यह त्रिधाशक्ति अक्षर के रूप में बदल जाती है, जबकि परब्रह्म स्थिर और तटस्थ रहता है। वह इस शक्ति का साक्षी बनाता है, अर्ध अक्षर शक्ति रूप है और ब्रह्म इस क्रिया का साक्षी है, इच्छा है।^२

तंत्रों में शक्ति को विमर्श (त्रिधा) शक्ति तथा शिव को 'प्रकाश कहा गया है।

प्रकाश का संयोग होने पर ही अक्षर की उत्पत्ति होती है इस संयोग को तारी एक पुरुष के संयोग की उपमा दी गई है, जिस प्रकार स्त्री-पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है इसी प्रकार प्रकाश (शिव) तथा विमर्श की संयोगात्मक से 'विन्दु का जन्म होता है जो दोनों की एकता (Union) का द्योतक होता है। विन्दु की अवस्था में शक्ति एक शिव दोनों का सामरस्य रहता है, इसे 'रमायंभूमिद्ध' भी कहा जाता है। शक्ति तथा शिव के इस समागम और सामरस्य को ही 'कामरूपपीठ' कहा जाता है^३

१ विस्तार के लिए इच्छा—त्रिपुराहस्य त्रिपिट ४ में गोपीनाथ शक्ति राज की भूमिका।

२ Some Aspects of the Philosophy of Sakta Tantra—G N Kavira] (printers of wace's series—Vol. II)

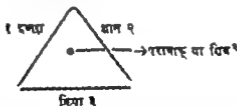
३ Some Aspects of the Philosophy of Sakta Tantra.

गौरीनाथ कविराज के अनुसार विमर्श एवं प्रकाश दोनों सर्वांगीत शक्ति के ही दो रूप (Aspect) हैं इनका तात्पर्य यह है कि धारण-शेष बाह्यैतिक परमशिव को 'परब्रह्म' के रूप में प्रयुक्त करते हैं और इस परब्रह्म की शक्ति को 'सर्वांगीत शक्ति' कहते हैं, जिसे एवं विमर्श (निपात्यन्त) शक्ति जस सर्वांगीत शक्ति के ही दो रूप हैं अतः परमशिव त्रिनोतीर्ण अवस्था है—यह स्मरणीय है ।

यस शिव (प्रकाश) रूप को 'अस्मिन्शक्त' तथा विमर्श शक्ति को 'शान्ता' भी कहा जाता है । इनके सामरस्य के बाद इन्द्रा (ब्रह्म) ज्ञान (ज्येष्ठा) तथा क्रिया (तीर्थी) का विधान होता है । इन्हीं को धारण प्रकृतिदिग् धारणधर तथा उद्गीयमान पीठ कहते हैं । यही परमणी मध्यमा तथा बेहरी बाबी की स्थितियाँ कहलानी हैं और इन सबके परे है 'पराब्रह्म' या सर्वांगीत शक्ति ।

इन्द्राशक्ति के उत्पन्न होत्र ही शैल्य में स्थित शूद्रम ब्रह्माण्ड के एक अंग अपने को (जो ब्रह्मण्ड में ब्रह्म का ही रूप है) अवमानित करने लगता है इन आमास का ही मूर्ति बहते हैं, यह आमास देव एवं काल में होता है । प्रसवकाल में यह आमास रूप मूर्ति फिर शैल्य में समा जानी है, जमी प्रसार त्रिज प्रसार दर्शन व आमास उत्पन्न होता है और फिर उर्ध्व दर्शन में समा जाता है । त्रिज प्रसार दर्शन एवं आमास भिन्न-भिन्न स्त्रीय होने पर भी एक ही उर्ध्व प्रसार मूर्ति शक्तिरूप ही है, और शक्ति तथा शक्तिमान की एकता हम बना ही चुके हैं ।

अकार हाण इन अवस्थानों का ही प्रकृति कहा जाता है ।^१



(1) Some Aspects of the Philosophy of Sakti tantra

(२) शक्ति-त्रैल (कथ्यान्त) में कविराज की त्रै विज्ञान स्थित शक्ति को 'त्रिज रूप' भी कहा है शक्ति 'शक्ति' सर्वथा शक्ति मूर्ति है । विज्ञान शक्ति है और शक्ति शिव का शक्ति (शीघ्र)—(इन्द्रा-शक्ति अंग वृत्त २८) ।

शून्य अंग जमी विज्ञान और शक्ति में ही प्रकाश होता है । प्रकाश एवं शक्ति का विपन्न भी जमी की पुनरावृत्ति मात्र है ।

१	२	३
परमर्शा	मध्यमा	सेखरी
श	इ	म् = बोधम्
सृष्टि	रसा	नाय
बाणा	ज्योत्स्ना	रीटी
दण्डा	ज्ञान	क्रिया

शाक्त-शक्ति (प्रकाश विमर्श) की सादरस्वास्वा लक्ष्मी से परे की अवस्था है । शक्ति लक्ष्मी के रूप में शिव से त्रिज रूप धारण कर लेती है और साथ ही शिव से अनिर्गम भी रहती है । इसी शक्ति को 'धारण मानि' (सृष्टि का कारण) कहा गया है, यही शिव (या पुरुष) के आत्मत्व का सार है क्योंकि सृष्टि द्वारा वह 'शिव' को आत्मत्व देती है । शिव अपने ही बीज द्वारा अपने को आत्मत्व में बोधकर (बीज रूप धारण कर) सृष्टि का सेतु रचता है और क्योंकि यह सृष्टि ही श्रेष्ठ शिव के भीतर ही होती है, जब इसे आत्मानुभूति (Self realization) कहा गया है, जेने सर्वत्र भे ह्य अपना ही रूप देखकर आनन्दित होने हैं, उसी प्रकार शक्ति जगत् के रूप में शिव को व्यक्तमानि (Reflected) कर देती है और जगत् यही अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर शिव आनन्दित होते हैं अथवा सृष्टि शिव की आत्मत्वमय लीला है । जब शिव के साथ हम तादात्म्य स्थापित कर हम भी अपने को 'शिव' समझते हैं तब साथ जगत् हमारे लिए भी आत्मत्वमय माला बन जाता है और हम मुक्त हो जाते हैं—कथुक्त कट जाते हैं 'यद् एव मे ही हूँ' ऐसा अनुभव होने सपना है । एनीलिए आत्म में शक्ति को 'दर्शन' की उपमा दी गई है । शक्ति सर्वत्र सृष्टि के आत्मत्वान को आत्मत्वित करती है । हम शक्ति द्वारा ही शिव 'आत्मसाक्षात्कार' करता है हम शिव के बिना शिव को हमारे लिए 'एव' कहा गया है क्योंकि शिव के बिना शिव भाव साक्षात्कार (Self knowledge) या आत्मज्ञान नहीं कर सकते । हम आत्मज्ञान को ही शिव 'अहम्' कहते हैं । अपनी शक्ति वा दर्शन ही आत्म-साक्षात्कार है, अपने को जानना है । यही 'सुमाह्वाना जगत्कार' कहा गया है ।

(१) It is (शक्ति) is likened in the Agam to a mirror serving to reflect the self knowledge of Shiva. For it is through it,

जिस प्रकार एक स्थल किसी दृश्य को तक तक आभासित नहीं कर सकता जब तक कि दृश्य बाहर न हो यदि कोई दृश्य बाहर ही भी और यदि प्रकाश न हो तो उस दृश्य का आभास स्थल न प्रकट न होगा अतः 'परमशक्ति' को भी व्यक्त रूपी आभास के लिए 'परमशिव' की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि ब्रह्मणः परमासक्ति एवं परमशिव एक और अभिन्न हैं। इसको अन्य प्रकार से भी समझाया जा सकता है—

सत्त्वादीत पदार्थ या अमूर्तर अवस्था (परमशिव) के बोध के लिए 'अकार' का प्रयोग होता है। यह प्रथम अवस्था है। द्वितीय अवस्था में शिव व शक्ति का सामरस्य होता है, इसमें शिव को 'अकार' या प्रकाश तथा शक्ति को 'इकार' या विमर्श कहते हैं। शिव अग्नि रूप है, शक्ति सोमरूपा है, इन दोनों का विन्दु रूप में परिणत होना (रज+बीज) ही 'ब्रह्म' है। साम्यभंग होने पर यह विन्दु शुक्ल व रत्न विन्दु रूप में व्यक्त होता है जैसे अग्नि के स्पर्श से पुत्र इतित होता है, वैसे ही प्रकाशात्मक शिव के स्पर्श से विमर्श रूपा परमशक्ति इतित होती है और उसमें परमात्मन् अमूर्त काय का स्थाप होना है, यही काय 'चित्तना' या ब्रह्मानन्द का स्वरूप है।

जब प्रकाशविन्दु विमर्शविन्दु में प्रविष्ट होता है, तब विन्दु में—उच्चरूपा (Swelling) उत्पन्न होती है, तब इस विन्दु से 'नाद' उत्पन्न होता है, इस 'नाद' में समस्त 'दत्त' रहते हैं, यही नाद व्यक्त होकर 'विशेष' स्वरूप बन कर जाता है।

सात-विचारक शक्ति के विनाश को मन्त्राग्ने मन्त्राग्ने के लिए तथा सात ही आध्यात्मिक अनुभूतियों की शक्ति के लिए अनेक जित्तों (चरित्तन) का ज्ञान

that Shiva, eternally knows himself which Self knowledge constitutes the essence (ब्रह्म) and without it Shiva is no more than a (एव) a lump of lifeless matter This self-knowledge is technically known as ब्रह्म—to see one's own Sakti is to see and enjoy one's own self This (ब्रह्म) is in reality the supreme self revealed in and to itself as an Infinite Delight (सुखदृष्ट्यात्मगतार)

Quoted from the Some Aspects of the Philosophy of Sakti-Tantra.

(२) शक्ति बंध—(ब्रह्माण-नीरज्जुर) शीतलाव वरिणार

प्राप्त करते हैं, इनकी व्याख्या अल्पविकर रतुस्वमय और सांकेतिक है—ज्याहूरक के लिए उपर्युक्त विक्रम में एक विन्दु प्रकारा है, एक विमर्श है, इन दोनों के संयोग से 'काम या रवि' नामक मिथ्यविन्दु व्यक्त होता है—यदि तथा सोम इसी 'काम' के यत्ना रूप में माने जाते हैं। अतः 'कामकम्पा' रहने से—पकारा विमर्श तथा काम वा रवि—इन तीनों का बोध होता है। इसी प्रकार जाने विक्रोपात्मक पदवि पर सृष्टि विकास होता है, यही कारण है कि किसी भी देवता के मूल तत्त्व के अनुसंधान में लिङ्गयोनिका सामन्तव्यवस्था विक्रोपमिज मध्यविन्दु ही विचारी पदवा है^१—उत्पत्त्ये यह कि शाक्तों को क्येक देवता के अनुसंधान में परनिस्थित बीर्ब-विन्दु के ही एवम होत है और इने यह सृष्टि प्रक्रिया के रूप में समझते हैं, इसीलिए योग तथा मोक्ष दोनों को एक ही पदवि द्वारा बड़ी समझाया जाता है। व्यष्टि समष्टि एवं यद्वासमष्टि—सबमें एक ही श्रिया होती है।

रपच के लय हो जाने के बाद, बुधियाय हो जाने के बाद भी 'एककम्पा' बाधुन रहती है। निर्वाण के बाद बड़ी कम्पा जीव की 'उत्पत्ती' अवस्था में रहती है। इसकी भी निवृत्ति के बाद जिस लिङ्गम अवस्था की प्रति होती है, वही त्रिच-शक्ति तत्त्व है, यही 'महादेवभावस्था' है, इसमें किसी का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता^२

इन अवस्था से स्पृम अणु पुनः व्यक्त होता है जिस प्रकार दीप-कमिका से प्रकाश-अंश विद्येय होता है, उसी प्रकार यह स्पृम अणु ही प्रकाश-अंश के समान व्यक्त होता है और त्रिच-शक्ति तत्त्व ही अणु दीप-कमिका है। शाक्त इस स्पृमरमिद माका को इगिदों प्रत्याहार से समेटने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार मानविक अंतःकरण स्त्री चरिषमाका भी आत्मविन्दु में लीन हो जाती है। इस प्रकार विक्रोपात्मक अविभक्ति के बीच मध्य-विन्दु में दिग्ग विन्दु-विन्दु शक्ति का गू वापसि विषय चमगा रहता है। श्री श्रीनाथ कविराज के अनुसार तथा इत्य का मुनन निमन, आदि बुद्ध एवं प्रकाश पारमिता, क मुननइकर यही है। यही विन्दु ही 'प्रपक' है। मुनन कुशनी शक्ति भी यही है—कुशनी जाड़ा होने पर त्रिच शक्ति का भेद विपक्षित हो जाता है और जीवशक्ति एवं त्रिचशक्ति—एकाकार हो जाते हैं। विन्दु तथा विक्रोपात्मक का भेद दूर हो जाने के कारण विन्दु

(१) शक्ति बंध—कम्पाण—श्रीनाथ कविराज

(२) बड़ी इष्टम्य—'शक्ति साधना' श्रीरंज निबंध

जिस प्रकार एक वर्णन किसी दृश्य को तब तक आभासित नहीं कर सकता जब तक कि दृश्य बाहर न हो यदि कोई दृश्य बाहर ही भी और यदि प्रत्यक्ष न हो तो उस दृश्य का आभास वर्णन में प्रकट न होना अतः 'परमपवित्र' को भी जगत् स्वी आवास के लिए 'परमपवित्र' की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि बसुन्त परमपवित्र एवं परमपवित्र एक और अविद्यमान हैं। इसको अन्य प्रकार से भी समझाया जा सकता है—

तत्प्राचीन पदार्थ या अनुत्तर अवस्था (परमपवित्र) के बोध के लिए 'अकार' का प्रयोग होता है। यह प्रथम अवस्था है। द्वितीय अवस्था में शिव व शक्ति का सामरूप्य होता है, इसमें शिव को 'अकार' या अकार्य तथा शक्ति को 'हकार' या विमर्श कहते हैं। शिव जग्मि रूप है, शक्ति सोमरूपा है, इन दोनों का विन्दु रूप में परिणत होना (रज+वीर्य) ही 'अहम्' है। साम्यमय होने पर यह विन्दु शुक्ल व रक्त विन्दु रूप में व्यक्त होता है जैसे जग्मि के स्पर्श से वृत्त इन्द्रित होता है, जैसे ही प्रकाशात्मक शिव के स्पर्श से विमर्श क्या परमपवित्र इन्द्रित होती है और इससे परमानन्द अमृत बाण का ज्ञान होता है, यही बाण 'विष्णुना' या ब्रह्मानन्द का स्वरूप है?।

अब प्रकाशविन्दु विमर्शविन्दु में प्रसिद्ध होता है, तब विन्दु में—उच्छ्वसता (Swelling) उत्पन्न होती है, तब इन विन्दु से 'माद' उत्पन्न होता है इस 'माद' में समस्त 'तत्त्व' खड़े हैं, यही माद व्यक्त होकर 'विष्णुम' स्वरूप बन लेता है।

शास्त्र-विचारक सृष्टि के विकास को समझाने समझाने के लिए तथा साथ ही साम्प्रदायिक अनुष्ठानों की शक्ति के लिए अनेक निम्नोक्तियों (चरित्तित) का ज्ञान

that Shiva, eternally knows himself which Self-knowledge constitutes the essence (वैश्वानर) and without it Shiva is no more than a (राज) a lump of lifeless matter. This self-knowledge is technically known as अहम्.....to see one's own Sakti is to see and enjoy one's own self. This (अहम्) is in reality the supreme self revealed in and to itself as an Infinite Delight (पुनर्द्विष्टाचमत्कार)

Quoted from the Some Aspects of the Philosophy of Sakta-Tantra.

(२) पवित्र शक्ति—(वसुन्त-गोरक्षपुर) श्रीजीवाच शक्तिदा

प्राप्त करते हैं, इसकी व्याख्या अत्यधिक रहस्यमय और सांकेतिक है—उदाहरण के लिए उपर्युक्त विधान में एक विष्णु प्रकाश है, एक विमर्श है, इन दोनों के संयोग से काम या रश्मि नामक मिथ्याविष्णु व्यक्त होता है—अग्नि तथा सोम इसी 'काम' के कृता रूप में माने जाते हैं। अतः 'कामकला' रहने से—प्रकाश विमर्श तथा काम या रश्मि—इन तीनों का बोध होता है। इसी प्रकार माने त्रिकोणात्मक पद्धति पर सृष्टि विकास होता है, यही कारण है कि किसी भी देवता के मुख तत्व के अनुसंधान में तिल्लयोनि का समन्वयक त्रिकोणस्थित 'मध्यविष्णु' ही दिखायी पड़ता है—शास्त्रों यह कि शास्त्रों को प्रत्येक देवता के अनुसंधान में त्रिकोणस्थित बीज-विष्णु के ही संयोग होते हैं और इसे वह सृष्टि प्रक्रिया के रूप में समझते हैं, इतिहासिक भोग तथा भोग दोनों को एक ही पद्धति द्वारा यहाँ समझाया जाता है। सृष्टि, समष्टि एवं महासमष्टि—सबमें एक ही श्रिया होती है।

एक के लक्ष हो जाने के बाद, वृत्तिनाश हो जाने के बाद भी एककला' बाधना पड़ती है। निर्वाण के बाद यही कला बीज की उष्णता' अवस्था में पड़ती है। इसकी भी निकृष्टि के बाद त्रिभुज निष्कल अवस्था की प्रति होती है, यही त्रिभुज-शक्ति तत्व है, यही 'महाब्रह्मवाक्य' है, इसमें किसी का कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता १

इन अवस्था से स्पष्ट 'अस्तु पुनः' व्यक्त होता है जिस प्रकार वीर-कलिका से ब्रह्म-संभल विद्यमं होता है, उसी प्रकार वह स्पष्ट, अस्तु ही ब्रह्म-संभल के समान व्यक्त होता है और त्रिभुज-शक्ति तत्व ही वह वीर-कलिका है। शायद इन स्पष्टतरिण माना को इतिहासों प्रत्याहार से समझने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार मानसिक संश्लेषण स्त्री 'प्रियमाता' भी आत्मविष्णु में लीन हो जाती है। इस प्रकार त्रिकोणात्मक त्रिभुज-शक्ति के बीज मध्य-विष्णु में त्रिभुज-विष्णु-त्रिभुज शक्ति का नू बारादि विधात बनता पड़ता है। श्री गौरीनाथ कविराज के अनुसार तथा इत्य का मुगत रितन, आदि कुछ एवं प्रकाश बारादि का मुगत बनता पड़ता है। यही त्रिकोण ही 'प्रभव' है। मुद्रा कुंडलिनी शक्ति भी यही है—कुंडलिनी बाधना होने पर त्रिभुज शक्ति का भेद विभाजित हो जाता है और वीरशक्ति एवं त्रिभुज-शक्ति—एकान्त ही जाते हैं। विष्णु तथा त्रिकोणत्व का भेद दूर हो जाने के कारण विष्णु

(१) शक्ति शब्द—अध्याय—गौरीनाथ कविराज

(२) यही इत्य—शक्ति साधना' दीर्घक निबंध

का विमूर्तत्व व निबोधत्व कुछ भी दोष नहीं बचता जो शेष रहता है वह भावित सत्ता है—बाबाकृष्णमनसगोचर है ।^१

शिव शक्ति की एकता ही शाक्त-साधना का विषय है । शिव को अक्रुम और शक्ति को क्रुम भी कहा गया है, अतः अक्रुम एवं क्रुम का अनुसंधान ही शाक्तदर्शन तथा अहंस्म है,^२ इसीलिए यह 'कौस्तुभार्णव' कहलाता है ।

तत्त्वज्ञाना उपर्युक्त विवेकान से यह स्पष्ट होता है कि परमशिव अपनी शक्ति परशक्ति से जिस प्रकार शिव एवं शक्ति के रूप में आभासित होता है और किस प्रकार शिव-शक्ति सामरस्य या समागम से सृष्टि होती है ।

(१) अतः परमशिव जब स्वेच्छा से उपाधि से आच्छन्न होकर ही 'शिव शक्तता' है यह प्रथम 'तत्त्व' है ।

(२) शक्ति—यह द्वितीय तत्त्व है—इसे पूर्वोक्तितानुद्धि की 'प्रसङ्गात्प्राप्त्या' इच्छा कहा गया है ।^३

(३) उपाधिक—अहम् के उपाय की अवस्था ही उपाधिकतत्त्व है ।

(४) ईश्वर—जैव विपयिनीवृत्ति से मुक्त तुरीयावस्था का तत्त्व ही ईश्वर कहलाता है । इसमें 'इहम्' का बोध होता है यह तत्त्व भेद को विषय करता है ।

(५) विद्या—अमर्त्त में ही है—यह जो उपाधिकसम्बन्धी वृत्ति है, वही विद्या तत्त्व है ।

(६) माया—यह अमर्त्त है—ऐसी भेदवृद्धि ही माया है ।

(७) अविद्या—विद्या का विरोधान करलेखनी वृत्ति ही अविद्या है ।

(८) ज्ञाना—जीव में निष्ठ जो सर्वव्यपत्तत्त्व है, जब वह 'किञ्चिद्व्यपत्तत्त्व' से संशुभित हो जाता है, तब उसे 'ज्ञाना तत्त्वात्प्रा' कहते हैं ।

(१) शक्ति-शंभु—शाक्त-साधना

(२) अक्रुम शिव हस्त्युक्त क्रुम शक्ति समीपितम् ।

कृतानुबुलाग्ल सम्पान निनुषा कौशिका विधे ॥

—ईश्वरितास पृष्ठ ११४

(३) परशुसामरस्य तंत्र से उक्त इनके अनुसार इन सभी तत्त्वों की व्याख्याएँ को गई हैं ।

- (९) राम—बीब म निष्ठ जो नित्यवृत्ति है, यही अब किये नियम में भवृत्ति से संकुचित हो जाती है, तब 'रागतत्त्व' कहलाती है।
- (१०) वाम—आकाशमयस्त चैतन्य की वृत्ति ही वाम है जिसमें अमता है, बड़ता है, गूढ होता है आदि प्रमाण होते हैं।
- (११) नियति—अविद्या द्वारा सर्वस्वतन्त्रता के विरोधान्ना ज्ञान पर जिसे कारण रूप में माना जाता है, यही नियति है अर्थात् अविद्या के कारण स्वानन्द का लोप हो जाता है, तब अज्ञ बीब अस्पृश्यता अस्पृश्यता, साम-ज्ञानि आदि अवस्थाओं में जिस कारण की योग करता है, वह तत्त्व नियति है।^१

उपबृक्त ११ तत्त्वों के अतिरिक्त बीब, प्रकृति मम बुद्धि अहंकार १० इन्द्रियां, पीब तन्मात्राएँ (संस्कार, रूपादि), तथा पंचभूत २५ तत्त्व और हैं कुल मिलाकर २६ तत्त्व ही हैं, बीब-दर्शन म भी यही २६ तत्त्व माने जाते हैं त्रिनेत्री कर्मा ब्रह्मीटी शैबदर्शन में सम कर चुक हैं।

किन्तु प्यान से वेदने पर जात होता है कि सास्य के २५ तत्त्वों को मन्वाब्दु शाक्तार्थक दगन स्वीकार करना है, उनमें ११ तत्त्वों को और जोड़ लिया गया है और इन ११ तत्त्वों के, द्वारा प्रकृति एवं पुरुष के ईगमात्र को समाप्त कर दिया गया है, प्रकृति को परमजिब की पक्ति मान कर सास्य के ईतबाद का अस्वीकृति कर दिया गया है, इन प्रकार शाक्त एवं शैब दार्शनिक दृष्टि से ऐसे अईतबादी हैं जो ब्रह्म तथा अमन्—दोनों को 'तत्' मानते हैं और फिर भी अईतबादी हैं क्योंकि उनरी दृष्टि में अद्वयगद् चैतन्यतत्त्व का ही एक रूप है—चैतन्य ही ही चैतन्यतत्त्व अद्वयतत्त्व व्याप्त होता है। किन्तु शाक्त-बीब दर्शन म परिणामवादी है, म आरम्भवाणी है, म विषयवादी है, इस हम 'अधिकार परिणामवादी' कर रहग है। क्योंकि यिब तदस्य और उदासीन हाकर 'गुटि' को इराते हैं अन् इमे 'गुटिबाद भी बद्द सकने है पारमार्थिक दृष्टिगोन म ही इन मत को यह संज्ञा की जा सक्तो है।

(१) तस्य मर्त्यानास्य विविधानं पूर्वोक्तविद्ययाहृतं तदेव कारणात्मनोऽनेन
 यत्कारणात्मनोऽनेन तद्विधायाप्युक्तं तदादयः तत्त्वम्—परशुरामस्य
 तत्र (पुष्प २३) विचार क निय इत्यम्—कहमासी तैवम्भं

दीक्षा शास्त्रों में भी दोनों की तरह शास्त्री धाम्नी एवं मांजी दीक्षा प्रचलित है। शास्त्री दीक्षा में पुत्र शिष्य में शक्ति का प्रवेश कराया है। धाम्नी दीक्षा में अनेकर (शिव) कामेश्वरी (शक्ति) के एक कुवच बरनी की भाँसा करने दीक्षा दी जाती है।

मांजी दीक्षा में शिष्य के कान में पुत्र संघ पड़ा है।

अनुप तीनों दीक्षाओं में 'ध्यान की प्रक्रिया ही स्वीकृत है। उदाहरण के लिए शास्त्री दीक्षा में शिष्य से कहा जाता है कि यह ध्यान करे कि उसके मूलाधार तक से ब्रह्मचर तक अग्नि प्रज्वलित हो रही है।^१ इस प्रकार के ध्यान करने से शिष्य की कुंभजिती बाहुत हो जाती है, ऐसा विश्वास है, परन्तु यह सब मुसकूना से होता है, यह बार-बार कहा गया है।

दीक्षा में पुत्र का महत्त्व सर्वोपरि है। गुह और देवता और संघ—इन तीनों की एकता प्रतिपादित की गई है। जब शिष्य इन तीनों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

दीक्षा के बाद शिष्य का नामकरण होता है वना मानन्वान, पचमाय शक्ति।

देवी रक्षुस में इस दीक्षा का विस्तृत वर्णन मिलता है।^२ नवरात्रि में नयी रात पर, ईशानदिशा में बेदी बनाकर परदेसी का 'बक' बनाया चाहिए। भूतसंघ का उच्चारण करते हुए शिवूर से देवी का संघ बनाये इस संघ में विन्मुक्त विज्ञान से मुक्त सना १ निकोप होते हैं, गनेश सर्व ब्रह्म तथा कुबेर की स्थापना की जाती है। खटकोनों में मोहिनी की पूजा होती है, त्रिकोण के सम्मिलित में परदेसी की पूजा होती है। पुनः पुनः की पूजा की जाती है। योनिव्य मुंड में होम किया जाय।

(१) तस्मान्मूलनात्रह्मिनिं प्रज्वलन्तीं प्रकाशतर्हीं ज्वलन्तनिवां
ध्यात्वा तत्रसिमिस्तस्य पापपाघाद् बन्धा—(परशु० सूत्र १६ सुत्र)

(२) देवीरक्षुस्य रामचन्द्र शक हारम्भु शास्त्री
प्रथम परत १९४१ भीमवर, दरमीर

'देवीरक्षुस्य' 'अध्यात्म' का भाग माना जाता है, यद्यपि इसमें कुछ भाग मुक्तमानी शास्त्र में लिखे गए हैं तथापि इसमें गुह शिष्य बरंपरा से प्राप्त प्राचीन धाम्नी का वर्णन है (इष्टव्य—देवीरक्षुस्य की भूमिका)

है। म्यास द्वारा भूत शक्ति की जाती है। प्राणायाम एवं ध्यान के बाद गुरु मंत्र होता है। देवीरहस्य में कप, होम, पुरश्चरण आदि का विस्तार से वर्णन है।

शक्तिमत शाक्तधर्म में शक्तिपाठ का विशेष महत्त्व है। शक्तिपाठ का विलुप्त वर्णन कश्मीर शैवदर्शन में किया गया है। शक्ति-प्राप्त्यना में भी शक्तिपाठ का अर्थ ब्रह्म या गुरु का अनुग्रह है, इससे सिद्ध शक्तियाँ अकस्मात् आगुप्त हो जाती हैं।

ब्रह्म क्या है कि शक्तिपाठ से सिद्ध अनुग्रह प्राप्त करता है। वहाँ शक्ति अव्यक्त नहीं होती, वहाँ सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।^१

दीक्षाओं के शाक्त सामना में कई भेद हैं।^२ कसावती दीक्षा 'धारशानिक' में इसका वर्णन किया गया है। तत्प्राप्त्या, सुवनाप्त्या, वर्षाप्त्या मंत्राप्त्या इन पाँच दीक्षाओं का विधान है। कश्मीर शैवदर्शन में इसका विवरण दिया गया है।

हंसविनायक सेन में एक मनोरंजक बात कही गई है कि कनकपुर में ता सती बर्मेकर है, अतः कौन सी दीक्षा दी जाय ? इसका समाधान यह है कि ब्रह्मचर्य से संन्यास से गायत्री-दीक्षा या वैदिकदीक्षा दी जा सकती है, किन्तु भोग प्राप्ति के लिए नुवाम्रम में शिवदीक्षा या शाक्तदीक्षा ही विशेष है। क्योंकि भूति शुद्ध है, अतः कर्मयोगी, भक्तियोगी तथा राजयोगी गुणस्वामी बनने हैं और शिवदीक्षा प्राप्त करते हैं।^३

दीक्षा का सांख्यिक तात्पर्य गुरु द्वारा ज्ञान के प्रकाश का दाग है (दीपते ज्ञानम्) जिससे पापाकरण का नाश हो जाय। सामान्यतः इसका अर्थ सिद्ध के फल में संन्यास करना होता है।^४ तारामक्तिमुधार्ष में त्रिप्रावृत्ती, वर्णमयी वनावृत्ती तथा वैश्वमयी—दीक्षा के विवरण दिये हैं।^५

(१) शक्तिपाठानुसारेण सिद्धोऽनुग्रहमर्हति ।

मत्र शक्तिर्न पतति, तत्र सिद्धिर्न जायते । हंसविनायक पृष्ठ १०२

(२) हंसविनायक, पृष्ठ ११०-१११

(३) तारामक्तिमुधार्षक Tantric Texts XXI 1940, Calcutta introduction, Page 7

(४) वही, पृष्ठ ८

शक्ति साधना : सातों के अनुसार स्वधिमर्ष ही पुष्पार्थ है (स्वधिमर्ष-पुष्पार्थ^१) अर्थात् सायक जब यह अनुभव करे कि परस्मि ही है सोई ऐसा प्रत्यभिज्ञान ही उद्देश्य है, प्राप्त्य है। जैसे कण्ठस्थ आधुपण वर विस्मरण ही ज्ञान पर उसके अन्वेषण के लिए इधर-उधर गटकते हैं और जब उसका पुनः स्मरण हो जाता है (प्रत्यभिज्ञान) जसी प्रकार जीव वाचस्वा में इस वह भूल जाते हैं कि हम परस्मि ही हैं। यह 'ज्ञान' हमें भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है।

अतः शाक्त-दर्शन में जी सर्वप्रथम शक्ति की कृपा की ही बात का की जाती है। बिना देवी की कृपा के कुछ भी प्राप्त नहीं होता। शैव एवं वैष्णव भी यही मानते हैं।

भवत्कृपा को प्राप्त करने के लिए उपासना की आवश्यकता है।^२ योग द्वारा प्राप्त मोक्ष में पुनरावृत्ति की—पुनः जन्मकारण की सम्भावना रहती है, अतः उपासना अनिवार्य है।

शाक्त-जीव उपर्युक्त कारण से ही योग के साथ शक्ति या उपासना को आवश्यक मानते हैं।

उपासना में मंत्र महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे साक्षात् पराश्रित स्वरूप हैं पराश्रित बेबटी शानी के रूप में स्फुरित होती है अतः मंत्रों द्वारा उस सूक्ष्म सर्वांगीत शक्ति या पराश्रित की अनुभूति सहज ही हो सकती है। इसीलिए मंत्रों में अशित्व शक्ति शानी गई है।^३

मंत्र केवल निही शक्ति के मात उच्चारण को नहीं कहते बल्कि पुनः मंत्र बेबता आत्मा मन्त तथा पवन (वागवायु)—इसकी एकता स्थापित करनी पड़ती है, इस ऐक्य की अवस्था में मंत्र का उच्चारण होता है, अतः मंत्र के साथ ध्यान विद्या रहना है, यह एकता 'भावना' से सिद्ध होती है। जागृतावस्था में मंत्र का ध्यान निर्यत रहता है। मंत्र एवं विद्या में ध्यान साधक अंतर बटाते हैं। मंत्र का सम्बन्ध

(१) परशुपाम ब्रह्मसूत्र—सूत्र ६

(२) वही सूत्र ६ की व्याख्या

(३) वही—पञ्चानामर्थावयवविज्ञाना—सूत्र ८

पुरुष देवताओं से और बिद्या सम्बंध स्त्री देवताओं से होता है। शिव-शक्ति की एकता के लिए बिद्या का प्रयोग मंत्र के साथ किया जाता है।^१

साधक की चित्तवृत्ति के अनुसार विभिन्न-विभिन्न देवियों के अनेक बिद्याओं का विधान किया गया है। कालिका के मंत्र (बिद्या) को रामसी घोड़सी के मंत्र को राजसी तथा परादेवी के मंत्र को सात्विक माना जाता है^२

बामादेवी का मंत्र—ॐ ह्रीं घों बामादेवी नमः
 कामी का मंत्र—ह्रीं ह्रीं ह्रीं हू हू ह्रीं ह्रीं हरिणे कालिके
 ह्रीं ह्रीं ह्रीं हू हू ह्रीं ह्रीं स्वाहा
 सरस्वती—ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वती नमः

पोखरासरी मंत्र } ॐ ह्रीं ह्रीं ऐं घों ॐ ह्रीं ह्रीं
 (१६ वर्णवाला) } करईलह्रीं हसराहणह्रीं
 सरनह्रीं घों ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

दूसरी प्रकार अन्य देवियों का असम असम मंत्र है^३। देवीरहस्यमंत्र में शिव एवं विष्णु का भी मंत्र दिये गए हैं। इससे स्पष्ट है कि बिष्णु को सात्विक देवता माना जाता है।^४ इन मंत्रों के तंत्रों में 'बिद्या' (गुणज्ञान) बड़ी जाता है।

तंत्रों का विश्वास है कि मंत्रजप से ही सिद्ध होती है। देवियों का भी यही विश्वास है। देवी रहस्य में मंत्रजप के दक्षिण मार्गी एवं बाममार्गी-दोनों-उपाय वर्णित हैं। बाममार्ग के अनुसार 'मधुपानपदामन' शायक जो किसी नम परस्त्री के साथ समागम-अवस्था में ही मंत्र का १ लाख बार जप करना चाहिए—साधुसिद्धि का यह श्रेष्ठ उपाय है।^५

(१) मन्त्रिज्ञा सारंगनाथ ब्राह्मणशुभराज के उत्तरखंड से प्राप्त—भास्कर राय की टीका मणि, अमनहृण्य यात्री द्वारा अंगरेजी में अनुमिति द्वितीय संस्करण अष्टमसंख १९२५ भूमिज्ञा भाग

(२) देवीरहस्य रामचन्द्र शारङ्ग—१९४१ भीलवर करपीर पन्ना १ पृष्ठ ७१-७२

(३) बने, पन्ना २ (४) बड़ी पटम ४

(५) बने पन्ना १० पृष्ठ ९२

विष्णु के बिनास्वरूप कामाग्नि शक्तिउत्पन्न हैं संपटित हैं। इसके पश्चात् 'समना' शक्ति का उदय होता है, यह धिक् से संयुक्त रहती है। 'समनावस्था' म आकर मन स्वल्पम-हीन होकर समाप्त हो जाता है, इसके बाद 'त्रिपुरा' एक बना रहती है, इसे इसे 'निर्वाणकमारण' कहा गया है, यही 'उग्मनाभूमि' है, सांख्य इसे ही 'कैवल्य' कहते हैं इसके पश्चात् विष्णु भी लय हो जाता है, महाशक्ति का आविर्भाव हो जाता है, यही पूर्णता की अवस्था है।^१

विष्णु का जब लय होता है, तो एक रिक्त दशा उत्पन्न होती है, इसी को योही 'अभावस्था' कहते हैं, इसके बाद महाशक्ति के आविर्भाव के बाद 'पूर्णदशा' को ही 'पूर्विमा' कहा जाता है। महाशक्ति की अभावस्था की ओर जो स्फूर्ति है, यही 'कालीरूप' है और पूर्विमा के रूप में चोड़नी त्रिपुरा सुन्दरी या श्रीविद्या व्यक्त होती है अर्थात् एवं कोमल देवियों के रूप का रहस्य यही है, इसी को 'कालीकुल' या 'श्रीकुल' भी कहा जाता है। इन दोनों के मध्य में तारा या तारिणी विद्या है^२ कुंडलिनी जाग्रत होने पर ही यह व्ययस्था प्राप्त होती है।

कविराज जी के अनुसार शक्ति-उपासना में सकल निष्कल तथा भिन्न शक्ति की ये तीन व्यवस्थाएँ हैं। अम का ध्यान रखन से सकलभाव की उपासना तिष्ठति है, भिन्नभाव की उपासना मध्यम है तथा निष्कल उपासना ही श्रेष्ठ है, कविराज जी बिना पुरु कृपा के और कुंडलिनी के जागरण के शिवी को शक्ति-उपासना का अविनाशी नहीं मानते।

मूलाधार से आत्मा अरु परम अज्ञेयरी रूप में शक्ति की आराधना तिष्ठति उपासना है। परन्तु जो साधारण शक्ति तथा प्राण की गति का अन्वेषण कर कुलपद म परिचित नहीं हो सक्ता उसके लिए शिवी की अथवा उपासना भी नहीं है^३।

त्रे-मुक्ति जब तक है, तब तक मूलाधार से अक्षयस कमल तक देवतारि सहित समय इरी-अरु की उपासना ही अर्थात् अथवा पूजा है। कुंडलिनी योग के पूर्ण होने पर साधारण के हृदय म बाद की अभिव्यक्ति ही आन्तर अथवा मानसमप

(१) शक्ति श्रेष्ठ— शक्ति-उपासना —कल्याण गोरखपुर

(२) शिवी (३) शिवी

सम्बन्धीय हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

है, इसमें चायक पूर्णतः अंतर्मुख होने पर ही उपलब्ध होता है। बल्लूत यह चित्र की निरन्तर अंतर्मुखता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।^१

पदच्छन्न निरूपण ७० हजार नायियों के इस शरीर का आधार नेकदण्ड है। शरीर या पिण्ड ब्रह्माण्ड का ही समुद्र्य है।

पदच्छन्न सुपुष्पा के भीतर स्थित माने जाते हैं। ये कमल के बाहर के हैं और प्रत्येक चक्र कमल के वन एक वर्ष जित्त हैं।

जामे का विवरण पदच्छन्न निरूपण (पुष्पनिन्द) के आधार पर दिया जाता है।^३ बिसे पूषक चार्ट पर देखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण 'पदच्छन्ननिरूपण' के आधार पर 'शक्ति-शंका' से दिया गया है। अन्य शंकों में कुछ निद्रता भी पड़ी जाती है, जैसे 'बाला-पद्मिनी' में मनेरा चरखती लक्ष्मी नाचयण आदि देवी-देवताओं का उल्लेख है।

कुछ प्रेमी अब एक कुंजलिनी को नामिहरण में मानते हैं। कुछ कुंजलिनी को 'ज्वाहरचक्र' में मानते हैं।^२ प्रेमी के गिस्तिरेल (१७ वीं शताब्दी) महाराय ने कुछ मौखिक चक्र-चित्र बनाए हैं जो शक्ति-शंका से लिए गए हैं। गिस्तिरेल के अनुसार चक्रों का सम्बंध योग बुध शक्ति आदि लक्षणों से है।^४ ललिता सहज नाम से 'वेन्दव' नाम से एक लक्ष्मी चक्र का भी उल्लेख मिलता है। इसे विन्दुओं का समूह कहा गया है। यथा ह + विन्दु = बह (ह) व + विन्दु = वं = सर्व।^५

कुंजलिनी योग का वर्णन शास्त्रों में ही-मुस्य रति चक्र के माध्यम से वर्णित हुआ है। जिस प्रकार कोई स्त्री राज-मार्ग पर चलती हुई किसी गुप्त स्थान में अपने पति या प्रेमी से मिलती है और आज्ञा के बाद बभ्रु (बीज) निपटी

- (१) वही पदच्छन्नों का विलुप्त विवरण शक्ति शंका (पृष्ठ ४२१—४२९) में दृश्य है।
- (२) पदच्छन्न निरूपण—शक्ति शंका पृष्ठ ४२३ से उद्धृत
- (३) वही (४) वही
- (५) ललिता सहजनाम—श्रीगणेशी अनुवाद में वेन्दव चक्र की व्याख्या

शब्द	स्वामिकाति	यंत्रमध्यरेख	
मूलाधार	मेखंड की रेखा किनी		स्वयंभूतिज्ञ को बलपित करके कुंडलिनी-राशि पृष्ठ मुख में एकाकर स्थित है।
स्वादिपत्रम	सिद्ध-रेखा के किनी		
मणिपूरक	नादि-रेखा के सम्मुख किनी		
अनाहत	हृदय सम्मुख किनी	धरति विक्षोभ है।	इस शब्द में 'बाध' नामक एक तिज्ञ भी है, एक अष्टमकमल है। 'हनुं' यही है।
विशुद्ध	बंठ के सम्मुख किनी		
आमा	भूमध्य सम्मुख किनी		
एहंकार	मेखंड ऊपरी किनी पर		

है उसी प्रकार कुंबसिनी शक्ति सुपुत्रा-भार्ग (राजभार्ग) पर जन कर, पुत्र स्थापना में (घटों में) निवास करती हुई महाशक्ति (शिव) का आभिज्ञान करती है और जन्म गिराती है। यह कुंबसिनी तथा ही सर्प की तरह चरम क्रिया करती है, कान बन्द कर इस शब्द को सुना जा सकता है। 'देवी पुराण' के अनुसार इसका रूप शूराटक की तरह होता है। जिस प्रकार ली के मिलने पर पुष्प के भीतर अग्नि जागृत हो जाती है, उसी प्रकार कुंबसिनी शक्ति के मिलने पर अग्नि से अन्नमा इतित होता है।^१

बाणी की अभिव्यक्ति को भी कुंबसिनी योग से समझाया गया है। बाण के समान बाणी का अव्यक्त रूप (परा शक्ति) मूलाधार में स्थित रहता है। पत्न्यन्ती अवस्था में यह बाण संकुचित होने की ओर उन्मुख होता है। मध्यमा बाणी की वह अवस्था है जब दो पत्तियाँ प्रकट होती हैं किन्तु परस्पर संयुक्त रहती हैं बेचरी बाणी की वह अवस्था है जब अलग-अलग पत्तियों की तरह बाणी प्रकट होती है, किन्तु मूल में वह मूलाधार से संयुक्त रहती है। निर्यतन के अनुसार वायु के द्वारा पराबाणी सर्वप्रथम मूलाधार में जागृत होती है, उत्तरबायु वह वायु ऊपर उठती है और स्वाधिष्ठान चक्र में व्यक्त होती है। यह अवस्था पत्न्यन्ती कहलाती है।

अनाहत चक्र में आकर बुद्धि के संयोग से यही बाणी मध्यमा कहलाती है और उत्तरबायु वह विद्युद्धि चक्र में व्यक्त होकर जब कंठ से प्रकट होती है तब वह बेचरी कहलाती है।^२

शक्तियों शक्तिपूजा की देवता अनेक देवियाँ हैं। इनमें इस महाविद्याएँ दुर्गा आदि हैं।

शक्ति पूजा में इनमें से कोई एक देवी उन पूजा की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है, उसी के सम्मुख सारी क्रियाएँ की जाती हैं। इनका विवरण इस प्रकार है।

(१) शक्तिशास्त्रनाम—बेचरीजी अनुवाद में इत्यस्य 'कुंबसिनी' की व्याख्या।

(२) शक्तिशास्त्रनाम—बेचरीजी अनुवाद में इत्यस्य उदरगत शक्तौ की व्याख्या।

व्रामहाविद्या—शक्तिपूजा में १० शक्तियाँ मुख्य हैं, यद्यपि अन्य अनेक शक्तियों के उपासना-रूप तंत्रों में वर्णित हैं। महाकाली, ताप, पोडरी, मुवने-रमरी द्विभ्रमस्ता भैरवी, बरुगामुनी, मातङ्गी, कमला एवं धूमावती, ये क्रमशः महाकाल कद्योम्य पञ्च मुखशिव म्यम्क शिव कन्क शिव शशिभामूर्ति काल भैरव एकमुख महाकाल मतङ्क शिव तथा सवाशिव पुरव की शक्तियाँ हैं। धूमावती पुरव शूर्य है, अतः उसे 'विषया' भी कहा गया है।

यह विभाजन महाभारत में नहीं मिलता ऐसा पतीत होता है कि दुर्गा-सम्प्रदाय वामशक्तिवादी सम्प्रदाय से प्राचीन है।

वामशक्तिवादी के अतिरिक्त सात मातार्य हैं—जाही, माहेरबरी कौमारी वैष्णवी धाराही, ऐन्द्राणी, तथा चामुण्डा।

वामशक्तिवादी में पोडरी को शक्तिवादी जगिता महा त्रिपुर सुवरी बाला शक्ति नामों से अभिहित करते हैं—इसके दस रूप माने जाते हैं—कुमारी त्रिपदा पौरी तथा भादवी, कामी शक्तिवरा दुर्गा तथा जगिता। इनकी उपासनाविधि विभिन्न हैं और इनके सम्प्रदाय भी अलग-अलग हैं।

इनके अतिरिक्त नवदुर्गाएँ हैं। दुर्गा का अर्थ यहाँ देवी है। शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी अन्नभयटा, कृष्णायाबा, स्कन्धमाता काल्यायनी कालरात्रि महागौरी तथा सिद्धिदात्री। शक्ति शक्त (कल्याण) में इनके विभिन्न व्यापारिक स्थितियाँ पाए हैं।

बालु की दृष्टि से देवियों की पूजा का भी विधान किया जाता है। १ वर्ष की देवी 'सन्ध्या' २ वर्ष की 'सरस्वती' ७ वर्ष की 'अदिका' ८ वर्ष की 'सन्ध्या' ९ वर्ष की 'सुर्गा' या 'भाला' १० वर्ष की 'गौरी' ११ की 'सहमी' तथा १६ वर्ष की देवी 'जगिता' कहलाती है।

धार्मिक लोग 'शक्ति' से ही शक्ति का विकास पाते हैं अतः शिव विष्णु एवं ब्रह्मा देवी से ही उत्पन्न हुए हैं इन विकास को यों दिखाया जाता है।^१

(1) Elements of Hindu Iconography G N Rao Vol. (I) Part (II)

(2) Ibid Vol (I) part (II)

आदि शक्ति— सात्विक भेष → यौरी + विष्णु

आदि शक्ति— राजस—मद्यमी → महात्म्यमी + हिरण्यमर्म

आदि शक्ति— तामस—महाकाली → धरम्बती + श्व

बेद्य की दृष्टि से देवी के १२ स्थान कहे गए हैं—कामाक्षी (कोचीपुर) कुमारी (किरल) सुंदरी (बंगाल) गुरुलकेस्वरी (नेपाल) ज्योती (महाबा) जम्बा (बागल) महात्म्यमी (किरली) कामिका (महाबा) ललिता (प्रयाग) विष्णुवाहिनी (किष्कंधक) विद्यामाली (काण्ठली) तथा मंगलकटी (गर्वा) ।

त्रिपुरा देवी के तीन पीठ बताये जाते हैं—नागविरि (कन्याख्या पर्वत) चामुण्डर तथा पुनर्विरि । इसे ही त्रिपुराकाला त्रिपुरसुंदरी तथा त्रिपुरभैरवी कहा गया है ।

दशसंज्ञक में देवियों के विधेयकर इस महाविद्याओं के इस भैरवों के नाम भी दिये गए हैं १ महाकाल (काली) असोम्य (ताप) शिव (त्रिनेत्र + पंचमुख) (चोइली) श्यामक (गुरुलकेस्वरी) कल्पितामूर्ति (भैरवी) श्वंभ (क्षिप्रमस्ता) एकवक्त्र के (बागरा) मत्स्यपिच (मातंगी) विष्णु या सराधिष (कमला) । विद्या प्रदायत्री के भैरव का उल्लेख नहीं मिलता ।

सम्प्रेत संज्ञ में चंद्रकटी, लघुस्वामी, त्रिपुरा वनदुर्गा सुमिनी अरवाटका, त्रिसोमवित्रमा काण्ठी एक अत्रपूर्णा का भी उल्लेख है ।^१

शक्ति-पूजा परशुघाम सम्पन्न में ललिताकप, स्वामात्म आदि कई देवियों की उपासना का वर्णन है, साथ ही चित्तवृत्ति के अनुसार ही साधनाओं का विधान किया गया है प्रत्येक देवी का एक मंत्र आदि अल्प अल्प है, परन्तु सभी साधनाओं का आचारभूत सिद्धान्त एक ही है देवी के साथ तादात्म्य । यह अनुभव करना कि मैं देवी ही हूँ । यह स्मरणीय है कि देवी या शक्ति को स्त्रीनिद्रा या पुत्रिद्रा से परे जाना जाता है केवल तापना को सुविधाजनक बनाने के लिए उसे 'स्त्रीरप' माना गया है । इसका भी एक विषय सिद्धान्त बतिया दिया गया है । शास्त्रों शीर्षे एवं वैष्णवों के अनुसार साधर्मिकसत्ता का सद्गता साक्षात्कार

(1) Gleanings from the Tantras—Gopinath Kavraj
Vol. (ii)

(२) वही

साधना की अशिक्षित चेतना सहन नहीं कर सकती, अतः उस सर्वातीत सत्ता का अंश एकद्वेष में अभिव्यक्त रूप ही साधना का विषय बनाया जाता है।

देवी मंत्रोच्चारण के साथ साथ ध्यान करने से स्वतः मानसिक स्थिति पर स्फुरित होती है, बाह्य की मूर्ति तो जांतरिक मूर्ति की बाधित करने का साधनमात्र है, अतः 'मूर्ति' का वास्तविक अर्थ है—'साधक की चेतना में स्फुरित दिव्य-सत्ता का रूप।' यही देवी का अर्थान्वय है।

पूजा-पद्धति परधुरामंत्र कौलों का तंत्र है, अतः कौल-साधना के लिए इस तंत्र को प्रमाण माना जाता है।

इस तंत्र में देवी पूजा में पंचमकार की को आवश्यक कहा गया है। 'कस्तुरिण में केवल धुम मासन से ही देवी की पूजा करे', ऐसा स्पष्ट कहा गया है।^१ कुमारबंश में कहा गया है कि धुम एव मास के पूजन बिना निष्फल होता है।^२

किन्तु पंचमकार उभयन के विषय में तंत्र जिस साधनाधी पर बल देते हैं, उसे प्रायः दुमा दिया जाता है। देवी-विदेही विद्यान और मूर्ति-सत्री यह मूल बातें हैं कि शाक्त-तंत्र तथा तांत्रिक बीजों में समाज में फैली हुई दुष्टदृष्टियों को अनुशासित करने के लिए इन साधनाधी का आधिकार कर दिया जा। अतः तंत्र प्रोपित करता है कि यह पंचमकारवत् 'अधिवादावत् है, यह मनोनिष्ठ के हेतु है, विनाशिता को आधिक रूप देने के लिए नहीं है। अतः स्वीकार्य के लिए मुनन

(१) यथा यतो मनुर्बेधि मयामकित्त

प्रादुर्भभूव मे सथो या सा प्रोच्छेति देवता—

देवीरहस्य रामचन्द्र काक पदम १४ पृष्ठ ६ १०

धीनगर, काश्मीर १६४१

(२) पूजनीया कर्मा देवी—केसरीरामने' धुम'

(३) विनाशितपिनिजगाम्या च पुत्रम निष्ठम भवेत्—कुमारबंश परधु रामचन्द्र मूत्र से पञ्च

है और दुर्बलप्रिय के लिए बिनाशकर है, तब तक कि भोगों से भी दुर्बलप्रिय व्यक्ति का नाश हो जाता है, जबकि स्थिरचित्त भोग में एत रहकर भी शोभरहित रहते हैं।

विपुलाशय संन मे यह स्वीकार किया है कि ऐसे संन स्थिरचित्तता पुनरु है। परन्तु यह संन स्पष्ट कहता है कि बिना स्थिरचित्तता के सिद्धि असम्भव है। भक्ति एवं यज्ञाविहीन व्यक्ति स्थिरचित्त नहीं हो सकता।

शाक सांसारिक विद्याओं को दूर करने के लिए मरिचा का विषाण स्वीकार करते हैं इसके सिवा मरिच एशिय भाग्य को एकत्र स्फुरित कर देनी है, क्योंकि एशिय भाग्य के रूप में साक्षात् आनन्दवर्षिणी शक्ति का स्फुरण होता है, अत एशिय भाग्य की पूर्णजायुतावस्था में ही उस शक्ति के स्वल्प की एक क्षणक मिल सकती है, अत उद्विगलन में बीमंस्तरण के समय जिन प्रकार मय्य बुद्ध अनुभव नहीं होगा चित्त तन्मय होना है, उसी प्रकार शक्ति के साय तादात्म्य के समय को अधिकाधिक बढ़ाने के लिए ही पंचमवार सेवन का विषाण है। इसीगि परशुचम ने कहा कि 'अमत्रोप मासुमवमात्म्यं विधिं ह्यिहा... भोक् विद्विन्वर्जमम्' की शक्ति में ही 'पंचमकार सेवन' करना है। अल्पमत के लिए मरिचार्थ पान नाशक है। बीमावनी शिष्य में इमीनिय पंचमवार का तात्पर्य जब दुसागंध मत्र केजापार कर निवा नया है। मरुत्कार चक्र से व्यथित होने वाला असुन ही मरिचा है द्वैतमाप ही मांस है। उन्मिन्न चांचक्य ही मरमय है, इनका भगव ही बोधी का ध्येव है। मैयुन से तात्पर्य है कृत्तिलिनी शक्ति और परशिय की एकता का। (बीमावनी शिष्य-शक्ति टेकट्स, vol XIV भूमिप, पृष्ठ ११) किन्तु इनमें यह न मनमता चाद्रिय कि पंचमवार सेवन केवन प्रतीक के रूप में युगत होता है, उन्मिन्न भाग्य की संन आध्यात्मिक आनंद का ही एत रूप मानने हैं और पंचमवार उस भाग्य को उत्पत्ति करते हैं अत ईशूत के मकर ही बुधिनय हीन में उस भाग्य की छनक मिलती है। एत भाग्यपान को ही स्थायी बनाने के लिए पंचमवार सेवन होना है अत प्रीतार्थ आध्यात्मिक आनंद पर बन देने

(१) अयं तु परम बीमार्थ मय्यह मोचरति।

अमिषाराजमाया मनोनिपरागेव

स्थिरचित्तस्य मुमुक्षु गणमगुर्गिदित् ।—परमात्मनः, —

परशु राम वरु सूत्र म उदुन

के लिए है, पंचमकार सेवन का निषेध उसका तात्पर्य नहीं है। (दृष्टव्य-हंसविभास-पृष्ठ ३१८)

कृष्ण मित्र ने प्रयोगशालाय नाटक में विभासी और भद्र शास्त्रज्ञाधर्मों को लिखा है, स्वयं परशुरामसंन के टीकाकारों ने शास्त्र-ग्रन्थों का मरुतमाग बर्ण करने वालों की मस्तिष्का की है कि भावकम अविशेषिभ्य, अपमजिह्व, धिरोत्तर परायण रायान्न भोग 'पीत्वा पीत्वा पुन पीत्वा' मायसान्त पित्रे मद्यं भावि बचना का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर बर्णन कर रहे हैं।^१ अतएव अविशेषिभ्य साक्ष्य को गन्ध, उष्ण भावि से शक्ति-पूजा करनी चाहिए जैसा कि दक्षिण पंजी शास्त्र करते हैं।^२ केरुकारों संन में भी अविशेषिभ्यो के लिए वामभार्ग को सर्वथा गन्धनीय कहा गया है।^३

कौलशास्त्रा में विधि-निषेध का पूर्ण अभाव है, ज्ञान की अंतिम अवस्था में ही साधक इसका अभ्यास कर सकता है। इसमें 'बर्ण' पुरुषारथ (वप) न्यास भावि किरी का विधान नहीं है। वेदीरक्ष्यसंन में पंचमकार की महिमा का विस्तार से बर्णन किया गया है, इनमें भी मरिच एवं मैतुन का विशेष विवरण मिलता है। विम-विम श्रम्यो तथा इत्यों का समाज में निषेध है, उन्हीं उन्हीं को हृत्पुनैक कौलमार्गी भाचरण में साते हैं।

मरिच के लिए कहा गया है कि समुद्रमंजु के समय स्रवाशिव के सुरापान से एक बूँद टपक पड़ी थी बही 'पुत्रमता' बन गई। इस मरिच या मुरा के अनेक भेद बताये गए हैं और इसे सर्वोत्तमी माना गया है।^४

मरिचपाल के अन्वर्त में सात स्थितियों का बर्णन मिलता है, जो योग की स्थिति को भी लक्षित करती हैं। मरिचपाल (तथा अन्य मकारों को भी) स्वस्वानन्द का अभिर्भवक माना गया है। स्वस्वानन्द में भावना की बुद्ध्या से ही निपट, अनुग्रह की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है, ऐसा विश्वास है।^५

(१) परशुरामकल्पसूत्र—भाष १ पृष्ठ १३१

(२) वही पृष्ठ १३२

(३) वही

(४) वेदीरक्ष्य—पृष्ठ १३

(५) त्रिवेदीसंन—परशुरामकल्पसूत्र (टीकाकार—अमानंद नाथ) १३२३ महादेवशास्त्री अक्षीय

आरम्भोक्त्वास यह प्रारम्भिक सामना है इसमें पंचमकार का अनुशासित प्रयोग किया जाता है। इसमें 'त्रैपुरसिद्धाम्' पर बस दिया गया है।

चरुयोक्त्वास इसे 'गणपतिक्रम' कहते हैं इसमें गणपति तांत्रिक देवता के रूप में प्रकृत होता है। इस क्रम में मन्दिरा की मात्रा बढ़ जाती है।

यौवनोक्त्वास इसमें 'जमपाजप' (हंसस्सोऽहं) जमता है, मन्दिरा की मात्रा बढ़ जाती है। किन्तु पुनः की देखरेख में कार्य होता है।

प्रौढोक्त्वास इसमें 'मानसजप' पर चल दिया गया है।

तदन्तोक्त्वास बाराही मंत्र का जप होता है, इसमें समप्रयोजना, मदनविभवा शक्ति के साथ बिहार होता है मन्दिरा की मात्रा बढ़ जाती है।

उन्मनोक्त्वास यही 'उन्मन' अवस्था है, इसमें सामन का चित्त सर्वतत्त्वों का मम ही जाता है, क्योंकि इसमें मन्दिरा सब कुछ मुना देती है।

मठ-मन्दिरापात्र द्वारा प्राप्त मानसिक अवस्था को प्रतीकरूप में भी स्वीकार किया जाता है। १८वीं शताब्दी के एक संन 'हंसविभास' में कहा गया है कि 'उन्मनावस्था योग की उच्चतर अवस्था है, इसमें गणारे जादि का भी बाह्य पद नहीं मुनापी पदता और शरीर काष्ठयन् हो जाता है।' ललितानन्दहस्तनाम में 'उन्मनावस्था' को मनोन्मनी कहा गया है। यह ब्रह्मरूप से किंचिन् नीचे का स्थान है, जहाँ प्राण-वायु स्थिर हो जान पर यह अवस्था प्राप्त होती है इसे 'रुद्रमुद्र' भी कहा गया है। यहाँ काल बैरा (Space) सत्य, देयतादि का अस्तित्व नहीं रह जाता वहाँ पूर्ण-स्मार्तन्त्र प्राप्त होता है। कबीर ने इसी अवस्था का वर्णन किया है। 'उन्मनी' योगशास्त्रानुसार एक मुद्रा भी है, इसमें नेत्र न बन्द होते हैं, न मुकते हैं। न साँस आती है, न रुकती है, ध्यान पर्य ध्येय सय समाप्त हो जाता है।^{१२}

(१) इन्द्रुम्मादि निगाह्य, निःशृणोति वदाचन् ।

वाष्टवज्जायते देहो—ह्युन्मन्यावस्थया प्रुबन् ।

हंसविभास सम्पादक विपुलेष्टरभट्टाचार्य गायबबाद बेरिचरंम
सीरीज १२१० पृष्ठ ४२

(२) ललितानन्दहस्तनाम—अनंतहृष्य शास्त्री द्वारा मनोन्मनी को व्याख्या ।

अनवस्योस्त्रास यह अंतिम स्थिति है, इसमें मदिरा की मात्रा सबसे अधिक हो जाती है। योग की उन्मनावस्था को प्राप्त साधक ही इस अवस्था को प्राप्त कर सकता है।^१

परशुरामकल्पतरु में अन्धम कहा गया है आत्म्यात्मत्वा में उपामनाविषयक इच्छा होने पर भी साधक में तंत्रशास्त्र की अनभिज्ञता रहती है। तन्मात्रत्वा में तंत्र का पछन-पाठन पूरा हो जाता है। यौवनावस्था में शास्त्रज्ञान हो जाता है। प्रौढ़ावस्था में साधक शास्त्र प्रतिपादित ध्यान में लीन हो जाता है। तन्मात्रत्वा में ध्यान के बाद उन्मासबुद्धि होती है। उन्मात्रत्वा में मन शक्ति से मुक्त हो जाता है और अनवस्था-स्थिति में साधक 'धुणावृद्ध' हो जाता है उन्मनावस्था से पूर्व मदिरा आचल्य उत्पन्न करती है, परन्तु उन्मनावस्था में यत्न बिना ही मन स्थिर हो जाता है। जब यत्न करने पर भी—अर्थात् बामाचार की शक्ति कर देने पर भी मन अचल नहीं होता तब इसे 'अनवस्था की स्थिति कहते हैं यही अंतिम स्थिति है। उन्मास का अर्थ है अपने अन्तःकरण का ज्ञान अर्थात् ज्ञान ज्ञान। विज्ञान साधक स्वयं का सुदमबुद्धि से अपने भाव ही शोचन करता है। इस प्रकार चेतना का शोचन करके प्रौढ़ावस्था (तुरीयावस्था) पर्यन्त 'सम्याचार' का पालन करना चाहिए अर्थात् विधि-नियम मानना चाहिए तत्परचात् 'यथा काम विहार' किया जा सकता है।^२

विहार के लिए शक्ति या जी की शक्ति के विषय में कुछ नियम बताये गए हैं, यथा जो जी स्वतः आसक्त हो उसी का भोग करना चाहिए प्रवासीन को बनादि देकर आकर्षित करने का प्रयत्न दात-विद्युत् है।^३

बामाचार शास्त्र का उद्देश्य है, बुद्धि का जय लब्धा सुगुप्ता कुल शक्ति तथा शील का क्रम-क्रम से नाश कर देना, इससे चेतना को संकुचित करने वाले आचरण नष्ट हो जाते हैं और निष्क में शक्ति शक्तिर्मा प्राकृत हो जाती है।

शास्त्रार्थ साधना के तीन ध्येय कहे हैं—पशु दिव्य एवं वीर। 'पशु' साधक मयाँसादी होते हैं उनके लिए दक्षिण पंथ है। दिव्य साधक मुझ मंध

(१) तिलोत्थक—उपामनाशास्त्र

(२) परशुराम कल्प वृक्ष—भाग १, पृष्ठ ३३९-३४०

(३) बही पृष्ठ ३३८

मंत्र को नहीं छोड़ता तथा ब्रह्मसाधन का संघी होता है। वीरसाधन के लिए विधि-नियम नहीं है।

बीरसाधना ही श्रीमसाधना है जिसका कुछ परिचय हमने दिया है। इसमें सर्वप्रथम साधना 'इन्द्रिय साधना' है। बिना इन्द्रियसाधना के बलिपुत्र में पुत्रा बोधादि निष्पन्न रहते हैं। यह 'भैरव (मर्याद) साधना' कहलाती है।

इन्द्रिय साधना कल्पना रूप पर विजय प्राप्त करने के लिए है, जिस तरह पंचमकार का उद्देश्य चित्त की एकवृत्ता है, उसी तरह पुत्रा मय मन्त्रा, भादि पर विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्रियसाधना है। शाक्तसाधन ज्ञानवृत्त कर अपने को उन स्थितियों में लाते हैं जिनमें मन क्षुब्ध हो और ऐसे समय में ही वे अपनी केशना को निरुद्ध करने का प्रयास करते हैं।

क्योंकि 'इन्द्रिय सर्वोपरि रूप से मय मन्त्रा पुत्रादि को उत्पन्न करने वाला है बहो मू'मान का भोर रव होता है, चित्त की दुर्गति उन्नी है मू'म्येन निराध बिच्ये है चारों ओर बिन्द ही बिन्द उपदिष्ट होने है, अतः इन्द्रिय को परम उपवृत्त स्थान माना जाता है। कारण एकाकी ऐसे स्थान पर जाने का भी साहस नहीं करते म्नि मही अतः भैरव' विचारत है और उनके यत्न 'बीर' साधन भी। इन्द्रिय को इनीतिप 'बीर'मूनि कहा जाता है।

रात्रि के प्रारम्भ होते ही, इन्द्रिय में पहुँचकर म्नामादि द्वारा मुक्ति करके इवी वा ध्यान करते हुए मंत्र वा जप करना चाहिए। चार्चना करे हि 'हे ज्ञानरूपानुभवना देवी। तू म्नामात्र में मू'ल्लिगादिनी है, मापी तुझमें ही मय हल है, तू मुझ पर अनुग्रह कर।'^१

इन्द्रिय साधना में भी अति साधासाध, ध्यान, भादि सभी का निधन दिखायी पड़ता है। इन्द्रिय साधना से ही साधना को 'भैरव रूप प्राप्त होता है। अपौर वाचालिक भैरव जैसे साधक इन्द्रिय साधक ही है। इन्द्रिय-साधना में पंचमकार द्वारा 'चार्नी को संगुप्त करने का विधान दिया गया है और 'बलि' जेन बर्म भी म्नि जाते हैं। जिन के अहू में म्नी हुई देवी वा ध्यान किया जाना है।'^२

(१) देवी रहस्य—पृष्ठ १२।

(२) वही।

'कीर्तिकावली' निर्णय में समयान्त में 'राज साधना' का विस्तृत वर्णन है। यहाँ यह भी कहा गया है कि शास्त्रों के अतिरिक्त वेद्वेद मानस्य शेष तथा अन्य मंत्रों के साथ ही राजसाधना करते हैं^१ सम्भव है वेद्वेदशास्त्र में भी प्रथम प्रसंग क्रियाएँ प्रबलित रही हों क्योंकि पांचरात्र में योन पर पर्याप्त बल दिया गया है।

किसी स्वप्न, बुद्धा बीर गुप्तर व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके राज को लेकर उसकी पीठ पर सातक बैठकर मंत्र का जाप करे। पीठ पर देवी का मंत्र बनाया जाता है और राज की शिव के समान पूजा की जाती है। इस प्रकार के मंत्र जाप को 'गुरुराज' कहते हैं। कीर्तिकावली निर्णय के १४ वें अध्याय में इस साधना का विस्तृत वर्णन है। अनेक इच्छों से राज की पूजा की जाती है, जैसे कर्म, पाप क्षुब्धि आदि से उखाड़ा जाता है। योन जाप से सातक का जालन जिससे बनता है और जाना बिज आते हैं, निर्मम होकर मंत्र जाप करते रहने पर सिद्धि मिलती है। राज को सम्बोधित करके जो स्तोत्र पढ़ा जाता है, उस पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि यह साधना भी शिव की स्तिरछा की परीक्षा के लिए की जाती है, हे भीम। ब्रह्मलोचन। भावुक। यहाँ के अक्षिप। तुम हमारी रक्षा करो।^२ इस प्रकार के अक्षि-नाम से अज्ञेय स्तोत्रों से राज साधना की जाती है। अज्ञेय नाम ही फलदायक है, क्रिया विशेष नहीं। अक्षि से ही पूजन होता है, यह बार-बार कहा गया गया है^३ साधना की विशेषता के कारण ही इसे 'कीर्तिकावली' कहा गया है।

राजसाधना से अक्षय्य धत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और सिद्धि प्राप्त होती है, यहाँ का यह अदत्त निरवाह है।

(१) वेद्वेदो मानस्यो च शेषे वेदाग्रयणान्तके ।
शास्त्रे चैव विदोयेन साधयेत् सातकोत्तम — कीर्तिकावली निर्णय

चतुर्थोऽध्यायः १४ श्लोक ।

(२) वही—१२५ १५० श्लोक ।

(३) अक्षिण्य पूजयित्वा च यत्रो तावत् सहस्रकम्—वही २४२-२४० श्लोक ।

कुमारीपूजा 'वीरभाव' में 'विधि' का उत्सर्जन ही ध्येय हो जाता है।
 बलात्कार भी इस अवस्था में बेमामा गया है।^१ विधियों में अति सीमा तक पहुँचा
 हुआ आदर भाव बार बार वर्णित है। बामा यौवना बुढ़ा सुन्दरी वृत्तित्वा महा
 बुष्टा—सभी को प्रणाम करना बताया गया है, क्योंकि स्त्री साक्षात् देवी मानकर
 शान्प्रस्थापना में पूजित होती है। कहा गया है कि स्त्री (वर्जित) ही देवता है, स्त्री ही
 प्राप्त है, स्त्री ही शोभा है अथ स्त्रीगणों में विहार आवश्यक है अन्यथा अपनी स्त्री
 के साम ही सापना करनी चाहिए।^२

विधियों की प्राप्ति में वीरसाधक जानि का ध्यान नहीं रखते गटी कापालिकी
 बेस्या रजर्षी मापित की पत्नी बाह्याणी पुत्रकन्या गोपालकन्या मामाकार श्री
 पत्नी—इन ती को 'नवकन्या' कहा गया है। महानिष्ठा (अमावस्यादि) में इन्हें
 साकर इनकी पूजा करना चाहिए।^३

इन नवकन्याओं को 'वीरक' में स्वापित दिया जाता है वीर युताङ्ग की
 पूजा की जाती है। इस समय की भावना का वर्णन मणोरञ्जक है—
 सुपुत्रा के मार्ग से आत्मा की अग्नि में मग र्षी लुबा स सापक को
 मर्ममर्म र्षी अग्नि को अग्नि करना चाहिए। देवी का स्मरण (या परायी स्त्री
 का स्मरण) करते हुए मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। र्चिकेति करता हुआ
 का अथ में समस्त साधक शीघ्र ही निद्रि प्राप्त करता है।^४ र्चिकेति के अन्त में
 स स शक्ति को तृप्त करना ही यत्न है।

देवीकृत्य में स्वयम्भु मोग्दुन मारण आर्चर्षम बर्षीकरण उच्चारण
 नर पौष्टिक आदि विधियों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। इन सबमें

- (१) र्चिकेति महेशानी शोशाहात च कन्यया ।
 बलाहा वल्लो बुद्ध्या पावयन् परयोपितम्
 सुरया रेतता वानि ज्येन मपुनाथ वा ।
 र्चिकेतिभिरुचयेन्मारी कर्त्ता वा मन्वर्त्तित्ताम् ।
 स्वर्तीनां परतीनां वा रूपवीरनगविनाम्—देवीकृत्य—पृष्ठ २३
- २) विधयो देवा त्रिम प्राप्त त्रिम एव हि ब्रूवन् ।
 त्रीणोऽपि सत्रा मात्मन्यया स्वस्तिवापदि—बर्षी
- ३) बर्षी
 ४) बर्षी—पृष्ठ २३

देवी के साथ तादात्म्य से ही सिद्धि मानी गई है, यद्यपि जनेक बाहु से युक्त क्रियाएँ भी इनमें मिलती हैं।

सिद्धियों की प्राप्ति में भी मंत्र बपते समय सावक के चित्त की जेठी बदस्ता होती है, वेही ही 'सिद्धि' प्राप्त होती है।

चक्रपूजा 'ब्रह्म पूजिमा संव्रान्ति चतुर्वेदी या षट्पदी की रात्रि में शास्त्रसायक सामूहिक रूप से चक्रपूजा करते हैं। इसमें गुरु की देखरेख में सभी तांत्रिक विधान के द्वारा 'शक्तिपूजा' होती है। पंचमकार का शोचन करने के भोग एवं बलि का विधान किया गया है। चक्रपूजा में 'शक्ति' (श्री) और और सावकों का उच्छिष्ट खाया पिया जाता है।^१

देवीरक्षस्य तंत्र में अत्यन्त दक्षिणाचार कामाचार और दुष्पाचार—इन माचारों का अलग-अलग वर्णन भी मिलता है, यद्यपि कौनमार्ग एवं दुष्पाचार को सामान्यतः अत्रम नहीं किया जाता। इसे 'दुर्गा' के तीन आचार कहा गया है।

दक्षिणाचार में प्रभात स्नान चण्ड्या मध्याह्न में अथ उल का वासन, और, चक्र भाँति शक्तिवक मीजन उग्रालमाला पारण्य, पापाय के पाप तथा अपनी श्री के साथ भोग ही विधेय माना गया है इसमें यद्विदा का नियोग है।^२ इस मार्ग में देवी के अतिरिक्त अन्य अमुक्य देवताओं की भी पूजा हो सकती है, उदाहरण के लिए ब्राह्म के शास्त्र मंत्रियों में श्री में देवी की मूर्ति तथा पारबों में विष्णु, यशोदा शिव भादि की भी मूर्तियाँ रहती हैं, विष्णु देवी ही मुख्य रूप से पूज्य मानी जाती है। बलिदान मार्गी शासन श्रद्धि देव पित्र मनुष्य भादि के लिए 'पंचमंत्र' का सम्पादन करते हैं और विधि-नियोग मानते हैं। काममार्ग में देवी के साथ एकठा होने के कारण विदुः श्रद्धि देव श्रद्धि देव श्रद्धि की चिन्ता नहीं रहती न पंच-यागादि करने पड़ते हैं। बहु संसार का ज्ञान लेता है, बहु शीर्ष पर सवार होता है सम्पत्ति श्री एवं अन्य चीजों को भीरता है, शूद्रशेतादि को बरा में करता है। काम के समान निर्मम विचरता है। प्रायः काममार्गी ज्ञान-बुद्धि पर सम्पत्ति का उत्सव करते हैं।

(१) इच्छव—देवीरक्षस्य—पटल २८

(२) वही पत्र—४६

अथ 'वामाचार' में मनुष्य के दायें की माता पापाण के पाप केन्द्रमुहम विह्वलन का आसन, दायी केन्द्र का कंकण तथा पंचमकार का सेवन विधेय बताया गया है। कसियुग में ही 'वामाचार' को ही 'आनुविधि' नामक बताया गया है।

कुसाचार में कुसखी कुलगुण कुलदेवी की उपासना तथा पूजा होती है। कुल दायी को देवी मानकर बसपूर्वक साकर पूजा करे। तथा पुत्र से दुर्गा को सर्व्व दे। देवीकृत्य दक्षिणाचार एवं कुसाचार से वामाचार को अधिक महत्त्व देना है।' शीतमार्ग और वामाचार को यहाँ एक माना गया है।

वामाचार का सबसे प्रथम रूप 'वामाख्या' में माना जाता है। यहाँ त्रिपुरा या कुमारी पूजा में १६ वर्ष की बच्चा का ध्यान किया जाता है। इसके प्रत्यक्ष मंत्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। किन्तु कुमारी का अर्थ सदैव 'अज्ञानमोक्ष' नहीं होता परन्तु 'त्रिपुरादेवी' रूप केवल वामाचारी साधकों द्वारा ही पूज्य कहा गया है।

देवी के ६ दास (Attendants) कहे गए हैं—यग सन्निहिता श्मास्य मयमानिनी, भयोदरी तथा आगोदा।

देवी की उपासना में बाधना तथा भय देवी पर समर्पण किया जाता है। ९ त्रिभोजो का यानिश्च बनाकर मध्यविन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। दक्ष हाथना में समवाचारी या दक्षिणपंथी केवल यह कल्पना करते हैं कि मैं धनि के साथ संयुक्त कर रहा हूँ किन्तु वामाचारी कहतेकि इस रूप में भोग करते हैं। शीतों में भी कुछ कल्प कि वामाचारी ही ध्यान जमाते हैं किन्तु उत्तरायण दायी की धर्म पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

वामाचार में भोग एवं भोग के विरोध की समाप्त करने का प्रयत्न है। शीत धृत्य में कहा गया है कि शीत भोग भोग तथा भोग से युक्त है अतः यही सबसे

(१) शक्तिगां च कुतं चैव कीर्ते सापारमार्थम् ।
त्याज्यं कुरात् कर्मा देवि वामदेव भवतु कर्मा—करी ५८

(२) देवीपूजा कावली दस पुस्तक में वामिना पुराण के आधार पर प्राप्तवापना बतलित है।

अधिक प्रिय माना गया है^१ अथवा कहा गया है कि कृष्ण मोमी से और शुक्र मोमी से बलिष्ठ कर्मकारक के रूप तथा जनक राजपार्षी या निष्कामकर्मप्रेमी से— ये ही पाँच तत्त्वपार्षी माने गए हैं।^२

भाव की दृष्टि से परमानन्द सायान्य ज्ञान के लिए तथा बीर भाव और विष्य शब्द उच्च साधनों के लिए माना जाता है। इन तीनों भावों के तीन भेद किये जाते हैं। परन्तु स्वभाव परन्तु तथा विद्यारूपानु परमानन्द में कुछ भी ज्ञान नहीं होता न ज्ञान के प्रति उन्मुक्तता ही होती है। स्वभाव परन्तु में 'ज्ञानोन्मुक्तता' बाधित हो जाती है। विद्यारूपानु में ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टना निरन्तर हो जाती है। जब उन्मुक्तता की ओर चलने की इच्छा के साथ-साथ प्रयत्न प्रारम्भ हो जाता है, तब तब बीर भाव प्रकट होता है। बीरभावतः भी स्वभाव बीरभाव एक विद्या बीरभाव को क्रमशः प्राप्त करता है, इसमें ही वायाचार का प्रयोग आता है, अन्त में 'विष्यभाव' है जिनमें साकं पाशों से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरता है।^३

साकं-साधना द्वारा निरूपित सभी जाचारों कोमल और नर्बकर क्रियाओं में भाव को ही मुख्य जाचार माना गया है। वायाचार इस भाव को या तो प्रेरणा देने के लिए है अथवा इस भाव के उच्चतर स्थितियों में अपान्तरण के लिए है अथवा इस परीक्षा के लिए है कि विष्यता की ओर अपान्तरण हो रहा है या नहीं और यह कि किस सीमा तक यह अपान्तरण हो चुका है। इस दृष्टि से शबसाधना कुमाठीपुत्रा अत्रयुवा धारि को देखने पर संश-साधना का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। श्रीनाथजी निर्णय में स्पष्ट कहा गया है कि याव के बिना संश भंग बीर साक्य जट कुल अत्रयुवा पीठयुवा अत्रयुवा स्वकुल में शीति ज्ञान, जितेन्द्रियता कीलाचार यदि कोई कुछ की ज्ञान नहीं देते तब संशय

- (१) भोजयोग्यायक कोमल तत्त्वसाधनाधिकारिये—इंद्रविभाष पृष्ठ १०४ से उद्धृत
- (२) कृष्ण मोमी शुक्र मोमी बलिष्ठ कर्मकारक ।
राजानी रामरत्नजी परमेश्वर तत्त्वसाधन—इंद्रविभाष पृष्ठ १०४ से उद्धृत ।
- (३) दृष्टव्य—कीलावासी निर्णय की भूमिका—पृष्ठ १४

स्तोत्रपठन आदि में साधक उसी भाव में निमग्न होकर—शाक्तत्व द्वारा हीविधि प्राप्त करता है।^१

संस्कार क्रियाओं को छोड़कर शाक्त-साधना की आचारभूत विद्वान्त 'भाव' पर आधारी है, शिव बौद्ध एवं वैष्णव संतों में भी यही विद्वान्त निगामी पड़ता है, देवता का ध्यान^२ उनके साथ आचारमय एकता—देवतामय हो जाता है। उपर्युक्त सभी धर्मग्रन्थों में स्वीकृत हैं। शाक्त तथा शिव मूलप्रभुनि नाम को भोग द्वारा बच में लाते हैं, इनमें विरोधाभास दिखायी पड़ता है, परन्तु है नहीं भोग के सम्य भावना ही मन को कल्पित करती है यह भावना कि मैं कुछ अनुचित कर रहा हूँ इस भावना के निरसन जाने पर बड़ी भोग आनि नहीं उपवास करना बच। कुमारी पूजादि में स्त्री को देवी रूप में स्वीकार—संपूर्ण विश्वास की परिस्थिति को शाक्त शाक्त एक सर्वथा पवित्र और दिव्य भाव द्वारा बचल देते हैं, इसी के लक्ष्य वैष्णव मत ध्यान द्वारा राधाकृष्ण की मज रति को देखकर सज्जित नहीं होते। उने दिव्य रति मानकर प्रसन्न हो हार देते हैं और प्रथम श्रमांतर देखने पड़ना चाहते हैं बच। प्रकृति से प्रेरित कर्म में सामाजिक कारणों से जो भय लग्नादि संयुक्त हो जाते हैं उन्हें अपने मन की आध्यात्मा को बचल देने पर सरलता में ही जीता जा सकता है। इसी प्रकार नाम प्रकृति जो मूल प्रकृति है, उसे भी 'दिव्यकर्म' समझ कर करने से—काम को अनुकूल करते समय यह भावना करने से कि यह मिलन ब्रह्माण्ड व्यापी शक्ति एवं शिव का—सुख मिलन है, साधक क मन में लग्ना आनि कम होने लगती है और अंत में शान्त हो जाता है। वैष्णव इसी क्रिया

(१) न भावेन विना चेत मन्त्र मन्त्र कल्पना कि शीरसापनेर्मन्त्रे निम्नाः-
 बृष्ट कि पीठप्रक्रमेण कि बन्धा भावनाभिः स्वकुले प्रीतिदाने कि
 कुमाकुले । परेषाम् चेत न । भावेन सम्यक् मुक्ति भावेन कुसुवर्षनम्,
 भावेन गोत्र वृद्धि स्वात् भावेन वाप शोपणम्—नीरवसी निर्गद—
 एवाइश उताय ३ १० इति

(२) मूमाधारे इमरेत् दिव्य विधीयंते श्रवा निधिम्

'श्रवाणां चक्षुषं चें कुंठिनी को स्मरण या ध्यान कर ही बच निवा
 पना है, इत्यम्— श्रवाणां श्रवणम्—श्रीरव— विद्यासागर बचवता द्वितीय
 संस्करण—१८६९ ई। सम्पादन—गुप्तनिन्द ।

को केवल ध्याम करते हैं सबसे साधक की वासना का दिव्य स्तरों पर प्रक्षेपण हो जाने से—बह विष्यनाभ' में बतल जाती है।

पंचबर्तन में कहा गया है कि वेद द्वारा बहिष्कृत बस्तुओं का इस प्रकार उपयोग करो कि साधना में सफलता मिले। उपयोग की विधि तथा साधना से बस्तु पवित्र या अपवित्र होती है।^१ अतः बहिष्कृत भावना से शक्ति पूजा ब्रह्म में मग्न की लिप्त करती है और ईश्वरत्व से मरक में डालती है।^२ नबाराकर ने लिखा है कि साधक सम्प्रदाय में प्रत्येक पवित्र साधक वेदना को ही समझ कर यह अनुभव करता है कि मैं भी ली हूँ। विपुला की उपासना में एक सम्प्रदाय इसी विधि का अनुगमन करता है, वहाँ भी भावना की विशेषता ही दिखायी पड़ती है।^३

मोदीनाथ कविराज से ब्रह्म यामल से उद्धरण लेकर साधना में चित्त वृत्ति ही मुख्य है, इस सिद्धान्त को पुष्ट किया है ब्रह्म यामल में कहा गया है कि लान शीघ्र, तर्पण आदि सब मानस ही होता है, पंचबतु वाचार करने से कुछ नहीं होता।

अलि एवं शक्तिमान की शक्त का सिद्धान्त ही शाक्त शैव ब्रह्म एव तांत्रिक बौद्धमत का सार है। इस महाविद्यालयों में 'कमला तथा दस महाभैरवों में इसी' लिए 'विष्णु' की गणना तंत्रों में की गई है। श्रीग्यायामलतंत्र में कहा गया है कि विष्णु के अवतार अपनी अग्नि सहित अवतार लेते हैं। बुम्बावन दो प्रकार का है (१) मूर्ति पर या शीम (२) विष्य। विष्य बुम्बावन तिङ्ग व योनि पर आधारित है तिङ्ग व योनि ही प्रकृति व पुरुष है। इसकी पवित्र 'राजा है, राजा के अति को 'रस' प्राप्त होता है, वह भी पवित्र व अग्निमान की सीमा का ही प्रतिमान है।

(१) पंचबर्तन—रामचन्द्र चरक तथा हरमदु शास्त्री १९३४ चीननर,
कर्मर पटल—३१

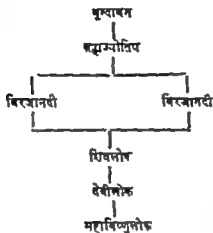
(२) वही पटल ३६

(३) बेनी कांग कारागो—पृष्ठ २२ से उद्धृत

(४) स्नातद्विमान—श्रीको मानस प्रवरो बप ।
पुत्रपं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिभ्यु—

राजिरोमनिपद् में जीव को स्त्री तथा वृष्य को 'यनि' कहा गया है।^१ राधा ही ज्ञानिनी शक्ति है अर्थात् ब्रह्म जो मानन्द स्वरूप है वही राधा के रूप में व्यक्त होता है^२

धीवृष्यमायत तत्र में विष्णुलोक का वर्णन इस प्रकार मिलता है—



कदा है कि प्रज्ञा इस लोक में गए। महाहरि ने पदप्रदर्शन किया। यह महा हरि नीले रंग का था कमलमयन अष्टभुज विरधारी था। ब्रह्मा जब शिव लोक गए तो देखा कि लिङ्ग महायोनि को स्पर्श कर रहा था इसने 'अर्ध नारीरपर' प्रकट हुआ। अर्ध नारीरपर ने कहा कि मैं वृष्य एव दुगा रूपी राधा का नेत्र हूँ। वृष्य का मंत्र प्रकट हुआ—

ॐ ब्रह्माय योनिन्वाय गोवीरत्र ब्रह्मभाय स्वाहा

तन्पदवाद् ब्रह्मा विरजा नदी पर गए, यह ज्योतिर्मयी है, यहाँ विष्णु की बंदी मृन्गादि मुझे यहाँ योनिन् की कीर्तन हो रहा था। नदी में बरम्ब का प्रतिबिम्ब था। उनमें शिवन एक बन्धवृत्त पर मयूर पंश धारी श्रीनाम्बरधारी एक कामरु भासोन था उसकी मोर म राधा थी। देवगर्भों ने वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें रोक लिया गया।

(१) वही

(२) वही—१७९

इसी प्रकार एक परवर्ती तंत्र 'हंसविभास' में तंत्र एवं वेदिक मत की आचारभूत एकता बतायी गई है। हंसविभास में जो परंपरा भी गई है, उसमें मध्वस्वर-पार्वती के साथ राधा-कृष्ण, का भी उल्लेख है^१।

हंसविभास में राधाकृष्ण लीला को 'राजयोग' कहा गया है।^२ क्योंकि यह नास्तिक भावना पर आधारित है बाह्य श्रियाकरण पर नहीं। भक्ति की परिभाषा में कहा गया है कि इससे सब दुःख का शमन होता है, मोक्ष प्राप्त होता है, इसमें न योग है, न तप है, न अर्था है, केवल भक्ति ही इसमें सर्वस्व है।^३

इस मार्ग में कुछ महिमा की बेसी परंपरा है बेसी ब्रह्मसमय में मिलती है।

हंस विभास में 'रासमन्थन' एवं 'धरु' में सावुख विद्याया गया है। इसमें पच्छिब्द या कर्मजत् सावक बड़े होते हैं।^४ रासमन्थन में पंचमकार को वास्तविक अर्थ में ही प्रयोग में आ सकते हैं। यथा व्योमपङ्कज से स्रवित सुधा ही सुरा है, पल्लवी या मांस मोखी-वह है जिसका बिन्दु 'पर' में लीन हो जाता है। मैथुन का तात्पर्य है पर शक्ति के साथ आत्मा के मैथुन से उत्पन्न आनन्द, न कि दुराचार।^५

इसी प्रकार 'रास' का वास्तविक अर्थ किया गया है कि आनन्द ही ब्रह्म है, यह आनन्द इस शरीर में प्रतिष्ठित है, इस आनन्द का अभिव्यञ्जक

(१) हंसविभास-टीलाप्रसंग

(२) हंस विभास—पृष्ठ १०५

(३) मन्सुख प्रशमनामोक्ष ज्ञान प्रदानत ।

तीप्रार्थ करणार्हेवि भक्तिरित्य मिषीयते—न योगी न तपो भाषी—
भक्तिरेव विदित्यते—हंस विभास—पृष्ठ ११९

(४) पक्ष्याकरणेन वा सम्यक्-वकाकारेण वा शिवे ।—पृष्ठ १२३

(५) व्योमपङ्कजनिप्यन्वगुणापानरसोभवेत्

परे तवति स्रवित पनापी स निवसते

परशकपालमिथुन संयोगानन्दनिर्भरः

न आतो मैथुनं तत्पारपरे लीनिपेवका—बही पृष्ठ १२३

होने से यह 'रास' है। और इस रास में तत्पर व्यक्ति ही 'रसिक' कहलाता है।^१

स्पष्ट ही यह रास की सांख्यिक व्याख्या है। परन्तु सिद्धान्त यह वैष्णव सिद्धान्त से दूर नहीं है, विशेषकर कृष्णभक्त वैष्णवों से जिनमें आनन्द प्राप्ति के लिए ही साधना की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि रास सम्प्रदाय ही एक अलग सम्प्रदाय या जो वैष्णवों तथा तांत्रिकों के सिद्धान्तों में समानता देखकर, दोनों का समन्वय करना हुआ प्रचलित हुआ या, क्योंकि हंसविनास में वेद से वैष्णवधर्म को वैष्णवमत से दण्डिणमार्ग को उत्तम काममार्ग बने, नाम से सिद्धान्तमय को और सिद्धान्तमय से उत्तम रास सम्प्रदाय को स्पष्ट कहा गया है^२ अर्थात् वैष्णवधर्म का समस्तबादी रूप ही यह तंत्र स्वीकार करता है।

हंसविनास तंत्रमार्ग में शैवों-शाक्तों के साथ वैष्णवों को भी स्वीकार करता है, यद्यपि ऊर्ध्व आन्नावसन या शैवमत को ही प्रेष्ठ बताया है।^३

हंसविनास के अनुसार अनेक लोक हैं इनमें गर्वशालोक, सूर्यलोक, विष्णुलोक, शिषलोक एवं शक्तिशोक ही प्रेष्ठ हैं। इनमें अलग अलग मंत्र तथा साधन प्रचलित हैं। विष्णु मूर्तियों में 'गोलोक पिलामिनी' मूर्ति प्रेष्ठ मानी गई है।^४

इसमें स्पष्ट हो जाता है कि मोलोक या वर्णन तांत्रिकों के मोल वर्णन में अद्भुत सादृश्य रचना है।

हंसविनास तंत्र 'गुच्छ वैरागियों' का धारण करता है—

(१) आनन्दो ब्रह्मणोरुपं तत्पदेहे व्ययसिधत्तम् ।

तस्यामि व्यस्यक्ते रासो, रसिकस्तत्परायणः ॥

हंसविनास—पृष्ठ १३६

(२) सिद्धान्तानुसृतयो उग्रतत्त्वान्तरात् न हि—वही पृष्ठ १३६

(३) वही पृष्ठ १४०

(४) वही—१३१

संन्यासियों के लिए कहा गया है कि ये शक्तितन्त्र से परिचित नहीं हैं। ये मानव रक्षित हैं, शुष्क हैं। इनमें वृषबी, जटिल, मुरख, नमन, जाति अनेक रूप वाले संन्यासी हैं।^१ गृहस्थधर्म ही सर्वमेष्ठ आश्रम है, इसी भी ये संन्यासी निन्दा करते हैं।^२ अठ आनन्दासी साधक को राधा या क्षत्री का स्मरण करना चाहिए, यह 'श्रीसत्य' अत्यधिक रहस्यमय और गंभीर है।^३ 'तन्वीतरण' को न समझ कर ही लोग निन्दा करते हैं, स्त्री संसार को तारने के लिए है, हुंकार मार देने के लिए नहीं।^४

अठ कसियुग में शक्तियोग ही ध्येष्ठ है, इसमें 'मिथुन रूप' का ध्यान किया जाता है।^५ शिव शक्ति या राधाकृष्ण की समरसता या विलासा-परथा का ही ध्येष्ठ है। इसी सामस्य को छन्दों में बौधा जाता है, भगवान के स्नान, अर्चकरण नीराजना, पुष्पाञ्जलि आदि का विधान भी इसीलिए है। नायिकाभेद हावभाव अर्चकारादि के काव्यमय बर्णन भी इसी 'युगल उपासना' के मम के उद्घाटन के लिए हैं।^६

इस युगसरस का अमलकार रास में प्रकट होता है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

रसमय कसिबत् अमलकार विरोपो रास-स च सयत्र ध्यात । साभरस्यात्
'रसो वै स' रस उच्चैरानन्द मत्तर्ष शक्तिशिवैवयस्य तस्य विलासो रास'
अनिर्यचनीयकीला अमलकृति ।^७

(१) अत्रात्मा तात्त्विकं स्त्रीणा रूपमुद्भवात् मानसा ।

शून्यधैराग्यसंशुष्का, अमलकृति केचन—इंसबितास, पृष्ठ १७७

(२) शक्तिनी जटिला कसिन् मुष्ठा ममा पिशाचन् ।

रासपथा न तेदु लो मोक्षस्तु प्राप्यते कुत —शही १७७

(३) शही पृष्ठ १७३

(४) शही पृष्ठ १७४

(५) शही पृष्ठ १७५

(६) शही पृष्ठ २६८

(७) शही पृष्ठ २७२

अर्थात् ब्रह्मानन्द ही रास है, यह सर्वत्र व्याप्त है। यह रस शक्ति एवं शिव की एकता के स्वरूपबाना है, उसी ब्रह्मानन्द की श्रीका रास है, यह ऐसी अप्राकृतिक सीता है कि इसे शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता।

बेज्जबों के रास को सामाजिक म्याख्या से यह म्याख्या पूर्णतः मिलती है।

बुन्दारन के कृष्ण को संन 'बाधमसिता' कहते हैं। वही परारागिन पुरुषरूप धारण कर राधा आदि यन्त्रियों के साथ श्रीका करती है, इस श्रीका के दो रूप हैं एक श्रीका बाह्य है जो जगत् के रूप में हमारे सम्मुख है और दूसरी आंतरिक है जो ब्रह्माण्ड से परे बोधोक्त में होती रहती है, जगत् की सीता कभी होती है और कभी नुन हो जाती है, परन्तु योक्तोक्त सीता नित्य है।^१

'यो' शब्द बाधो या भुक्ति के लिए वृहीत होता है, इस प्रकार योमी का अर्थ 'परारागिन' है, योवान पश्ययिष्य है, अत्र बो-नीपी साधारण येनू जाति नहीं है। यो योपीसीता द्वारा शक्ति, शिव की नित्य सीता का ही वर्णन हुआ है।^२

श्री-मुद्रक की यह जा बाह्यरति है, यह भाष्यात्मिक दृष्टि से होने पर निश्चि देती है, यह सम्भव न हो तो कीर्तन करना चाहिए अर्थात् कीर्तन में भगवान की आनन्दमय सीता का ध्यान करे।^३ इसीलिए बेज्जब राससीता का ध्यान एवं कीर्तन करते हैं। इसवितास रस-बहुता है किंतुओं में साधक रतिश्रीका करते हैं बेज्जब उमका धायन करते हैं और गायन भी सुरनि ही है।^४ इन प्रकार यह 'मुगत उपामना' एक रस्य है, इसे सब महो जानते बरबट होने से ही यह 'सरन है, घट होकर क्येन कस्तु नीरस हो जाती है।^५

इन रसबबय मुगवरनि का गायन ही भक्त सेवा किया करते हैं, इसीलिए इन मार्ग में विधि निषेध नहीं है, मोरु एवं धर्म के भी यह विषय प्रतीत होता है निम्नु रासरनिट कम्पी धारि बाध बशाकर केवल रसना द्वारा गायन करते हैं और

(१) हेसमितास पृष्ठ २७३ (२) वही पृष्ठ २७५

(३) नरभावेर्धरेबाधसः कीर्तनीय—वही, पृष्ठ ३०८

(तन् का अर्थ—भौतिक रति है)

(४) गायनमात्रमेव सुरनम्—वही, पृष्ठ ३१६

(५) कस्तुना घटस्यै शन भागस्यम्, घटार्थे कर्मीरसम्—पृष्ठ ३२१

तांत्रिक साधक केवल साधक सतोंप नहीं जाते वे स्वयं युगनरति द्वारा स्वयं रास में भाग लेते हैं ऐसे तांत्रिक परमहंस कहलाते हैं।^१

इसविभाय ही बेष्मक एवं तांत्रिकमत श्री आचार्यसूत एकठा स्पष्ट हो जाती है। 'पारात्म्य सूत्र' से भी इस व्याख्या की पुष्टि होती है।^२

तंत्रों में 'अनर्चनिवृत्ति' पर भी बल दिया गया है और बेष्मकमति मार्ग में केवल ईश्वर का कर्तव्य ही ध्येय है, दुःखनाश की इच्छा को स्वार्थ माना जाता है, यहाँ तक कि मुक्ति की इच्छा को भी भक्त स्वीकार नहीं करते।

(१) वहीं पृष्ठ ३२२—३२३

(२) पारात्म्य सूत्र—स्वामी त्रिचिन्म तीर्थ—बड़ौदा १९४१ भूमिका—
विशु अक्षर भट्टाचार्य

कश्मीर-शैवमत

सदिव्येऽपि परे लोके त्याज्यमेवाशुभं बुधैः ।
यदि नास्ति तस्य चिंत्वास्त्येति, चेन्नास्ति को हतः ।

—तत्रालोक—भभिनवगुप्त

पारलौकिक सत्ता में सन्देह होने पर भी वह माननीय है । यदि परलौकिक सत्ता नहीं है, तो कोई हानि न होगी किन्तु यदि कदा पारलौकिक सत्ता और परमात्मादि की सत्ता हुई तो मास्तिव का विनाश निश्चित है ।

स्वपरामर्शमात्रे यदपराधं कियानसौ ।

—तत्रालोक

संसार में सबसे बड़ा अपराध 'स्व' का परामर्श न करना है ।

शैवमत परंपरा

अभिन्न वृत्त के शैव-परंपरा का विस्तार स वर्धन किया है। उनका अनुसार यह शास्त्र 'प्रसिद्धि' पर आधारित है। वेद का प्रामाण्य यहाँ स्वीकार्य नहीं है। प्रसिद्धि (परंपरा) पर आधारित यह शास्त्र वैदिक मार्ग से घेड़ है। वेदों पर आधारित शास्त्रों में ज्ञान एक योग सम्बंधी स्वानुभव का अभाव है। अतः ये 'अव-शास्त्र' हैं जिन-शास्त्र ऊर्ध्व-शास्त्र है क्योंकि तत्त्वज्ञान के लिए विधि-नियम का त्याग आवश्यक है। अव-शास्त्रों में विधि-नियम स्वीकृत है केवल यत्र तत्र ही स्वानुभव का वर्णन है। श्रुतियों के वाक्य बने-बनाए हैं और अन्व-पुनरावृत्ति हैं। सौत्र-स्यवहार की रचना के लिए विधि-नियम में ही संतुष्ट रहने के कारण यक्ति-शास्त्र तत्त्व-ज्ञान से युक्त नहीं हो पाये और विधि-नियम की ऊर्ध्व-शास्त्र माना मानता है।^१

इन ऊर्ध्व-शास्त्र या आगम मार्ग में (१) शीतल एक सद्गुरुत्वर के दो सम्प्रदाय हैं। सद्गुरुत्वर मंत्र-कर्म-मुक्ति-मार्गी है। शीतल मंत्र में मुक्ति-मुक्ति दोनों की व्याख्या है। शीतलमंत्र के भी पाँच सम्प्रदाय हैं। इनमें 'शैव मंत्र' को ही अग्नि-मन्त्र-स्वीकार करते हैं।

शैवपीठ भी दो प्रकार के हैं (१) शक्ति (२) काम। शक्ति पीठ में जिन तत्त्व-प्रधान है। काम में शक्ति-प्रधानता स्वीकृत है। शक्ति पीठ चार प्रकार का है (१) मंडल (२) मुक्त (३) मंत्र एक विद्या। इनमें विद्या पीठ सर्वप्रथम है। अतः अभिन्न के निम्न योगीश्वर मंत्र में विद्या की प्रमाणता है, यद्यपि मंडल मुद्रा

(१) श्रुतिवाक्यं बहुवचनं—मातृ-वात्पर्यन्तं विनम् ।

नेत्र-प्रमाणवेदि-राम्—शैवयोगमंत्रं धरेत्—तत्त्व-सूत्र ३३ आदित्य-परमेश्वर सत्सु-सीरीय वि- १२ पृष्ठ ३६३

(२) अव-शास्त्र-माया-मंत्र-मन्त्र-सर्वरत्न-मन्त्र—पृष्ठ १६४

तथा मंत्र भी पाए हैं। अग्निषु के त्रिक शास्त्र में काम एवं वसिष्ठ दोनों का समन्वय है।^१ इस मंत्र का मासिकी नियम खासि तंत्रों में विशेषण है। मोघ और बनायास मुक्ति-याति इसकी विशेषता है।

युति के अभाव में शैव-शास्त्र को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ऐसी हीका उत्पन्न होने पर अधिपन्न गुण 'पुनः परंपरा को ही प्रामाणिकता का आधार मानते हैं।^२ इसके सिवाय प्रभाव के अभाव में प्रमेय का अभाव नहीं माना जा सकता क्योंकि इस शास्त्र के उपरोक्त प्रबंध नहीं थे।^३ इसके अतिरिक्त जैसे अष्टम महावि में उक्तस्य शाखा मूल युति की कल्पना कर सी जाती है, उसी प्रकार वहाँ भी अति की कल्पना कर लेनी चाहिए। युति के अभाव में साक्षात्कार ज्ञान को अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

अतः काव्य को प्रभाव समी मानते हैं, पुनः यह शास्त्र अनिश्चयीय है अतः प्रामाणिक है^४ अन्य शास्त्र साधन हैं और शैव-शास्त्र साध्य है। अतः द्वार द्वारी स्वाय से वह मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।^५

आयाति-क्रम—जिस क्रम से यह शास्त्र प्रकट हुआ है, वह क्रम यह है—
प्रथम परम्परा → भैरव → भैरवी → साकुल → अनन्त → गङ्गेन्द्र → ब्रह्मा
→ इन्द्र → बृहस्पति।

- (१) लक्ष्मण तंत्रसारं तु, कामवसिष्ठमाभिप्रेतम्
एकत्र निमित्तं कौल भी पदार्थं शासने—वही पृष्ठ ४००
- (२) इत्यं मध्ये विमिश्रं तत्त्विकमेव तथा तथा।
शास्त्रमस्मद् बुतनुहे सम्प्रदाय क्रमास्त्वितसु—
तथा० प्रथम जा० विश्व १ पृष्ठ ४६
- (३) न चेते विप्रसम्भवा येनेवमग्मबौपसिरोयु —वही पृष्ठ ४०
- (४) अविधीतेन हि प्रसिद्धिरापम—वही पृष्ठ ४६
- (५) वेदाविम्यं परं शैवं शैवाग्रामं च वसिष्ठम्।
वसिष्ठान्तर परं कौल श्रीनात्परदारं नहि—वही पृष्ठ ४८
वही 'द्विज' मार्ग का अर्थ 'शिव' से उद्भूत शास्त्रों से है अतः
कौलमत विक्रमत खासि भैरव से उत्पन्न है।

इसमें क्रमशः ६ गुरु और ६ करोड़ मन हैं ।^१

द्वितीय परंपरा भैरव → भैरवी → स्वच्छन्द्य → साधुन → प्रणुपद
(अनन्त) → महनेय → ब्रह्मा → धरु → गुरु । इसी परंपरा में आने तथा
वामन भार्गव नामुकि पक्ष्य निर्माणय नाम सप्तम्य आदि उपदेष्टा हुए ।

तृतीय परंपरा एक और परंपरा के अनुसार दस वर्ष त्रिज्यम्
प्रथम भीम शासुनि सुप्रति गन्ध कृष्ण आदि स्वीहण हैं ।

अभिनव गुन शाप स्वीहण त्रितीय परंपरा के अनुसार सप्तम्य → मित्र
गण → शानव → गुरुक → योगी-जन → राजा—इस परंपरा से शाख
अनन्तरि हुआ । राजाओं द्वारा शास्य भ्रष्ट हुआ गया । तब धीरे-धीरे आत्मा से

विद्व शैव अनन्तरि हुए । इनमें क्यम्बड धामर्क धीनाथ त्रिभु-दर्शनानन्धी के
अन्य द्वैतार्थ के समर्थक थे । क्यम्बड-मठ से अनन्तरि होकर यह विद्व-शास्त्र मान
तक धारकों द्वारा प्रचारित हो रहा है ।

उपयुक्त विवरण से शैवधर्मशास्त्रों द्वारा स्वीहण अवेदिक गल्पों की स्वीहृनि
साप्त है । अनुशुनि ही प्रमाण है, केव नहीं । शैवों का या मान्य सिद्धांत उपर्युक्त
आयातिक्रम से पुष्ट होता है । संतकर्मियों में यही अनुशुतिकार ही स्वीहण है और
वेदवाद का पटन किया गया है ।

फरमारी शैवमत

फरहर क अनुसार ८३० ई० में अनुशुन द्वारा शिवगुणों का वर्णन हुआ ।
अनुशुन ने 'स्वच्छन्दिक्य' एवं 'सोमानन्द' (१०० ई०) ने 'शिवराष्ट्रि' द्वारा फरमारी

शैवमत की पुष्टभूमि प्रस्तुत की । आचार्य उत्पल ने (१० वीं शताब्दी) प्रत्यभिज्ञा
कारिका लिखी रामचन्द्राचार्य ने (१० वीं शताब्दी) स्वच्छन्दिक्य तथा उत्पल
नेम्बक ने (१० वीं शताब्दी) स्वच्छन्दिक्य की रचना की । अभिनवगुणाचार्य ने

(१००० ई०) प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी प्रत्यभिज्ञा विभुति विमर्शिनी तन्नामोक्त तन्मसार,
परमार्थनार आदि संन लिग । आम्बर (११ वीं शताब्दी) ने शिवगुणकारिक (११ वीं
शताब्दी) द्वारा (११ वीं शताब्दी) शिव-गुण विमर्शिनी तथा जयरथ (१८ वीं

शताब्दी) ने संनारो पर विस्तृत टीका लिखी । चिकोपाध्याय ने विज्ञान ५२व पर
(१८ वीं शताब्दी) पर टीका लिखी ।

- (१) अभिनव गुन व अनुसार यह प्रगिति अन्य तंत्रों में स्वीहण है ।
- (२) यह परंपरा अभिनव गुन को मान्य है ।

कस्मीरी-ईशमत इस मत से प्राचीनतर भागों में प्राप्त भेद से अधिक कईतर्फी है। सम्भवतः शंकराचार्य की कस्मीर यात्रा के पश्चात् कस्मीरी शैली पर कईतम का प्रभाव अधिक होता गया।^१

बृहस्पति एवं मातंगतंत्र जति प्राचीनतर तंत्र की मनुगुप्तन कौल के अनुसार ईतर्फी ही नहीं बनेक-तत्व-वादी (pluralists) की हैं किन्तु सर्वप्रथम 'स्वच्छन्द-तंत्र' में कईत तत्व का प्रतिपादन हुआ। स्वतंत्र इन्द्रा-शक्ति में विश्वास के कारण इस तंत्र का नाम 'स्वच्छन्द-तंत्र' पड़ा। इस पर शंकराचार्य की टीका प्राप्य है।^२ स्वच्छन्द-तंत्र का समय निश्चित नहीं है, परन्तु यह 'बसुमुत' से पूर्व का तंत्र है, यह निश्चित है, जहाँ कस्मीरी शैलमत का आधार स्वच्छन्द-तंत्र विज्ञान-भेदक जैसे कईतर्फी तंत्र है। यह सिद्ध करना कठिन है कि विज्ञान भेदक तथा स्वच्छन्द-तंत्र शंकराचार्य से प्रभावित होकर ही मिले गए हैं, जहाँ फर्गुहर का यह अनुमान कि शंकराचार्य की कस्मीर-यात्रा ही कस्मीरीमत की कईत-प्रभावता का कारण है, सिद्ध नहीं होती। जब तक यह सिद्ध नहीं होता कि 'स्वच्छन्द-तंत्र' और विज्ञान भेदक शंकराचार्य के बीच मिले गए हैं तब तक फर्गुहर का अनुमान केवल अनुमान नहीं मिलता। ईशमत पूर्व युग में ईतर्फी वा कस्मीर-वादी से बौद्धों के आदर्शवाद से ईतर्फी शैलमत का प्रभाव कम हो गया था। परन्तु ८ वीं शताब्दी में बसुमुत ने प्राचीन ईतर्फी शैलमत को आदर्शवादी-कईतर्फीवाद-परक (idealistic monistic) व्याख्या करके बौद्ध-प्रभाव से कस्मीर को मुक्त किया।^३ इसलिए शंकराचार्य एवं कस्मीरी शैलमत दोनों पर आदर्शवादी व्यापारी बौद्ध मतों का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

(1) The Religious Quest of India—J N Farquhar 1920
Page (196)

(2) इष्टम्य स्वच्छन्द तंत्र—भूमिका भाग पृष्ठ १ Vol 1 Research
Depatt, Brinsgar Madhurudan Kaul 1921
तथा

कस्मीर इतिहास के सा० चटर्जी (पृष्ठ ५६)

(3) स्वच्छन्द-निर्णय शंकराचार्य — श्रीनर-कस्मीर—१९२५ भूमिका भाग—
पृष्ठ ३

कर्मवीरी शैवमत से पूर्ण प्रबलित मुख्य ६४ तंत्रों तथा अमुस्य अनेक तंत्रों का प्रचार या हकीमी सुधी रामदास गौड़ ने हिन्दुत्व (पुस्तक ४८३-८६) में की है। इनमें से उक्त विज्ञानभेदक भादि के अतिरिक्त कई तंत्रों से उद्धरण अभिन्नप्रयुक्तानि ले लिये हैं।

दर्शन सत्ता शुद्ध चिन् है देव बाल कारण से परे है, पूर्ण स्वातन्त्र्य से मुक्त है, निष्कल है। यह सत्ता परमेश्वर परास्पर ब्रह्म भावि एष्यों द्वारा संवेदित है। इस सत्ता में संकल्प शक्ति रहती है, यह संकल्प-शक्ति स्वतंत्र और स्वच्छन्द है क्योंकि यह संकल्प-शक्ति चैतन्य के साथ एकीभूत है। स्वातन्त्र्य का अर्थ यह है कि चैतन्य विद्यन्य या भूतवस्तु (Matter) से मौलिक रूप में मिस्र है। चैतन्य स्वतंत्र है और अपनी अभिव्यक्ति (बदलन के रूप में) के लिए समर्थ और स्वतंत्र है।

यह संकल्प-शक्ति या स्वच्छन्द-शक्ति दो दशाओं में व्यक्त होती है। सृष्टि के रूप में जयका समय के रूप में। सृष्टि के समय यह मूल चैतन्य से मिस्र न रहने पर भी मिस्र रहती है और प्रत्ययावस्था में यह सकल्प-शक्ति पुनः चैतन्य के साथ एकाकार हो जाती है।

कार-वेदान्त का ब्रह्म भी शुद्ध चैतन्य है] और भावनों का ब्रह्म (मानि ता) भी शुद्ध चैतन्य है। परन्तु दोनों में अंतर है। तंत्रों का चैतन्य (ब्रह्म) स्वच्छन्द शक्ति से मुक्त है। यह शक्ति शक्तिमान ब्रह्म के साथ अभिन्न है, एकीभूत है दोनों एक ही है इस स्वतंत्र शक्ति के साथ सृष्टि करने से ब्रह्म को तन्ना में स्वतंत्र-वर्ता करा गया है। क्योंकि यह तंत्रों की सृष्टि में स्वतंत्र है। तन्ना में सृष्टि कारिनी शक्ति तथा शक्तिमान ब्रह्म की पूर्ण एकता स्थापित है। परन्तु वेदान्त में ब्रह्म स्वयं त्रिया रहित है। (अपिचरण रहित) शुद्ध चैतन्य में न त्रिया हो सती है, न इच्छा न चय न द्वेष अतः इस शुद्ध चैतन्य को शास्त्र वेदान्त माया नामक एक एतन्मय शक्ति से मुक्त कर देता है। यह माया ब्रह्म के साथ एकीभूत (identical) नहीं है। परन्तु फिर भी यही शक्ति जगत् का कारण है। इस वेदान्त अतिरिक्तवीय (मत्, जगत् स विपदाण) ब्रह्मा है। यह माया शक्ति जगत् का ही मिस्र भी नहीं है। यही योगेश्वर कविदास इस वेदान्त का उच्यवक्त (Maternal) है, अतः यह शुद्ध चैतन्य न माया एकाकार नहीं हो सकती परन्तु साथ ही मिस्र भी नहीं है। यही योगेश्वर कविदास इस वेदान्त का उच्यवक्त ब्रह्म है क्योंकि वेदान्त में मायातन्त्र को सिर्फ दारुनिता सृष्टि में पुत्रिपुत्र

नहीं है। तंत्रों में स्मृतंज या संकल्प शक्ति को अमक (Non-Material) माना गया है, इसी लिए यह चित् शक्ति कहा जाती है।”

इस स्मृतंज शक्ति के तंत्र में अमियक्ति के समय तीन होषान कहे गए हैं—

- (१) प्रलय में जब चेतन्यविश्रय से मुक्त होता है तब शक्ति शुद्ध चित् शक्ति या चित् प्रकृति के रूप में अवस्थित रहती है।
- (२) विश्रय की ओर उन्मुख शक्ति—इस स्थिति वद्यपि विश्रय की उता नहीं होती परन्तु विश्रय की ओर उन्मुखता धारण हो जाती है तब इस शक्ति को माया शक्ति या जड़ प्रकृति कहते हैं।
- (३) जब विश्रय का अन्त्य हो जाता है और अज्ञता पनीपूत हो जाती है तब इस शक्ति को ‘वचिचा’ कहते हैं।

(१) त्रिपुरा एवम् (Part I, II III IV,) सरस्वती भवन टैक्ट सिटीज
edited by मोतीलाल अद्वैत—दृष्टव्य-वचिचा की इस नुक्ति
शाय पर आधारित

मोतीलाल अद्वैत के सिद्धांत ३० ए० ए० ए० ए० ए० से तंत्र तथा शक्ति शक्ति का अर्थ इस प्रकार बताया है कि तंत्रों में ‘माया’ शक्ति-ब्रह्म की तरह ‘अमि र्बचन’ नहीं है, अकिन्तु ब्रह्म की तरह ‘सत्य’ है, अविनाशित एवं अविनाशित है। अतः यह अर्थ है, अम नहीं किन्तु एक अर्थ में अम अर्थ ही है क्योंकि यह ब्रह्म से एकत्र शक्ति का अन्वित (Modified) रूप माना है।

The change and ‘many of the world are unreal sofar as they are but the assumed modifications and forms of the Same identity of Maya in Brahmam and Brahmam in Maya Shiva in Shakti and Shakti in Shiva. But they are real sofar as they are the modifications of the real.

आगम-श्रामाण्य पुरातन प्रसिद्ध व्यवहार के कारण आगम प्रामाणिक है। आगम का अर्थ है प्रसिद्ध प्राप्त ज्ञान^१ अन्यत्र एवं व्यतिरेक प्रसिद्धि के ही उप-बीषक है।^२ अन्वय-व्यतिरेक से प्रसिद्ध वस्तु में साध्य-साधन की धोत्र की जाती है, यदि ये प्रसिद्ध से स्वतन्त्र हूँ तो प्रति व्यक्ति के अनुसार ज्ञाना मन मनास्तर पड़े हो जाते हैं।

प्रत्यय में भी जिस पदार्थ का वो नाम व रूप प्रसिद्ध है, उसे हम स्वीकार कर लेते हैं। अत्र पूर्वव्यक्ति से प्रसिद्धि ही 'प्रमाण' है। इतिहास आगमों में प्राचीनतम प्रसिद्धि का प्रमाण माना जाता है। शैव-शास्त्र प्राचीनतम है, एही सर्वत्र प्रसिद्धि है अत्र वही खेप्ट और पाठ्य है। अत्र सारे शास्त्र सिद्ध की प्रसिद्धि बिया (आगम) के ही उपमति है।

कबिराज मारीनाथ के अनुसार वेदान्त से तंत्र-दर्शन अधिक तर्क संगत है जबकि डॉ० दास गुप्त के अनुसार तंत्र साधना प्रमाण धर्म है, 'दर्शन' उस साधना की बसल पुठभूमि में प्रतिष्ठित किया गया है।

It was essentially a religious form of worship the tantra had to teach and the Philosophic conception was only in the background. (Ibid)

वस्तुस्थिति यह है कि तंत्र एवं ब्रह्मण दर्शनों की साधना में असंगत बसल 'शुद्ध दर्शन' के रूप में दर्शन पर अनेक ब्रह्मणदर्शनों प्रस्तुत होती हैं। पुरातन के दर्शनियों में साधना से अलग अलग 'शुद्ध दर्शनों' की रचना की है, परन्तु साधना प्रमाण भारतीय दृष्टि में वे अलग पूर्ण नहीं हो सके और भारतीय दर्शनों को तो युरोपीय दर्शनित साधना धारणों पर आधारित होने के कारण शुद्धदर्शन ही नहीं माना। आएव वेगी दृष्टि में ब्रह्मण एवं तंत्र दर्शनों की साधना प्रमाण दर्शन ही माना जाना चाहिए। यह अलग मान्यता है कि शास्त्र वेदान्तों तर्क-विचारों में अति उपमत्त को है अति तर्कित साधना पर बस रहे हैं।

(१) प्रसिद्धि अनुभव-साध्य—शैवशास्त्र उपरने-श्रामाण्य—३३ आदित्रि-
१० पृष्ठ १२६

(२) अन्वय व्यतिरेक, प्रसिद्धि-श्रामाण्य—श्रामाण्य

व्यवहार में भी प्रसिद्धि प्राप्त है जन्मना विचार से ही प्रत्येक बार निरन्तर हुआ करता कि अन्न खाया जाहिए वा नानी। अतः व्यवहार में प्रसिद्धि से भी आबन शामाधिक है।

जब तक परिमित ज्ञान रहता है, तब तक शैव शास्त्र को स्वीकार नहीं किया जाता जन्म खाओं के पश्चात् जब परिमित-ज्ञान पूर्ण हो जाता है तब जंतु में सावक शैव हो जाता है अतः जन्म में शैव-शासन स्वीकार करना होगा। जिन पर शिव की कृपा होती है वे धारण में ही शैव-शासन को स्वीकार करते हैं। शिव ने ही ब्रह्मा विष्णु आदि रूप धारण कर वैदिक संस्कृत योन पांचरात्र बौद्ध, बर्हत् व्याप, वैशेषिक सिद्धांत शास्त्र आदि मठ अस्मिकारो भेद को ध्यान में रखकर प्रकट किये हैं।^३ शिव के 'शास्त्रोक्त' मुक्त से शास्त्र प्रकट हुए हैं। रामदेव मुक्त से वैदिक मार्ग अथोरमुक्त से काव्याधिक मार्ग प्रकट हुए हैं। लौकिक ज्ञान में धर्म प्रभाव है। पांचरात्र मठ एक वैदिक मार्ग में बने तथा ज्ञान दोनों हैं बौद्ध कथना बर्हत् मार्ग वैदिक प्रभाव है। शास्त्र म ज्ञान एक वैदिक दोनों हैं। योग में ज्ञान, वैदिक तथा ऐतन्य है और शैव मार्ग (अतिमार्ग) में बुद्धि भावना लोक सबसे अतीत है। शारे शास्त्रों का पर्यवसान इसी शैवमार्ग में होता है। अतः कोई भी शास्त्र निरन्तरीय नहीं है, सब शास्त्र विबोद्धुत हैं।^४

शुद्ध-विद्या एक शक्ति की प्रभावता रहती है और जड़ तत्त्व अप्रभाव रहता है, किन्तु शुद्ध विद्या के पश्चात् जड़ तत्त्व की चेतन्य पर प्रभावता होती जाती है। चेतना का स्वातंत्र्य समाप्त हो जाता है और केवल सत्तात्त्व में जड़ वस्तुओं में विद्यमान रहती है, उसका प्रभाव जड़तत्त्व पर नहीं रह पाता।

अतः शुद्धविद्या के पश्चात् जब चेतन्य पर जड़तत्त्व का प्रभाव बढ़ जाता है, यह स्थिति 'माया' की स्थिति कहलाती है।

माया के पांचमेव कहलाते हैं तंत्रों में इन्हीं को 'कंचुक' कहा जाता है। ये कंचुक परमेश्वर (आदि सत्ता) की शक्तियाँ हैं जो चेतन्य को माकृत करती हैं।

(३) पुरुषार्थे विचारार्थानु सावमानि प्रवृत्-प्रवृत्—बही पृष्ठ ३७१

(४) सांख्य योग्य पांचरात्रं वेदांश्चैव न निश्चयेत्

एतः विबोद्धुतानां सर्वे इति स्वयंभूव शास्त्रे—बही ३७२

भावरस-ज्ञानने की यह स्थिति—क्या 'विद्या' 'राम' 'काम और निर्यात' नामों से प्रसिद्ध हैं।^१

इस प्रकार माया से मुक्त चैतन्य जिसमें सोमित सरोप है, सीमित स्वार्थ्य है, सीमित ज्ञान है, सीमित अनुभव है, 'जीव कहनाता है,

क्या विद्या राम काम और निर्यात से अतिरिक्त स्तुम मृष्टि का विवरण होता है। प्रकृति से लेकर पृथ्वी तक २४ तत्त्वों का विवरण होता है—

अर्वाङ् प्रहरि + मन + बुद्धि + अहंकार + १० हृष्टियाँ + ५ तन्मात्राएँ + ५ महाभूत—यही २४ तत्त्व हैं, जीव को मिलाकर २५ तत्त्व होते हैं इनमें शिव शक्ति, सशक्ति, ईश्वर, विद्या माया, अविद्या, क्या राम काम तथा निर्यात—ये ११ तत्त्व मिला देने पर कुल तत्त्वों की संख्या ३६ हो जाती है।

अमितबभुत ने तन्मात्रा में उपर्युक्त ११ तत्त्वों पर साधना एवं दर्शन—दोनों बुद्धियों से विचार विद्या है, हम साधना-संघ में उनका विवरण प्रस्तुत करते।

इस प्रकार चित्त शक्ति की अस्मिपति के मृष्टि या पनीति प्राग्भ हो जाती है और शक्ति के आकुंचन के समय प्रथम प्रारम्भ हो जाती है। प्रथम के पश्चात् पुनः जीवों के अदुर्गों के सहयोग से ब्रह्म की शक्ति अंत रूप में व्यक्त होती है। इस प्रकार आत्मा का केवल एक अंश में व्यक्त होना ही 'ज्ञानाभास' है। ज्ञानाभास क्या है? ज्ञाना अपने एक अंश में—देव वासादि के रूप में व्यक्त होता है। ये देव वासादि चैतन्य या आत्मा में भिन्न हो जाते हैं। परन्तु जीव चैतन्य सर्व-वशाँ है, (All embracing) चैतन्य अपने बाहर रिम भी वस्तु को नहीं रण सत्ता अन् या बाहर पश्यति पश्यति निर्यायी पश्यते हैं वे केवल दर्शन में प्रतिबिम्बित पश्य के समान हैं। अन् जगत् वस्तुत् एक प्रतिबिम्ब है जो आत्मा या ब्रह्म में ही अवस्थित है ब्रह्माण्ड की अस्मिपति ब्रह्म की स्वार्थ-अर्थ्य धरि से द्वारा होने के कारण वस्तुत् आभास (Reflection) की प्रिया होती

(१) वे० सी० चटर्जी के अनुसार पाँच वस्तुओं में क्या निर्यात राम विद्या वचना की गणना की जाती है, जब माया अस्मिपति कर देने पर वस्तुओं की संख्या ६ हो जाती है। गोरीनाथ बरिषत्रक अनुसार क्या निर्यात आदि पाँच वस्तु माया के ही अर्थ हैं जमा कि ऊपर लिखा गया है। (विचार के लिए इच्छ—Kashmir Shavism —J. C. Chatterji)

है और इस आभास-प्रक्रिया के लिए अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती अतः अणु ब्रह्म का आभास है, विवर्त नहीं है जो शास्त्रार्थियों मानते हैं। भ्रमात्मक ज्ञान नहीं है अपितु यह उची अर्थ में सत्य है, जिस अर्थ में हम 'आभास' को सत्य मानते हैं। परन्तु जैसे 'आभास' की सत्ता वर्णन से भिन्न नहीं है, तथैव अणु ब्रह्म की चित् चक्रि से भिन्न नहीं है चक्रि वर्णन है जिससे अणु चपी प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। अतः तांत्रिक के लिए अणु प्रतिबिम्ब की सत्ता के समान सत्य है और चित् चक्रि से अनिष्ट है। चित् चक्रि भगवान की स्वतंत्र शक्ति का नाम है इस प्रकार अणु भगवान की स्वतंत्र इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति है, वह भ्रमात्मक ज्ञान नहीं है की जैसे वर्णन में प्रतिबिम्ब सुप्त हो जाता है उची प्रकार प्रथम की अवस्था में अणु चित् चक्रि चपी वर्णन में समा जाता है परन्तु चित् चक्रि या स्वतंत्र-चक्रि प्रलय के बाद भी ब्रह्म के साथ संयुक्त रहती है।

ब्रह्म अपनी स्वतंत्र-चक्रि से स्वयं सांख्यिक सर्वव्यापक निर्वोलीर्ण और असीमित होने पर अस्वेच्छा से ही जीवार्थ अपने को एकत्रेष्टिक और सीमित करता है। ब्रह्म को इस प्रकार सीमित और एकत्रेष्टिक करने वाली चक्रि अनिष्टा या अज्ञ चक्रि कहलाती है (जो चित् की चक्रि ही है) इसे 'दुस्व' या मङ्गल भी कहा गया है। दुस्व या आकाश में सत्ता अपने को सर्व प्रथम सीमित करती है, अतः सत्ता (ब्रह्म) के एकत्रेष्टिक और अपूर्ण (पूर्णता की माणा में कुछ अभाव की स्थिति) होने से जीव कहलाता है। यह 'जीव' ब्रह्म से सीमित रहने के कारण अणु को अपने ही भिन्न समझने लगता है यद्यपि मूलतः अणु चित् चक्रि के रूप में तथा जीव ब्रह्म के रूप में एक ही है।

इस प्रकार अग्नि सत्ता अपने को अपनी स्वतंत्र चित् चक्रि द्वारा दो दो रूपों में व्यक्त करती है। जीव रूप में सत्ता 'दृष्टा' कहलाती है और अणु के रूप में बही सत्ता 'दुस्व' कहलाती है। 'दृष्टा' 'दुस्व' को अपने से भिन्न मानने लगता है और मुक्त-मुक्त अनुभव करता है जीव अपूर्ण अनुभव (पूर्णाहन्ता का अभाव) ब्रह्म के कारण शून्य यह है अथवा 'मैं' है ऐसा अभाव प्रथम अनुभव करता है।

ब्रह्म आकरम एवं निराला से परे है अतः सारी सृष्टि ब्रह्म (पूर्णाहन्ता) के साथ एकीभूत रहती है। जैन अग्नि में 'पलाउ' एक ताव दोनों रहते हैं, जैसे ही ब्रह्म के पूर्ण अनुभव (पूर्णाहन्ता) तथा स्वतंत्र चित् चक्रि दोनों रहती है। चित् चक्रि

एक काम तथा नियति नामक अन्ध मिथित तत्व व्यक्त होते हैं। इनमें चैतन्य और अज्ञ तत्व दोनों मिश्रित रहते हैं।

शिव-शक्ति यामलज्ज उमर के कर्मन से स्पष्ट है कि तंत्रों में शिव एक शक्ति की एकता ही मुख्य विषय है और अज्ञान से मुक्त होकर 'शिव' हो जाता है तो अष्ट आहुति होकर शक्ति में लुप्त हो जाता है। शक्ति एक शिव एक और अष्टि है, अतः तंत्रों में सर्वत्र शिव एक शक्ति की एकता पर बल दिया है और इस शिव-शक्ति ऐक्य के लिए किन्तु साधना-पद्धति का आन्वित्य किया है।

अब शिव-शक्ति में 'यामल' का परिभाषा है। यामल का अर्थ है 'संपट्ट'। शिव एक शक्ति का साधारण (विदुनाचरणा में स्थित होना अर्थात् एक हो जाना) को भी संपट्ट कहा जाता है। शक्ति एक शक्तिमान् को कर्मी तथा बनक भी कहा जाता है। क्योंकि सारी भूमि शिव एक शक्ति के यामल^२ से ही उत्पन्न होती है। शक्ति शिव की स्वातंत्र्य शक्ति का नाम है जिसे 'बिम्बा' कहा गया है। हम कह चुके हैं कि अज्ञ के रूप में ब्रह्म अपने अंश शक्ति रूप में व्यक्त होता है, क्योंकि वह 'आत्मभुक्त' करना चाहता है। आत्म-भुक्त की स्फुरणा के कारण ही ब्रह्म शिव एक शक्ति इन दो रूपों में व्यक्त हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म की शक्ति ब्रह्म के साथ अनुनष्ट होकर भी अज्ञ को पुनष्ट होकर आभासित करती है। शक्ति ही अज्ञ को निमित्त कारण है अतः उसे 'जननी' कहा गया है।

'बनक' का अर्थ है 'नरित्तनु'। तंत्रों आकाशादी की पुनर् करने का स्वभाव है शक्ति का भी बनक है। इन बनक के बीच मुख्य है किन्तु, आत्म-भुक्त ब्रह्म ज्ञान एक क्रिया। शक्तिया से मुक्त कर ब्रह्म पाप प्रसार के स्वर्ग करता है—

सृष्टि संसार कर्तार विनाय स्थिति नारकम् ।

अनुपहृत्कर देव प्रकटाति किाराणम्^३ ॥

(१) तयोर्वाग्वर्षं वर्षं स संपट्ट इति स्मृतम्

(तंत्रानुसंध—प्रथम आहुति) पृष्ठ ४

(२) बीजमय में इनी को 'युगल' कहा गया है।

(३) तंत्रानुसंध—प्रथम आहुति शिव १ पृष्ठ ७

इस शक्ति युक्त ब्रह्म (शिव)? अगाधि एक विष्णुनामस्या में स्थित होने पर शक्ति द्वारा सृष्टि की रचना करता है। जिस प्रकार प्राकृत मर-माटी सभा समोष्णक हाकर उन्मास से स्फुरित होते हैं और शुद्ध एवं रज-श्राव से सृष्टि होती है। वैसे ही शिव-शक्ति को विष्णुनामस्या से धारे बमन् की उत्पत्ति होती है। शक्ति-शिव के संपर्क को भेष-स्थित विद्युत्संज्ञा क रूप में देखा गया है।

पारा शक्ति-शिव को नाना पार्यों से शोषती है। 'ब'पुत्र' भी पाठ है। इस शिव शीतलप में स्थित हुकर उत्पत्तना के कारण बुद्ध चठाता है। ज्ञान होने पर इसी शक्ति की सहायता से पुन शीत अपने स्वरूप को पदुत्तान करता है, यही 'प्रत्यभिज्ञा' कहलाती है। 'प्रत्यभिज्ञा' ज्ञान हाप ही हो सकती है।

'यह बलु ऐसी है, इसल अम्यथा नहीं है' इस प्रकार का ज्ञापन कराने वाली शक्ति का नाम ज्ञान है।^१ शीत को ज्ञपन रूप का ज्ञान केवल ज्ञान हाप ही हो सकता है।

ज्ञान के अनिश्चित शक्ति के दो रूप और हैं द्रष्टा शक्ति एवं श्रिया-शक्ति। शिव का 'विष्णु' इन तीनों शक्तियों का मनीक है।^२ ज्ञान की सृष्टि के निमित्त पारमेरगी द्रष्टा रूप शक्ति ही द्रष्टा शक्ति कह जाती है और सृष्टि की श्रिया क्तु शक्ति ही श्रिया शक्ति है।

द्रष्टा ज्ञान श्रिया अज्ञान-अज्ञान रहकर ज्ञे उत्पन्न करते हैं और ज्ञे ही 'पाठ' है। परम अज्ञेन संवित्, स्वान्धे परशक्ति न युक्त शिव में जो बुद्ध भी भिन्न है, वह 'पाठ' है,^३ अविद्या के कारण हमें भगवद्व ज्ञान होता है।

अज्ञान का अर्थ विमिर है जो पारमेरगी स्वान्धे द्रष्टा-शक्ति क उत्पत्ति ज्ञान पर शिवस्वरूप क मोहन होने से उत्पन्न होता है। अज्ञान अज्ञेन ज्ञान है ज्ञान

- (१) एवमेवमिदं बन्तु, नाम्यपनि मुनिशिवाम् ।
ज्ञापमन्ती ज्ञप्यत्र, ज्ञान-शक्ति नियमन ॥
तंज्ञानोक्तं त्रिन्द १ अद्विज १ पृष्ठ १८ १६
- (२) बही पृष्ठ १६
- (३) भद्र प्रपायाम् शिवाज् अम्यन् शदेव पाठ—बही, पृष्ठ १४

इस अवस्था के पश्चात् 'उष्मनावस्था' आती है और 'उष्मनावस्था' के पश्चात् साक्षात् ब्रह्म प्राप्त होता है।^१ इसीलिए कहा गया है कि ऊर्ध्व-गर्भ तथा अधो-गति (मन्म-गति = अभावभावस्था) को छोड़कर अपना प्राण एक अपान वायु को छोड़कर मध्यवेद्यामी बनकर रामस्व हो जाना चाहिए। 'रामस्व' करने वाला मार्ग तभी सुषुम्ना मार्ग कहा गया है क्योंकि यह इन्द्रा-पितृता के बीच का मध्य मार्ग है। इसे तंत्रों में 'शाम-वर्म' कहा गया है। इस शाम-वर्म द्वारा ही 'राम' प्राप्त होता है। इस उर्वच में तांत्रिक संतकवि कबीर, नानक बाबू, सुन्दरदास सभी एकमत हैं।

अग्निबहुम ने 'राम' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है कि जब एक अजड़ (चेतन) विश्व-वेद्यिष्य द्वारा कीड़ा करने वाला तत्त्व 'राम' है।^२

राम या शिव एक तत्त्व है। वह आभासरूप विश्व में क्रीड़ातक रहता है। तंत्रों का श्रीवाचकत वा श्रीलाचकत रूप ही बीजों में भी स्वीकृत है।

बिकल्प के नाश से ही यह 'राम' प्राप्त हो सकता है। बिकल्प को ही स्मृति कहा गया है।^३ अतः स्मृति रहित स्थिति ही प्राप्त करना साधना का विषय है।

निरंजन इसी प्रकार अजितन ने 'निरंजन' की भी व्याख्या की है। निरंजन का अर्थ है जिससे अग्निमान् पूर्णता के साथ फलट किया जाय वही तत्त्व निरंजन है। अग्नि द्वारा ही तत्त्व पूर्णता के साथ व्यक्त होता है, अतः शान्त का ही तंत्र में 'निरंजन' कहा गया है। अग्नि और अग्निमान् की एकरा के कारण 'शिव' की संज्ञा भी निरंजन भी है। इच्छा ज्ञान एक क्रिया द्वारा ब्रह्म अंजित या प्रकृत होता है। अतः अग्नि के तीन रूपों में सामरस्य सात्कर योगी 'निरंजन' हो जाता है।^४ वाचना में क्रिया को भी 'निरंजन' कहा गया है।

(१) ऊर्ध्व स्वरूपा विद्येत रामस्वो मध्यवेद्यम्—वही पृष्ठ ११०

(२) तत्तज्जज्ञानज्ञात्मना विश्वबीजिभ्यात्मना त्रीदृष्टि इति 'राम'—
वही पृष्ठ १११

(३) सर्वो जित्यम् स्मृति—तन्त्रालोक—पंचम भाहिक, पृष्ठ ११४

(४) सोत्तीभूतमतः अचित्तचित्तं तन्निशुलकम्

यतिप्रशाशु समावेद्यात् अवेषामी निरंजनः—तन्त्रालोक, भाहिक
द्वितीय पृष्ठ १११

साकार ब्रह्म का ध्यान साकार ब्रह्म साधना की मुखिया के लिए है। विद्वानों का नाथ सहसा सम्भव नहीं है, अतः साधारण-बुद्धि वालों के लिए ब्रह्म के मुख हस्तादि की कल्पना करनी पड़ती है। निरवसा-बुद्धि की ओर यह एक साधन मात्र है। निरवसा-बुद्धि की निराकार तथा निराशय राम या चिन्मही साध्य बनता है। साकार नहीं अथ बौद्ध्यादि साधन सामान्य-बुद्धिवालों के लिए है अतः में उन्हें भी निराकार को ही ध्येय बनाना पड़ता है।

अथ ध्यान के अतिरिक्त अथ से भी मुक्ति सम्भव है। भाव एव अभाव से रहित उत्सवस्व का परामर्श ही अथ है। मन की मध्यमावस्था—दृग्भावस्था में स्फुरित चेतना (संकित्) का परामर्श = मगन ही अथ है।

बसुत साधना में भावना का एक विनता है। जो साधक जिस रूप उत्सव का आराधन करता है और लग्नमता प्राप्त करता है, उसे वैसे ही फल प्राप्त होता है।^३

यह स्मरणीय है कि उपासक दो प्रकार के होते हैं I अवच्छेदक उपासक II अनवच्छेदक उपासक। अवच्छेदक उपासक नियत विधि से नियंत्रित रहते हैं (साकार उपासक इसी श्रेणी में आते हैं)। अनवच्छेदक उपासक स्वभाव होते हैं उनके लिए विधि-निषेध नहीं है। वे निरर्पण हैं।

क्या साधना का ये भेद वास्तविक हैं। आगमशास्त्र का कथन है कि ये भेद केवल व्यावहारिक हैं ज्ञान की स्पृशता में ही भेदों का अन्त होगा है। स्पृशता का अर्थ है—वाह्य-बाह्य भाव का उदय यह उपेय है, यह उपाय है ऐसा ज्ञान होगा वाह्य-बाह्य भाव है, अतः स्पृशत क्रियाओं में भेद दिखायी पड़ता है, बन्तुन बोर्ड भेद नहीं है।

ज्ञान एवं क्रिया क्रिया तथा ज्ञान में अन्त माने बिना क्रियाओं में अन्त शीघ्र नहीं किया जा सकता। परन्तु ज्ञानमशास्त्र का अनुसार क्रिया एवं ज्ञान में बन्तुन बोर्ड भेद नहीं है कहा गया है कि योग तथा क्रिया एक है। सत्य में

(३) क्रियादेवी निम्बुनाथ की पृष्ठ ११४

(१) मनो काव्या क्रिया नाम—अभिमत हि तलपा। पृष्ठ १८२८

४ इयंज्ञानता प्राप्तमिति भीमयज्ञाने—तथासोर उपम-आदि

आसक्त मति ही क्रिया है इससे वासना की शांति होती है।^१ उत्सव में चित्त का क्षय हो जाना ही योग है, क्योंकि उत्सवों में चित्त की योजना को चित्त को उत्सवों में कुछ कर देने को हो योग कहा जाता है (जान बैठना व निम उत्सव नहीं है। जय-जान योग एक क्रिया एक एक उत्सव है।^२ इसका तात्पर्य यह है कि योग उपायना व्याज जय सेवा कीर्तनादि सभी 'ज्ञान' काव्य में वर्तमान ही जाते हैं। जय-साक्षर-निराकार उपायना के भेद व्यावहारिक है जैसे चट का क्लेश जाहे प्रखर से हो या कण से परन्तु ध्वंस तो होता ही है, तबैव मोक्ष' रूप कार्य (वासना का नाश) जाहे किसी भी उपाय से हो सकता है।

साधना के भेद अधिकारी की मानसिक क्षमता या उक्ति के अनुसार साधना के भेद करने पड़ते हैं—इन्हे आत्मों में उपाय कहा गया है। आत्मिक साधना एक साधक के तीन उपाय बताये गए हैं।

श्याम्भु-उपाय निरुप रहित स्थिति श्याम्भुवाक्त्वा है। जड़, परिमित उत्सव के निमग्न से बोध प्राप्त होने पर जी वाचात्म्य और लक्ष्यता प्राप्त होती है यह 'श्याम्भु-आवेश' कहा जाता है। सम्यक बोध के लिए बुद्धि की निर्मलता की आवश्यकता है। चैतन्य का प्रतिबिम्ब कहीं में पड़ता है। यही बुद्धि निर्मल को उत्पन्न करती है। इन्द्रिय एक बुद्धि से परे जाकर स्वायत्त व स्थिर होना ही श्याम्भु स्थिति है। इसमें 'भाक्ता' नहीं रह जाती। चित्त से वाचात्म्य होता है।^३ यही 'अनुत्पत्त्वा' है। बसुव श्याम्भु उपाय एक 'आम्बर-व्याज' in *transpective meditation* है इससे सहसा ही चैतन्य जागृत हो जाता है।

- (१) योसो नाम्य-क्रिया नाम्या उत्सवका हि या मति-
स्वचित्त वासना श्याम्भु—सा क्रियेत्यभिधीयते।—बही पृष्ठ १५६
- (२) क्रियासैव च योग-स्वात्तत्त्वानां चित्तव्यतीकृती। पृष्ठ १६०
उत्सवनां चित्तियोजनात् योग-व्यात् इति नामयोर्नानादिभेदः बही

जयना

योसो नाम्य-क्रिया नाम्य—बही पृष्ठ—१६०

- (३) तैना चित्तव्या संचितिर्भाक्ताद्यनेतिथी।
विवक्षावात्म्यमापन्ना समावेशोऽत्र श्याम्भुः—तैजानिक प्रथम काव्यिक,
पृष्ठ २०६ २१०

प्रतिबिम्बपाद् अनुत्तरावस्था म धरणी शक्ति नामक चरित्र विषय की अपेक्षा होती है। प्रकाश को ही जगत् में धरणी शक्ति कहा गया है, क्योंकि प्रकाश के कारण ही पदार्थ का प्रकाशत्व प्रतीय होता है। प्रकाश प्रसारण से निम्न नहीं है, यह हम बड़े चुने हैं। आत्मा कपी भिति में ही पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिबिम्ब सर्वथा सञ्जातीय पदार्थ का ही योचन होता है, विज्ञानीय पदार्थ का प्रतिबिम्ब वृष्टिपोचन हो नहीं सकता। भूमि जल, वृक्ष आदि का रूप ही सर्वथा प्रतिबिम्बित होता है, स्वर्णादि का प्रतिबिम्ब योचन नहीं होता क्योंकि रूप प्रकाश का सञ्जातीय धर्म है और जल का विषय प्रकाश या तत्र ही है, स्वर्णादि नहीं।^१

निर्मल वस्तु म ही रूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है, मलिन वस्तु म नहीं बल पुत्र वेगम्य म ही यह विषय प्रतिबिम्बित है यथा सुन्दर रूप को देखकर स्वर्णादि ने इच्छा होती है, कसे ही जगत् के रूप रत्यादि स प्राप्त आत्माय से अतिशय-आत्माय रूप विद्यानन् की प्राप्ति इच्छा होती है, क्योंकि पदार्थ में जो आनन्द है वह उची शिव के आनन्द का आभास मात्र है। वह विद्यानन्द का प्रतिबिम्ब मात्र है। इच्छा-विषय विद्यानन्द एवं आभासानन्द में भेद नहीं है। यदि यह कहा जाय कि प्रतिबिम्ब तो विद्यायी पड़ता है, परन्तु बिम्ब अनुष्ट है तो इसका उत्तर यह है कि पीछे पीछे छोड़े हुए व्यक्ति का जैसे हम प्रतिबिम्ब देख सकते हैं उसी प्रकार बिम्ब म जो कुछ विद्यायी पड़ रहा है वह तब शिव का ही प्रतिबिम्ब है।^२ प्रतिबिम्ब जब अपना सुन्दर और आनन्दमय होना या छात्र ही अनुमेय आनन्दमय है तब बिम्ब निजला सुन्दर और आनन्दमय होना या छात्र ही अनुमेय है। प्रतिबिम्ब रूप पदार्थों म मिलने वाले आनन्द में हम मूढ मदी होते क्योंकि प्रतिबिम्ब रूप पदार्थों का आनन्द उस इच्छानन्द की ओर से जाना चार्ता है परन्तु प्रमाणा अपने अज्ञान क्या इस अतिरिक्त प्ररणा को न समझ कर जगत् के

(१) निर्मल वस्तु रे यच्छाति भूमि पतादय ।
अविद्यानन्दरसिम्भराध विषयुपाय ।

तन्नासोद-त्रिस्त (२) आक्षिणम् (३) वृष्ट (४)

(२) तन्मादेतो महादेवः स्वानन्दयोरक्षिणस्ति । त्रिस्त २
त्रिस्तोय आत्मनी बिम्बप्रतिबिम्बोरप्यापेता—

पराधीन से मिलने वाले आत्मत्व तब ही बखर रहता जाहता है।^१ किन्तु ज्ञान होने पर पराधीन-रूप आत्मत्व एक आत्मत्व में सामक अविरोध देखने सम्भवा है। अतः जो इन्द्रियरूप आत्मत्व बंधन में डालने वाला है वही साधक के लिए आत्मत्व का प्रेरक तथा माध्यम बन जाता है। प्रतिबिम्ब रूप जबतः जीवों पर अनुग्रह करने के लिए—उन्हें परमात्मा की ओर परिचित कराने के लिए स्थापना है। बुद्ध होने या मेद उत्पन्न करने के लिए जबतः की सत्ता नहीं है। अतः न यहाँ बंधन है, न मोक्ष है, मूढ़ जीव भय के कारण ही बेसा समझते हैं। जबतः ही बुद्धि प्रतिबिम्बित सत्ता का नाम है।^२ बुद्धि स्थानिक के समान है, उसी में एक बिन्दु प्रतिबिम्बित हो रहा है।

बिम्ब के दो लक्षण कहे गए हैं (१) अल्प तत्त्व से अनिपिठ हो (२) स्वतंत्र हो (३) नासमानता हो।

बिम्बमें सजातीय, विजातीय की व्यावृत्ति न हो वह अनिपिठ है। स्वल्प में स्थित वस्तु स्वतंत्र बह्यायी है। अबाधित रूप से प्रतिबिम्बित होने की शक्ति भावमानता है। अतः के भी लक्षण हैं अतः वह बिम्ब कहा गया है।

इसी प्रकार प्रतिबिम्ब के दो लक्षण हैं (१) स्वरूप की हानि न होना (२) पर-रूप साधुत्व—बिम्ब के अनुग्रह होना। जगत् में ही ही लक्षण हैं। अतः अल्प प्रतिबिम्ब है और अल्प बिम्ब है। बिम्ब के अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है, क्योंकि बिम्ब (अल्प) माध्यम (जिसे शक्ति पित्र अ 'बुद्धि' = दर्शन) तथा प्रतिबिम्ब (अल्प के पराधीन) की पूर्ण एकता है। अतः बिम्ब आत्मत्व है, अतः जबतः जी आत्मत्व है। अतः ज्ञान से अज्ञान किसी की सत्ता नहीं है। आत्मत्व होने से तत्त्व के साथ एकाकारिता प्राप्त हो जाती है।^३ आत्मत्व होने के लिए ज्ञान ही साधन है

(१) प्रकृतम सविधी काल-प्रतिबिम्बितसुन्दरम् ।

दर्शना कुचपुष्पाभ्यां सुरालापि न नृप्यति—वही पृष्ठ १

(२) न मे बन्धी न मे मोना, जीवस्वीता विभीषणा ।

प्रतिबिम्बित् बुद्धिर्मेविव विवस्वत—वही पृष्ठ २७

(३) उत्पन्नतया ज्ञान बहिरन्तः ज्ञापयते ।

ज्ञानाहते नार्पितता ज्ञानरूपं ततो जगत्

नाहि ज्ञानाहतेभावा केनचिद्विपरीकृता

ज्ञानं त्यागार्कं परस्मैस्त्वा नवीयते—वही पृष्ठ २६

क्योंकि ज्ञान स्वयं प्रकाश है। दर्पण अपने को प्रकाशित नहीं कर सकता। चिब (विम्ब) स्वयं अपना शक्ति से अपने में अपना प्रकाश करता है। अतः उसकी शक्ति निरनियम स्वतंत्र है। ऐश्वर्य एवं बलकारण्य है। यही पदशक्ति है, प्रतिभा है। शक्ति तथा चिब से भी परे पूर्ण तत्त्व अनात्म या अनुभार कहना है। यह अनात्म (त्रिषदा वर्णन नहीं हो सकता) श्रुति का इच्छुक होकर चिब शक्ति अपना को प्राप्त करता है। शक्ति शक्ति चिब के कुल का (परिवार का) विस्तार करती है, अतः यह कौमिक कहलाती है और चिब को 'कुल' कहा गया है। अनुभार और कौमिक शक्ति की साम्यावस्था से परे जो अनात्म तत्त्व है, उसे कुल कहा जाता है। इस कुलावस्था से चिब-शक्ति का भद्र नहीं है। इसे प्राप्त करना कौम कहते हैं। साम्यावस्था यही है।

चिब (अनुभार) तथा शक्ति (कौमिका) का संपृक्त कुलावस्था के पूर्व की स्थिति है, साधक को प्रथम इस ही प्राप्त करना पड़ता है। इस समरसता भी बढ़ा गया है। चिब में भी यह समरसता प्राप्य है। चिब में शक्ति की समा बुद्धिनी है। जो चिब का साधन नित्य समुक्त रहती है ब्रह्माण्ड चिब-शक्ति का सामरस्य या संपृक्त से से उत्पन्न होता है (जैसे प्राणत मर-भाषी का संपृक्त-विभूतावस्था से संगताने-त्पत्ति होती है उसे ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति चिब एवं शक्ति के संपृक्त म होती है) संपृक्त में मध्य-मकर साध रहता है। शक्ति मध्य है शक्तिमान मध्य है। इस शक्ति प्रकाश, ज्ञान त्रिधा—एक तीव्र रूपों को प्राप्त होती है। यही रूप विरोध या श्रु माट (विषादे) बाध सक्रिय है। फिर इसका रूप अम्बिका कहलाता है। अतः इस में जो 'उत्कार' है अपना चिब के मूलक पर जो अम्बिका है वह इसी अम्बिका नाम्नी शक्ति का है। पुनः यह 'ज्येष्ठ' वर्तमान है, यह नाम बिन्दु से चिब का नाम शक्ति का है। पुनः यह 'ज्येष्ठ' वर्तमान है, यह नाम चिबों को श्रुति क्रमशः होती है। इस प्रकार एक शक्ति अम्बिका ज्येष्ठ चिबिनी,

- (१) अनुभारवत्त्व केवत्य, कुल-व्यय चानिनी । शक्तिनी सा परा-शक्ति, शक्तिनी मया प्रभु — नैवासीत शृतीय भाहित पृष्ठ ७४
- (२) पत्रोत्पत्तिर्विदं चिबं चिबं यत्रालयेति च । अनुभारं विद्वि सर्वज चिबशक्ति विद्विभाम्—वही ।

रीढ़ी रोहिणी भादि रूपधारण करती है।^१ सारे 'बर्ष' शक्ति के रूप हैं। अतः वर्ष के द्वारा शक्ति बाधुत हो जाती है।

सबु शक्ति शिव के साथ अभिन्न है अतः दोनों का सामान्य संघट्ट या सामरस्य ही सृष्टि का मूल कारण है। बौद्ध धार्मिकों ने इसे ही बुद्धवाद कहा है। अतः में स्त्री-पुरुष का समागम इसी पारमार्थिक सामान्य रूप पिण्ड स्वरूप है। (४) यहाँ बिम्बोत्पत्तिता बिम्बमत्ता से विच्छिन्न रहती है। अतः शर्ष-शास्त्रों में इसी को लयन कहा गया है।

'संघट्ट' का अर्थ घट्टनं चलनं स्पन्दरूपता स्वात्मोच्छ्रयता क्रिया गया है। संघट्टावस्था में ज्ञानमानस्य का उत्पन्नन होता है। इष्टी-स्त्रिय प्राकृतसामान्य में ज्ञानस्य का एक रूप रहता है। इच्छा-ज्ञान-क्रिया तीनों का सामरस्य यही है।

निरंजन 'निःशेषेय अंशतः' निरंजन का यह अर्थ है। बिम्बसे यत्किमान् पूर्णता के साथ प्रकट क्रिया ज्ञान यही तत्त्व 'निरंजन' है। शक्ति द्वारा ही तत्त्व (शिव) पूर्णता के साथ व्यक्त होगा है, अतः शक्ति को ही तंत्र में 'निरंजन' कहा गया है। इच्छा ज्ञान क्रिया अपने अपने बिम्बों को प्रकट करती हैं अतः पूर्ण प्रकाश की अभिव्यक्ति होती है। बुद्धि शक्ति एवं यत्किमान् की एकता है, अतः 'निरंजन' घट्टनं शिव का भी वाचक होगा है। इच्छा ज्ञान क्रिया द्वारा सबु अत्रिण या प्रकट होगा है, अतः शिव का विसृज्य इच्छा ज्ञान क्रिया का प्रतीक है। इन विसृज्य में समाविष्ट होकर मोक्षी 'निरंजन' कृताना है^२ और साधना में 'क्रिया' की मुख्यता से 'क्रिया' को 'निरंजन' कहा गया है।^३

बिन्दु अनुत्तर या अज्ञान परात्पर सबु साह्य-साहक रूप में अपने का परिच्छिन्न करना है, स्वरूप मोक्ष करता है और अज्ञेयतत्त्व जब अपने को अनुपिन

(१) ज्ञान क्रिया एवं इच्छा तीन नामों के कारण देवी को 'त्रिपुण' भी कहा गया है।

(२) श्री प्रणमता शक्तिविभवं तद्विपुलतमम्।

परिष्ठाशु भवामैषाद् भवेद्योगी निरञ्जन—तत्रातोऽरु नृनीम साहिक
पृष्ठ ११२

(३) क्रियादेवी निरञ्जनम्—बही पृष्ठ ११४

करके प्रकाश को प्रकट करता है तब यही अनुसारात्मक की संज्ञा 'विन्दु' होती है।^१ 'विन्दु' का अर्थ है—वेति इति विन्दु। जो विधि या वेद्यम क्रिया म स्वप्न है उसका अविमल प्रकाश ही विन्दु है। अ.उ. इच्छा ज्ञान क्रिया के उदित होने पर सोम सूर्य अग्नि नामक प्रकाश प्रकट होते हैं। सोम सूर्य एवं अग्नि म विमल प्रकाश बस्तुतः अविमल है, यही 'विन्दु' है। विन्दु का स्वच्छन्द-उत्पन्न म ईश्वर कहा गया है 'विन्दुवर्षेदेवतः स्वयम् और ईश्वर भूमसत्ता के अद्वैतस्योप का नाम है।^२

नाद यही प्रकार—रूप में स्थित विन्दु नादात्मक सञ्ज के रूप में प्रकट होता है। शब्द का अर्थ है 'स्व से अनेकपूर्वक विन्दु का परामर्श। यह एक नादात्मक है। नाद का अर्थ है—'अदिति सर्वेषाम् शीघ्र वमात्वेन परिस्फुरति इति नादः अपरं तु सम्पूर्णं विश्व म नाद स्फुरित होकर ध्वनित हो रहा है। सारी सृष्टि का प्रकाशात्मक यही है। सम्पूर्ण विश्व में नाद के ध्यात होने से 'अ' वर्ण को सर्वभ्यापक कहा गया है। एक ही तत्त्व जीवकता के रूप म और यही तत्त्व विन्दु

- (१) अनामुत्तर एकिं वा स्वं बभूव प्रकटस्थितम् ।
 कुर्वन्त्यपि अय वसा कामुष्याद्विन्दुवर्षिणी—यही पृष्ठ ११६
 परमस्थि (अनात्म) त्वन' सर्वप्रथम प्रकाश और (विश्व) के रूप में व्यक्त
 होता है, यह प्रथम 'विन्दु' है और द्वितीय 'विन्दु' है 'विमर्ष' (एकिं)
 तथा तृतीय विन्दु है इन दोनों की एकता ।

पराय—प्रथम विन्दु—दोन विन्दु (वीर्य)
 विमर्ष—द्वितीय —एक विन्दु (रज)
 प्रकाश + विमर्ष —तृतीय—अग्नि विन्दु (दोनों का एक)

पराय विन्दु, विमर्ष विन्दु म प्रतिबिम्बित हुआ है पराय विमर्ष (एकिं क्रिया) में प्रतिबिम्बित होकर ही अपने रूप को जगता है। सूक्ष्म या निरलेख (Ab tract) विचार (thought) अपने स्वभाव को नहीं जान करता आ विचार की अतिमिति जन क्रिया शाय होकर ही पूर्ण होती है बने ही परमत्त्व अपनी विमर्ष एकिं (क्रिया) म प्रतिबिम्बित हुए अतः स्वभाव का अनुभव करता है। अतः विन्दु को सृष्टि का कारण कहा गया है।

एष्टम्—Philosophical Essays—S. N. Das Gupta 58 59
 (२) स्वच्छन्द-उत्पन्न—४-२६४

एवं नाद के रूप में व्यक्त हो रहा है। अविभक्त और अव्यक्त होकर भी नाद विभक्त और व्यक्त प्रतीत हो रहा है।

स्पष्ट है कि सृष्टि के लिए किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अपनी आत्मा में अपना ही आलाप बेसगिरी स्थिति को जन्म देता है। अतः प्रनिश्चित रूप सृष्टि चेतन्य से बाहर नहीं है।

'अ' से धारम्भ होकर सृष्टि 'ह' बर्य तक आकर स्तब्ध हो जाती है। इसी प्रकार सृष्टि का अव्यक्त की ओर विकास होने पर मूल पिबतत्त्व 'हं' कहलाता है २

(१) नाद को 'सवामिच' भी कहा गया है—नादो वाच्यं सवामिच—
स्वच्छन्दतंत्र ४—२६३

जिस प्रकार सांकर वेदान्त में आद्य स्वप्नावि द्वारा सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया है, उसी प्रकार तंत्रों में 'नाद' को स्वीकार किया गया है। मीमांसा की तरह तंत्रों में शब्द शास्त्र है। ध्वनि या शब्द से ही जगत् की उत्पत्ति है। जिस प्रक्रिया द्वारा यह ध्वनि जगत का बाह्य रूप धारण करती है वह प्रक्रिया निम्न में अवलोकित है, मीमांसाने शब्द एक अर्थ अन्वेषण है अतः बाह्य शब्द की धारणता बिना किसी सत्ता के मानी गई है। परन्तु तंत्र में यह सत्ता आत्मा है जो शब्द तथा अर्थ सृष्टि एवं मर्चाय (Matter) के द्वारा आत्मानुसृष्टि करती है। जब निम्न (पञ्चाप) अपने भाव विभक्त होता है तब 'अहम्' की अव्यक्त ध्वनि होती है, यही शब्द-ब्रह्म है, इसके भीतर इच्छा जिया और ज्ञान अवस्थित है। इन इच्छा-जिया ज्ञान के स्वरूपवाला शब्द-ब्रह्म या नाद ही बाह्य जगत तथा मनुष्य-शरीर के रूप में अन्विष्यता होता है। यही सूक्ष्म नाद (ब्रह्म) बाह्य क क व आदि अवस्थाओं में व्यक्त होता है। इन सूक्ष्म नाद ब्रह्म में ध्वनि एवं ध्वनि संयुक्ततावस्था में व्याप्त रहते हैं, अहम् इस ध्वनि में ध्वनि एवं ध्वनि का मिश्रण ही व्यक्त होता है। चार धोषाओं में—परा परपत्नी मध्यमा और बैधरी व्यक्त होकर अन्तिम बैधरी रूप में बरारी के रूप में हम ध्वनि होता है, परन्तु उनके तीन सूक्ष्मतर स्तर और हैं 'परा' की ब्रह्मा में नाद सूक्ष्मतर है और अन्तिम है, 'पराब्रह्म' में नाद का रूप वाच्य-बाह्यरूप से परे ही जाता है।

(२) हंस शब्द तथा प्राण ह्वार नामधिः स्तब्धम्—तंत्रराजमहाराज
उत्सुत तंत्रानेक ३—१४३

सागर त्रिषु प्रकारे उदि-विशर्गो नो उत्पन्न करके भी घात रहता है और महर तथा सापर मित्र प्रतीत होने पर भी अभिन्न रहने हैं, तथैव सृष्टि एव त्रिषु एक और अभिन्न हैं ।^१

सहज सारी सृष्टि में त्रिषु की इच्छा या काम तत्त्व ही पूर्ण हो रहा है । इसी काम-यत्न के ध्यान में सर्व-सृष्टि वरुण में हो जाती है । अतः सबके हृदय में वह इच्छा-यत्न स्फुरित हो रही है, अतः स्वयं मित्र है । यह काम-यत्न अथर्ववेद रूप में स्फुरित हो रही है । उद्यम और ध्यान में हमने से इसे 'सहज एव' स्वयंभू कहा है । यही नाद एव बिन्दु अथर्ववेदी ॥ । क्योंकि 'सतत उदिन-यत्न मात स्वयम् कामी है । यही सृष्टि के मूल में त्रिषु के मन में स्थित 'कामेच्छा' स्वयं रूप में व्यक्त होकर उदि-यत्न के समय उद्यम ज्ञान जुग हो जाने पर (विपश्चित वेष्ट होने पर) विकसित कामिनी तथा कामुक के मन में प्रकट होती है । स्वयं रूप में जाने पर वह उदिन एव अल्प होती हुई प्रतीत होती है, परन्तु मूलतः वह सर्वत्र सर्वकालो में स्थित रहती है । स्वयं सांसारिक मर-मारी उदि के समय त्रिषु प्रकार कामिनी के 'हा हा' आदि ध्वनों में वह कामेच्छा प्रकट होती है उन्हीं प्रकार सृष्टि के ध्यान में अथर्ववेद की बिन्दु अथर्व (कामरत्ना) द्वारा प्रकट हो रहा है । सारी वर्तमानता में त्रिषु के साथ त्रिषुविहारिणी अथर्व ही प्रकट होती है । अतः मूलतः एव स्वयं ध्वनों में एक ही 'इच्छा' अथर्व व्यापक है । त्रिषु कंठ से जैसे उदि के समय नाद उत्पन्न होता है, तथैव इच्छा-यत्न नाद के रूप में परिणत हो जाती है । अतः त्रिषु अथर्व में प्रकट होने का नाम 'अथर्व' होता है, सुगुणर होता है । अतः नाद को 'सहज' कहा गया है ।^२

(१) त्रिषु एव तावाम्यरागिणीनाकनामा ।

इयदुर्ध्वं मागास्य अन्तर्गोवि संवति —

गंगामोक्षं सृष्टीय आहिनं पृष्ठ १४७

(२) अथर्ववेदोऽथर्वं त्रिषु अथर्वेति परम्

सर्वं नां ह्यथर्वं तत्त्वं त्रिषु अथर्वेति — अथर्वे पृष्ठ १२१

त्रिषु अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति

सर्वेभू सुगुणोऽथर्वं कामरत्नाय वेद १२६

अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति

अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति त्रिषु अथर्वेति — अथर्वे १२१

स्पष्ट है कि कामतत्व का ज्ञान तंत्र-साधना में इसीलिए आवश्यक है कि स्तून-रति प्रक्रिया में वस्तुन सृष्टि उत्पन्न होने की छापी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती है। काम-रत्ना के अनुभव से साधक सृष्टि प्रक्रिया को धारणा से समझ सकता है। अथ स्तून रति के अनुभव से शिव शक्ति की रति या सृष्टि विस्तार का समझना तंत्रों की विशेषता है।

इस प्रकार साधक को यह ध्यान करना चाहिए कि काम शब्द से शक्ति विमर्श नेत्रों से निकल गया है यह मेरे नेत्रों से समझा गया है, अथवा साध्यतत्व शक्तियों से निकल गया है, मेरे नेत्रों में समझा गया है। इस प्रकार ध्यान से वस्तु को एक छाप बच में किया जा सकता है, काम तम से बच न करने से विलम्ब होता है। यही लक्ष्य बारीकरण है।

भैरव एवं भैरवी इच्छा को 'काम' ज्ञान को विषय तथा किया देवी को निरंजन कहा जाता है। इन तीनों से युक्त शिव भैरव कहलाते हैं। अंतिम स्थिति में इही भैरव का ध्यान होता है। यह भैरव शुद्ध चैतन्य मात्र है विषय का निर्वाहक है। निर्द्वन्द्व और आनन्दमय है। इस अवस्था में साधक को एकीभावारमक सुखम स्थिति प्राप्त हो जाती है और साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। इसी भैरव की चित्त शक्ति (विमर्श-शक्ति = शिवा शक्ति) सम्पूर्ण विश्व को अपने में समाहित करके (समेट कर) ब्रह्मसिनी नाम से प्रसिद्ध है। इसी को वस्तु की योगि कहा गया है। यही शक्ति वर्णमासा न व्यक्त हुई है, इसी से मंत्र बनते हैं। बिना इस शक्ति के परमार्थ के (स्मरण-विचार) मंत्र धारण के बाधनों क समान फलहीन होते हैं। भैरवी-शक्ति ही ब्रह्म में प्रविष्ट होगी है। अथ एवं भैरवी शक्ति के ज्ञान के बिना मंत्र जाप निष्फल है। शक्ति विमर्श के बिना मंत्र को शब्द कहा गया है। अन्त-

ब्रह्मसिनी शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति परम् ।

न विरोधित काम शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ।

मैत्राकृतेन त माः शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ।

सोमनात् मात्र सर्वेनी दुतापि बरस्मिन्मम् । बदा १५१

(१) मा सा ब्रह्मसिनी मात्र अगोपित प्रीतिता । —
तथासोद-शृतीय आह्वान पृष्ठ २०७

(२) आदि मात्राशक्तिमात्तु भूतय निमज्जत ।
न ते निरिच्छत मंत्रा निच्छता धारदमक — शरी पृष्ठ ७१२

बिना ज्ञान के मगल मृगमृग्या है और शक्ति परामर्ग से जो कुछ भी उच्चारण किया जाता है, वह सब मंत्र बन जाता है।^१ अतः भैरव साधना में किम्वं-शक्ति का ही चमत्कार है।

शब्द-मासा में इष्टी शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इसे मातृमा या मासिनी कहा गया है। विषय का स्वरूप धारण करती शक्ति मासिनी कहा जाती है।^२ अतः अर्थात् म ब्रह्माक्षर में छापी शक्ति उचित रहती है। स्वर को व्यंग्य और शब्द कहा गया है। स्वर जिब ही और व्यंजन को योनि कहा गया है। यथा योनि मे योयं शोभ उत्पन्न करता है तथा योनि एव योयं कः धर्षणादि से उत्पन्न वाचस्प (सोपीनाथ) से योनि येरिण हीनी है, जैसे ही व्यंजनों में स्वर के संयोग से अनेक शब्दों की सृष्टि होती है। यैरव एव भैरवी का यह संयोग वर्णमासा में भी सिद्धापी पड़ता है।

इस भैरवी शक्ति के ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है। जिब-धासन में इष्टी को पीरन्मुक्ति कहा गया है क्योंकि बाल नियामि कंचुच इव ज्ञान से मृष्ट हो जाते हैं और साधक स्वरूप में स्थित होकर निर्मूर्ख होकर जगत् में विचरण करता है। विवर्त्यों के माय से यह भैरवी-भाव सहज ही प्राप्त हो जाता है।^३ इस भैरवी भाव में इस प्रकार का माय स्थित रहता है I यह जगत् मूलमे ही उत्पन्न हुआ है II यह मेरा ही प्रतिबिम्ब है III यह मुझसे अभिन्न है। ये तीन भावतार्थ शास्त्रभावास्था के तंत्र कर्षों को प्राप्त करती हैं। ये कर्षा हैं यत्र मेरा है, यह धनु का है एव भावना मृष्ट हो जाती है। धास्य की वेतना उग दीपक के समान हो जाती है जो अन्य जीवों की वेतना को जगा सकता है। मैं जिब ही यह परामर्ग किम्व-संस्कार का हुआज बन जाता है। भास्य दमन-पूजा की

(१) इतोरुपापाणि यनिविगदि मास्यमुदं तग
तसमान्दिरुपाज सर्वे मन्त्रावेनेन परवति—ईदं पृष्ठ २६४

(२) दीश्वोति समापति निमर्गो-यमुन्वय ।
मासिनी हि पद्य शक्ति-निपीया विरक्त-पिपी ।—बगी पृष्ठ २२३

(३) अयं एवो दमनवागनामः स्वर्ण-वेदानिरुपस्य गत्य । गमापि योग
बाम-नमुग प्रताडिचर्वा विषय-निमानि । मुषोभय-गमाबज निरिरस्य
विषं पिा अन्वतिभैरवीभाव जीरन्मुकापराभिषम्—अथा १०
पूर्व-माहिर पृष्ठ २४८

मानस्यकटा नहीं रहती।^२ ऐसा साधक संसार के चकार में परतोषकार, भावि सङ्कमों का कर्तव्य समझकर करता रहता है, तथापि वह कर्म-बंधनों से मुक्त हो जाता है।^३ असादि के समान साधक भी चेतना बाह्योन्मुखता की क्षणिक से प्रेषित होकर अन्वहित और शीत होती रहती है, परन्तु वह साध ही असुख रहता है।

हठपाक : मेरवी भाषा को प्राप्त करने के लिए शीत पाक एवं हठपाक से प्रवृत्तियाँ हैं। प्रथम में मुख-भाषाजन शाल-शक्य तथा मित्-मैमिष्ठिक कार्य है। परन्तु इसके अतिरिक्त हठपाक या हठ्योप में बसन्त उपायियों का नाश किया जाता है। हठपूर्वक चित्-अंग का संस्कार हठ्योप है। शैव कपी इंसान को हठ्योप बना देता है। चिरन्ति से हठपाक-अप से सृष्टि आदि शक्तों का नाश करके असुखोपन शोध की एकता को प्राप्तकर (सर्व 'अनु इव-बहु'-ऐसी प्राप्ति कर) को सकिन् का परामर्श करता है, बड़ी योगी है। एकत्र प्राप्त होने पर भी योगी को शैव का आमान होता रहता है, परन्तु वह अविचलित रहता है।^४

शाक्त-उपाय शाक्य उपाय के उत्पन्न करने से स्पष्ट है कि इसमें साधक ज्ञान द्वारा निश्चित्य से विधायन पाना है। किन्तु शाक्त-स्विति में चित्त, बुद्धि अहंकारादि स्पष्ट हो जाते हैं। अतः इसमें निश्चय रहते हैं। शांकर वैदान्त की उद्घृष्ट विषय सामान में मन चित्त, बुद्धि अहंकारादि का विनाश—(Annihilation) नहीं है। इस सम्प्रदाय में मन चित्त, बुद्धि आदि विस्मयों के नाशनाश से साधक निश्चि 'पाने का प्रयत्न करता है। संन्यास-प्रधान सम्प्रदायों एवं तांत्रिक सम्प्रदायों में यह मौलिक श्रेय है।

शाक्यशाक्य में जपन के नायात्मक अतः विस्मयान्तरक होने से शैव प्रारम्भ हो जाते हैं। इन विरति में 'कर्तव्य' का अविधान रहता है। 'मे ही सर्वत्र स्थित

(२) बसन्त विनयगुरु-संसार-स्वयंप्रधान । ज्योतिषः प्रियवर्षाह—वित्तु-स्नानीकृतप्रधान—बही पृष्ठ २१७

(३) न चाधिका प्रिया-काले समारोहार्थं प्रति—बही, पृष्ठ २१२

(४) अविचलन इहेन सम्प्रतिप्रत्ययैक सत्रुपुपदेशात्पदा बन्नात्कारेण न चाध चिरन्ति सात्वात् तदवयवः परिपाटी तत्र सृष्टपादुपाधीना-मत्पयो मनेन्—बही पृष्ठ ७४०

है 'मेरे द्वारा ही सब स्थित हैं' ऐसी भावना होती है। यद्यपि इस स्थिति में मायात्मक विकल्प रहते हैं परन्तु धीरे-धीरे सामक समावेश की ओर बढ़ता जाता है। अंतो से अन्ते की ओर बढ़ने से भेद और अन्ते दोनों की स्थिति इस दशा में रहती है, अतः कहा गया है 'मेवाभेदोहि शक्तिः।'

अतः 'घात प्रक्रिया में संस्कार का महत्त्व है। 'संस्कार' शब्द का अर्थ है भुक्ति विज्ञादि के द्वारा अस्तु रूप में विद्यमान तत्त्व को स्फुटता प्राप्त कराना। इस संस्कार से निबिकल्प म प्रवेश सम्भव है। अतः विद्यर्ष का संस्कार ही निबिकल्प का साधन है। विद्यर्ष का नाश कदापि ध्येय नहीं है। विद्यर्ष का संस्कार न होने पर 'विद्वड-विकल्प' रहना है और संस्कार का प्ररोध सम्भव नहीं होगा। विद्वड-विकल्प के नष्ट होते चलने पर आत्म शुद्धि होती है और अन्त में ब्रह्मिकल्प स्थिति प्राप्त हो जाती है।

क्याकि विकल्प भी संविद् का ही एक रूप है, अतः विकल्प से आवृत्त संविद् अन्त में अपने मूल रूप को प्राप्त कर लेती है। विकल्पों के आच्छादन रहने पर भी संविद् अचर स्फुरित होती रहती है, उद्वार का यह आद्या-योग है। अन्त में भेदबी-तेज प्राप्त करने में इसीलिए शाक्त-उपाय को भी मायम बनाया जा सकता है। बार बार संविद् के विमर्ग से भेदबी तेज (बैराग्य) स्फुरित हो जाता है। अतः माया के माय के लिए तत्त्व का पुनः पुनः परामर्श आवश्यक है।

इस परामर्श में तर्क सहायक है। तर्क संहन संहन को नहीं करते तर्क का अर्थ शैव-शासन म 'आत्म-व्यभिक्ता' है। शुद्ध विद्या के स्पर्श से पवित्र बुद्धि में उत्पन्न 'मैं जिब हूँ' ऐसी भावना उत्पन्न करने वाली बुद्धि तर्क है। यही भेद-बुद्धि के को काटनी है। अद्वैत भाव ही तर्क है इसी से नारे मनोरथ पूर्ण होते हैं।^३

- (१) तंत्रालो—प्रथम आदिष्ट पृष्ठ २४३ ध्यात्मक अवस्था में 'ध्यान की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु ध्यात्मकता में रहती है' यही पुनः अंतर है।
- (२) अन्तर्ध भेदबीजं अन्तः तेजः संवित्कमावधुः ।
सुषोमसुषो विमृशतां जायते स्फुरात्मना—
तंत्रालोचन वि० ३ आदिष्ट ४ पृष्ठ ७
- (३) कुर्मोपाश्रयस्यास्य मूलं कृत्वा निर्विकल्पिका ।
मायाकृतेन सप्तकृत्यैरेण विचक्षण—द्विती पृष्ठ १२

बनी पारम को काटने से परा कपी काष्ठ भी प्राप्ति होती है। यही पराकाष्ठ (पराधक्ति) कहलानी है। अतः तर्क भावना विधेय को—पराधर्म विधेय को कहते हैं, कोरे खंडन मंडन को नहीं। तर्क ही पराकाष्ठ को प्राप्त होकर 'भावना' बनता है।^१ इसीलिए शेष धारण में परम ब्रह्म 'भावना' कहलाता है।^२ यह भावना ही सच्ची कामबेनु है (सर्वकामबुधा) इससे सिद्धियाँ एवं मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। योग का यही उत्तम अंग है। यही अंतरंग योग है। यों तो तर्क को 'वर्तव्य' का अंग माना गया है—शाकायाम ज्ञान प्रत्याहार, धारणा, तर्क समाधि। यहाँ 'तर्क' का अर्थ है स्व-सिद्धान्त के विरुद्ध न जाकर तर्क करना यह तर्क का अर्थ है। अन्य सम्प्रदाय 'राम' से पीड़ित हैं, परन्तु शेष-धारण में स्वर्पादि की इच्छा नहीं है, जहाँ तर्क के इस अर्थ को छोड़ना कुताक्रिक का कार्य है। इसीलिए कहा गया है कि कोई तांत्रिक को बुर न करे।^३ अतः बस्तु-निर्बंध शून्य धर्म प्रदान को तांत्रिक बुर पर-पराधर्म की चेष्टा करता है और हेम कपारव विवेक से बस्तु का निर्बंध नहीं करता उसे बुर न करे।

यह तर्क (ज्ञान) जिसको अकस्मात् होता है, वह 'सांविधिक' कहलाता है। इसमें बुर तथा धारण की अपेक्षा नहीं है, न शाफना की आवश्यकता है। अकस्मात् का अर्थ है—सोच से अप्रसिद्ध हेतु। 'शक्तिम महा ज्ञान' से ही यह सम्भव है। उपाधि-धेय से इसके माना गेह—

निर्बन्ध	सहस्रमिक्त
या	या
सर्वम	बंधन
या	या
मुष्य	अमुष्य

(१) तर्क एवम्हि परा काष्ठम् अवगतौ भावना इति—

तन्त्रालोक चतुर्थे तांत्रिक पृष्ठ ११

(२) यहाँ भावना का अर्थ emotion, वा feeling नहीं है, बल्कि Contemplation है।

(३) बुद्धेवाभि धारणस्य ये न अज्ञा नराधमाः ।

अध्याप्युक्तिः विचारणा शून्ये तर्कवर्तमाने

मूमयस्य तात्पर्यात् ज्ञानार्थे योऽपि लिप्यया—यही, पृष्ठ १०

तांत्रिक न बुर बुर्यात्—बही } पृष्ठ १० ११
तांत्रिके बुर बन्धनम्—बही }

अस्मात् ज्ञानं हा ज्ञाने पर समस्त यत् यत् भोग्यानि का प्रयोक्तव्यं महीं
रुता । जो स्वसंविता को भी छात्रात्मा कर जाते हैं वे 'निर्मितिक' कहलाते हैं । जो
परंपराकी विधि सीमा तक रहते हैं वे 'सद-निमित्त' कहलाते हैं ।

साधारणतः सांख्यिक साधनों को वीक्षादि ही जाती है, परन्तु जिन्हें वीक्षा
(सदुष्ट) एक संकल की आवश्यकता नहीं पड़ती व 'अद्वैत-सांख्यिक' कहलाते
हैं । यह ज्ञान अत्यन्त-अनुपम है ही उत्पन्न हो सकता है ।

शास्त्र-साधना अन्य साधनों को साधना की आवश्यकता रहती है ।
साधना में वीक्षा संकल कुछ आदि का विचार दिया जाना है ।

शास्त्र-साधना में यत्न मुख्य है । यत्न का अर्थ ही स्पष्ट कर चुकें हैं । यत्न
में प्राण (अन्तः) तथा अपान (सूच) के मध्यमार्ग में चित्त को लय करना होता
है । इससे प्राण-वाहक वायु गच्छ हा जाता है । वीक्षा केने प्राण प्राणापान (यथा
रेचक) व्यर्थ है । 'उन्मत्त' ही लय है ।^१ उत्तर का अर्थ है प्रमाण श्रेय प्रदान
का भव प्राण गच्छ हो प्राण और शुद्ध चेतन्य रूप परलम्ब वा ज्ञान हो ।

प्रत्याहार इन्द्रियों का अन्तर्गामी भाव ही प्रत्याहार है । बाह्य से
इन्द्रियों को मोलों से विच्छेद करना व्यर्थ है । कृति सर्वत्र सन्निविद्यमान है, अतः
जहाँ-जहाँ मन जाय वहीं-वहीं उसे रमाने का, मन के द्वारा इच्छित वस्तु में लक्ष्मी
बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जब मभी कुछ विद्यमान है तब अंतर्गमन
दिब से बाहर नहीं जायगा ।^२

धारणा-व्याज इनका साधन-मोक्ष में उपाय स्वीकृत है । परन्तु सचिन
के श्री इनका भी उपयोग नहीं है । शुद्ध चेतन्य वा ज्ञान हा जाने पर बाह्य उपाय
व्यर्थ हो जाते हैं ।

(१) सांख्य भास्कर संयोगान् श्रीचलम्प्रायनां बरेन्

अत्र साक्षात्तनो सीमा शुभ्ये भोग वर्तमाना—

तत्रासाक, अनुपं साहित्यं पृष्ठ १६

प्राणापानो न वर्तमाना— एतेरे वैम धान्यतः ।

रहस्यं वेत्ति यो यत्र यः शुद्धः स च मोक्षरः ॥

तत्रामोक्ष, अनुपं साहित्यं पृष्ठ १६

(२) यत्र यत्र मनो गानि, तत्रतर्कव्य धारयेन् ।

कवित्वा बुद्ध गच्छति तर्क विद्यमानं यत्र—कही पृष्ठ १००

इन मोमार्थों का समाधि की अवस्था तक ही उपयोग है। ये पूर्व से पूर्व भ्रष्ट हैं अर्थात् प्राकृतिक से ध्यान, उच्च प्रत्याहार, उभरे तक तथा सबसे अंतिम समाधि है, क्योंकि समिष्ट, वायुन स्वप्न सुषुप्ति आदि सभी अवस्थाओं में ध्यान है, अतः नय, नियम आदि साक्षात् रूपेण उत्कृष्ट सहयोगी नहीं हैं। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अविद्यमिष्ठ दुःखना के लिए इच्छा प्रयोग किया जाय तो भ्रष्ट नहीं है। क्योंकि केवल हीन भाव के लिए ही योगियों का उपयोग है। निरादि की पूजा भी इस साक्षात्-साक्षात् में साक्षात् रूपेण उपबोधी नहीं है। विच्छेद जैसे ध्यान नय जाय जिसकी जिस विच्छा उपाय से शुद्ध चैतन्य का बोध हो जाय उसके लिए नहीं ध्येय है अतः इत्यन्तमादि उपाय प्रत्यक्ष रूप से (directly) सहायक नहीं है।^१

विकल्प-परामर्श स्वभाव परामर्श का नाम विकल्प है। वह विकल्प दो प्रकार का है I नैरा II स्वच्छ। दोनों के द्वारा उत्कृष्ट-संज्ञान लक्ष्य है और भ्रष्टों की सहायता लिए बिना उत्कृष्ट-परामर्श स्वच्छ विकल्प है। नैरा वा प्राचीन विकल्प-परामर्श द्वारा भी जन्म में अज्ञेय की प्रति होता है। स्वान अर्चना होय ध्यान नय नर-पूजा आदि प्राचीन-विकल्प में आते हैं।

स्वान पीठन शुद्ध जन्म से स्वान बाह्य स्वान है। इससे साधना में भ्रष्ट भी सहायता नहीं मिल सकती है। नाविकर्षों का स्वान आंतरिक स्वान है। इसे मन्त्र-स्वान कहते हैं। उत्कृष्ट भाव अपने प्रकाश के कारण 'अदि' कहे जाता है। नीच पीठ आदि सामाजिक बोध ही ईश्वर है, उत्कृष्टाचारि नश्य करती है। इन दोनों के संबन्ध से 'अविद्यमिष्ठ मन्त्र' में परिचित प्रदाना का स्वान ही स्वान है।^२ बाह्य स्वान ईश्वर है। यदि बाह्य जन्म से मुक्ति होगी तो सारी महत्तियाँ भ्रष्ट हो जातीं।^३

शैव-शासन में शुद्धि-अशुद्धि का अर्थ विद्य है। यिन एक जगत् में भेद करने वाली शुद्धि ही अशुद्धि है, अज्ञान-रहित शुद्धि शुद्धि है।^४

(१) उत्कृष्ट मन्त्र अथैव स्वात्म तथैव समाचरेत् । यही पृष्ठ ११४
मध्यकालीन साधना में हिन्दी की 'सहज मार्ग' कहा गया है।

(२) उस्तादि बोध हृत्सुधारण विरवेन्बभोरिते ।

द्विगुणमनि देहम्ब मन्त्रनं स्वानमुच्यते—नैरातोक जगुष आ० पृष्ठ ११६

(३) यदि मुक्तिर्जनस्वात्म मन्त्रानां ता न हि भवेत्—यही पृष्ठ १२०

(४) विद्यात्मनोच्येते, मुद्धियां व्यतिरे रिषी ।

वेदा शुद्धिः परमभावा शुद्धिस्तद्धीविमर्दन—यही पृष्ठ १२१

पूजा इन्द्रिय-विशेष म स्थित मन की जो आह्लाद युक्ति है, उसे ब्रह्म स
 जाइ देना ही पूजा है।^१ मनुष्य के मन म माओं का जो समूह उत्पन्न होता रहता
 है, उसी जेतना क साथ एकाकारिता ही पूजा है। स्वतन्त्र-गति ही आह्लाद विषया
 में स्फुरित हो रही है, यह अनुभव ही सर्वस्व है अन्य साधनाएँ बुझिम हैं।

मंत्र उत्पन्नान स मंत्र स्फुरित हुला है। यदि स्फुरित न हो तो किसी
 स्फुर आचार्य से बोधा न। वंश-पूजा (सक्ति-साधना) १५ दिन करने वाला
 साधक सात दिन करने वाला पुष्य एक चार दिन मगाने वाला समयी कहलाता
 है सामान्यत मंत्रादि की सिद्धि-कर्त्ता को 'समयाचार्य' कहत है। उत्पन्नान न
 ब्रह्माव म पुस्तक से निश्चिन्त मंत्र निर्धार्य हैं।^२ जो साधक पुस्तक निश्चित मंत्रा
 को स्फुर कर लेते हैं उनमें भेरी सरकार (उत्पन्नान) रहता है। चैतन्य उत्प
 से रहित मंत्र निर्धार्य हैं, यह सिद्धान्त बटम है।

तामिन-साधना म गोपन के महत्व स समुच्च नहीं होते अमिन्त युत के
 अनुसार गोपन की आवश्यकता इसलिए है कि अनाधिकारी पर हियादि दुष्ट कामा म
 मंत्रों का प्रयोग कर लेते हैं। दूसरे यदि सिद्धि न मिली तो साधक पर अतिरिक्त
 होता है। अत गोपन आवश्यक है।^३

ऋम-साधना उपरक्त-साधना पद्धति में उत्पन्नान की समुपज्ञा है।
 विन्दु न तो सभी सकल्पित सांख्यिक साधक हा सकते हैं और न समा को
 अकस्मात् ज्ञान ही प्राप्त हो सप्रा है, अत वस्त्रिण-गुरु बनने क लिए ऋम-ऋम स
 सिद्धि प्राप्त करनी पड़ती है। ऋम-साधना में 'अमिन्त' आवश्यक है। शेष साधक
 न गुरु शाय एक स्वतन्त्र में तीन साधन हैं। स्वतः ज्ञान न होने पर गुरु तथा साधक
 की कारण आवश्यक है। इसक भी भेद है। गुरु एवं साधक दोनों से सिद्धि मिले वह
 साधक समस्त बटमाता है, और यदि अल्प ज्ञान-व्ययों से सिद्धि हो तो बट
 साधक 'म्यस्त' साधक बटमाता है। जैसे टट्टु मरुच भाति घरने व साधन कैर

- (१) महिःपिन्मानसाह्लादि-यत्र क्वापात्रियस्तिती ।
 योभ्यते ब्रह्म सज्जानि पुनोपकरणं हि तत्—बही पृष्ठ १२२
- (२) निपिस्त्रिस्तु यो मंत्रो निर्धार्यो सौत्र वस्त्रिण—बही, पृष्ठ ७२
- (३) तामसा पर्य्यादि बस्यादि च बरत्पतम् ।
 न च उत्पन्न विदुस्तेन दोनमाय इति स्पृष्टम्—बही पृष्ठ ७१

होने पर छेदन-कार्य एक ही होता है, तबेन साधन अनेक होंगे पर भी साध्य एक ही है।

छलापें संवित् (शुद्ध चेतन्य) की १२ कलाएँ होती हैं। साधना के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है। पारम्परिक संवित्, सृष्टि स्थिति संसार और अनात्म इन चार तत्त्वों के धार प्रमाता प्रसाध और प्रमेय के रूप में आभासित होती है। अतः $४ \times ३ = १२$ कलाएँ मार्गी जाती हैं। संवित् के इस विकास को समझकर ही साधना करनी चाहिए।

साधना का उद्देश्य अमृत-तत्त्व की प्राप्ति। पिम्ब में यह अमृत सूर्य नाड़ी तथा चन्द्र नाड़ी के संयोग से उत्पन्न होता है। सूर्योत्थि को पुरुष और चन्द्र नाड़ी को स्त्री यामा कहा है। अतः जैसे पिम्ब में पुरुष-स्त्री के समापन से अमृत उत्पन्न होता है तबेन सूर्य एवं चन्द्र की एकता से अमृत-साध करना ही 'साधना' है।^१ बोधि को 'माधा' तथा 'न्य' को कारण कहा गया है। धारों के लय एवं आपस से परम पर की प्राप्ति होती है।^२ विस्तार और प्रसंग को तभी प्राकृत रति की उपमा दी जाती है। किन्तु शैब-शासन में प्राकृत-रति केवल शरीक या उपमान मात्र नहीं है, अपितु प्राकृत-रति (काम-रसा) का व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि पिम्ब को समझ लेने पर ब्रह्माण्ड समझ में आ सकता है। प्राकृत-सृष्टि को समझकर ही अनाकृत-नारनायिक तत्त्व द्वारा की गई सृष्टि का अनुभव ही सकता है। अतएव शैब-शासन में अकृत-साधि में पुरुष-नाटी संयोग को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है। परन्तु साध ही यह समापन केवल तत्त्व-ज्ञान के रहस्य को समझने के लिए तथा परम-नद जाने के लिए है न कि केवल इरियों को दूर करने के लिए।

'अमृत' का अर्थ है तंत्र में इस प्रकार को तत्त्व ज्ञान के अतीत नहीं है बल्कि अमृत तत्त्व। अतः से परे इस तत्त्व को प्राकृत-रति के समय अनुभूत किया जाता

(१) मया यानि अविद्ध च संयोगात्मकता-मृतम् ।

तथासृष्टाधि संयोगात्, इवतस्ते न धयय-—

तन्मानोक्त अनुभूत-वाङ्मि पृष्ठ १४०

(२) सिद्ध-उत्थेन विज्ञात सृष्टि संसार कारणम् ।

तथासाधनात्मकतायां परम अययम्—वही पृष्ठ १४१

तत्त्वज्ञ वीरनादानो अप्रेतिनीयर्हं लोममम् ।

वां दुष्ट्या परमां ज्योत्सनां काल-ज्ञानं धरति—वही, पृष्ठ १४२

है। तंत्रों के अनुसार चन्द्र-नीच के (समागम से) सोम एवं सूर्य प्रभावित होते हैं। पहले कहा है कि चिब तथा धक्ति की रति से ही सोम-सूर्य-अग्नि का जन्म हुआ है। इस प्रकार चिब के समय काल का बोध होता है। उक्त नाड़ी भाग भी इसके साथ ही संकेतित है, चूँकि तब का शीत-साधना में मुख्य है, अतः सम्भोग से वृष्टि योग का फल मिलता है, ऐसा विश्वास है। चिब (माया) में जिस समय पुरुष (प्रमाता) प्रेम (स्त्री) के मिलन से काल का बोध होता है, उसी समय शरीर स्थित मादियो (सूर्य-चन्द्र) का भी मिलन होता है और वीर्य-करण के समय जब संसार के पदार्थों का ज्ञानप्रपुन हो जाने पर पुरुष तन्मय हो जाता है, तब सूत्र एवं चन्द्र (इन्द्र-विद्यया) के मध्य में निरंतर मन्त्र म स्थित हो जाती है (मुमुक्षा मार्ग) बन जाता है इस प्रकार 'शाहन-रति' साधना में महायज्ञ है, विराधिनी नहीं जैसा कि संस्थास प्रथम नियमबारी सम्प्रदाय समझते हैं, परन्तु ज्ञान हीन सम्भोग साधना पूर्ण मात्र है और पवन का अर्थ है।

जिस प्रकार शाहनरति में उद्यामयोगरूप अमृत तब का स्थान होता है, वैध ही नाड़ी यौन मूर्ध (पुरुष) को ऊँचा से चन्द्र (स्त्री) नाड़ी से अमृत (रत्न) मिलता होता है जो योपी इस अमृत को पीते हैं अमृत को प्राप्त होते हैं।

अमृत को इस सकल-क्रिया में शरीर वृष्टि प्रक्रिया छोड़ी हुई है। सूर्य (पुरुष) पर-प्रामाता है। जन्मके स्वातंत्र्य धक्ति रपी सोम (स्त्री) बाह्य उन्मुक्तता के लिए उत्तेजित होता है और विमरपी अमृतधातु को छोड़ता है। यही अमृतरपी विरह का साधक है, अतः यह साधक चिब धक्ति (योगि) से निःसृत अमृत तब है। इसका स्थापक विरह के पदार्थों से अचित्त चरुत साधना करना विद्या-साधना है।^१

दोनों क्षिररपी अमृत का पात्र करना हुआ जब साधक "मे बहू है", "बहू में ही है" "बहू सब मेरा ही विरह्य है" इस प्रकार पुन-पुनः वचनार्थ करते हुए स्वयं स्थित हो जाता है तब क्षिर तय हो जाता है और परमपर प्राप्त हो पाता

(१) उक्तर्त्ता मुञ्चते धारां, सोमो ह्यग्नि प्रदीपितः ।

तंत्राचार, चतुर्थे भादिक, पृष्ठ-१४४

(२) यत्र जिया पक्ष्यात्मा सोमः परममातुः अग्निमाना स्वस्वाग्नात्मा
 प्रदीपितो—मासोऽमुतो समुत्तेजितः सन् मन्त्रां—विषय बर्णनात्—धारां मुञ्चति
 प्रमातुः, प्रेरणादिशक्तये नाविच्छेदेन प्रवाहेन—परिष्कुरति यत्र अमृतं इत्यन्वितं
 रसात्—तन्नातोह चतुर्थे भादिक पृष्ठ १४४

है। और तब सावक 'हंस' या 'परमहंस' (हंस-सोपेह) की भावना से युक्त) कल्पता है तब विश्व में निराल होकर वह विवरण करता है, सिद्ध हो जाता है।^१

वेदता के रूप 'अनाक्षय' तत्त्व (परात्पर ब्रह्म) की किण्वृत्ति ही 'परा शक्ति' कहलाती है 'परा-शक्ति' ही के अनेक रूप भिन्न-भिन्न देवियों-देवताओं के रूप हैं। देवी-देवता में निगमेश तो साक्षात् का अर्थच यात्र है अन्त्या पराशक्ति निवारि भेदों से परे है। यही कारण है कि कर्मीटी शैवमत में देवी-उपासना (विपुत्र उद्देश्यादि में बलिष्ठ) स्वीकृत है। शाक्तमत का कर्मीटी शैवमत से निकटतम सम्बंध है। कर्मीटी-शैवमत की यही विशेषता है। शैव 'पराशक्ति', विपुत्र भैरवी भावि के उपासक हैं। अतः प्रथम उपास्य शक्ति पराशक्ति' है। इसरी १२ कर्माओं का कर्त्तन हम कर चुके हैं। प्रत्येक तत्त्व में ये १२ कर्माएँ व्यक्त हो रही हैं। प्रत्येक इन्द्रिय में १२ कर्माएँ हैं (प्रधाता प्रथेय प्रमात्र x अनाक्षय, सृष्टि काल स्वर = १२)। स्वर भी १२ हैं आदित्य भी १२ हैं मास भी १२ हैं और कला भी १२ हैं। इनसे पराशक्ति' की व्यापकता प्रकट होती है।

काल संकर्षिणी आघातक आनात्म के लिए उच्छ्र होती है, इस उच्छ्रावत्का को 'काल संकर्षिणी' कहते हैं।

श्री सृष्टि काली—जो शक्ति बाहर की ओर सृष्टि को आरूपा करती है—विलार वेधी है वह श्रीसृष्टि-काली कहलाती है। काल का कलन (आकर्मक विलार) करने वाली शक्ति ही 'काली' है। यह देवी जब सृष्टि का विलार करती है तो इन्द्रियाँ अपना कार्य करने लक्ष्मी हैं विज्ञान का आनाम होने लगता है। विषय एवं विषयी क्योकि दोनों संनिग रूप हैं, अतः 'मूलतः कोई भेद न रहने पर भी शास्त्र-शाहक भाव बन पड़ता है। प्रधाता स्वयं प्रधाता के रूप में बहिर्मुख होकर विलुप्त हो जाता है, अतः विषयों की स्थिति विषयी से है। विषय न रहने पर भी 'विषयी' की सत्ता रहती है। अतः 'विषयी' ही मुख्य है। परन्तु बहिर्मुखता में विषयी को प्रथेय-प्रमात्र से भागक हो जाती है और वह इन्हें निर

(१) तत्पुनः विवति पीत्या हंसो हंस इति स्फुरत् ।

परात्पर तु संपुत्रा बुधपारोर्नि निष्पत्ते—बही पृष्ठ १४६

मानता है। संक्षिप्त का यह स्वरूप ही 'रक्त-माली' है। यह देवी इन्द्रियों से पाह्य नहीं है, यह निमग्न एवं निरकार उत्पन्न का नाम है।

स्थिति-नारा काली संक्षिप्त ही सृष्टि को आत्म-छात्र करती है। जन प्रसयावस्था के लिए उद्यत देवी का रूप 'यमकाली' कहा जाता है। विरह का सुजन और योग करने के बाद 'यह मेने जान लिया यह मैं भोग भुज यह वृत्ति उत्पन्न होती है, अतः संक्षिप्त सृष्टि को आत्मछात्र करने के लिए उद्यत हो जाती है।

यम-काली, संहार-काली 'संहार' की इच्छा पूर्ण हो जाने पर भयंकर विश्व क सम्बंध में यह मेने जान लिया ऐसा ज्ञान होने के परभाव पूर्ण उद्योतनीता काटन होने क परभाव 'यमकाली' की स्थिति उत्पन्न होती है। विश्व का नाश (साधक क मन से) हो जाने पर भी परिमित-प्रमाणा (संयुचित-व्यवस्था) की स्थिति रहती है अर्थात् मन म यह माय उठने रहने हैं—'यह कार्य है यह कार्य है'। इस प्रकार की नियमावस्था को उत्पन्न करने वाली संक्षिप्त का रूप यम-काली कहा जाता है, क्योंकि विश्व को ही 'यम' कहते हैं। यह छात्र म संवेद उत्पन्न कर देती है स्वायुज्य को स्थिर नहीं रहने देती तथा माय ही दूगरी और निबिन्ध्यकर स्थिति में भी विद्यमान रहती है। इसका प्रभाव यह है कि विश्व एवं विश्व्य माय की स्थिति सकल मन में बसा करती है। संकोच तथा विवास साय-साय बनता है। संकोच एवं विवास में अनियत रहने से ही यह यम-काली है। इन स्थिति का उदाहरण मूत्रागम में रात भी को संयुचित क विरक्ति होती हुई यौनि है।

संहार काली उपर्युक्त विधि-नियम संकोच-विवास में अनियत वृत्ति का जो आराम प्रभाव से संहार करती है वही 'संहार काली' है।^२

(१) तपामानिबलबंशं रज्जुनां वा अग्निर्गुणी
स्ववृत्तिं कनेच सर्वं ततोऽपि नमपश्यमम्
स्त्रियां देवैक भावत्य—गजादीह—धुर्पुं अ० पृष्ठ १४८ १६०

न येन्या रूप वा दाया न च मर्बेनि-परिपदा
त्रिगुणा निरंतरा रज्जोऽग्निर्मंडनम्
ना नमा तु पश्यता मा जेषा रज्जुं वा निरा—

(२) रागस्या मूत्रागम तु यौनिं पश्यन्नेवमा—
नक्षत्रौ चतुर्पुं आदिषु पृष्ठ १६४

(३) यमस्य स्वप्नरथा रूपीत्यवस्था।
मा न इ सीपने दायां यमकार्यं तु मा श्रुता—की पृष्ठ १६५

मंत्र मंत्र एवं संकिन् में अंतर नहीं है। संकिन्-परामर्श से खी स्वतः ध्वनि स्फुरित होती है, वह सदा अप्रतिहरूप से चलती रहती है, सतत उच्चारण नहीं होता। यही अप है। वेवता स्वयं जीव के हृदय में स्थित होकर उच्चरित होता रहता है। इसी जनवरण ध्वनि को परम हृदय कहा गया है। हृदय का अर्थ है 'तप्य-अपक' = परमसार। इसी हृदय (ध्वनि) को स्पन्द शास्त्र में 'स्पन्द' कहा गया है। आर्या (संकिन्) का उच्चारण ही स्पन्द है। यही परमाप है। अतः मंत्र का स्वतः आप चलता है। इस अनुभव के अभाव में कर मं माना लेकर मंत्र का कोनाहल ध्वय है। इस ज्ञान से योगी जो बुद्ध कहता है, अप ही जाता है।

ध्यान फल की आकारता करने वाले 'साकार' का ध्यान करते हैं। किन्तु यह गौणध्यान है, मुख्य तो निराकार ज्ञान ही है। फलार्थियों की इच्छा पूर्ण करने के लिए शक्ति के अनन्त रूप अर्पित हैं। जन के लिए 'महसी की और रखा के लिए बसमुक्त वेधी की उपासना की जाती है। परन्तु घट-भेद से जन मं भेद नहीं होता परन्तु घट-स्थित जन के परिमाण गुणादि से अन्तर आ जाता है, इसी प्रकार वेधियों के निम्न श्रेण रूप हैं।

मुद्रा जब सावक का पर्यवेक्षर से एकारम्य होता है तो एक प्रकार का शरीर में उत्पन्न उत्पन्न होता है, इसके शरीर में विभिन्न आह्वनियाँ एवं वेष्टाएँ उत्पन्न हो जाती हैं यही मुद्रा है। यथा संभुतियों की विषय आह्वनियाँ हो जाती हैं कभी-कभी हाथ उठ जाता है, कभी मुख भी वेष्टा मुख और हो जाती है। यही मुद्राएँ हैं। पराशक्ति भी मन्त्र से मत्त-शरीर में जो उत्पन्न आनि वेष्टाएँ उत्पन्न हो जाती हैं वे मुद्राएँ हैं।^२

(१) नास्तोच्चारयिता कश्चित् प्रतिहत्या न विद्यते ।

स्वयमुच्चारते देव प्राणिनामुक्ति स्थित — बही पृष्ठ २११

भ्रूयोमुषा परेभावे भावयते हि या ।

अत्र शोऽत्र स्वयं नादो मभ्यासमा अप्यह्वय —

स्वयन्दर्शन गुल्फ १ पृष्ठ ७७

(२) क्रुये योगिनि उन्नि-भरबोमपरागवात्

धुनिहरय रिषावरे, मुद्रा या वाचिदेव सा — बही पृष्ठ २११

होम उत्पन्न होने की शक्ति में सत-इन्द्रियों की सपटें निरस्त होती हैं, इसमें भाव-बर्षों की हानि देना ही होय है।

दीया भगवान् के अनुग्रह को शक्तिपात कहते हैं। शिव साधक में शक्ति को प्राकृत कर देते हैं, यही शक्तिपात है। इस शक्तिपात से प्राप्त पवित्रता ही शक्ति है। शक्तिप्राप्त व्यक्ति बड़ी शक्ति के रूप में शक्ति प्राप्त कर देने की शक्ति है।

शक्तिसाधना या सामाचार

ब्राह्म-साधक केवल ईश्वर के लिए हैं। शिव प्रसार प्रतिबिम्ब के रूप में एकान्त्य उत्पन्न होता है, तबसे विश्वव्यापी सुख के—स्वान् पूजा धर्मना के रूप में प्रतिबिम्ब को केवल मेरे तन्मय हो जाता है। इस तन्मयता से अनुत्तरता की प्राप्ति होती है। परमात्मा को ही अनुत्तरता बनने है। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर साधक विधि-नियम से ऊपर उठ जाता है।^१ इसीलिए कोसमार्ग श्रेष्ठ है। केवल मोक्ष-स्वप्नहार का रक्षा के लिए आचार-विचार का पालन आवश्यक है। आचारिकत्व से योगमार्ग, ब्राह्म रूप में शैशवावस्था तथा मोक्षाचार ब्रह्म आचार मानना चाहिए।

अन्तः शोभो बहिः शोभते, । साचारे तु वैश्व-
सारमावाप्य तिष्ठेत् सारिभक्तवत् यथा^२

अन्तः शोभते से आचारिकत्व के समान ब्राह्मण्य से वैश्वव्यापी आचारों का पालन करना चाहिए और आचारिकत्व से ब्रह्म-साधना करनी चाहिए।

आचारिकत्व का पालन करना चाहिए।^३ अर्थात् पञ्चवार मानि मुखा शिरसा मीढुन, मन्त्र्य वा सत्य ही पञ्चमवारतामसा है। म तो अन्य साधक के देवताओं का ध्यान करे, न विधि-नियम को स्वीकार करे। शिव रूप ही साधक के लिए करे, यही साधक-साधना है। यही अन्तः-साधना है। अन्तः-साधना के द-द-द-

- (१) महागुन्यासने बहो मुखाशिरसाशिरस
रूपने मनसा मार्ग म हीन म न केना ।
स्वप्न-संन-—गुरुव १, पृष्ठ ४७
- (२) शरी, पृष्ठ २७८
- (३) साधकान् विवर्णयन्—शरी, पृष्ठ २७४

इस स्थिति और भोग दोनों एकही समय में सम्भव हैं, दोनों में विरोध नहीं है, जैसा कि सम्वास-प्रधान मार्ग समझते हैं। अतः इन्द्रियां जहाँ-जहाँ म पाये वहीं-वहीं मन को स्थिर करना चाहिए क्योंकि सब शिवमय है, इन्द्रियां चैतन्य के बाहर या ही नहीं सकती। स्थिरता बढ़ने पर मन ब्रह्म में होता जाता है और अमरा चैतना का संस्कार होता जाता है, अतः म वह शैव-स्थिति या माती है, जब भोग एक योग दोनों साथ साथ चलते हैं। भोगों द्वारा योग ही शैव-प्राप्तन की विरोधता है। जिस भोग से बंधन होता है, वही मोक्ष का साधन बनता है।

समना एवं उन्मत्ता अवस्थाएँ बस्तुन-शिव की ज्ञान मूर्तियों या शिवत्व प्राप्ति की सात मूर्तियों में से दो मूर्तियों के नाम हैं। मान मूर्तियाँ ये हैं—शैव आक्रमण (आक्रमण) शिवयोग, शीघ्र स्थापन संकिति (संश्लेष-साक्षात्कार) तथा तदापत्ति (शिव के साथ साक्षात्कार) इनमें 'स्थापन' को 'व्यापिनी संकिति' को 'समना' तथा तदापत्ति को 'उन्मत्तावस्था' कहते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है।

ब्रह्म-साधना-प्राणयोग उपर्युक्त साधना की साठी विधियों में 'ध्यान' की प्रधानता है इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राण-योग में ध्यान का महत्त्व नहीं है। परन्तु प्राण-वायु का सामन प्रधान होने से इसे प्राण-योग कहा गया है। शैव स्थिति की प्राप्ति के लिए प्राण-योग का महत्त्व कम नहीं है।

पिण्ड (परिरी) में प्राण का निश्चय प्रवाह रूप रहा है। शारिरीय तो प्रमेक (७२ सहस्र) हैं परन्तु उनमें तीन मुख्य हैं। इहा शिगना और कुमुम्मा। समाम्यन इहा, पिण्डाणि शारिरीय म प्राण प्रवाह जाता है परन्तु कुमुम्मा क शीघ्र के प्राण को शक्ति (शुक्तिनी) छोड़े तीन बसया में सपेट कर पड़ी हुई है, उस दण्ड प्रहार से सर्व शीघ्र हो जाता है उसी प्रकार गुह-शाय शान का उदय होता है।

ब्रह्मरूप के शीघ्र एक शौराग है इसे शैव 'विनामनि' कहते हैं। उसके ऊपर 'मुपाधार' नामक स्थान है इसे 'शैव' कहते हैं। प्राण वायु को मध्यममार्ग (कुमुम्मा) म प्रविष्ट कर इन स्थान तक पहुँचना होगा है। 'शैव' स्थान का भी

(१) येन येन निवध्यन्ते ब्रह्मबोरीड कर्मणा ।

शौरामैव तेनेन मुष्यते मयम्यनात्

नैशामोर शिव ३ पंचम अध्याय पृष्ठ ११८

(२) इत्ययं—नैशामोर पंचम अध्याय पृष्ठ ११०

सादि केन्द्र वस्तुओं के लिए है। पाय (कंचुक) से बड़ नीच पद्य है। मत्त-बातव-बाम को छोड़कर उस 'पति (पिय) दास्य' का सेवन करना चाहिए। इस पति-दास्य में सिद्ध हो जाने पर भी विषय उस का त्याग नहीं है। क्योंकि यहाँ जहाँ इन्द्रियाँ आसक्त होती हैं उन सब वस्तुओं में विष का प्रकाश है।^१ विष का ज्ञान हो जाने पर विषय-बाधना की पूर्ति करते हुए अदल से (सहज) सुद-सुबक परम-मद घात हो जाता है क्योंकि तादात्म्य ज्ञान ही सारे कष्ट-दुःख साधनों का उद्देश्य है।^२

इस सहज मत्त रहित अवेद प्रधान साधना का आरंभ सभी मूर्खों ने करते। विष के तीव्र परिष्कार के बिना साधक अधिकारी नहीं बनता। केन्द्रों के पुष्प का एक केवल भ्रमर ही चम्कते हैं मच्छियाँ नहीं।^३ हम मार्ग में भ्रम का आह्वान नहीं हैं नीचम भ्रम के समान स्वयं गल्ट हो जाता है। न यहाँ मृत्ना दम है न मृत्ना न संकोच साधक विष कप ही जाता है। 'साध्व' की उल्लेखनम स्थिति यही है—

समता सर्वभावानां वृत्तीनां चैव सर्वत्र ।

समता सर्ववृत्तीनां इत्यानां चैव सर्वत्र ५

सारे पद्यों में सारी मानसिक वृत्तियों में सर्व शास्त्रों और सम्प्रदायों में सर्वभावों में पूर्ण समता भाव कील-मार्ग की विशेषता है क्योंकि बिना समता के साधक ही निर्गन्त हो नहीं सकता।

कील-मार्ग के अनुसार शब्दादि विलयों में विलीन होकर स्व-स्व विषय का मोल करके इन्द्रियों का चेतन्य में लय होता है। सार्वभौम साम्राट् बैठे जन्म राष्ट्रीयों का भी साधक होता है तर्किक अन्य सहायक राजाओं की भाँति मनेक वृत्तियों का विषय एक ही चेतन्य में होता है जग-इन्द्रियों की वृत्ति आकाशक है क्योंकि वे चेतन्य में बाधक नहीं हैं वे अज्ञान के कारण ही बंधन बनती हैं ज्ञान होने पर इन्द्रियों स्व-स्व विषयों का मोल करती हुई चेतना को संतुष्ट करती हैं। जग-स्व-

(१) यह यह विधिना मरीचकस्तनत्र किपुदेव जूम्बै । पृष्ठ २८८

(२) नभामोक, चतुर्षु अह्निक पृ० २८६

(३) यही पृष्ठ ३०५ (४) यही पृष्ठ ३०२

इस स्थिति और भोग दोनों एकही समय में सम्भव हैं दोनों में विरोध नहीं है, बस कि संन्यास-श्रमण मार्ग समयसते हैं। जब इन्द्रियाँ जहाँ-जहाँ में जाँच बड़ी-बड़ी मत को स्थिर करना चाहिए क्योंकि सब उचितमय है, इन्द्रियाँ वेगमय के बाहर जा ही नहीं सकती। स्थिरता बढ़ने पर मन कष्ट में होता जाता है और कर्मका वेदना का संस्कार होता बसना है, अन्त में वह नीम-सि-नि या जाती है, जब भोग एवं भोग दोनों साथ साथ चलते हैं। भोगों द्वारा योग ही शैव-शास्त्र की विशेषता है। जिस भोग से संबन्ध होता है, वही भोग का साधन बनता है।^१

समना एक उन्मत्ता ब्रह्मस्वार्थं वस्तुना सिद्ध की सात मूर्तियों का विवरण प्राप्ति की सात मूर्तियों में से दो मूर्तियों के नाम हैं। सात मूर्तियों के हैं—राज-भ्रातृमन (साक्षात्) चित्तबोध दीपन स्थापन संकलित (संकलित-व्यासात्कार) तथा तद्यपत्ति (चित्त के साथ साक्षात्) इनमें 'स्थापन' को 'व्यापिनी संकलित' को 'समना' तथा तद्यपत्ति को 'उन्मत्तावस्था' कहते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है।

कर्म-साधना-साधनयोग उपर्युक्त साधना की सारी विधियों में 'ध्यान' को प्रधानता है इसका अर्थ यह नहीं है कि, प्राण-बोध में ध्यान का महत्त्व नहीं है। परन्तु प्राण-वायु का ध्यान प्रधान होने से इसे प्राण-बोध कहा गया है। शीत स्थिति की प्राप्ति के लिए प्राण-बोध का महत्त्व कम नहीं है।

पिण्ड (शरीर) में प्राण का नियंत्रण प्रवाह चल रहा है। नादियाँ तो प्रवेश (७२ सहस्र) हैं परन्तु जन्म से तीन मुख्य हैं। इका तिलका और मुकुन्दा। ममात्मना इका पिण्डादि नादियः में प्राण प्रवाह जाता है, परन्तु मुकुन्दा के नीचे के भाग को शक्ति (बुद्धिमत्ता) छोड़ें तीन समयों में लपेट कर पड़ी हुई है, जैसे दग्ध प्रहार से सर्व शीघ्र हो जाता है उसी प्रकार दुष्ट-द्वारा ज्ञान का उदय होता है।^२

ब्रह्मरन्ध्र का नीचे एक चोरागा है इसे शोक विनाशनि कहते हैं। उसके ऊपर 'मुखाधार' नामक स्थान है, इसे 'शोध' कहते हैं। प्राण वायु को मध्यममार्ग (मुकुन्दा) में प्रविष्ट कर इस स्थान तक पहुँचना होता है। 'शोध' स्थान का भी

(१) केन केन निबध्यन्ते उन्मत्तोरीह वर्मना ।

शोषायेन केनैव मुच्यते मयवन्धवान्-

मंजानोर जिज्ञ ३ पंचम आदित्य, पृष्ठ ११८

(२) इन्द्रिय-मंजानोरा पंचम आदित्य पृष्ठ ११०

मिथुन (इच्छा ज्ञान, श्रिया का शब्द) के द्वारा बलि क्रमण कर 'समना' नामक स्थान तक जाय ।^१ यह सूंवर' है इसके भी ऊपर 'उमना नामक स्थान है । इसे ही घात करके योगी पूर्ण होता है । प्राणुवायु को बल में करके क्रम-क्रम से क्षिप्रगति शीघ्र समना का बलिक्रमण कर यह स्थान प्राप्त होता है । यहाँ ही बारना बैठे यह उच्छ्वसन का घात होता है । यही उच्छ्वसन स्पन्द है बीनी यहाँ पहुँच कर 'सम्यदशाधायी कहलाता है, इसी को मत्स्योदरदशा' कहते हैं, क्योंकि बैरव्य के उच्छ्वसन का सार (उत्तर) यही है ।^२

(२) शिव का बहिरुन्मास ही 'बोध' है। इससे उद्बोध होता है जिसे 'दीपक' भी कहते हैं । बहिरुन्मास मय विरव का श्लोकीकरण या अंतरात्म्य ही 'व्याक्रान्त' है । इन अवस्था में 'यह है' इस प्रकार का इर्दता जब वह में निमग्न हो जाता है और बिबु-बोध का बाता है । वैतन्य की यह उद्वेकवस्था 'व्यापिनी' कहलाती है । यह अवस्था समना एवं उमनावस्था में पुन परिचलित होती है । वैतन्य उच्छिन्न हो कर इंदना के निमग्नन के बाद जब स्थिर हो जाता है, तब वह स्थिर-अवस्था ही व्यापिनी है, किन्तु इसमें वैतन्य का कुछ ही उद्रेक होता है, समनापद में तत्क का साधारकार होता है । परन्तु तादात्म्य तो कबल उमनावस्था में ही होता है—

इति च उमया बहिरुन्मासितस्य विश्वस्य आंतरात्म्यमेवैवपम् इति
 का-गामिगिति । एकस्मिन् इदगानिमग्नावहृणोत्तमग्नात्मनि नावात्मेपमानुबधाना
 सविद्य एव प्रबोध इति चिन्तु बोध इति । एवं बुद्ध्यायां संविद्य-उत्कितवद्यावामुर्देक
 व्यापिण्यां कपकिन्तुकेषु तेषु अवस्थानं यावद्योगिणी समनापदे तस्मात्सात्कार ।
 उमनामूमी च तरेकात्म्यमित्येव मुक्तम् । एतावतीति उमनेकात्म्यापत्तिपर्यता ।
 (प्रबामोद विष्णु १२ भाह्निक ३) पृष्ठ १८०

'शिव को बिन्तु तथा आग्नि को नाद' भी कहा गया है । बिबु-बोध को परावस्था एवं दीपक को शक्ति' कहा है । शक्ति उच्छिन्न होकर स्थिर होती है, तब व्यापिनी और संविन् के साधारकार का समना तथा तादात्म्य को उमनावस्था कहते हैं । इन प्रकार—बोध आत्मन बिबु बोध दीपक स्थापन, सविदि और उदापति ये चित्र की मूल मूर्तियाँ हैं । तत्रसाट ३० भाह्निक यही

(३) तत्रोर्ध्वगुण्डा नि मूमी—सम्यनभर सुन्दर. ।

विमूर्तमत्र विद्य श्लोमस्योदर बजा पुवि-नभालाग पंचम भाह्निक, पृष्ठ ३३१

सूत्रसिद्धिनाम्न में जिस प्रकार 'एतन्मी' बोधि का संकोच-निवृत्त करके
 वृत्त होती है उसी प्रकार इन ब्रह्मा में बुद्धियों का सृष्टि व संहार जता करता है
 और बोधी स्वस्वप्न रहता है। जैसे समुद्र में मछी उत्पन्न और मरती होती रहती है
 और समुद्र अपने में मग्न रहता है, बोधी ही ब्रह्मा बोधी की जतना की होती है।

इस अवस्था को साधारण अनुप्य केवच श्रु गारिक भाषा में ही समझ सकता
 है। मायी ध्रुवम (हृदा-विपला) ही बोधि है, रमणा की इच्छा से उन्मुक्तता ही
 स्वात्म है। जिसकी की इच्छा या वीर्य को ही जलम-बाधु, कहा गया है। 'सौष बह
 स्वात्न है अर्थात् रति होती है। और बुद्धि ही सम्भोग-उपपन्न का मुख है।'

यह श्रुद्धार-वर्धन कर्मम रूपक नहीं है, बल्कि 'उन्मुक्तता' की प्राप्ति के
 लिए साम्यीय आत्मस्वक है क्योंकि इस समय होने वाला अनुभव ही योग की अव
 स्थाओं में प्राप्त अनुभव का सदुत्तर होगा है। यहाँ तक कहा गया है कि यदि मायना
 के लिए मायी न मिल सके तो केवल 'रति-स्मरण' द्वारा ही योग्य अनुभवों की
 ओर बढ़ना चाहिए। जो मुख ब्रह्मानन्द का ही स्वरूप है अतः प्राकृत-रति
 ब्रह्मानन्द की निमित्त बनती है।

यदि वह ब्रह्मा ज्ञाय कि नारे उपायों में यदि लोभ की ही क्या द्रव्यता
 महत्त्व दिया गया है। तो द्रव्यता उत्तर बढ़ है कि ज्ञाय (मायी) नृब (पुण्य)
 ही प्रमेय व प्रमाता है तथा इन्द्रियां नमायी है। ज्ञाय-ज्ञार के परस्पर संघर्ष से
 किर्तानन्द उत्पन्न होता है और जब ज्ञायमानु (वीर्य) का उत्पन्न होता है, तब
 पूर्ण तदात्म्य की अवस्था उदित होती है यह तदात्म्य श्रुत धैर्य्य की ध्यस्त करता
 है, वीर्य-धारण के समय मायक गुणार के नारे ज्ञान की प्रकाश के रूप में हो

(१) दास धीम बुभारो, मर्नटपणोचरे ।

व्याती मवात्ममोच ह्यप्र विवाणुधो — वही

रति-संगम सगद एकम वेगावमानिधम् ।

वाणुम इच्छत स्वस्य, नमुम स्ववाकापुण्य । वही पृष्ठ १०० १०८

(२) महत्त्व मा बोधे, ही मुग्धपरवमरानु स्मृत् ।

एकपभावेति नयति भवनात्तद मय्यव —

संज्ञानी पचद आदिप नम १०८

वर्षान् उदित (प्राप्ता में मग्धा गत) व आभास व तदा मं न गति
 ही मुग की स्मृति। मे भी साक्षात् प्राप्त होगा है।

जाता है अतः यह अनुभव ब्रह्मानन्द का निमित्त है, जैसे इस इस सामरस्य से माटी बज में हो जाती है, उसका हृदय निमित्त होता है, वैसे ही इस अनुत्तर योग से योनिनी (शक्ति) का हृदय निमित्त हो जाता है, ब्रह्माण्ड-स्वित घाटी घन्टि योनी की इच्छामुसार कार्य करने सक्षी है। यह मा' रहस्यमम है, इसका पूर्ण उद्घाटन पुर की देव-देव मे ही सम्भव है।^१ ज्ञान की प्रधानता होने पर ही गुप्त रति-त्रिया ब्रह्मानन्द में निमित्त बन सक्षी है, अन्यथा पतन का मार्ग सुम जाता है। जो योनी गुप्त-रति कान में धिया बंध का नाव नहीं सुनाता वह सृष्टि में ध्यात 'भाव' की प्राप्ति नहीं कर सक्षता। परन्तु ज्ञान हाय गुप्त रति-त्रिया हाय योनी व्यापक भाव (अनहृद ना') को सुनता है, उत्पत्त्यात् वह 'किन्तु' अवस्था को प्राप्त हो जाता है, पूर्ण ज्ञान की अवस्था यही है।

उन्मत्तावस्था के परे भी उत्पत्तर अवस्था है यहाँ संकोच-विकास नहीं होता तथापि योनी को सृष्टि का आभास होता है।^२ क्योंकि योनी को सृष्टि तत्व के घाव एकाकार होकर अंतर्मुखी रहती है और सांसारिक कार्य उसकी बाह्य इन्द्रिया करती रहनी है।^३ अतः घट-पटादि के ज्ञान के समय सृष्टि अंतरस्य भी रहती है और बाह्य-वस्तुओं का ज्ञान भी होना रहता है। इसे 'भैरव-मुद्रा' कहा जाता है। योनिनी होने से इसे 'खर्ब' या 'गगनीयम' अवस्था भी कहते हैं।

खं खं त्वमथा खमावत्ता तत्त्वं खं खोन्वरेदिति ।

खमध्यास्याधिकारेण परस्वारिचमरीचय — ४

अर्थात् मध्य नाड़ी में स्थित होकर ख ख प्रमाण प्रमेय को छोड़ कर ख अर्थात् तुर्यादिग अवस्था को प्राप्त करना ही योनी का रहस्य है। इस अवस्था की प्राप्ति इन्द्रिय-बुधिया (मरीचय) की बाह्य-उन्मुक्तता के अभाव द्वारा होती है।

- (१) अर्ध रहस्य कथया गुप्तनेत्रस्यभाषण
योनिनी हृदयं तत्र चिन्मात्र स्यात्तनी युय—बही पृष्ठ ३८१
- (२) अर्धकर्म विधातोर्ध्व तदायासन स्वभा—बही, पृष्ठ ३८२
- (३) अर्धसंख्यो बहिर्दृष्टि परम परस्वने—बही पृष्ठ ३८२
- (४) बही पृष्ठ ३८८

इस अवस्था में कम से कम १० स्तर योगियों न लक्ष्य किये हैं। १ प्रकार से इसे प्राप्त किया जाता है, अर्थात् महाभा-मार्ग शैव शास्त्र भी स्वीकार करता है।^१

इस प्रकार ध्यात-उपाय में क्रम-साधना स्वीकृत है। मंत्र जब मुद्रा प्राप्ता याम अर्चना शैवोपासना आदि सभी क्रियाओं में 'भावना' का महत्व ध्यातोराय की विशेषता है। भावना या तत्व का परामर्श साम्बिक अवस्था में अपेक्षित नहीं है, क्योंकि तीव्र ध्यात-उपाय के प्रभाव में अग्रतिलक तत्व परामर्श करते हुए ही साधना चल रही है। साम्बिक उपाय में अग्रस्मात् भी तत्व स्थिति हो जाती है, अतः उसमें स्वयं साधना की अपेक्षित नहीं है। परन्तु ध्यात-साधना में क्रम-क्रम से विस्तृत का नाश किया जाता है।

इन्द्रिय मन चित्त और बुद्धि का नाश ध्यात-साधना में नहीं किया जाता इन्हें साधना में उहायक बनाया जाता है, यद्यपि ध्यात-साधना की विशेषता है। अन्तिम मुद्रा में सिद्धा है कि मन एक बुद्धि के बिना ज्ञान का अधिगम असम्भव है। इन्द्रिय मन आदि तब अणु-पत्र के कारण बनते हैं जब विवेक से वे संयुक्त नहीं होते। इन्द्रिय-साधना एवं मन-साधना कायम है, विवेक अर्थात् स्वरूपमर्त जागृत होने पर वे स्वर के त्रिरस्कार से ज्ञान को ही जन्म देने हैं। अतः 'ध्यात-उत्क' का अर्थ है मन एवं बुद्धि की साधना का त्याग कर, मन एवं बुद्धि को परम ज्ञान का कारण बनाना।^२ यदि यह प्रश्न हो कि विवेक को परम तत्व-ज्ञान का कारण कहा गया है, तो इसका उत्तर यह है कि विवेक तो सम्पूर्ण भावों का कारण है। वह 'महायम' है अर्थात् सर्व भाव को ही कारण कहिये। शारे भावों को अपने में समेट लेने की शक्ति यद्यपि बुद्धि में भी है, तथापि बुद्धि अविना महिमादि धारियों को उत्पन्न करके भी योगज्ञान से अज्ञानी है, अतः विवेक (स्वरूपमर्त) से ही बुद्धि

(१) पत्तम्भी, मन्मथा बेउरी के तीन भाषी के रूप हैं। इनमें स्थूल मुद्रम और पर का गुणा करने से यह मार्ग 'नवपा' हो जाता है। इस नवपा धारिणों की शक्ति पराकार' मंत्रा रोच वंशम आदि पृष्ठ ४०८

(२) न कि मनो बुद्धि विना ज्ञानसाधिगमोत्तमार्थी भगवत् शिष्यु के पर मनो बुद्धी प्रोक्तम्मुना स्वल्पनिमज्जेन म्दसं दाग म्पमपिशुय लोकात्तं जनयत् इत्यनुक्तं परमावत्त तल्लुप्तं धारिणं निन्दते— मंत्रामोह आदि १३ पृष्ठ १२२

होती है।^१ यदि यह विवेक अक्षरस्वात् प्राप्त हो जाय तो ज्ञानमय अक्षरस्वात् प्राप्ति होगी और साक्षात् अनुपेक्षित होगी, परन्तु यदि पूर्ण कर्मानुसार ऐसा न हो तो 'क्रम साक्षात्' अनिर्वाच्य है। पाशों के माध्य के लिए ही साक्षात् की आवश्यकता होती है, क्योंकि रोच सभी घेदों को माध्य में प्रतिष्ठित मानते हैं।

इस रोचमय में आरम्भज्ञान के लिए ब्रह्म मायों का वर्णन है। इन्हें 'अध्या' कहते हैं। अध्या का अर्थ है 'कर्मन'। कर्मन दो प्रकार का है क्रम अक्रम। कर्मन का अर्थ यहाँ भावना या परामर्श है।

प्राणमया प्राण कर्त्तारक है, अज्ञ कर्म का ज्ञान 'कालध्या' कहलाता है। क्रम-अक्रम से कर्म का ज्ञान हो तो उसे 'क्रम कालध्या' अथवा अक्षरस्वात् ज्ञान हो तो उसे 'अक्षरसाक्षात्' कहते हैं। परमतत्त्व का काल से घेव ही धर्मिण है अर्थात् ब्रह्म जब अपने को ज्ञान में सीमित करता है, तब उसकी संज्ञा धर्मिण होती है, इसी को 'काली' कहा गया है। यही काली काल के साथ संयुक्त होकर प्राण के रूप में स्फुरित होती है। स्वाध्या का स्वेच्छा से धर्मिणुक्त होकर स्थिति होता ही प्राण है, 'प्राण' काल में सीमित चेतन्य का नाम है, अज्ञ काल का सूक्ष्मातिवृत्तम वर्णन रोच-साक्षक ने किया है। दिन रात में कुल २१६०० स्वास करते हैं। प्राण धर्मिण का इस प्रकार व्यवहार कर पुनः-पुनः तत्त्व का परामर्श ही ध्यान है। यही प्राण विद्या-अर्थन कहलाता है। अत्येक स्वास के साथ सहाय गति स होऽहं सोऽहं अर्थात् सहाय रूप से अज्ञाना अर्थात् यही 'सहाय अर्थ' है, इसी को कालध्या या प्राणध्या कहा जाना है। जब प्राण को मध्यममार्ग में प्रविष्ट किया जाता है, तब रोचता प्राप्त हो पाते हैं और धर्मिणों अपना ज्ञान विद्याने लयती है।

प्राणध्याया कालध्या विद्या के रूप में तत्त्व का आभास ही कर्मध्या है। विद्या के तीन रूप होते हैं कर्म, मंत्र, पद्य।

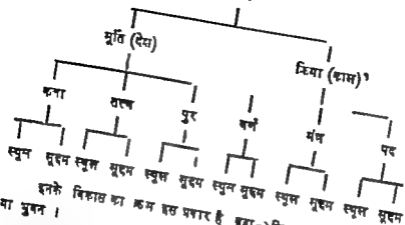
देशध्याया या मूर्ति अध्या भूमि के रूप में तत्त्व का आभास देशध्या है। यह तीन प्रकार का है—पञ्चा तत्त्वार्थ पुर। इस प्रकार मूर्ति (देश) तथा विद्या के रूप में देश एवं काल के दो प्रकार के अध्या होते हैं और प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं—

(१) विवेक सर्वभावानां गुणमाश्रयहास्य।

कुटिलत्वं तु निगुणमुत्तममाश्रयमभ्यस्य।

अग्निमात्रिणं चापि बन्धकं जड़मिन्द्रियम्—बही, १२३

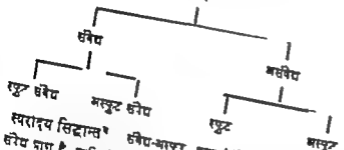
बघा



इनके विकास का क्रम इस प्रकार है बघा → विन्दु → बसा → तल्प → पुर या भुवन ।

माण्डूया या कालश्या बघावि प्राण सर्वोप्यापी है तथापि बह अस्पृष्ट रहा है। हृदय देव में बह स्पृष्ट होता है अतः हमारा वर्णन हृदय से ही प्रारम्भ किया जाता है। प्राण-मारुत को 'यत्न' कहते हैं। यह 'यत्न' दो प्रकार का है। यह त्वेष और अत्वेष दो प्रकार का है इनमें भी भेद है—

प्राण



स्वरादय सिद्धान्त^१ त्वेष-अस्पृष्ट वत् (निग एवं पुन के बीच) में त्वेष प्राण है तद्विना यही में प्रारम्भ होती है यह प्राण हृदय तक अस्पृष्ट है हृदय में प्राणाकार स्पृष्ट होता है। अतः प्राण का विभाग हृदय-देव में (१) यहाँ 'बाल' तल्प ३६ तल्पों में बलि तल्पों में भिन्न तल्प है। (२) प्राण का हृदय में बाहर जाना तथा पुन हृदय में प्रवेश यही क्रिया बार बार करना प्राणोन्मत्त कहनाती है।

ही होता है। शिव की शक्तियाँ, शामा, ज्येष्ठा एवं रौद्रिका हैं, इनसे प्राण संयुक्त हो जाता है। प्रभु शक्ति प्रमाता बीर प्राण से तीन प्राण-संसार के कारण हैं अर्थात् अर्धों में पलन का कर्म प्रभु शक्ति के द्वारा होता है, आराम-शक्ति की प्रभावता होने पर कर्म का स्थान होता है।

३१ अंगुल प्राण सब प्राणियों में रहता है, मद्यकादि बीरों में जन्मों के ३१ अंगुल प्राण रहता है। प्राण एवं अपान में ३२ तुटियाँ रहती हैं, तुटि काल की लघु मचना है। पञ्च, मास तिथि, सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण संख्या मध्याह्न जय रात्रि सब प्राण में अवस्थित हैं। प्राण में ही सब मद्यक हैं। इन्हीं मद्यकों को प्राण भी कहा जाता है—

सोम	—	शामुकि
दुःख	—	तसक
सोमज	—	कूर्कट
दुःख	—	सरोज
शुक्र	—	महात्म्य
शनि	—	संख
शनि + राहु	—	कुम्भिक

ये सब प्राण हैं। इनीलिए प्राण विश्व का विस्तार प्रकट करता है। दिन में सूर्योदय बीर रात में लौम्बकर्म होते हैं। संख्या में मुक्ति प्राप्त होती है। प्राण का अनुशासन ही बीजा है।

संविद् प्राणिक लक्ष में प्राण-शक्ति है, यह धन प्रजापति के शिव पर निर्भर है, शिवी के लिए धन कर्म है, शिवी के लिए धन है, शिवी के लिए धन मास है।

द्विपक्ष वेद्य अनुष्ठानों का ज्ञान ही शिव है, क्योंकि प्रकाश से ही पशुओं का ज्ञान होता है।

निशा प्रजापति शिव होने पर निजा होती है।

स्वप्नावस्था प्रकाश ग्रहण का सबसे प्रभावता द्वारा होता है, इसे 'वेदिता' कहा है, वेदिता का अर्थ है, 'अंतर्मुख-स्थित' अतः वेदितावस्था ही स्वप्नावस्था है।

सुपुति केन्द्रावस्था के परे सुपुति है।

अमावस्या प्रतिपदा प्राण सूर्य है, अर्धरात्रि अर्धरात्रि है, प्राण के आत्मन से परे एक एक कमा को छोड़ता जाता है, अर्धरात्रि में अमावस्या को अर्ध सूर्य में विभिन हो जाता है, पुनः अर्धरात्रि उदित होता है, अर्धरात्रि में १५ क्वार्टर हैं जिनमें केवल १२ ही विभिन होती हैं 'पोरुषी कमा' दीर्घ नहीं होती 'प्रतिपदा' में पदों की संधि होती है।

अमृत सूर्य जब अर्धरात्रि को निगलता है तो अर्धरात्रि छोड़ता है, यह वही अमृत को पीता है। रवि के बिम्ब में त्रिज्या अर्धरात्रि के पास ही 'उर्ध्व' रहता है। यह अमृत को पीकर अर्धरात्रि बिम्ब को छोड़ देता है, वही 'अमृत-मुक्ति' कहलाती है। इन तीनों के संघट्ट से अर्धरात्रि-त्रिज्या प्राप्त होती है। सूर्य प्रमाणा है और अर्धरात्रि प्रमेय है, इन दोनों को यह आश्चर्य करना है क्योंकि यह माया है इन तीनों का संघट्ट ज्ञान-व्यक्ति द्वारा प्राण शासन के उपरान्त हो सकता है, वही महापद्म है वही पुष्पकाम है।

सूर्य-वह्न अमावस्या को होता है, सुख प्रतिपदा को भी कभी-कभी होता है, सूर्य से अर्धरात्रि अर्धरात्रि हो जाता ही मोघ है। अर्धरात्रि अर्धरात्रि के प्राण से अर्धरात्रि जाने पर ही मोघ होती है। अर्धरात्रि (अर्धरात्रि-अर्धरात्रि) ही प्रमेय है और अर्धरात्रि (सूर्य प्राण) ही प्रमेय है, दोनों क क्षय से मुक्ति सम्भव है। इन समय में अर्धरात्रि का अर्धरात्रि होना है।

ज्योतिष स्वोद्योग्य वा सम्बन्ध ज्योतिष से भी है, अर्धरात्रि अर्धरात्रि में प्राण अर्धरात्रि होती है, ३० अर्धरात्रि का एक मास होता है। तामु ही प्राण का प्रमेय ही वेद मास है, अर्धरात्रि का अर्धरात्रि समय वही है।

मुक्ति से लेकर अर्धरात्रि तक का ज्ञान होने पर योगी ज्ञान का ध्यान करता है। प्राणानुसंगण में अर्धरात्रि मुक्ति से अर्धरात्रि का ध्यान होता है। योगी अर्धरात्रि ही मुक्ति से लेकर १२ वर्ष तक की अर्धरात्रि अर्धरात्रि को ध्यान में ला सकता है अर्धरात्रि अर्धरात्रि की ध्यान का ध्यान करना नहीं होता। अर्धरात्रि को प्राण योगी अर्धरात्रि का भी ध्यान कर सकता है। ऐसा योगी अर्धरात्रि का ध्यान ही करता है, अर्धरात्रि-अर्धरात्रि करके 'महापद्म' हो जाता है। अर्धरात्रि का ध्यान, अर्धरात्रि, अर्धरात्रि का ध्यान हो जाता है।

महाप्रलय प्राण को सुषुम्ना में स्थिर करने पर जग्य तब जब लय हो जाते हैं, तब संकित्^१ शेष रहती है, परन्तु आगे वह भी शैत्य में सीम हो जाती है, फिर शक्ति एक हो जाते हैं, 'सामगत्' यह यही है, इसी को महाप्रलय कहते हैं। सीमा बार-बार टुटि से लेकर कल्प तक ध्यान करता हुआ सृष्टि को जन्म देता है और महा-प्रलय की अवस्था को प्राप्त सृष्टि का लय कर देता है। इस प्रकार को बार-बार सृष्टि एवं प्रलय में समर्थ है, यही महाकाल है, सञ्जा मोमी है। नाना बर्णों का अतिरम्य करने से प्राण का विरोध होता है और प्राण का पात हो जाने पर काल का भी पात हो जाता है, कल्प के नष्ट हो जाने पर केवल ज्ञान रूप चैतन्य की उप्ता रह जाती है।

वर्षोदय तथा अक्षयाजय सम्पूर्ण बर्णों के बीच एक अनाहत^२ बर्ण है जो अनवरत रूप से आचार्यक है। मंत्र पर ध्रुव तथा स्वर्ण तीन प्रकार के हैं। वर्णमय मंत्रों में सर्वथा सतत अक्षर रूप अनाहत वाक संकित्त होता रहता है। मंत्र बीज एवं विचारमय दो प्रकार के हैं। मंत्रों में संकित् ही स्थित होती है। जैसे अक्षरों के मंत्र में यदि एक वाक्य को ठीक कर लिया जाय तो सब ठीक क्रम करने लगती हैं तबैव अनुसंधान जल से, यल पूर्वक देखता रूप होने से मंत्र हाथ साधारण्य की प्राप्ति होती है। मंत्र-रूप के समय उपर्युक्त प्राण-साम्य आवश्यक है। बुद्धि मंत्र स्थान के अधीन है और प्राण स्थान के अतः प्राचानुपासन स्थान के ध्रुवरे रूप मंत्र के लिए आवश्यक है क्योंकि मंत्रों में भी स्थान ही स्फुरित होता है। प्राणा-साम्य से मंत्र स्थित होता है अर्थात् शक्तियाँ बाधित हो जाती हैं और मंत्र बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे उच्च स्थान से देखने पर नीचे के प्रदेय एकाकार दिखायी पड़ते हैं जैसे ही संकित् की प्राप्ति होने पर अन्त उपगत हो जाते हैं। मानस रूप ही अक्षर-स्थिति का साधन है, इसमें मौन-रूप बलता है, अक्षया-रूप यही है। जब मोमी स्वयं अपने मंत्र को मुनता है तो वह उपायु रूप और जब अन्य लोग भी मुनते हैं तो वह शब्द-रूप कहलाता है।^३

(१) यहाँ संकित्त का अर्थ परिचित आरमभवा शक्ति है। सामान्यत इन्द्रज अपे शिब की किन् शक्ति या योग्य होता है।

(२) एकोपाचार्यकीवर्ण सर्ववर्णविभाषणानु
सोपनस्मिन्निरपत्वारणाएव इहोक्ति — उभासौर-व्यथ भा०, पृष्ठ १७८

(३) आरणा न श्रुतते न त मानसो अप उच्यते।

आरणा श्रुतते यत्, तमुपायु विजागते।

परे श्रुतसिधं रेवि स पय्य स उपाह्वय— उभा० त्रिल ४ भा० ७, पृष्ठ १६

ब्रह्मकार-सृष्टि सुषुम्ना में प्राण के संभार एक निर्वाण के साथ मानस रूप ही सृष्टि के मय एवं प्रलय का कारण है, सारे बेचिप्य का कारण यही क्रिया है। अतः शरीर का बेचिप्य यही कुछ भी उपयोगी नहीं है, सारे ब्रह्मकारों का खोप यही आंतरिक-दिशा है।

मानस रूप में प्राण-शक्ति के उदय संयम और क्षान्ति में अप विद्या जाता है अर्थात् प्राण शक्ति के उदय-स्वान कुम्भनिमी स्वान में हृदय क्षेत्र में तथा प्राण शक्ति यहाँ शक्ति होती है उस ऊर्ध्व क्षेत्र में अप होता है। अप में प्राण दो बार बन्दर बाटता है। प्राण का विकास एवं बाहुल्य दोनों होगा है। प्राणों की साम्या बना सुषुम्न में होती है। अप के साथ स्वान भी कई मय हैं उदय संगम, घाट के अतिरिक्त सामान्य प्रवाह रूप में अतः शरीर-बन्ध के सुषुम्न में हृदय क्षेत्र के 'हंस' नामक स्वान में सहस्रार में अतः अतः प्रकार अप भी कहा गया है। यही मानस अप है। अतः अप है। इसमें प्रत्येक क्रिया करते रहने पर भी अतः में अप बनता रहता है।

इराण्या शैव-शास्त्र में साध ध्यान क्षेत्र पर केन्द्रित है, सारे सार सारे क्षेत्र में रहने के अर्थ मानी जाती है। क्षेत्र के अनिर्दिष्ट अर्थ किसी की सत्ता यहाँ स्वीकृत नहीं है। अतः शैवों का दृष्ट मय है कि सुषुम्न का वर्णन कल्पित है, शिष्यों को समझाने के लिए ही केवल शोभादि की बरूपना है। उंच शरीर का अर्थ ही विस्तार है, सुषुम्न के वर्णन का विस्तार कर शिष्य को बस्तुतः क्षेत्र का ज्ञान ही कराया जाता है अतः इस प्रकार के वर्णन मीथ हैं। इनके अनिर्दिष्ट 'ध्यान' के लिए भी शोभादि की बरूपना की जाती है।

अतः सुषुम्न का ज्ञान प्राप्त कर उनका ध्यान करना चाहिए। इन प्रकार का ध्यान करने से सामान्य मुक्ति प्राप्त होती है, जिस दबता का ध्यान त्रिषु सुषुम्न में होता है, पाठ शिष्य उषी शरीर में उषी दबता के रूप में व्यक्त होते हैं। अतः विभिन्न शरीरों में स्थित शरीरों की उपासना शक्ति-भाव से विषय है, इनमें साधक शरीर बिलोप में स्थित होगा और अतः-अतः में ध्यान शरीरों में ही होता हुआ अतः में महेश के अंतर्गत ही जायगा।

तत्त्व-वर्धन काल (प्राय) तथा पुरों (सुबनों) के वर्धन के परमात् साधना के लिए 'तत्त्वों' का ज्ञान आवश्यक है। प्रलय-प्रसन्न रहने वाले भोग-पदायों को तत्व कहते हैं। इन तत्त्वों से निर्मित शरीर घट भावि भट्ट होते रहते हैं। परन्तु सूक्ष्म तत्व प्रलय तक स्थित रहते हैं। तत्व स्वयमेव उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि वे बड़ हैं, स्वयं वेतस्य अंश रूप में तत्त्वों का रूप धारण करता है। कर्ता करण स्वयं वेतस्य ही।

वेतस्य (परम शिव) पूर्णत्व युक्त होने पर भी स्वात्म्य माहृत्य से बहिर्-अभिप्राय की इच्छा करता है मत् 'ब्रह्म' में ही इस परममर्ष को प्राप्त होता है, यही शक्तिवादी है। उक्त के अनुभव के बाद ब्रह्म का परममर्ष प्राप्त होता है, परन्तु इस अवस्था में ब्रह्म तथा इवत् का अनुभव अफुट रहता है, यही 'स्वा-विभास्या' है।

दुर्ग्यावस्था में ब्रह्म तथा इवत् स्फुट हो जाते हैं, परन्तु ज्ञानव्याप्य प्रमाणता रहती है। इस ही ईश्वर कहते हैं। स्वाशिव एक ईश्वर दोनों असाधों से असाधित तत्व प्रमाण है। स्वाशिव में ध्यान का मत् नहीं है। ईश्वर में ध्यान का मत् रहता है।

ब्रह्म परम शिव साम्यव शक्तिवा, मंत्र मूर्धन तथा मंत्र नामक वे पांच रूप धारण करता है। ये ही पंचमय है जो जो रूप अपने-अपने पक्ष में स्थित होता है, बड़ी बड़ी तत्व (पंचभूतों में से एक) बनता है। यह पुत्र सृष्टि है। 'पुत्र-दम्बा' इती का नाम है।

मत् और माया अशुद्ध सृष्टि 'भौतिक' नामक सन्धि द्वारा उत्पन्न होती है। नियम नियत न होने पर भी जो इच्छा उत्पन्न होगी है, उसे 'भौतिक' कहते हैं। इससे पांच में अपूर्णता उत्पन्न हो जाता है। अभिजाया से 'जाणवमत्' तथा भौतिका से 'शर्ममत्' उत्पन्न होता है। यह अशुद्ध सृष्टि है, इसके कर्ता 'जनन' माने जाते हैं। सृष्टि-प्रकार के लिए 'भौतिक' रची गई है। जब शिव अपने अक्षर ३ पदा आचरण करते हैं तब मत् उत्पन्न हो जाता है। वेतस्य संपूर्ण हो जाता है, और संपूर्ण-ज्ञान ही मत् है। अभिजाया अज्ञान अविद्या समान ही मत् कहलाते हैं। यत्र से भित-आवृत्तपत्र हो जाता है। ये-मात्र के कारण संपूर्ण आत्मा अपना स्वर्ण पुत्र वेतस्य रूप भूल जाता है। कार्य मत् पत्ति हो

जाता है, फिर बीज के नष्ट हो जाने से कर्म-संज्ञि नहीं बनती। क्योंकि संस्कार से ही कर्म फल मिलता है यह कर्म फल अवश्य मिलेगा यह धृति ही संस्कार है। इसी से कर्म-प्रवाह बसता है 'मे कर्ता नहीं हूँ इस भावना से संस्कार का नारा हो जाता है। संस्कार के अभाव में प्रयत्न एवं मूक को जैसे कोई फल नहीं मिलता तबैव ज्ञानी भी फल अफल से परे होता है। अतः अनुसंधान ही पाप पुण्य का फल देता है, कर्म नहीं। अनुसंधान रहित साधक 'विज्ञान केवली' कहलाता है। साध्य में दुर्घा की अंतिम माता गया है। परन्तु शिव-साधन में 'विज्ञानकर्म' अवस्था मातो जाती है, इसमें 'संकोच वा नाश हो जाता है किन्तु प्रारब्ध का भोग सभी को करना पड़ता है।

माया शिव की माया ध्वनि शीव को वापों में बाँधती है यह माया जड़ है अवेद्य है। जड़ता का अर्थ है, परस्मिन् प्रकाशत्व^१ प्रकाश में अपूर्णता वा आश्रय पड़ने से जड़ता आती है।

माया के दो रूप हैं (१) कारण का अछुन रूप (२) अनुच्छुन रूप। यह माया स्वरूप-भोग्य के कारण निकटा और प्राय आदि की सृष्टि करने से कसा कहलानी है। शून्य ईश्वर से माया असंग दिखाई पड़ती है, अतः वह उपादान कारण नहीं जानी है। परन्तु बिना उपादान के भी बस्तु बनती है यथा मग्न [य क्योंकि जिन बस्तु का संकल्प होता है तब बस्तु का अत्यन्तभाव नहीं है, यह सिद्ध है अतः कान दिन आदि के ज्ञाप ही 'मग्न पुण्य' का निषेध हो सकता है। अन्यथा बस्तु-पुण्य की सत्ता भी सम्भव है, अतः संकल्प से ही सृष्टि कही गई है।

यह माया प्रायः शीव में अर्थ २ है अतः शरीर के सुख-दुःख सिद्ध २ है। धृतिपान होने पर यही माया शुद्ध हो जाती है। यथा पृथ्वी आदि तत्त्व भी शुद्ध हो जाते हैं। ईश्वर के ध्यान में कालि तत्त्व शुद्ध हो जाते हैं। यथा भगवान के प्रति राम शुद्ध होता है। आराधना के समय नाच शुद्ध है। आराधना के नियमन में निपात शुद्ध है^२

(१) परस्मिन् प्रकाशत्व, परम्य विज्ञानायु—आत्मोद्य विष्णु ६ मन्त्र आदिक, पृष्ठ ११७-१८

(२) कालि त्रि गुण तत्त्व, कर्मत्व संकल्पन। संज्ञा० भा० ६, पृष्ठ ११४
निपातनायु देवतायु, सगारादेव मुष्यने—

कला माया से कला का जन्म होता है, स्वल्प-योग के बिना कला का जन्म नहीं हो सकता कला का अर्थ है कर्तृता 'कृत्य करना ही कला है। कौशिक का धारिण्य कर यही कला अनेक कार्यों के लिए प्रेरित करती है। प्रथम कला का रूप 'फुले हुए बीज' से अनुमान में आ सकता है। जन्म के प्रसंग से इसमें अक्षुर उत्पन्न होता है। यह कला करण नहीं है, प्रयोजक है, कर्ता इसकी प्रेरणा से अपने को कर्ता मानता है।'

कला के द्वारा कर्ता की कर्तृत्व की अभिव्यंजना होती है अतः कला द्वारा ही कर्ता प्रेम करता है। चूँकि विवेक के तिरोधान से ही कला उत्पन्न होती है, अतः क्रम-क्रम से विज्ञानकल्पना उत्पन्न होती है। तब कला से जन्म पत्रम नहीं होता और पुरुष एवं कला का अंतर प्रतीत होने लगता है। अतः ज्ञान का पूर्ण कला बोधा गया है और ज्ञान के बाद गुण्य है। कला का यही अर्थ है। बिना इस अर्थ के निमित्तता नहीं आती। कृतियों के रहने तक 'कला' का धारण हम पर रहता है, परन्तु कृतियों के नाश के बाद उत्पन्न विवेक से कला पर पुरुष धारण करने लगता है। कृति मट होने पर उत्पन्न अक्षुरत्व का अभिमान ही विवेक है। यह विवेक साक्षिण्य से ही सम्भव है। साक्ष्य में धारिण्य नहीं है। विवेक से कला एवं पुरुष का ज्ञान होता है और उनसे माया पर विजय प्राप्त होती है। धारिण्य से सहना ही यह स्थिति प्राप्त हो सकती है और क्रम-क्रम से भी प्राप्त होती है। अल्प धारिण्य से धारिण्य न धारणने से अक्षुर-कृति नहीं है। धारिण्य विवेक का सहकारी कारण है। बिना इनके कुछ भी सम्भव नहीं है।

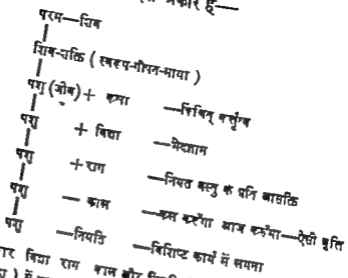
राग कृति के लिए राग की भी आवश्यकता है। अवेराग्य से कृति नहीं हो सकती। अतः कृति में माया-जसा राग की आवश्यकता है।

(१) कर्तृ धारिण्य व्यक्तकल्पय कला सात प्रयोजिका।

अतः कला समाप्तो भागेऽप्यु कर्तृ धारणम् — यही पृष्ठ १४१

माया का अर्थ कृच्छ्रण करना, ज्ञान का तिरोधान करना है उसी से कर्ता में कर्तृता भी प्रेरणा लगती है, इससे कर्म होता है, कर्म की प्रेरणा ही कला है। परन्तु कर्तृता के लिए ज्ञान का पूर्ण तिरोधान नहीं होता। कुछ सांघिक ज्ञान रहने पर 'राग' के कारण कर्म की कृति होती है।

सृष्टि का पूर्ण क्रम इस प्रकार है—



इस प्रकार विद्या राज काम और नियति ये कला के चार कार्य हैं। परम (जीव) में माया कला राज विद्या काम और नियति की लगना है।

कर्मों के जन्म से ये ही वस्तु (पाप) के कारण हैं। वे बाह्ये आचरण हैं जो आचरण 'मन' हैं। राज में जेने मन रहना ही बेम ही मायीय आचरण एवं मन जीव में रहने हैं। मन से मुक्त जीव सुखम बढ़ता है। इनमें भोग्य एवं भोता अन्व-अलग हो जाते हैं और सुख तथा दुःख उत्पन्न होते हैं। सुख दुःख का कारण गुण है, सब एक सम। दुःख होकर वे गुण अपना कार्य करते हैं। गुणों के भेद से सौभाग्य का भेद होगा है।

इन गुणों से बुद्धि उत्पन्न होगा है। बुद्धि में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ना है। बुद्धि इन्द्रिया का द्वारा वस्तु को प्रतिबिम्बित करती है। बुद्धि बिना इन्द्रियों के भी स्वप्न में रूपों का सृजन करती है। बुद्धि जड़ है, अर्थात् इसमें परिमित चेतन्य का ही प्रभाव है। यही अज्ञान-करण है।

बुद्धि अज्ञान का दमन बुद्धि करती है अज्ञान बुद्धि को कारण बना गया है। बुद्धि में प्रतिबिम्बित होकर ही चेतन्य अज्ञान का दमन करता है। ऐसा जानना है परमात्म ज्ञान उत्पन्न होता है। जड़ बना बुद्धि यही अज्ञान रहता है। अज्ञान से पञ्चमिय प्राणों का संसार होगा है। अज्ञान सब एक सम सब तीन प्रकार का

गता है। सात्विक बर्हकार से मन चकित पीन ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। बर्हकार विशेष विषयों को लेकर बढ़ता रहता है। 'मैं सुनता हूँ' 'मैं देखता हूँ' ऐसी चितियाँ बर्हकार के कारण उत्पन्न होती हैं। अतः बर्हकार ही इन्द्रियों का कारण है। कुठार खेल का करण नहीं है। कुठार बालक का बर्ह ही खेल में मुख्य प्रयत्नक है, कुठार पीण है।

रसो-गुण से कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तन्मात्रादि भी बर्हकार से ही उत्पन्न होती हैं। तन्मात्रा का अर्थ है सामान्य गुण पृथ्वी पंच के समूह का नाम है। इसी प्रकार अन्यतत्त्वों में तन्मात्रार्थ सामान्य गुण रूप में विद्यमान हैं—आकाश में शब्द वायु में स्पर्श अग्नि में रूप जल में रस एवं पृथ्वी में पंच।

विषय प्रकार रवीन्द्र बाल के रंग एक साथ जात होते हैं तब ही मोती को एक साथ तत्वों में स्थित गुणों का ज्ञान होता है। सामान्य जल को वे गुण अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं, किन्तु मोती अठम से गुण-ज्ञान करते हैं।

इस प्रकार गन्ध से शब्द तक एक ही सत्ता विद्यमान है, उपाधि भेद से नामा भेद है। बर्मे तथा बर्मी एक है।

शेष-शासन में शब्द, स्पर्श रूप, रस एवं गंध एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। बर्हकार शब्द अन्य तत्वों में विद्यमान रहता है। अन्य-शासन इन तत्त्व को नहीं मानते।

इस प्रकार कुल तत्व ३६ हैं, पर, शिव एवं शक्ति के कारण वे त्रिगुणित होकर १०८ बढ़ाते हैं—

३६ तत्व—शिव शक्ति महाशिव ईश्वर, विद्या से शुद्ध तत्व हैं। माया, काल नियति, कला अविद्या राम पुरुष से शुद्धाशुद्ध तत्व हैं।

महर्षि बुद्धि, महकुठार मन ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ तन्मात्रार्थ तथा पञ्च भूत—ये अशुद्ध तत्व कहते हैं।

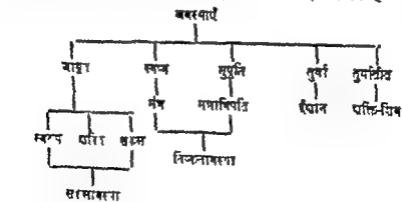
शुद्ध तत्वों में भैरव्य की प्रधानता रहती है और अशुद्ध तत्वों में अद्वैतता और अशुद्ध तत्वों में भी भैरव्य प्रधान रूप में अवस्थित है, यह स्मरणीय है।

विद् घात में तत्त्वों का भेद ही उसकी विद्यमानता है। परन्तु तत्त्वों, और बलों का यह विस्तार अथवा क्षेत्र के लिए ही है बल्कि 'चेतन्य' से भिन्न किसी भी सत्ता नहीं है।

परन्तु साधना में बस्तुओं की पूजा होती है, क्योंकि यद्यपि बस्तु-स्वरूप-प्रतिभा आदि विषय का मूल रूप नहीं है, परन्तु बस्तु विषय का ही एक रूप है, अतः बस्तु को पूजा बस्तु विषय को पूजा है, विषय के प्रति यह भावना ही फल देती है, प्रतिभा फल नहीं दे सकती। क्योंकि फल विधानुसंधान से ही होता है।^१ किन्तु यह पारमार्थिक साधना है। अग्नि साधना में दो रूप हैं I विमानाकर II फलया फल। प्रथम में शुद्धबोध होने पर भी कुछ भेद रहता है। परन्तु 'पलयाकमावस्था' में पूर्ण विबन्ध रहता है।

तत्त्व विज्ञान तत्त्वों के साथ तादात्म्य कर तत्त्वों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। तत्त्व में तूनों का नाश है, अतः पृथ्वी, जल अग्नि आदि के गुण (रूप) का ध्यान किया जाता है। इनके ध्यान से समाधि-विशेष भी प्राप्ति होती है। ऐसे बोधी को 'विश्वरूप' कहते हैं। इस बोधी को केवल एक ही तत्त्व ध्यान में दिवायी पड़ता है। इसके बोधी में अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। तत्त्व-विजयी बोधी पंचभूतों से अपने संकेत पर मूल्य कटा सत्या है।

अथर्वशास्त्रे भासिनी-विजय-शंख में इसका विभाजन इस प्रकार है—



(१) तथा बहस्यभावेऽग्नि, बस्तुतो न विद्यात्मनाम्
 बोधी भाव-दोषदर्शनि, सत्यं तद्भाषना फलम्।

आवृत्त अवस्था में प्रमेय की प्रवाणता रहती है और स्वप्न में 'प्रमाथ' का प्रवाणता है। सुप्ति में विश्व घात हो जाता है। उपासीमता से रहित पूर्ण के प्रति उन्मुखता तुर्यावस्था है। इस अवस्था में आवृत्त स्वप्न की सुप्ति के प्रति उन्मुख हो जाता है। सुप्ति तुर्या को जोर उन्मुख रहती है। प्रमेय प्रमाथ में प्रमाथ प्रमाथ में घात हो जाता है।

प्रमाथ ज्ञान में विधान पाठा है। यह स्थिति तीन छेमाओं में विद्यापी पढ़ती है—आवृत्त एवं स्वप्न में अपरा सुप्ति में पटापर एवं तुर्या में पटा विद्यापी पढ़ती है। यह 'वपासीत' अवस्था कहलाती है। इसे 'प्रमाथवस्था' भी कहते हैं। विश्व में वाय उन्मुखता यहीं घात होती है। तुर्यावस्था में भेद-माप है, इसे समझना नहीं आ सकता। मामिनी विषय में आवृत्त अवस्था की स्वरूप धारि एवं उन्नत से विभाजित किया गया है। इसके भी १२ भेद हैं। स्वप्न तथा सुप्ति में चित्र के दो रूप 'प्रमाथ' भेद एवं 'मंत्राविति' रहते हैं, तुर्या में ईशान और तुर्यानीन में चित्र धरि का निवास है।

कलाव्या सुक्तों में व्यात होकर भी भी तरह चित्र रहे वह कमान्त कहलाता है। यथा मोक्ष 'माथी' में व्यात है परन्तु मोक्ष कविता तत्त्व है, जबकि 'कला' वास्तविक तत्त्व है। कुछ छात्रक तत्त्वों में अनुसूत सुक्ष्म-धरि को कला मानते हैं यथा चरणी में बारिदा धरि। कुछ चित्र द्वारा सुउत्सवहार्य कल्पित वर्ण को कला कहते हैं। कला हाथ ही तत्त्व और सुवधारि स्थिर है।

साधना धरि का भेदन करके देवी जाती है और स्वर्ण मन्त्र होने पर व्यात हो जाती है। इस समय 'पिपीलिका-बंधन' जेसा अनुभव होता है। यही योग में प्रसिद्ध पिपीलिका अनुभव है। 'प्रति' के पूर्ण में वाय उपायात्त्व करवा धरि परन्तु मोक्ष स्वर्ण को विरोध महत्त्व देते हैं। स्वर्ण के मन्त्र में संक्षिप्त गुण कोभव हो जाती है। रूप एवं रस इमीलिए साधना में बाधक मान जिये

(१) धरिप्रभावा लो देवि, त्वा देवे व्यापिनी भवेत् ।

भोदनुभवमन्त्र स्वर्णं यद्विपीलिका—संज्ञासौर, त्रिख

बाटे हैं क्योंकि इनसे व्यर्थकार अधिक उत्पन्न होता है।^१ स्पर्श का ध्यान अधिक योग्य है। स्वर्ण प्रथम तो मूढम होता है तथा बूझते बड़ शोभन नहीं है। ताम्रों के गुणों को क्रमशः भी सिखा जा सकता है। गंध पुष्पी में रस प्रकृति में और रूप की भाषा में सीम कर तब स्पर्श का ध्यान करना चाहिए। पृष्ठी कम यदि में क्रमशः गंध रस एवं रूप के शक्ति हो जागे पर 'स्पर्श' का ध्यान करना चाहिए 'स्पर्श' के शक्ति होने पर योगी का चित्त आकाशगत संकित् म नील हो जाता है। यही 'सम्मोषम' अवस्था है जो क्रमशः तत्त्वों पर विजय पाने से उत्पन्न होती है।^२

इस 'पंच तत्त्व-साधना' के अनिश्चित अनेक साधनार्थ हैं क्योंकि साधनार्थ अनन्त हैं। एक तत्त्व में एकही भावना नहीं होती। परन्तु उहद पर्यंत पर ही विनता है, उद पर नहीं। फिर भी कुछ शिष्य की भावनानुसार उपदेश करता है। अंतिम तत्त्व प्राप्ति के लिए सुप्रसुद्ध युव तथा योग की भाषा से उचित शिष्य की आवश्यकता है।

इस कलाध्या' के तीन रूप हैं—

पद मंत्र वर्ण या स्मृत मूढम पर।

पद-मंत्र विराम मात्र हाता है, उसे पद कहते हैं। मात्र पाकर साधक अनुभव होता है यही मंत्रमय स्थिति है। मंत्रमय का वर्ण युग भाषी होता है। पद एवं मंत्र के अमिश्र होने से मंत्रमय और भी मूढम हो जाता है इने 'पद-मंत्र' कहते हैं। अतः मंत्र मूढम है और पद स्मृत है।

(१) बिन्दु, मात्र रूप और रस में शोभ उत्पन्न करने की शक्ति अधिक है अतः स्वर्ण श्रेष्ठ है—

अतो बिन्दुरतो मादो, रूपमस्मादतो रम।

दसुक्तं सोमप्रत्वेन स्वन्दे स्वर्णसु गो तथा—बही पृष्ठ २६

अपचार में भी रूप बस्यता से आ जाते हैं रस की बसु के बिना भी योगी सोतुप हो उठती है, अतः स्वर्ण श्रेष्ठ है।

(२) तत्त्वार्थान्ते तु शक्तिं शूत्र विद्ययोगे रपिगो।

यथा रूढ मयम्येति स्वयशायातिवशा पद्यम्—द्विना० एवात्प

आ० पृष्ठ २७

इस मग्न के नाश के लिए शक्तिपात ही समर्थ है। अगवान स्वयं सीमार्ष अपना योगन करता है और स्वतः बीच बिसे बाह्यता है, अपनी ओर उन्मुख करने के लिए अनुग्रह करता है, यही अनुग्रह 'शक्तिपात' कहलाता है। इससे चेतन्य की ओर मग्न प्रसन्न बीच उन्मुख ही जाता है और बहुमुखता समाप्त होने लगती है।

शक्तिपात नियत और अनियत दो प्रकार से हो सकता है। क्रम से भी शक्तिपात होता है और अकस्मात् भी। सब हरि दृष्टा है।

तिरोधान का सिद्धान्त पूर्णता का अभाव तिरोधान है। बीच यह समझता है कि उसमें कुछ कमी है—बहु बीज है, हीन है, अज्ञानी है, जाति इस कमी को पूर्ण करने की जो दृष्टा बीच में बाधित होती है, वह दृष्टा स्वयं इस तथ्य को प्रकट करती है कि मुग्न तो वह बीच बिसे है, किन्तु शक्तियों के तिरोभाव से वह अपने को अपूर्ण अनुभव करता है। अतः पूर्णता की अन्विष्टा मग्न है, (लोपिका) है^१ विरुद्ध स्वप्रकाशत्व शिवरूपता पर अनुभव करना ही पूर्णता है। इस पूर्णता में कोई हेतु नहीं है। शिव का स्वभाव ही पूर्णता है। अतः शक्तिपात की प्राप्ति में स्व-प्रकाशत्व का विमोघ ही मूल कारण है। जब बीच यह समझ बैठा है कि मैं पूरा हूँ, बिसे हूँ तो मुक्त हो जाता है, किन्तु अपने को अपूर्ण मानकर जब तक पूर्णता न प्रयत्न किया जायगा तब तक बीच न स्वतंत्र होगा न सुखी, मग्न का नाश नहीं होगा, क्योंकि अपने को अपूर्ण मानना ही अज्ञान है।

इस शक्तिपात की प्राप्ति में आत्म-परामर्श के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कारण नहीं है। कुल प्राप्ति कर्म जाति किती से भी अदवान का अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता।^२ शक्तिपात का प्रथम चिह्न है 'शिव में शक्ति'।^३

शक्ति दो प्रकार की है (i) सफला (ii) निष्काम। प्रथम शक्ति में कर्म की अपेक्षा है। दूसरी में नहीं।^४

(१) तिरोधिः पूर्णकपस्यापूर्णात् तच्छुभ्रणम् ।

प्रतिश्रितेन भावेन त्पुहातो लोपिका मग्न—बही, पृष्ठ ७४

(२) बही श्लोक संख्या ७६

(३) उद्वृत्त—संज्ञा० बही पृष्ठ बही

(४) संज्ञातीत—अपौरुष भा० पृष्ठ ६०

इस प्रकार सकलार्थक के रूप में प्राप्त शक्तिपात 'पर' नाम से प्रसिद्ध है। और दूसरा शक्तिपात जो मुक्तिदायी है वह 'अपर' कहलाता है।

प्रश्न होना कि क्या मल शक्तिपात ही अगस्त्य इच्छा से प्राप्त होता है, 'मल' क्या उसकी इच्छा से नहीं प्राप्त होता? उत्तर यह है कि अज्ञ की इच्छा के बिना स्वयं अज्ञ की ही सृष्टि सम्भव नहीं है अतः 'मल' भी जीव को अज्ञान की इच्छा से प्राप्त होता है। अस्तुतः 'चेतन्य निर्मल है।' आकाश की नीमिता के समान स्वतः मल 'चेतन्यमय' ही है मल की निम्न सत्ता नहीं है।

शक्तिपात के तीन मध्य एक मंद तीन रूप होते हैं। तीव्र शक्तिपात देहपात हो जाता है यथा कुछ व्यक्ति पर शैवगुरु अपने प्रान्त से तीव्र शक्तिपात करते हैं और मुक्त कर देते हैं। अन्य दो शक्तिपातों में अज्ञान का नाश होता है।

बेटपास भावि आचार्यों का मत है कि शिव की रोड़ी शक्ति से प्रथम मल का नाश होता है तब संकित रूप उदय होता है। यथा सूर्यकान्त मणि सूर्य चरित से उदित हो जाती है तथैव मल परिपाक के बाद ही चैतन्य का उदय होता है।

परन्तु अभिनव गुप्त इस प्रकार का क्रम अनिर्वाय रूप में स्वीकार नहीं करते। क्योंकि जीव शक्तिपात में इदबरेच्छा ही कारण है और वह स्वतंत्र है, क्रम, अक्रम से परे है, अतः शक्तिपात क्रम-अक्रम निरपेक्ष रूप में होता है। मल पाक की जीव तथा ईश्वर का मध्यस्थ नहीं मान सकते।

प्रतिभा शक्तिपात से अन्य प्राणिम-आन-से मल का नाश होता है। प्रतिभा ज्ञान का अर्थ है, स्वयमेव ज्ञान उदित होना, शास्त्र एवं गुरु की दमन करनेवाला है।^१ प्रतिभा प्रादुर्भूत हो जाने पर भी 'दुःखता' की आवश्यकता है। कल्पमाना प्रतिभा हीन है। अतः शास्त्र दुःखता के लिए है। प्रतिभाज्ञान के लिए अभिनेक, समय, हीनारि नहीं है। प्राणिम ज्ञान भी दो प्रकार का है। साम्प्रतिक (ii) हीनता। प्रथम में हीना की आवश्यकता नहीं है, किन्तु दूसरे में आवश्यक है। प्रतिभाज्ञान ही विद्वान् को मुक्त करता है।^२ यों विद्वान् में अनेक जीव में प्रतिभा होती है, परन्तु उनमें मंद शक्तिपात के कारण परीक्षा बिना रहती है।

(१) तन्त्राचार्य जयोरण, भा० पृष्ठ ८४-८३

(२) वही, पृष्ठ ८१-८०

(३) वही, पृष्ठ १०१

इस मन्त्र के माध्यम के लिए शक्तिमात ही समर्पण है। अज्ञान स्वयं सीमार्थ अपना पोषण करता है और स्वतः जीव जिसे चाहता है, अपनी ओर उन्मुख करने के लिए अनुग्रह करता है, यही अनुग्रह शक्तिमात कहलाता है। इससे चैतन्य की ओर मन प्रसन्न जीव उन्मुख ही जाता है और बहुमुखता समाप्त होने लगती है।

शक्तिमात नियत और अनियत दो प्रकार से हो सकता है। क्रम से भी शक्तिमात होता है और अक्रममात् भी। सब हरि इच्छा है।

तिरोधान का सिद्धान्त पूर्णता का अभाव तिरोधान है। जीव यह समझता है कि उसमें कुछ कमी है—बहु बीज है हीन है, अज्ञानी है, यदि इस कमी का पूर्ण करने की भी इच्छा जीव में आकृत होती है, वह इच्छा स्वयं इस तथ्य को प्रकट करती है कि भूतल तो वह जीव जिन है, किन्तु शक्तिमत् के तिरोधान से वह अपने को अपूर्ण अनुभव करता है। अतः पूर्णता की अभिलाषा मन्त्र है, (मोनिक्) है। विशुद्ध स्वप्नप्रयोग विवरणता का अनुभव करना ही पूर्णता है। इस पूर्णता में कोई हेतु नहीं है। शिव का स्वभाव ही पूर्णता है। अतः शक्तिमात की प्राप्ति में स्व-अपघात का विमर्ष ही मूल कारण है। जब जीव यह समझ लेता है कि मैं पूर्ण हूँ, शिव हूँ तो मुक्त हो जाता है, किन्तु अपने को अपूर्ण मानकर जब तक पूर्णता का प्रयत्न किया जायगा तब तक जीव न स्वतंत्र होना न सुखी, मन्त्र का माध्यम नहीं होगा क्योंकि अपने को अपूर्ण मानना ही अज्ञान है।

इस शक्तिमात की प्राप्ति में आत्म-व्यथन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कारण नहीं है। शुभ भाति, कर्म भाति किसी से भी अज्ञान का अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता। शक्तिमात का प्रथम सिद्ध है 'शिव में शक्ति'।^१

शक्ति दो प्रकार की है (i) सफला (ii) निष्फला। जब शक्ति में कर्म की अपेक्षा है। दूसरी में नहीं।^२

(१) तिरोधिः पूर्णवपत्यापूर्णत्व लक्ष्यपुरणम्।

प्रतिभिल्लैग मानेन स्पृहातो मोनिका मन्त्रः—बही, पृष्ठ ७२

(२) बही श्लोक संख्या ७६

(३) उद्भुत—संभा० बही पृष्ठ बही

(४) संभानोद—अयोध्या भा० पृष्ठ २०

इस प्रकार सङ्गामात्मिक के रूप में प्राप्त शक्तिपात 'पर' नाम से प्रसिद्ध है। और मुख्य परिणाम जो मुक्तिदायी है वह 'अपर' कहलाता है।

मस होना कि क्या 'मस' शक्तिपात ही मयमत् इच्छा से प्राप्त होता है 'मस' क्या उसकी इच्छा से नहीं प्राप्त होता ? उत्तर यह है कि 'अपर' की इच्छा के बिना स्वयं अपन की ही सृष्टि सम्भव नहीं है अतः 'अस' भी जीव को भगवान की इच्छा से प्राप्त होता है। परन्तु 'चेतन्य' निर्मल है।^१ आकाश की भीमिमा के समान स्वयं मस 'चेतन्यमय' ही है मस की भिन्न सत्ता नहीं है।

शक्तिपात के तीव्र मध्य एवं मंद तीन रूप होते हैं। तीव्र शक्तिपात देहपात हो जाता है यथा कुछ व्यक्ति पर शैबनुष अपने प्रभाव से तीव्र शक्तिपात करते हैं और मुक्त कर देते हैं। अन्य जो शक्तिपातों से अज्ञान का मारा होता है।

चेतनात् आदि आशयों का मत है कि शिव की रोधी शक्ति से प्रथम मस का पात होता है तब संकिन्नु का अवयव होता है। यथा सूर्यकान्त मयि सूर्य रश्मि से शक्ति हो जाती है तथैव मस परिपाक के बाद ही 'चेतन्य' का उज्य होता है।

परन्तु धर्मिक युग इस प्रकार का मस अनिवार्य रूप में स्वीकार नहीं करते। क्योंकि जीव शक्तिपात में इसरोच्छा ही कारण है और वह स्वतंत्र है, मस, अमस के परे है, अतः शक्तिपात मस-अमस निरपेक्ष रूप में होता है। मस पाक को जीव तथा ईश्वर का मध्यस्थ नहीं मान सकते।

प्रतिभा शक्तिपात से अन्य प्राणिम-जान-स मस का नाश होता है। प्रतिभा ज्ञान का सर्व है, स्वयमेव ज्ञान उचिप्त होता, शास्त्र एवं गुरु की दूतमं अपेक्षा है।^२ प्रतिभा प्राप्त हो जाने पर भी 'दुःखता' की आवश्यकता है। मस्यमाना प्रतिभा हीन है। मस, शास्त्र दुःखता के लिए है। प्रतिभावाचक के लिए अनियेक, समय, हीनारि नहीं है। प्राणिम ज्ञान भी दो प्रकार का है। अतिथि (ii) दीपिन। प्रथम में हीना की आवश्यकता नहीं है किन्तु दूसरे में आवश्यक है। प्राणिमावाचक ही विरत को मुक्त करता है।^३ यों विरत में प्रत्येक जोष में प्रतिभा होती है, परन्तु उनमें मंद शक्तिपात के कारण परोपकीर्णता रहती है।

(१) संभाषिक यो-ज, भा०, पृष्ठ ३४-३२

(२) वही, पृष्ठ ३६-३७

(३) वही, पृष्ठ १०१

प्रातिम-ज्ञान का उद्देश्य मुक्ति है। विद्विषाँ केवल बूझों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए हैं। मुमुक्षु केवल मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है। परन्तु वह बूझों में विश्वास बनाने के लिए बरतकर दिखाता है, क्योंकि देहात् के बाद मुक्ति होती है, इस बार कौन विश्वास करेगा। पर प्रत्यक्ष के विना विद्विषों का काम कुछ भी उपयोग नहीं है।

‘विद्विहं नाम परेषाँ प्रत्यक्षमाद्यत्, जल्पवा देहान्ते मुक्तिरिति कस्य समास्वस्त’ स्वात्^१

पारा-भय के परवात् जेवत् शक्तिनाथ के विद्व प्रथिभावात सायक में प्रकृ होने लगे हैं। विद्व भनेक हैं संशयिधि, उत्प-विश्रय कवित्व-शक्ति रूप में भक्ति भावि।

शक्तिनाथ से मुक्ति एवं मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। भक्ति से मुक्ति तथा मंत्र से मुक्ति प्राप्त होती है। वीर शक्तिपाद में वा वी अस्मात् भीन्मुक्ति होती है अथवा देहात् हो जाना है। मध्य तीरपात में मन विबोन्मुक्त हो जाता है। मंदमध्य शक्तिनाथ में किसी उत्प-विशेष में मन लग जाना है। भोग के प्रति उत्सुकता मंत्र शक्तिनाथ का लक्षण है। इन बरकर शक्तिनाथ के अनेक रूप हैं विनर्म २ मुख्य हैं।

विष्णुव धर्म शीशों का शक्तिनाथ जेष्णों के यही शक्तिपात से विष्णुव्य मान प्राप्त होता है। विवत्न का मुक्तिनाथ नहीं होती। जज्ञा, किन्तु आदि शिव की मया से बल है। शिव समाट है अत जेष्णव विज्ञानरमदा की प्राप्त नहीं कर सकता। अत जेष्णव शक्ति मोक्षदा नहीं है। अत्रमें बोरादा है, ‘अबोरादा’ नहीं है।

शक्तिनाथ का विद्विषाँ पुराणों से भी पुष्ट है^२। क्योंकि उनमें मपशाव के ‘प्रमाद’ का जलन है। ईश्वर वशातम्य से संकीर्ण के मवमाद्य से स्वयं

(१) निद्रि जाल हि कपिर्ष परपथय कारमम् ।

दृहव विद्वान् कामान्ते मुष्येरभिधि भावनात्-अही, पुष्ट ११७

(२) संशानोरु—अयोदश भा० पुष्ट ११७

(३) पुष्टभोर्षि य तस्यैव प्रमादात्कृतिरिष्यते ।

मयामान्ति वरानिद्रि तद्गुणवर्णनमात्मना—

संशानोरा मपीत्या आहिक पु० १७४

अनुता की धारण करता है और पुनः जब वह निम्न रूप विद्यता है, तो उसे 'प्रसाद' कहते हैं। ईश्वर की प्रसन्नता ही मन्त्र का अणुमन्त्र करती है।

इस 'प्रसाद' की प्राप्ति के लिए शैव-शास्त्र में श्री वैष्णवी आदि की तरह प्राणैर्माएँ और स्तोत्र हैं। यह 'प्रसाद' सर्वाधिक रूप में शैवों को मिलता है, क्योंकि वे सबसे अधिक प्रतिभाशाली हैं। वेदों से अधिक सामर्थ्यात्मियों का उनसे अधिक दक्षिणपंथियों को, पुनः कौबो को और सबसे अधिक चिन्-शास्त्र के विरवास्तियों को मिलता है।

हरि-शब्द से ज्ञान तीन प्रकार का मिलता है। (i) वैदिक ज्ञान (ii) चिन्ता मन्त्र ज्ञान (iii) भावनात्मक ज्ञान। विधि-नियेषमय ज्ञान वैदिक ज्ञान है। शास्त्रानुसृत चिन्तामय ज्ञान है। इसके पर्याय 'भावनात्मक ज्ञान' उत्पन्न होता है। शैवमत में ज्ञान एवं भाव दोनों हैं।^{२०}

नैमित्तिक कर्म निश्चित हो जानेपर अर्थात् तब से जिन कार्यों को अवश्य किया जाना चाहिए, वे नैमित्तिक कर्म हैं। नित्य कर्म स्थित हैं, और नैमित्तिक अनियत। संन्या, पञ्चांगिक नित्य कर्म हैं, वे नित्य कर्म हैं और नित्य होते रहते हैं। नैमित्तिक कर्म २३ प्रकार के हैं—स्वयम्भवात्मक आदि इन्द्रा इन्द्रा, भुव-स्वर्ग आदि। इनके कर्मों में प्रसाद नहीं करना चाहिए।

बीजा सांख्यिक साधक को बीजा की आवश्यकता नहीं है, किन्तु ज्यों की आवश्यक है। मन्त्र-आद्य बीजा से ही होता है, क्योंकि बीजा के बिना शास्त्र का उपदेश नहीं किया जा सकता।

साधक अनेक प्रकार के होते हैं (१) बुद्धि साधक-विमरी बुद्धि भोग कर वैश्विष्ट रहती है। इनके भी दो भेद हैं (१) विजयर्मी (२) मोक्षर्मी। प्रथम शिवो-

(१) स्वेच्छा से जब सांसारिक भोग भुज्य नियमों को स्वीकार करके ही रहते हैं। मन्त्र में स्वेच्छा से विप्र प्रकार भुज्य बंधन आवश्यक है, तपेन जपन रूपी ध्यान में शिव भुज्य बंधन स्वेच्छा से स्वीकार कर लेता है। यदा श्रीकृष्णोम अस्ति तदा आदे शेष अन्य कर देता है, तपेन जपनपी श्रीकृष्ण शिवेच्छा पर निर्भर है।—संन्यासोद—वनोदय भा०, पृष्ठ १७४

(२) वैश्वर्गीय तपो कर्म तपो दत्त तपो यत्नम्।

तत्र भुज्य तत्र कौन विदं यत्तत्तम परम्—वही पृष्ठ १८१

सृज्य होते हैं दूसरे केसम सिद्धियों में बन्धि रहते हैं। साधकों का दूसरा प्रकार पुन या समयी साधकों का है। जैसे राज्यपुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है, तमैव शोद-साधना का अधिकारी पुत्रक' कह्य जाता है। समयीके दो प्रकार हैं (१) शरीर के साधक मन्-कर्म से मन्-मन्-पुत्रादि से तादात्म्य प्राप्त करते हैं (२) निर्बीज-शिशु आदि को पुत्र अपनी शक्ति से फल वर्षनों से मुक्त कर देता है।^१

दीक्षा में शिला की प्रथम परीक्षा नावरयक है। मुद्र काञ्च शिष्य को रुद्र दण्ड से आदेश में माने का प्रथम करता है। पुष्य को फेंक कर शिष्य की जुवा की ओर देख कर, अंगुष्ठा की तरह अंगुली बनाकर शिष्य में आदेश उत्पन्न करे अपना शिष्य की शक्ति बन्द कर के उस पर पुष्य फेंके अपना भागिनी का प्रयोग करे। शिष्य की दण्ड को खींचे। यही 'शिष्य हस्त विधि' कहाती है।

मासिनी का प्रयोग इस प्रकार करे शिष्य की नाभि पर स, दम्ब पर 'र' शानकुवा पर 'क' नाम पंथा पर 'क' लिप्य पर 'य' इस प्रकार 'सु' यह मन्त्रक बनना है। इसका उच्चारण करे तो शिष्य में आदेश उत्पन्न हो जाएगा। बलुग एक प्रकार का सम्बोधन (hynotism) है। एक अन्य प्रतिया यह है कि शिष्य को यह है शिष्य उसे निर्मम होकर पीने। शीघ्र मन्त्रन होने लगेगा। 'योगहस्तकवच' एवं 'आत्मोत्तर' बर्णों में इसका वर्णन है।

पुत्रक- शीघ्रा वेध शीघ्रा (penetration) बिना आदेश के शीघ्रा न है। मासिनी के श्वास से शिष्य आश्लिष्ट होकर भूमि पर विर पड़ता है, क्योंकि उस पर शक्तिगत होता है अपना निद्रा ना जाती है। बन्धि फिर भी आदेश न ही पी उसे 'जड़' समझ कर छोड़ देना चाहिए। जड़ शिष्यों पर 'सु' (स = जुवा ट = मनि य = मरुत) तथा क, ह, म, र य का संयुक्त मूट 'सुहृ' तथा 'सुहृ' मन्त्रा एन शीघ्र मंत्रों से आदेश बनरय होता है। यदि इनमें भी आदेश नहीं हो तो आगे प्रयत्न व्यर्थ होता शिष्य के चर-नेपन से उत्तरा मग ऊपर के चरों की ओर चल पड़ता है, यदि देखा हा तो मन्त्रना चाहिए कि वह शक्ति मार्गी है अथवा उस 'पिताशक्ति' समझना चाहिए।

(१) स्वच्छन्दीय में आत्मबान, अतिपिच्छ तथा मन्त्रावपन उत्पर साधक को समयी कहा है। ४-१४२

इस वेद-गीता के कई श्रेय हैं। मंत्र-वेद नाद-वेद विष्णुवेद, गुर्जगवेद, शक्ति-वेद, परवेद इतन जेद मुख्य हैं। गङ्गाखाल में इनका बर्णन है।

मंत्र-वेद—अथ नामे ऋक का ध्याय करके हस्त-रु का ध्यान करना ही मंत्र-वेद है।

नाद वेद—नाद द्वारा चित्त का वेद्यन होता है।^१

विष्णु-वेद—विष्णु स्वान-गत चित्त श्रुतियों के बीच में रहता है, उसका वेद होता है।

शक्ति-वेद—शक्ति के साथ संयुक्त होकर (संयुक्तवस्था) बुद्धिमिती को जगामा चाहिये।

गुण-वेद—दशों के पाँच-दश होते हैं तत्त्व भी पाँच हैं विचित्रा भी पाँच हैं। ये सब शरीर में स्थित हैं। इस पाँच रूप वाली शक्ति का वेद्यन करे।

परवेद—इसमें सर्व भावों का नाश हो जाना है, जल कोई क्रिया यहां काम नहीं लेती केवल ज्ञान से शिष्य तन्मय हो जाता है।^२

दीक्षा गुण का रूप जब तक शिष्य की जनना से परिष्कृत नहीं होता तब तक दीक्षा अपूर्ण है। अतः यह दीक्षा शक्ति एवं शक्ति दोनों की दायी है, जना वेदशक्ति भी इसकी आकांक्षा करते हैं^३।

दीक्षा की समाप्ति पर शिष्य को ब्रह्म दे। पूर्णता प्राप्त होने पर ही दीक्षा की समाप्ति हो जाती है। स्वार्थी व्यक्तियों को दीक्षा नहीं दी जा सकती बस वेदाचार्यों को ही दीक्षा देनी चाहिये।

(१) नादं कीर्तयै समुच्चयै नादं नादे समाकरोत् ।
 नादिकान्तं समुच्चयै, बर्णाणाम विरोधयेत्
 नादेन वेदवेदे वि नादवेदः उदाहृतः —शिव-मोह विन्द ११ भा०
 २६, पृष्ठ १२२

(२) सर्व भाव परिणीत परवेद उदाहृतः —श्री पृष्ठ १२६

(३) ए एव योगे कथितो निष्पन्नः सर्वे अन्तु
 अन्तुपामकनापान सद्भातात् एतन्नं हरेत्—महा० २६ भा०
 पृष्ठ १६२

जब अन्तुओं द्वारा दक्षिण योग की प्राप्ति दीगाराम के नाड़ी-योग द्वारा हो जानी गई है।

शिव्य को चाहिए कि वह गुरु के साथ परब्रह्म का ध्यान कर मरिच का पान करे और पंचभूतों का तर्पण करे। इसकी अन्य विधियाँ 'गुह' ही बना रहती हैं।^१

स्नान मम-नाश के लिए स्नान किया जाता है। परन्तु शैवों में आंतरिक-स्नान का ही महत्व अधिक है। बाह्यस्नान के साथ-साथ तावक को शिव विमर्श अवश्य करना चाहिए।

उपर स्नान तत्त्वस्नान का मूलत्व भी पाया है। पृथ्वी वायु, जलवायु आदि में से किसी एक तत्व का ध्यान करने से 'स्नान' हो जाता है। शिव की अष्टमूर्तियों से भी ध्यान होता है—संघाम-भूमि की भूमि (एक-रेणु) औरजल (शिवाम्बु) शीतमन्त्र (शय्याम-अधि) महामन्त्र (शय्याम एव से मुक्त वायु) शय्याम-आरण्य, वन, घुमें और कन्द में शिव की अष्टमूर्तियाँ हैं।

सद्यस्नान नवग्रह है। यह आगव द्य जनक है, अथ पवित्रकारक है^२।

आंतरिक स्नान वास्तविक स्नान तो सोम-नाड़ी से करते हुए अमृत के स्नान है।^३ शरीर में स्थित मरिचा-सूर्य-बन्ध आदि ही मुक्ति देते हैं, बाह्य वेद्य शीर्ष आदि केवल विघ्न-नाशन के लिए हैं।

पीठ कर्तव्य आदि निषिद्ध देय ही शैव शासन के लिए उपयुक्त हैं। परन्तु क्लृप्त आंतरिक पीठ ही मुख्य हैं, बाह्य पीठदि तो उन्हीं के आमास प्राण हैं। आंतरिक पीठ त्रिन्नु-नाश मय है। बायीं ओर त्रिन्नु और दायीं ओर नाद है। ऊपर अथ पीठ है। अथ पीठ ही काम रूप है। नाद ही 'पूर्वविरि' के रूप में

(१) अतिपात्र सुखपूर्वक शीरोरकरतांस्त्रियम्—

अवसोक्य परब्रह्म तस्मिन्नात्मना पुरीः ।

तर्पयित्वा तु भुजाभिः, मुखे विनिवेशयेत्—ब्रह्म पृष्ठ १७०

(२) तासामानन्द जनकं यद्यं शिवमयं ततः ।

प्रकृते संविद्यः पूर्वं क्येऽस्मिंशुति भावनाम्—तंभा० जित् ६ ११ धा०

पृष्ठ ४०

(३) आन्तरं तद्यथोर्ध्वेऽनु-वाचमृग परिप्लवः ।

यजोग्रमोष्य नां धार्य-वैद्वमं ध्याप्य मस्त्रियता—तंभा० ११ भा०

पृष्ठ ४२

व्यक्त है। उद्दिष्ट्याम' भी इसी प्रकार 'उत्तर तथा को व्यक्त करता है। भव' शीत बस्तु' आंतरिक है। 'प्राण' में संवित् का दर्शन ही मुख्य है बाह्य धर्मम (सीर्वादि में) व्यर्थ है।^१ मुक्ति स्थान-बन्ध नहीं है कुछ जो तत्त्व प्राप्त हो उसकी दुःखता के लिए पुत्रप्राप्ति होते हैं। विरत स्थान पर हृदय अन्धोक्त विकसित हो, वही स्वाम भेद है।^२

तंत्र में इस साधना को अंतर्द्वार कहा गया है। इसी से ज्ञान का प्राप होता है, साधनर से नहीं।

न्यास घटीर के विभिन्न स्थानों पर बर्नमात्मा (मातृका, मात्मिनी) के बर्नो की स्थापना करना न्यास है। बर्न-स्थापना से आदिष उत्पन्न होता है।^३ जो बर्नमात्मा शिव-शक्ति के संघट से उत्पन्न हुई है, जिसमें शुभ्रि शक्ति विद्यमान है, वह प्रत्येक प्रकार की सिद्धि दे सकती है। पूर्ण-अकारात्मक बह्य की बहिर्लम्बु छाटा के पूर्व आंतरिक एकात्म्य शक्ति की ही 'मातृका कहते हैं, क्योंकि वह बह्य को बह्य दशा है, जब कि वह सृष्टि के लिए उन्मुक्त होता है अतः इसका 'न्यास' के समय ध्यान करने से वही दशा प्राप्त होती है और क्योंकि वह इसे धारण करते हैं स्वीकार करते हैं अतः वह पूजा योग्य है। शक्ति एव शक्ति दोनों को प्राप्त करने की शक्ति मात्मिनी में है^४ अथवा मात्मिनी में संसार की शक्ति है^५ अतः वह पूज्य है। मात्मिनी से पुरिष्ठ होने पर ही वेद कृत देते हैं। मात्मिनी का महत्त्व यही एक कहा गया है कि ज्ञान एव योग के बिना भी न्यासादि विचारों अथवा कृत देनी है और स्वयं 'दाने' 'दाने' तन्मयता उत्पन्न होने लगी है।^६

(१) कुम्भलेन घटीरुत्पन्न प्राणैः सचिदि परपतः ।

विश्वेकान्निमयी, स्वाद्बहिर्भ्रमण इत्यरे ।—यत्ने पृष्ठ ३२

(२) यत्र ब्रह्म हृदयोक्त, विद्यासं प्रीतिवत्त

तत्रैव धाम्नि आद्येऽन्यायात्री प्रतिनिष्ठति—बही, पृष्ठ ३३ ३५

(३) एतेषा मात्मिनी देवी शक्तिमल्लोचिषा ब्रह्म ।

इत्यादिजातानां तातोः तनुं सा परमार्थिन—यही, पृष्ठ ६३

(४) मात्मिनी मात्म्यै धारयते र^१प्राप्याया स्वीदियते—यही पृष्ठ ६६-७०

(५) संसारम्यर्त्तत्वी विमर्दिता, मा धव्य बाध्मं संसारं धारि मात्ति—
परमार्थिन सा धानी तनु—यही, पृष्ठ ७०

(६) विचारि ज्ञानयोग्यासां तिसा न्यास-धर्मात्ति—बही पृष्ठ ७१ ।

इन्द्रि अशुद्धि शिव कृपी सूर्य के स्वर्ग से छत्र पराधीन शुद्ध हैं, अतः ज्ञानन्द का अतिशय करने वाले मदिरादिपराधीन ऐकनीय हैं। शोचसाधका को महत्त्व कासा ठी यहाँ तक की कि वीक्ष-साधना के लिए सारी गवियों में मदिरा का प्रवाह होना चाहिए या सारे पर्वत मांस-मिष्ठ बन जाने चाहिए वे और सारा पदार्थ स्वीक्य हो जाना चाहिए वा।^१ अतः वैदिक आचार में जो अभिरूप है वह भी यहाँ मध्य है। यहाँ विषय भेद नहीं है। शोच-मंत्र सारे संदेहों और लक्ष्मणों को ध्वस्त कर देता है। अहंकार के नाश में सारी वस्तुएँ शुद्ध हो जाती हैं।

मूर्ति प्रस्तर प्रतिमा को मूर्ति नहीं कहते। मूर्ति का सम्बन्ध चेतन्य से है। अहंकार के नाश से जब देहाध्यास नष्ट हो जाता है और शिव के साम्य तादात्म्य प्राप्त होता है और जब चेतना निरंतर हो जाती है, तब इस स्थिति के पर्याय को स्वतः स्कूलों तरंग उत्पन्न होती है, उसे 'मूर्ति' कहते हैं अतः मूर्ति चेतना का प्रथम स्फुरण है।^२ क्योंकि संसिन् का कार्य सृष्टि करता है, अतः वैश्वरूप अपने एक अंत संसिन् से जिस रूप की सृष्टि करता है, वह है 'मूर्ति'। बाह्य मूर्तियों केवल तादात्म्य प्राप्त के लिए हैं।

सांसारिक मूर्ति प्रणव बिलु, नाद के रूप में प्रकट होती है, अतः प्रणव एक नाद से व्याप्त वर्तमानता द्वारा व्याप्त 'जीव' के अगुस्त (अपूर्वता) को दूर करता है यह 'मूर्ति-व्यास' कहा जाता है।

यह मुञ्ज पीठ, कठारि में ३ स्थानों पर किया जाता है। एक व्यास १ प्रकार का है, कोई इसे ११ प्रकार का कहते हैं।

मुद्रा शिव की शक्ति ही शरीर-वेष्टाओं में प्रकट होती है। अतः मुद्रा शिव-शक्ति का नाम है। इसके अनेक प्रकार हैं—I मंगोबा मुद्रा (यह मुद्रा मुद्रा से ही मुने) II वाग्मबा III मंत्रबा।

(१) न नयो मनु बाह्ययो न परं पर्वतीयम् ।

स्त्री मयं न जल्पन्तं नूनं निद्रिः नुनागमे ।—उभातोद, १२ भा० पृष्ठ २६ ।

(२) तस्मिन्त्र न निरंतरं लयापनिमुपागतम् ।

संविदः सृष्टिर्षिन्काराद्यानि तरङ्गिनाम् ।

शेव मूर्तिर्षिन् व्यासा, तास्य शिन्दुदारीवत्—उभातोद १३ भा०, पृष्ठ ११२-११३ ।

वेह के निराप से मुक्त ने अनेक भेद हैं ।

भुक्ति म्यास से प्रारम्भ करके सृष्टि-मात्र के साथ तादात्म्य करना चाहिए । सृष्टि संकल्प का ही अन्वय (विभूतमय) है । तादात्म्य से नाम यह है कि जैसे 'मैं दुःख कर्म करता हूँ' ऐसा परामर्श होने से पाप भय जाता है, तब 'मैं शिव हूँ, अद्वितीय हूँ' ऐसे तादात्म्य से शिवा का प्राप्त होती है, चित्त में बुद्धता जाती है ।

म्यास से सर्वथा नाम-रूप से करना चाहिए, बसिब हस्त से पशु (बैभिक आचार कर्ता) करते हैं, नामाचार में नाम कर द्वारा ही किया होती चाहिए । नाम शब्द का अर्थ है संसार से निरतीन जोक बहिष्कृत मुक्तिदायी रहस्य आचार नाम धर्म का अर्थ 'रहस्य है' ।

इस रहस्य सामना में 'म्यास-रिक्तता' जानना या आशय उत्पन्न करने के लिए की जाती है । पूरि निरु ही ब्रह्माण्ड है अतः अपने शरीर की पुत्रा ही नहीं विषय है और भुक्ति कर्म के लिए प्रत्येक परार्थ का सबत विषय है । मोक्षार्थ पत्न मोक्ष शक्ति-साध की प्राप्ति नहीं कर सकते । ५

शरीर-पुत्रा के लिए मत्त मास एव निधुन आवश्यक हैं, कबोचि भीचात्मा का मन प्रारम्भ में स्वयं इनही ओर आकर्षित होता है । पशु-शास्त्र (बैभिक-शास्त्र) में इन स्वाभाविक भुक्ति का नारा मियाया जाना है परन्तु इससे मन निरुद्ध करना है, पुत्रा में स्थित सर्प के समान यह मन संन्यास के क्षेत्र पर भी कभी भी आक्रमण कर सकता है अतः मन को मार कर सामना 'पशु-सामना' है । मन की स्वाभाविक भुक्ति को मना कर, उसे 'उत्पत्ती' बना में जाने का प्रयत्न शिव-साधना में ही होगा है मन के उत्पत्ती (Sublimation) के लिए ही मोक्ष मरिदादि की व्यवस्था है न कि बुद्धि-साध के संरक्षण के लिए पूरि शरीर पुत्रा में मन रोचकता के समय 'समयी (पुत्रा-साधन) जान द्वारा अपनी भुक्तियों की प्रमत्त

(१) संसार नामाचारशास्त्र का अर्थ है मु ।

पुराणार्थ याग व वैश्वानरा नामया—मनामो—१२ आदि पृष्ठ १३०

(२) नाम संसार निरतीनो मोक्ष बहिष्कृतो मुक्तियुक्तो रहस्य आचार—बही पृष्ठ १३०

(३) रहस्य सर्व भुक्तों नाम धर्मो वीर्यो—बही पृष्ठ १३०

(४) मोक्षार्थ शक्ति-साध न विभक्ति-बही पृष्ठ २१५

शिवतत्व की ओर ले जाने का प्रयत्न करता है, अर्थात् वा'मकार' अन्य जीवों के लिए बंधन बनते हैं वे शिव विषयक होने से मुक्ति के साधन बन जाते हैं। अर्थात् सम्यगी को भी बन्धित हो उसे ही कराना चाहिए। मांस मखिया मीठुन रत्नमान, शिरच्छेद रक्त मूत्र बिट्टा-लेपन पकैठ बरब मनादि का आरोहण आदि सब विषेय है, क्योंकि अस्तुरं मुख्य नहीं है आह्लाव ही मुख्य है।^१

तांत्रिकों के अनुसार मन मकारों' की ओर क्यों जाता है, इसका एक कारण यह भी बताया गया है कि साधना में ब्रह्म-शक्ति आवश्यक है और बीच छियों में प्रतिष्ठित है इसलिये चित्त आंखान आदि की छियों की ओर जाता है।

ब्राह्मणत्व का कारण बीच शक्ति है, अर्थात् गुण-अगुण का विचार न करके चित्त का संस्कार करना चाहिए क्योंकि अन्य से कोई ब्राह्मण नहीं होना जिसकी आत्मा शांत हो जाती है, वही चित्त कहलाता है। शूद्र भी शीघ्रमान होकर ब्राह्मण हो जाता है। गुण ही बन्धनकारक है जाति नहीं क्योंकि अल्पज जातियों में भी साधक बने जाते हैं, अर्थात् माया-दृष्ट द्विजात्याज्य है और माया-विजयी म्लेच्छ आदर का नाम है 'अनुबेरी' का दाम्भिक वंशित शिव का शिष्य नहीं हो सकता। महाभाष्य के इस कथन को ही मानते हैं।^२ जातिभेद माना जाता तो भीवरी संकल्प श्यात को शक्ति क्यों माना गया। अर्थात् पशु-जातियों में ही जाति चक्र है। वहाँ तो वैतन्व के साथ तात्काल्य कर जो संशुन हो गया है, वही चित्त है।

(१) ब्रह्माक्षी मद्यपानं चाप्याममांशस्यम्लानम्

पशुपानं शिरच्छेदो ऽकृषिभ्युन्नलेपनम्

पर्वणव्रतगणधाय ब्रह्मसुप्तानिरोहणम्—

मरीचिं स्वाधवि प्रायश्चरन्धुममुवाह्वयम्

तं ज्योत्सवैर्गुणित्कृत्यै ह्यायो हि परम कर्म । वही पृष्ठ २४२

(२) योनिर्नकारणं तच्च श्याम्रात्वाऽत्रिभ उच्यते—तंभा० भा० १३, पृष्ठ २३४

शुभेर्द्विपि यो नसम्पन्नो गुणशान्नाह्लापो भवेत् ।

पञ्चेन्द्रिार्षेयं चोदं यदि शुदीर्द्विपि तीर्थेभान्—वही पृष्ठ २३३

तस्मै श्यामं प्रश्याम्यकपदेभं सुपिच्छित् ॥

न जातिनु श्यते राजगुणा' नस्याण कारणा—तंभा० भा० १३, पृष्ठ २३३

पर पदपुत्र

ब्राम्हण का अर्थ यह नहीं है कि व्यवहार में सबगुणों का सम्पादन न करे। समी अस्तु परम ब्रह्म न बने किंवा परब्राह्मणमर्थं ब्रह्म, अग्निचारदि से बने अर्थात् प्रथम अवस्था में शैव-साधना कठोर नियमों के अंतर्गत ही 'समवी' को रखती है। परन्तु ज्ञान-शान हो जाने पर विधि-नियम अस्वीकृत है। साधना के समय विधि-नियम का उल्लंघन समी भी कर सकता है, परन्तु शोक-व्यवहार में नहीं। साधना काल में भी कुछ नियम रख जाते हैं—यथा गुरु के घर भी शिष्योः साधना में उपरोक्त नहीं हो सकता।

समाचार में शिष्यों का महान् आदर है—पथक प्रसार की स्त्री का सम्मान आवश्यक है—

शिव्यं पुण्या विख्यास्तु, बुद्ध्या शिष्योन्नीविधा
 कृत्वा विप्रविद्याङ्गपद्म वेद्या स्वच्छन्दचेष्टिता ।
 निरुत्थाया सुब्रह्मण्या पर्मापर्म विवर्जिता ।
 स्वच्छन्दया पराशिष्यो सम्पदा वेद्या इव ।^१

यस्य वरित स्वान में साधना करनी चाहिए। मांस एवं शर्करा को मंत्र से बेनियाँ प्रसन्न हाती हैं। यह शरीर ही आमतम है, मंत्र ही दीर्घ है, कुछ वा शान ही विधि है अथ वैदिक विधियों का ज्ञान ध्येय है। यह काया सर्वदेवमय है मन्त्रों से इसकी पूजा कर आह्लाद प्राप्त करे और उस आह्लाद के द्वारा परमाह्लाद को प्राप्त करे।

दियाध्य-भावस मे मुद्रा की विम्ब (चैतन्य) वा प्रतिविम्ब मन्त्रा दया है।^२ धम की स्फुरण प्रथ शरीर में हाती है वो शरीर म कृप विचित्र परिचरितं हाती है, ये हा मुद्राएँ हैं।^३ अथ मुद्रा मे विम्ब वा उन्म हो सज्जा है।^४ मुद्रा ब्रह्म को जानने का साधन है।

(१) तंत्रा० १३ भा० पूर २६७

(२) तंत्र विम्बो-योपुत्रा... भा० विम्ब १७ भा० ३ पृ ३०४

(३) मुद्रा विम्बो-यो मन्त्रा — भा०, पृ ३०४

(४) विम्बो-यो मन्त्रा, दनुना तंत्रविम्बिता ।

विम्बाय मन्त्रा उरय दनुना तनुपमता—भा० पृ ३०४

मुद्रा का एक और अर्थ यह हो सकता है—मुद्रा वह है जिसने देवता इतनी ही। देवता मुद्राओं से प्रसन्न होता है^१ जबका अरोप पाशवार्थों से जो मोक्ष कराती है वह मुद्रा है।^२

इसी प्रकार विज्ञान अनेक अर्थ कर सकते हैं। मुद्राओं में मुख्य 'बिचरी मुद्रा' है। इसके अतिरिक्त विष्णुमिनी करिकुम्भी शोभना घेरणी शक्तिहातिका म्हाप्रेता, योषमुद्रा ज्वालिनी खोमिनी मुद्रा आदि अनेक मुद्राएँ हैं।

शरीर को दृष्टि से कममुद्रा, कर मुद्रा बाह्य मुद्रा और चित्त मुद्रा है। इनमें बाणी मुद्रा से मंत्र उच्चारण का तात्पर्य है। चित्त मुद्रा का अर्थ अंतःकरण में प्रवेश करता है।

कर-मुद्रा—अंगुलियों के विविध स्थानों से अनेक कर मुद्राएँ बनती हैं।

काम-मुद्रा—इसमें शरीर को एक स्थिति में रखना होना है।

मुद्रा में मानसिक स्थिति मूलाधार से शक्ति को उन्नत कर योगी मानि-देश में मन का निवेश करे और वही बार-बार मन को रोक्कर, इडा जिह्वा की वायु का मध्यम-मार्ग में समावेश करे। विष्णु, नाद और ब्रह्मरूप नामक तीनों आकाशों तक प्राण को ले जावे और वही कुम्भक द्वारा प्राण को रोक से पुनः शक्ति (स्वाप्ति के पूर्व की स्थिति) व्यापिनी एवं समता इन तीन आकाशों को पार करके उम्मावस्था की ओर बढ़े और परम-शिव में लीन हो जाय। वही मगन शक्ति है। 'परम शोभ भी वही है।

द्वितीय विधि नाद विष्णु मन्त्र तथा इनके साथ ब्रह्मरूप है अतः मूलाधार से नाद विष्णु शक्ति इन तीनों आकाशों में मन को रखकर पुनः इन्हें कैवल्य स्थित्य को प्राप्त करे।^३

(१) मुद्रं स्वरूपमाभास्यं देहद्वारेण चारमनाम्—

रात्यर्पमति मत्तेन मुद्रा शास्त्रयेषु बनिना—

(मु = स्वरूपमात्र ३ = देह के द्वारा, राति = देना है, अतः मोक्षदा इति मुद्रा अथवा दाकर्त्त इति मुद्रा।— संज्ञा ३२ आ० पृष्ठ १ २

(२) दन्धारायैव मुद्रा मोक्षते पाशवार्थ तो श्लोकात्।

नार्यायानुर्वच संस्कारान्द्रावयैतया—वही पृष्ठ ३०३

(३) ध्वनिश्रोतिर्वैद्युक्तं चित्तं विषम्य चोपरि।

अनेनाप्याय योक्तं चित्तं नित्वा परं बनेत्—वही पृष्ठ ३१०

त्रिभुजिनी मुद्रा हाथों को कंठ व नीचे रख से, बाएँ पैर को वसिष्ठ पर रख से। अग्निष्ठका तथा मध्यमा से नासिका छिद्रों को विनियोज्य करे और अनामिका एवं तर्जनी से, भ्रूमं को बुंधित करे, मग्न पकटा हुआ जिह्वा का आसन करे तथा स, हा, हा, हा करे।

ब्रह्मरंध्र में इस विद्युत के प्रयोग से योगी पृथ्वी को छोड़ देता है। अर्थात् ब्रह्मरंध्र का नाश हो जाता है। अंत में आकाश भाव को छोड़कर उस में उस की तरह चिब में चीन हो जाता है।

शेखरी मुद्रा त्रिभुजा मुद्रा है इसा के अंदर रूप अनेक मुद्राएँ हैं। एवही श्रीवर्धन और एवही शेखरी मुद्रा है। आच्येय शुभ्य मुद्रा वास्तुविष्य मुद्रा नहीं है। देह के विचार को मुद्रा नहीं कहते।

किञ्चनकस्या में स्थित योगी शेखरी मुद्रावीन हो जाता है।

(१) चक्र-पूजा नैमित्तिक कर्मों में स्वयंस्वोत्सव धाद देवता दर्शन पुन-नर्ष आदि हैं।

पर्व-विषय पर एतदि भाग करना चाहिए। मारण-माहनादि करने से पर्वों पर अक्षय सिद्धि होती है। यम एक पूजा आदि के विधि तथा पर्व का विशेष महत्त्व है।

चक्र-पूजा के लिए भी निवि का विचार करे। मुद्र-वस्ती भ्राना तथा पुत्र सम्बंधी दिवों को चक्र-पूजा में न माना चाहिए। मित्रागत नर्ष विषय हो जाना है।

चक्र-याप में स्त्री को योगिनी कहते हैं। चक्र योगिनी विमत दो प्रकार का है—(i) हठा (ii) शिवन। त्रिमी प्रकार त्रिमी स्त्री को स्थापना के लिए तैयार कर लेना शिवन प्रयोग है और असात्र त्रिमी को बद्ध लेना हठा प्रयोग है। इस नैमित्तिक योगिनी-वेमक में अक्षय फल होता है। क्याचि नर्षन गच्छितु का प्रयास है। मित्र-जान संभुविन वृष्टि है। अत्र संभुविन केका योगिनी के माप सपट्टिन होत कर स्वच्छन्द तथा नाना मुद्र हो जाती है। परस्पर विमने

(१) चक्र का अर्थ है—चित्त का विराग विमक द्वारा हो अक्षय नृति पास का देन चक्र के द्वारा होता है तथा भी अर्थ हो छात्रा है। चलो, विराग चक्र नृती, इतिच्छन्ने हार्य करण इन मानुओं में चक्र चक्र बनाया गया है—
नभा० शिव १२ भा० २८, वृत्त ७६

से चेतना विकसित होती है, इसीलिए चक्र-साधना में साधकों को एकत्र किया जाता है। जब प्रत्येक साधक की चेतना उच्चरित होती है तो परस्पर उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है, जब चेतना अनेक होकर वीथ हों उठती है, 'बकोरसव' के पीछे यही सिद्धांत कार्य कर रहा है^१। इसी सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति की चेतना में अनेक चेतनाओं के प्रतिबिम्ब से तथा एक व्यक्ति की चेतना अनेक व्यक्तियों की चेतना में प्रतिबिम्बित होने से सर्वाकारता प्राप्त होती है। यही कारण है कि समा और उत्सवों में हम हर्षित होते हैं क्योंकि वीथ नृत्यादि से सबको सम्मयता प्राप्त होती है।

यद्यपि संविद् अपने में आत्मत्वमय है तथापि मुख्य गीतारि द्वारा उसमें पूर्णतन्त्र उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि शरीर का संकोच छूट जाता है। ईश्यां द्वेष भावि, संव्यदि जब तक रहते हैं तब चेतना में रेंडन रहती है, परन्तु-मूल्य गीतारि द्वारा वे बुद्धियां जब जाती हैं और शुद्ध चेतन्य तरंगित होने लगता है। यही चक्र-साधना में होता है। सम्मयता-प्राप्ति के लिए ही चक्र-साधना का प्रयोग है।

इस चक्र में यदि कनविकारों का जाय तो उसे संकोच न करना चाहिए। यदि वह निम्बा करे तो उसकी हत्या कर देनी चाहिए क्योंकि वह आत्मन्दा का शत्रु है^२।

चक्रों पर देवियों का शासन होता है। माईश्यां ब्रह्माणी रौरी स्वामी यण्णदी यमारिमका चायुष्ठा तन्दा भद्रा कामी और लक्ष्मी भावि देवियां हैं। बिम्ब के एकारण परामर्श से ये सब व्यक्तियां स्फुरित होती हैं। देवी का ध्यान भाविक विमर्श की बुद्धि से महत्त्वपूर्ण है। अनुत्तर सत्ता (ब्रह्म) के प्रति इच्छा का उन्मेष ही विमर्श है।

कुस्त प्रक्रिया हम घात-उपाय में कीस-मार्ग का उल्लाप कर चुके हैं इसका किन्तुन वर्णन-समयीसाधना में मिलता है। यह प्रक्रिया 'घातपिन्ड'—

(१) संविन्दुवर्तिनका वेदु यदाया सद्बुभेनुसा।

मेसनेऽप्योन्वसंघट्ट-प्रतिबिम्बाद्रिवस्वर—तंत्रामोरु—त्रिन्द १२ मा०

२८ पृष्ठ १५८

उच्चरितप्रदरम्योत्त संविन्दुवर्तिबिम्बना

बहुरांगवर्दीतः सर्वोर्वितायवकला—बनी पृष्ठ १५१

(२) कामाविन्दसु तन्निम्बेत्सवात्तं घानवेदवि—इही पृष्ठ ११२

निबिडस्य-यथा यथा प्राप्य साधकों के लिए है^१। सब के लिए नहीं। यह मायुजर प्रिया है। अन्य साधनाओं से सिद्धि बनेरु बपों मे भी नहीं होती किन्तु इसके शीघ्र होती है। यह रक्ष्य-परम्परा (ऋम) खगेन्द्रनाथ आदि गुरुमा से आज तक बराबर बुध शिष्य परंपरा से बनी आ रही है^२। शैव-विद्यागत आदि अन्य सन्तानाओं क मंत्र निरीय हैं परन्तु इन कौनमार्थ क मंत्र सद्यः-जन्त-वाता हैं^३।

'कुस' का अर्थ है परमेश की साधर्म्य^४। साधर्म्य-सर्व-उदय-कारित्व सत्त्व के निर्माण एक समय की शक्ति ईश्वर म होती है, अत्र उसकी शक्ति का नाम है कुस। बिद्वत्कि में जित्त का समय और उदय भी कुस कहमाता है^५। निर्मल स्वभाव को भी कुस कहते हैं^६। सर्व-यदाओं के ईश्वर को भी कुस कहते हैं^७। शक्ति के भीतर भी स्वयं भी कुस कहमाता है^८। जानम्य का नाम भी कुस है^९। शरीर को भी 'कुस' कहते हैं^{१०}। भारमा का भी कुस कहते हैं^{११}।

कुस-याग शोकाभ्यस्त होना ही यज्ञ है। मन प्राण वायु, काम से शीर जब इस याग का मजन करता है, तब कुस-याग' होगा है। इसमें नित्य

(१) तथा वाचमिहङ्गेषु, गुरुशिष्येषु बोधिता—तथा० २६ आ० पृष्ठ २

(२) सिद्ध-ऋम त्रिमुक्तस्य मासेनेरेम बद्रवेत् ।
न तद्वर्षतहल' स्याग्मन्त्रोपैबिबिधेरिति—बही पृष्ठ २

(३) कौतिकास्तु महामन्त्रा स्वभावादीनितेयस' ।
स्फुरन्ति विप्लवेजसा' तय' मय्ययकारवाः—बही पृष्ठ ३

(४) कुसं च परमेश्वरस्य शक्तिः सामर्थ्यपूर्वता ।
स्वातन्त्र्यमनोको भीर्यं च पित्र' सविष्णुपीरकम्—बही पृष्ठ ३

(५) तदोश्मन्त्रिस्वपलेन तलुममुष्यते—बही पृष्ठ ४

(६) स्वभावे बोधमयत्तं कुसं तत्र चारणम्—बही, पृष्ठ ४

(७) सर्वेषां तु कुसं देवि मय सव व्यकल्पितम् तत्र च परमं धीर—
बही पृष्ठ ४

(८) शक्तिगोचरत्वं भीर्यं तन्तुत्तं बिद्धि सर्गम्—बही पृष्ठ ४

(९) कुसं च परमानन्द—बही पृष्ठ ४

(१०) कुसं घरीम्—बही पृष्ठ ४

(११) कुसामाकारवापं तु—बही पृष्ठ ४

नेमित्तिक कार्य आवश्यक नहीं हैं। एतद्विषय है। यत्र पांच प्रकार के हैं—बहिर्मान
शक्ति यात्रा मिश्रण यात्रा, बेह यात्रा, प्राण यात्रा। बहिर्मान श्रेष्ठ यात्रा है, यह
एतद्विषय है।

इस कौल-यज्ञ में जो अन्यत्र निषिद्ध है, उसी की योजना की जाती है,
क्योंकि शोक एक क्लानि का नाश आवश्यक है।

'ब्रह्म-यामल' में मुरा को विष-रस कहा है, उसका इस मद्य में विरोध
उपयोग है, क्योंकि उसके बिना न सुक्ति है, न मुक्ति। मद्य कई प्रकार के हैं—
बाटे से जो मद्य बनती है उस 'खी-मद्य' कहा है, राहू (शीघ्र) से निर्मित मद्य
नपुंसक है और शुद्ध का मद्य पुंस्य के समान है। शाला से निर्मित मद्य भेरव का
परम तेज है। यह आत्मा का श्व-रूप है। इसका साम्राज्य बलीन स्वयं तथा पात्र
मुक्तिदायक है।

मरिच कुबिमा एक सड़का बो प्रकार की है। पेटी (जाटे से निर्मित) तथा
शोषा (शहद-मद्य) कुबिमा है और शाला-मद्य सड़का है। इन्दिमा लोकप्रसिद्ध
है, सड़का मुक्तिदायक।

मंत्र से तर्पित मद्य ही बन्ध्याकारक है अन्यथा मरकबासी होना पड़ता है।
'सौमिद्रा' क साथ मद्य पात्र नाशक है। मद्य-पात्र में बासना का नाश आवश्यक है।
मद्य हो स्वयं आत्मा का रूप है।

जलम मद्य-पात्र वह है जो सर्वथा पीना है। पर्वो पर मद्य पात्र मध्यम है
और मासमर में एक बार पीना अथम है, इसके बाद पीना पशु-पात्र है। बिना
मद्य के कौल यात्रा करना व्यर्थ है। पुष्प भूपात्रि न भी हों तो केवल मद्य से कार्य
न बन सकता है, परन्तु मद्य के बिना नहीं चल सकता।^१ यात्रा के समय भी यात्रा

(१) एतत्स्वयं रसं शूद्रं प्रमथानन्व च्छिमबं ।
देवतानां दिवं नित्यं तस्मादेतत्सिनेत्तु सदा ।

गुरा च परमा यत्किर्मद्यं भेरव इच्छते ।
आत्मात्तु दोषरूपो भेरवेण महात्मना ।

नानेन रहितो मोक्षो नानेन रहिता यत्रि
नानेन रहिता त्रिद्विबिदोपाह्वयेरवागमे

येनाप्राप्तं धुनं, दुष्टं वीर्यं स्पृष्टं महैररती
मील मोक्ष प्रदं तस्य ।.....

.....तंत्रा २६ भा० पृष्ठ ६

के दोषक बनाये। १२ इच्छाओं का आयोजन करे—वीर्यं, हेरम्ब पुष्य धार, ताकी के पते पुन क्षय, मत्स्य पानी का मांस प्याज सहस्रगुण आवि।^१

पूजन क पश्चात्, सिर से पर तक पुष्य द्वारा मार्जन बाह्यस्नान की आवश्यकता नहीं है, केवल ध्यान से शरीर पवित्र कर ले बेहमी का पूजन करे। पुनोत्सर्गि पार्श्वों में सुरा भर ले। इसके बाद की कर्मा का कर्षन उन्मत्त हाने से नहीं हो सकता। केवल पुष्य ही इसे स्पष्ट कर सकता है।

ब्रह्म के समान वह जानना करे में नहीं है, अन्य क्याचिन्हीं नहीं हैं केवल यति की उता है, उनीया इती भावना का स्मरण करे।^२

एत शरीर में देवियां शीघ्र कर रही हैं। अपूर्ण शक्तियां सुशुद्धि प्यार्थ-शक्ति की इच्छा से शरीर में होती है, अत इन्द्रियों को संतुष्ट करने से उनमें स्थित देवता उत्पन्न होते हैं और उन देवताओं से तेज का समूह निकलता है।^३

एत समय चित्त का जय एव जय एतभी की योगि की तरह होता चला है, अत जयै एव निवेप के लिए कौल-भाग आवश्यक है।

पूजा स्थान रक्तपट पर चौपहे पर सिद्ध से मंडल बना कर, तारियत पर करे। सिद्ध का विलक कर रक्तस्र पृष्ठ कर कपास में सुरा भर कर मनेष, ब्रह्म पुष्य एव देविनी की पूजा करे। पूर्व दिशा या उत्तर को मुख करे। पूजा एताई, बुग्गाई, शिम्ताई आदि देवियों की पूजा करे। 'पुग्गा' आदि मुद्राओं का शासन करे।

(१) ऐन्द्रियान् पुष्यं च धार नामाभ्यर्कं तथा।
पौरुष इन्द्रमथ धारो मीनम चाभूतीमिम्।
पनापु तरुण चैव इन्द्र्यादादकं शुभम्। बही पृष्ठ १६

(२) नाह्यसि म चान्योरित केवता शतयत्सहम्।
एतेववाङ्गां पुनार्चिर्वा तृनिमानव — बही पृष्ठ १६

(३) अपूर्णान्निभ्य इन्द्र्यं विद्यान्तरे स्थिता।
श्रीशक्ति विविचैर्न विवेकतम इन्द्र्यनिष्पया— बही पृष्ठ

नेमिस्तिक कार्य आवश्यक नहीं है। एच्छिक है। यश पीछे प्रकार के हैं—अहियमि
 धक्ति माय, मिथुन पाग देह पाग प्राण माय। अहियमि इच्छ माय है, यह
 ऐच्छिक है।

इस काल-यज्ञ में जो अत्यन्त निषिद्ध है, उसी की योजना की जाती है,
 क्योंकि बाका एक भाषा का माया आवश्यक है।

बहुर-नामस' में मुरा को शिव रत्न कहा है, उसका इस मंत्र में विरोध
 उपयोग है, क्योंकि उसके बिना न मुक्ति है, न मुक्ति। यह कई प्रकार के हैं—
 बाटे से जो मद्य बनती है, उस 'ली-मद्य' कहा है, शब्द (लीय) से निर्मित मद्य
 तर्पुसक है और गुड़ का मद्य पुरुष के समान है। बासा से निर्मित मद्य जेरब का
 परम तेज है। यह आत्मा का इव-रूप है। इसका आत्मान धरति स्वर्ग तथा पान
 मुक्तिदायक है।

मदिरा इतिमा एक सहजा जो प्रकार की है। पत्नी (बाटे से निर्मित) तथा
 सीसा (शब्द-मद्य) इतिमा है और बासा-मद्य सहजा है। इतिमा मोग्यमिथ
 है, सहजा मुक्तिदायक।

मंत्र व तपित मद्य ही नश्वान कारण है अत्यन्त नरकवासी होना पड़ता है।
 मद्य ही स्वयं आत्मा का रूप है। मद्य-पान से वासना का माया आवश्यक है।
 'सोत्तिता के साथ मद्य पान माद्यक है।

उत्तम मद्य-पान बहु है जो सर्वदा पीता है। पर्वों पर मद्य पान मन्वस है
 और मासभर में एक बार पीना अपम है, इसके बाद पीना पशु-पान है। बिना
 मद्य के काल माय करना व्यर्थ है। पुण्य पुपादि न भी हों ही केवल मद्य से कार्य
 बन सकता है, परन्तु मद्य के बिना नहीं बन सकता।^१ यज्ञ के समय पी या तेज

(१) एतस्त्वर्य एतं शुद्धः प्रक्राशात्मन्व चिमस्य ।

देवताता दिवं नित्यं, तस्मादेतत्सिक्तेः स्या ।

मुरा व परमा धक्तिर्मद्यं जेरब उच्यते ।

आत्मात्पुनो इत्यपी जेरबेण महारमना ।

नामेन रहितो मोनो नामेन रहिता पति-

नामेन रहिता सिद्धिर्बाधेपाद्देवबागमे

येमाघातं भुनं कुप्टं पीतं द्युप्टं महैरवरी

नेमो मोन प्रदं तस्य ।तथा २९ वा० पृष्ठ ९

के शीपक बनाये । १२ इन्हीं का आभोजन करे—वीर्य हेरम्ब पुष्य शार, माङ्गी के पते सुठ धाग मत्स्य पत्नी का मांस प्याज सहसुन आदि ।^१

पूजन न पश्चात्, सिर से पर तक सुठ द्वारा मार्जन बाह्यस्नान की आवश्यकता नहीं है, नेत्रस प्यान से शरीर पवित्र कर ले वेहर्मी का पूजन करे । कुङ्गोलादि पात्रों से सुरा भर ले । इसके बाद कीर्त्या का वर्णन चरम्ब होने से नहीं हो सकता । केवल सुठ ही इसे स्पष्ट कर सकता है ।

यस के समय यह भावना करे मैं नहीं हूँ अन्य पदार्थों नहीं हूँ केवल शक्ति ही सत्ता है, सर्वथा इसी भावना का स्मरण करे ।^२

इस शरीर में देवियाँ बौद्धा कर रही हैं । अमूर्त सत्त्वियाँ सुषुप्ति पदार्थ-शक्ति की इच्छा से शरार में होती हैं, अतः इन्द्रियों को संयुक्त करने से उनमें स्थित देवता प्रमत्त होने हैं और उन देवताओं से ठेक का समूह निकलता है ।^३

इस समय चित्त का मय एक उदय राशमी की योगिनी की तरह होता रहता है, अतः उन्मेष एक निमेष के लिए नील-भाग आवश्यक है ।

पूजा स्थान उत्पन्न पर, चौपहे पर विदूर में मंडल बना कर नारियल पर करे । विदूर का तिलक कर रत्नत्रय पहन कर कपाल में सुरा भर कर तपोच बद्ध मुद्र एव योगिनी की पूजा करे । पूर्व दिशा या उत्तर को मुख करे । पुनः इन्द्राई कुम्भारई, विष्णाई आदि देवियों की पूजा करे । दुम्मा आदि पुत्राओं का प्रसादन करे ।

(१) ऐतौऽपाम्बु पुणं च शार माताम्यकं तथा ।
 पीरयं ह्यमात्रं दावा मीमत्रं धानुनीयम् ।
 पनात्त मरुतं श्वे इध्यशाब्दवां शुभम् । बगी पृष्ठ १७

(२) शान्मदिस न चान्दोरित श्वेयग शान्मदस्यम् ।
 इत्येववाधना कुम्भारैर्वा समृत्तिमात्रम् — बगी पृष्ठ १८

(३) अमूर्तां मुनिमाश्रिय देव्यं विष्णात्नरे स्थिता ।
 श्रीकृत्ति विविधैर्भक्तिभक्तम इत्यपिष्णा— बगी पृष्ठ १८

मुद्राओं से ^१ पीठों में साधक की पहचान हो जाती है। योगिनियां धीमे साधना में धारित कर लेती हैं। मित्रनी योगिनिया की पूजा करें, उन्हें ही दीपक रख। मंत्रों के क्रम से अनुसार दीपक रखना चाहिए।

इसके परचाटू खेचरी मुद्रा में स्थित होकर 'योगिनी-मंत्र' (सबहुभवा) होता है।

यह मंत्र श्रम्य-धर्म कहलाता है। श्रम्य-धर्म का अर्थ है, सब मांसादि का प्रयोग। इस धर्म में 'नवशक्याय' का प्रयोग होता है। नव शिष्यों की प्राप्ति काव्यस्वरूप है, —मातंगी (बाबाजी की स्त्री), कज्जली सोनी कार्मुकी धर्म शारिणी पञ्चिनी बरिबरनी, बीचरी तथा बरिनी। इस नव शक्याय में इन तीनों स्त्रियों की पूजा एक साथ होती है।

इन स्त्रियों के ब्रह्म में समन करना ही तीर्थ है। मातंगी का घर ही प्रयाग है। कज्जली का घर बरब तीर्थ सोनी का कुन्बिरि, कार्मुकी का बरुहास तीर्थ बरबना बरबती तीर्थ है।^२

इनमें बरिनी मुख्य है। यही कुन्बिनी कहलाती है। धारण यह तेनी जाति की भी होती होगी। इसकी बड़ी महिमा है यह माया की मातंगी है बंज की रव में

(१) वहाँ स्पष्ट 'मुद्रा' का अर्थ केवल अनुभवियों धारि की बाहुनि यात्र नहीं है बरन् मुद्रा का अर्थ योगिनी (साधिका) भी है। योगिनी धर्म को भी परंपरा मानो जाती है, इसे 'संज्ञा' कहते हैं अत्यंत परंपरा की अपनी-अपनी मुद्राएँ हैं, इन मुद्राओं का प्रयोग कर केने सब परंपरा की (योगिनियों) को प्राप्ति हो जाती है।—

अधिराज्यते तसत्याप्यं पञ्चोविनी बरनात् ।

यो मत्यां सन्तोर्षाय सामुद्रा तस्य कीर्तिता ।

पाकार्म हारं सन्धर्वं मामाधरनमन्विता ।

इमेन तेन ब्राह्मणित, स्वधीयां दुःखसन्ततिम्—

तंत्रा० २१ धा० पृष्ठ ३०

(२) मातंगीधर्म मुद्राये प्रयागं परिष्ठीतिरम्

कज्जली बरबारटं तु सोनी कुन्बिरिः पिये—जारि—

तंत्रा० २१ पृष्ठ ४६

बरनती है। मही कन्द म रियत है। विश्व को अपने में समेटे हुए है। शोक सिद्धांतों, वेप्यब बीदा बेहान्ती तथा स्मार्त साधकों को बहु प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि वे अर्द्धतन्त्र (मय) से बन्धित हैं। अतिहीन हैं।^१

शोक-भाग म या तो एकाकी वा अति (छी) अहित रात मे अप क्रिया जाता है। अकेला अकथित रहता है और अति अहित 'यामम' रहता है। अकथित ३ साध बार और यामसावस्था म ६ साध बार अप करना चाहिए। अन्य स्थान पर कहा गया कि मामस जाप ही नहीं विषय है। ब्रह्मचर्य से अहित यह जाप नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का अर्थ यह है कि आनन्द ही ब्रह्म का रूप है। अतः बाह्य पदार्थों का आनन्द भी ब्रह्म है। यह आनन्द विषेपत' मय, मांस, एव मीथुन में है। इसी लिए 'बेहे पिशा त्वितम्' कहा गया है। अतः ब्रह्मचारी वा अर्थ मवार सेवी है।^२ मोमवृत्ति के साथ मकार-संबन्ध और पाप है। विश्व-वर्ष-निर्मुक्त होकर ही यह मार्ग सेवनीय है।

क्योंकि प्रकृतियत होकर बेराम्य अटिन है अतः 'पूर्वी-भाग' की आवश्यकता है। दूरी के बिना असुत यह मार्ग दुर्लभ है।

पूर्विक शास्त्र में निम्नलिखित दूतियां प्रायः दुर्लभ हैं, अतः इन दूतियों म भी मार्ग का अस्तित्व है। अहम्य में अरिबिन शान्तरी सुन्दरी दूरी तो साधान् मुक्ति ही है। दूरी आनन्द माने वाली रीति को अहते है। निष्कल्प अित से विनी भी दूरी ॥ साध रमय सिद्धिदायक है।

शौरिक और अनीरिक से दूरी के दो अर्थ हैं। उनके भी अन्त्या अतिका तथा अहता से हीन-श्रीम अह है। अपनी पत्नी शौरिक दूरी है, अहसे पूर्विक 'आवेश'

(१) सिद्धांत बेराम्य बीदा, बेहान्ती रमार्त-रामेन
 से अत्यन्त वा अर्मा, यामसाध पठक' रमृगा'।

अर्द्धतन्त्रमपीत्यधिकार, अहम्य से।

परारुमुत्तमायाया, निर्जीवातमिभिया—बही, पृष्ठ ३२

(२) अहतेपान्य विद्यामेवी—ब्रह्मचारी म अहमे — अहते, पृष्ठ १३

नहीं उत्पन्न होता, अतः वह साधना में बाधा नहीं है। पत्नी को दूती नहीं कहा जाता। जो दूतियाँ बन सकती हैं, उनके नाम ये हैं—

स्वपत्नी, भयिनी, माता बुद्धिवा या शुभा सखी।

दूती कुर्वानु कामादीं न पुन काममोहित—तंत्रा० ३१ बा०

यहाँ जो 'स्वपत्नी' शब्द आया है, उससे यह नहीं समझना चाहिए कि 'स्वपत्नी' को दूती माना जा सकता है। स्वपत्नी हीन दूती के रूप में स्वीकार्य है।

दूती के साथ केवल सिद्धि के लिए एकाग्र रस विषय है, लोभसह नहीं।^१ कुल चर्चा भोग के लिए नहीं है। यह तो मुक्ति का साधन है।

दूती के साथ मेलक के समय दूती तथा साधक को स्वल्प-विभ्रान्ति का अनुभव करना चाहिए तभी विषय का नाश होगा। इसलिए यौगिनी के साथ तादात्म्य का कारण बनाया गया है। संकट केना में शक्ति एक शक्तिमान श्री पर स्वर उन्मुक्तता से जानकर में विद्यमान होने से सृष्टि संसार होता है। अतः इस अवस्था में स्थित होकर गुणविस्था का अनुभव होता है अतः शक्ति (दूती) को साधक मुसदाय करना चाहिए। शक्ति की पूजा करनी चाहिए बार बार संकट बरना में स्थित होकर ब्रह्मार्णव का अनुभव करना चाहिए। इससे 'आत्म्य सम्बोध' की प्राप्ति होती है। इसीलिए यह चक्र-पूजा कहा जाती है।^२

शक्ति शून्य स वायु का जन्म होता है और वायु से पुनः तत्त्व (विंग) का उन्नापन होता है, अतः वायु एक पुनः-शक्ति के योग से आकाश अवस्था घुम्ना बरना की प्राप्त किया जा सकता है।^३

(१) स्थिरधर्म रमयेत्प्रवृत्तां न लौक्येन वराचन—तंत्रा० २६ बा० पृष्ठ ३०

(२) हाम्या तु सृष्टि संहारी तस्मात्मेतक मुत्तमम्—बही पृष्ठ ७४

(३) चक्र शक्ति का अर्थ इस प्रकार है—

विराडात् सृष्टिं पापोऽङ्गनात्पि सतिरा ।

चक्रं वसेत्तत्रे कुर्या, करोत्येत्थ विसोदितम्—

(४) घुम्नीयको अनेक वायु मेदुत्वा रक्षणं अनेक । बही पृष्ठ ७६

वायु मेदु सदाप्योवात्—तंत्रा० ३६ बा०, पृष्ठ ७४

खाएष पूज्य पूजक भाद्राम, पुण्य पुष्य चन्द्र, मन्त्र वषट् कुड
 काष्ठ, धादि गव बुध शक्ति एव शक्तिमान् की पूजा (द्विती एवम्) म
 केन्द्रिय है ।^१

जिस विषय इन्द्रिय से जो जो आभासित हुआ है, उसी में योगी सम्मत् हो
 प्रायः। क्योंकि इन्द्रियों से प्रकट होम वासा आनन्द ही परमानन्द का साधन है।
 इसी से अग्नि भावना का विकास होने से यह योग अग्नि-योग कहलाता है। क्योंकि
 केन्द्रन इहो योग म चारों ओर से एक साथ पराधर्म होता है और पराधर्म से ही
 साक्षात्कार होता है। संन्यासी प्रधान धर्मों में 'समन्तान् आकर्ष्य मही ह्यना मन'
 भेद-गुणा की शक्ति के लिए अग्नि यज्ञ सेवनीय है। यह अग्नि बलि रीति के मूल
 से ही प्रकट हुआ है जना म सारी सृष्टि बोध-योग है^२। रीति का मूल ही मुख्य धर्म
 है, उसके उत्पन्न स्थानानुवृत्ति पर आधारित यह 'अग्निप्रेष' कथा अनुष्ठान का विषय
 है। पर इस सिद्धा मही का उच्यता। बुधगुणा के लिए साधना का वर्णन इनमा
 ही है। बुधगुणा की साधना असम है।

बुधगुण-साधना बुध-व्यवस्थित साधना ही बुध-साधना है। इसके लिए
 अपने शरीर में स्थिति पर्याप्त ही सेवनीय है। शरीर म स्थित पराधर्म कर्म एक रज
 है जो शरीर व सार है। ब्रह्म के पराधर्म सच्चिन् (वेदमय) के निरन्तरम है अतः व
 की मुख्य है। इन्हें 'बुधगोतक' भी कहते हैं। बुध पर्याप्त रज बोधन = बोध।
 इनने भगवान् ने मनुष्य बुधावस्था में बंधार अमर ही जाना है। वही धैर्य गायन
 है। बुध बोधक से मुरा का भी संका होता है। अतः योगिनी मुरा में उचित मुरा

(१) योगिन्द्रियेय पूज्यमे पुरुषध्वेय वृत्तम् ।

भाद्रामं तु तपोऽग्निं पुण्यं च वषट्कणम्

पुन माग्निद्वन्द्वं योगं चक मनुजानं मयन्

मन्त्रं चिदाया वाग्व्याजं वषट्कणाय च मृगम्

भाद्रुड गव सिद्धमग्निध्वेय भद्राष्टकम् ।

आत्मे च भजेत शैव इत्युक्तं भैरवायने—गी, पृष्ठ ७२

(२) रीति मुरा विहितेऽथवा रीतिमुपायु पाठान् विन ।

रीतिमुपायु धर्मेभिरिति मुक्तिर्लं कानु तन्मम्—नशा० २१ आ०, पृष्ठ २०

का पान करे तथा अपनी उच्छ्वस्य सुरा का पान यागिनी को करावे । उच्छ्वस्य सुरा को पान में भर ले यही सुरा सर्व सिद्धिदायक है ।^१

पुनः दूती को क्षुभित करके ब्रह्म (बीर्य) का पान करे । पक-रचना करे । पक बीर्यकर उसके बीज में शक्ति एक सिद्धि की मूर्ति बनाये । १२ पत्रों के क्रम का चित्र बीज और इस पक की पूजा करे । दूती रमण के पश्चात् बीर्य-विशर्जन के समय चैतन्य के साथ साहाय्य का प्रयत्न करे ।

देवताओं का निवास गेह भक्त्यादि अवयवों में गढ़ता है, वे ही 'अनुचर' हैं । वे देवता आनन्द की आकांक्षा करते हैं । मुख्य चक्र गुह्योन्मेषों में है । संकट-वस्था में वे सब देव प्रगल्भ होते हैं । क्योंकि अनुचर के देवता मुख्य चक्र के देवता शिव एवं शक्ति के ही भव्य हैं । इन्द्रियगण अपनी-अपनी एवियों का रस बीर्य-विशर्जन के समय मुख्य आनन्द में समर्पित कर देते हैं, 'अतः' मुख्य चक्र पूजा से सभी संकट होते हैं और सिद्धि देते हैं । धारे पशुर्ष इसी चक्र-साधना से प्राप्त हो सकते हैं । जिस प्रकार लक्ष्मी के जल के क्षय से समुद्र प्रसन्न होता है तथैव इन्द्रियों द्वारा प्राप्त आनन्द के पर्यवेक्षण से आत्मा संकट होती है, अतः अनुचरों द्वारा चन्द्रेश्वर भी उत्तम होना है । दुर्गादि के मिलने पर ही प्रेषावेश बढ़ता है ।

विसर्ग तीन प्रकार का है (i) उचित (ii) शक्ति (iii) संकट कुंठ का अर्थ भक्त्यु शक्ति का 'उद्यम' है । गोमक = शिव (सिद्ध) 'शक्ति' कहलाता है तथा इन दोनों का मिश्रण ही 'संकट' है जो पूर्ण तयावस्था है, यही विसर्ग है ।

शक्ति उत्क के उद्यम से सृष्टि होती है, सृष्टि को शक्ति करना, संसार करना शिव का कार्य है । इन दोनों के मिलन से उद्यम एवं शक्तिवस्था के बीज की अवस्था

(१) विद्याध्य नीलकंठ च कुम्भ च तनुधर्यमे ।

उत्सव्यं वृत्त महाध्यं मुनेन तनुधर्यमे ।

त-वर्षं तन इत्या पुनः पुत्वा स्वकनरगम्

पार्श्वं प्रपूर्येतान महाध्यम्बु विनिमित्तम्

तेनार्थं पार्श्वं कर्षीन् सुबोधिद्विष्टमत्रम्—बही पृष्ठ १२

कुम्भ पत्ति, त्रिकोत्रिंशद् मेतरु परमंपरम्—बही पृष्ठ ११

(२) रम रमकर नाग्निज्वरज्ज्वल बहिर्धीवचर न बधेव ।

विधानि नाम तिष्ठन् लब्ध्वा स्वात्मन्यप्यपते । बही, पृष्ठ १७

'अनाद्य' की प्राप्ति होती है, यहाँ वेद-वेदक भाव समाप्त हो जाता है। धांका वेदान्त में भी चित्त के उदय एक धाँक अन्तर्भावों के बीच की अवस्था ध्येय मानी गई है। प्रथम भुक्ति का भाव हो जाय और दूसरी उक्ति न हो—दो भुक्तियों के बीच की यह अवस्था ही प्राप्य है। दो भुक्तियों के बीच में ही शैतन्य का प्रकाश रहता है। यही भुक्ति है।

प्राण-योग में भी मध्य अवस्था—इहा पिगला के मध्य सुषुम्ना को ही उद्धिवा कहा गया है।

अतः मय एक विरोध का अभ्यास आवश्यक है और इसका लिए शक्ति तथा चित्त का परामर्श होता है, बड़ी निष्ठि देता है। इन विविध परामर्श से जो हृदय में नाम उत्पन्न होता है यही मंत्र है।^१ इसी मंत्र के जाप सब पदार्थ एक निष्ठियां सुखम हैं। मंत्र अनिर्वचनीय आत्म के नाम के लिए उत्सुक रहता है, इन उत्सुकता के न रहने पर मंत्र निर्वचनीय हो जाता है। मध्य-बन्ध में स्थिर रहकर पुनः पुनः इन मनुभूति का अभ्यास करे और संप्रदायता में रहकर स्वपरामर्श मठ होकर तीन भाग बार जाप करे।

इस विधा विमर्श को ही चन्द्र-रचना द्वारा समाधाय जाया है। १५ कमल के बीच एक त्रिभुज बनाया जाता है। यह तीन रूप का होगा है। इसी त्रिभुज के मध्य में मूर्च्छि का अक्षुर उत्पन्न होगा है। तीन त्रिभुजों द्वारा विरोध को बनायी है। बायां त्रिभुज को लला वसिष्ठा रक्त को ले जाती है और मध्यमा गुण-वादिनी काड़ी है मध्यमा काड़ी में जो माल है—उसे पुरण-वसत माल का संप्रष्ट होगा है और रज रेन रूप यन्-मूर्ध का संप्रष्ट होगा है। अत्र वायव्य को वेजना मजि सम्मलित हो जाती है और बन्ध से अमृण लक्षित होने लगता है। अन्तः में सटी बालविक्रम शरीर मुक्त है। ध्यान पात्र नीला रूप भाव आदि सभी अवस्थाओं में पर-वरात्मको वसत रत्ना है और अन्तः में रत्न मन्त्र रूप में प्राण के साथ

(१) एषन् विविध विमर्शित समापनि चाम्नि य उदेति ।

सविपरिवर्तित्वा इति रत्नेरेव मन्त्रमाह स्वातु ।

तत्रैतानि गात्रा वसताभगममुक्ता एव मन्त्रम्

अनन्यथाय शान्तं चान्ते मन्त्रोपमं च विति—गीता० १८ अ० ५५

स्फुरित होता रहता है। यही सहज रूप है, सहज साधना है, सहजात्म्य है। यह सहज रूप वाठ स्थानों पर बसता है—एवाय वा आपमन स्वास का गमन बुद्धि कर्म मनन दिन योनि एव समष्टि।^१

भैरवाष्टक उपयुक्त वाठ स्थानों में होमे नामा रूप सहज रूप है। बुधपद्म हृदय बेज से निकर ओष्ठ तक बध्मरक्त ध्वनि हो रही है, इसका विमर्ष ही सहजनाद्यत्मक रूप है। इस सहजनाद का बाह्य रूप रति-रजस में प्रिया कंठ से उदित 'हा हा' ध्वनि के रूप में सुनायी पड़ता है। इसी नाद को 'मात्री कस्तुरिका' कहा गया है जो सारे मंत्रों में व्याप्त है। यह ह, ह नाद ननुंसक है, दिव्य शक्ति के परे ननुंसक तत्त्व 'अनाद्य' का ध्वजक है। शिव-शक्ति दोनों से उत्पन्न है। यह मंत्र सब में व्याप्त है। ऐसा स्मरण करना चाहिए बध्मना संपद में पठन होता है बध्मना निर्लेप रहना है इसी को 'बीजन्मुक्ति' कहते हैं। भोग काल में निर्लेपता और बध्मना रहना ही बीजन्मुक्ति है।^२ बीजन्मुक्ति ही दिव्य के समान सदान उत्पन्न कर सकता है। विनाश का विनाश होना है।

आदि याग इसे 'आदि याग' कहा गया है क्योंकि यह सार बस्तु को साता है।^३ सारबस्तु इसी शरीर में विद्यमान है और शरीर में ही प्राप्त हो सकती है। इस महान् प्रिया शाय है। यह प्राप्तम्भ है।^४ जहाँ सब पदार्थों का मय होता है, वह वेदना (संविन्) तो शरीर में ही स्थित है, यह वेदना इवीनिय 'इमद्यान' कही जाती है, यह वृत्ति रहित है, यही विधि हाती है। इस इमद्यान वृत्तियों के मय में स्थित होकर ही मंत्र सिद्ध होते हैं और नामा बमस्वर उदित

(१) मयनागमनेऽवसिती कर्म मनने त्रिभिर्दु संपत्के ।

तत्तमेक्षण धीमे वेदान्ताख्ये च मामने चन्द्रे—श्री पृष्ठ १०८ १०९

(२) एव बर्धनि कर्मीनि यत्र क्वापि स्मरन् व्यासिम् ।

सउत्तमनेयो बीजन्मुक्तः पर भैरवी भवति—तन्त्रा० २९ भा० पृष्ठ १११

(३) आदीयने यत्र सारं तस्य दुःखस्य भीष यत्

मुच्यते पापस्तेनायमादि धाम इति स्मृतं—बीरबली शाय उद्गुण—

तन्त्रा भा० २९, पृष्ठ ११२

(४) स्वदेह एवायनं नाम्यदायनं जनेन—तन्त्रा० ३१० २९ पृष्ठ ११९

होते हैं। यही शैवता संकेत-ग्रह है। यही रति रहस्य है।^१ विद्वानों के माघ होने पर शिवतृप्ति के प्रवाह के मष्ट हो जाने पर, सृष्टि-संस्कारों के माघ के लिए समर्प मायम रौरी शैवता कपी समधान में स्थित हीकर कोन सिद्धि प्राप्त नहीं करता ?

शैव-सिद्धान्त मत ये कर्म-बहुलता है वशिष्ठ मार्ग (घातमत्त) में रौद्र कर्म बन्धित है। काममार्ग में सिद्धियों की प्रशान्ता है। शिव-शासन में (बन्धीर शिव दर्शन या ईश्वरपूज्यवाद) स्वल्प कष्ट है स्वानुभूति की प्रशान्ता है और काम-वशिष्ठ बानों नामों का स्थित है यह अतः शिव-शासन संबंधित है। साधक को चाहिए कि वह कर्मचार्य अल्प दुःख स्वानुभव रहित शैवतदि मार्गों को छोड़ दे और श्रुति-श्रुतिप्रदायी सर्वे तंत्रों के श्रेष्ठ तत्त्वों से समन्वित इस ब्रह्मीरी शिव शासन को स्वीकार करे।

- (१) मय सर्वे सर्वं यान्ति ब्रह्मन्ते तत्कल्पयन्वा
 तां शिवः सत्यं वापस्यां ब्रह्मानन्तरं प्रभासु—ब्रह्म सुष्ठु १२१
 गुण्यन्ते इत्यत्रोक्तिम्, योगिनी गिरु भक्तिः ।
 श्रोतारणाने मगारोऽं सर्वश्रुतिं विदुः
 स्वर्गिण मरुताभीर्गे, ध्यं गिरुप्यन्मन्त्रो
 मने विरलानिभुर्न आनन् पर केवले
 ब्रह्मन्ते विनिभुर्न इत्यने शिवः श्रीव
 मकल्प देवाचारो दन्तिः श्रीव विदुःवा

परिशिष्ट
ताम्रिक जैनमत

परिशिष्ट

सांघिक जीवनमत

जैनमत बठार शुद्धाचारवादी है, यह सम्प्रदाय प्रारम्भ में ही घोर निवृत्त प्रथम रहा है। अतः लंका की 'राजशासन' के लिए इस मत में कोई सम्भावना नहीं थी। 'समसाधना' द्वारा अमत्यार प्रदर्शन की प्रकृति जैनमत में बिनामि हुई और इसके लिए देवी-देवताओं की पूजा भी बन्त पड़ी। इन देवियों को तीर्थंकर की 'सिद्धि' माना गया है। इनसे तीर्थंकर की ब्रह्मता भी नहीं हुई और मत गापना के लिए अन्वय भी मिस गया।

जैसा कि बौद्धमत में हुआ जैनमत के घटोर अनुयायन के विरुद्ध भी तीर्थ प्रतिनिया हुई और मूल साधनों और परित्राजनों के स्थान पर मठवागियों और श्रेयवागियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये श्रेयवागी उन बौद्धवाचिनों से सादुरय रखते हैं जो विद्वानों में एहतर 'विचार द्वारा तल्प' का वासातरार करते थे।

इसमें यह है कि राग के पूर्ण विनाश में विराम रखनेवाले मत में संन साधना का सैदान्तिक आचार क्या था? शास्त्र शैर बौद्ध और श्रेयवागिणों में साधना को एक दर्शन पर आधारित किया है, जैनमा ये संनसाधना की वृत्तमूनि में बन्त बाह्यिक आचार क्या है?

धृति का सिद्धांत जन सात्रिक भी मानते हैं। परार्थ में भी शक्ति है और आत्मा आशय और अपरिमित धृति का बोर है। श्री एम० बी० आबरी ने विचार को भी शक्तिमय माना है 'विचार बन्तु है नासक दुःख में उन्ने उन्नत करने हुए ब्रह्मा है कि इसके जीवित पार्थ धर्म का केम है। नृत्त में गति प्रादुष्ट होकर प्रमरित होती है। 'अनुश साध्यम में पर गति यपाक्य द्रिष्ट हा जाती है और उन्नुत साध्यम में पर गति यपाक्य होकर द्रिष्ट होती है।'

1 Thoughts and things—William Walker Atkinson

इसका तात्पर्य यह कि मनुष्य के विचार में अद्भुत शक्ति होती है, यदि वह ध्यान द्वारा विकसित कर लिया जाय तो वह असंभव कार्यों को भी सम्भव बना सकता है। श्रोता यदि किसी 'विचारक' के समुच्च उच्च और गहन ज्ञान है तो उसमें विचारक का विचार यथास्तु प्रकट हो जाता है ('बाहू' या 'इन्द्रबाहू' में इनीसिए मीडियम या माध्यम' का प्रयोगकर्ता के साथ 'तादात्म्य' आवश्यक होता है) और यदि श्रोता असमान उच्च ज्ञान है तो भी विचार का उस पर प्रभाव होता है, किन्तु अक्सर हुए रूप में अर्थात् विरोधी श्रोता पर विचार की प्रतिक्रिया 'निमित्त' होती है पर होती मकरप है।

इस प्रकार शक्तों और शेषों की तरह, सर्वकारी चिन्तन के अभाव में भी वेनसावकों ने मनुष्य की मनोवैज्ञानिक शक्तियों को पहचान कर उनका प्रयोग किया था। शक्तों की विशेषता ही यह है कि छात्रना में समूहों में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रयोग किया है, अतः अंतःप्रयत्न द्वारा मनुष्य की इन्द्रशक्ति भावशक्ति विचार शक्ति शब्द शक्ति ध्यानसक्ति आदि को जैन तांत्रिक भी मानते सचे थे। उन्हें विचार की ही शक्ति का ज्ञान नहीं था वे यह भी जानते थे कि 'विचार' भाव के साथ संयुक्त होकर अधिक शक्तिशाली और व्यापक हो जाता है। यही कारण है कि 'देवी उपासना' में जैन साधक शक्तिप्रति के लिए ध्यान विचार और भाव तीनों पर बल देने हैं।

इसके अतिरिक्त वेनसावक यह भी जानते थे कि कुछ 'अमूर्त' विचार ऐसे होते हैं जिनके द्वारा मन में 'मूर्ति' का निर्माण स्पष्टता के साथ होता है और उस 'मूर्ति' से प्रबल शक्तिमान् विचार-यथात् उत्पन्न होता है। इस प्रकार जैनमय शक्तिशक्तियों तथा अन्य साधकों की तरह किसी 'मूर्ति' की मन में सृष्टि कर उससे शक्ति प्राप्त करने का विरागी है। यह 'मूर्ति' किसी 'देवी' या 'देवता' की हो सकती है अथवा किसी 'व्यक्ति' या 'बस्तु' की भी हो सकती है। उदाहरण के लिए 'मार्ग' या 'क्रीडारण्य' के लिए कुछ 'बस्तु' की जाती है जैसे मार्ग के लिए बग्न मग्न परों की धूमि आदि और क्रीडारण्य के लिए ध्वज और बद्य आदि। इन बस्तुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाना है। ध्यान क समय यह मान लिया जाता है कि जिन 'व्यक्ति' पर प्रयोग किया जा रहा है, वह व्यक्ति 'बस्तु' के रूप में सम्पूर्ण स्थित है। अतः उस 'बस्तु' में एक व्यक्ति है, ऐसा विश्वास ही उन साधक विश्व होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सारी साधना प्रयत्न 'कल्पना' का

अपने शुद्ध रूप में परमात्मा के समान शुद्ध और अनन्यरहित है, जो व क्षण यह उच्च स्थिति प्राप्त हो सकती है, अतः जैनयोग द्वारा आत्मा हा साध्य है—

परमात्मसमापत्तिजीवात्मनि हि युज्यते ।
अनेदेन तथा ध्यानन्तरङ्गस्वराक्षितः ।

संन्यासना में पूजा या आचार तथा भक्ति की प्रधानता है। जैनमत में इसका बहुत प्रचार है, किन्तु लक्ष्ययोग का प्रचार नहीं है। जैनसाधक 'ध्यान या भावना योग' को अधिक पसन्द करते हैं। ध्यान योग में वैराग्य द्वारा समाधि प्राप्त की जाती है और मानसिक वृत्तिप्रवाह को समाप्त कर शुद्ध चेतना को प्राप्त किया जाता है और इस प्रकार चेतना निर्विकार हो जाती है। इस उच्च स्थिति को प्राप्त कराने वाले योग में 'सिद्धि' और 'मुक्ति' को कोई महत्त्व नहीं दिया गया क्योंकि 'मुक्ति' में विकार रहना है। सिद्धि और 'मुक्ति' की प्राप्ति के लिए 'वैराग्यवादी' जैनसाधक अधिक उत्सुक थे। इससे विपरीत कुछ निर्विकार स्थिति को प्राप्त करने वाले योगों 'वैरागी निरव्यय या 'विष्ययोग' कहलाते थे। तीर्थंकर ऐसे ही विष्ययोगी थे। 'वैराग्यवादी साधकों का जैनिया में इसीलिए अधिक सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। इन प्रकार जैनमत में 'विष्ययोगी' और 'मुक्तियोगी' साधकों का अंतर स्पष्ट नहीं है। 'मुक्तियोग' या 'संन्यासयोग' द्वारा 'मुक्ति' प्राप्त नहीं हो सकती जबकि विष्ययोग से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती ऐसा विश्वास प्रचलित है। विष्ययोगी पूर्ण अनौचित्य स्थिति प्राप्त कर लता है जबकि 'संन्यासयोगी' विष्य आगम को केवल धनक मात्र वा सज्जे है।

जैनतंत्र और अन्य तंत्रों में कुछ बातें सामान्य हैं—जोनों में 'भक्ति' पर जल दिया गया है। जाति और लिंग का भेद साधना में स्वीकार नहीं किया गया अतः सांनिकपारण की समतावादी और जातिविरोधी प्रवृत्ति यहाँ भी विद्यमान है। इससे अतिरिक्त आचार कथेन में मंत्र और यज्ञ मुद्रा स्वास मूत्रपुदि मुद्रादीयस मंदिरनिर्माण मूर्तिनिर्माण कर्मा उत्सव आदि अन्य सांनिक मन्त्राणों की तरह स्वीकृत है। 'युक्त' का महत्त्व भी अन्य तंत्रों की ही तरह स्वीकार दिया गया है।

किन्तु जैनतंत्रों में पंचमकार का प्रयोग सर्वथा अज्ञित है क्योंकि जैनी रनिर्माणवा सांनिक है। गोरगायत्रियों की तरह सर्वत्र बहुकार्य पर का दिया गया है। फिर भी वैराग्यवादीयों का जो विचारण निमत है उसमें यह नहीं मलता कि

इन साधकों में यज्ञधर्म का पूर्ण-पामन सम्भव था। यह सम्भव है कि मुष्ण साधना का गुप्त रूप से वैश्वकाशिया में प्रयोग बनता हो—

ये बुझाणु कैयों और मठों में रहते हैं पूजा करने का आरम्भ करते हैं। देवद्वय का उपनोग करते हैं जिन मंदिर और छासाएँ बनवाने हैं रंग-बिरंगे सुवर्णित धूपबास्त्रिय बज्र पहनने हैं बिना पाय के पैरों के सुमुख त्रिपों के भाग पाते हैं। भायिकाओं द्वारा साथे गुरु पदार्थ खाते हैं—ये मुहूर्त निरामते हैं निमित्त बतसाते हैं प्रकृत भी देते हैं—त्रिपों के समस्त व्याख्यान देने हैं और त्रियाँ उनके गुण पाठी हैं—उच्छेदन करते और बेचक संघ संघ बंदा ताबीज भाति में कुञ्ज होते हैं—के पद हैं यमग नहीं—भायिकाओं के साथ एक ही निवास में रहते हैं।^१

यह स्मरणीय है कि बौद्ध विहारों में भिक्षु और भिक्षुणियों के एक साथ रहने से ही 'बीजतन' का प्रादुर्भाव हुआ था। इसी प्रकार यह सम्भव है कि भायिकाओं के साथ रहने से वैश्वकाशियों में मुक्तियोग का प्रादुर्भाव हुआ हो। इनमें विपन्नेर वैश्वकाशी नष्ट रहते थे और वेगाम्बर तापक बन्ध पाण्य करते थे। अपनी संन्यासना के द्वारा ये महत्त्व तात्त्विक धारारों और अन्न मृद व्यक्तियों पर अग्रिम प्रभाव रखते थे।

जैनसाधकों के प्रभाव से ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि जैनसंन्यासना भी अथर्ववेद की परंपरा का ही विनाश हुआ है। सप्तम में बामुंन की या बामुंनरेवचरित में अथर्ववेद के संनियोग का वर्णन किया है (१५१) इसी प्रकार सुनहान्जरीवा में योसाकु ने अथर्ववेद के अमिचार विवरण दिया है^२।

जैतियों के सांख्यिक साहित्य 'विद्यामुद्रका' के दशम अध्याय (पूर्व) में संन्यास का वर्णन है। अथर्ववेद का अर्थ लुप्त है परन्तु पत्रकों साहित्य में इनका वर्णन है। जैनधर्म साहित्य द्वापय भगों में विमल है। इनमें १२वें अध्याय में पूर्व साहित्य का 'विद्यामुद्रका' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—

यनातेहविद्या विद्यायिवा बर्द्धनं त्तिद्यामुद्रकां

१) जैन साहित्य और दर्शन—भापुयम प्रदी दृष्ट १८० १८१

2) Comparative and Critical study of Mantrashastra—M. B. Jhavery Ahmedabad, 1944 Page 96

रियम्बरों के अनुसार वसन्त पर्व में ५०० महाविद्यालयों का दर्शन या और ७०० अल्पविद्यालयों का ।

जैन संन्याससाहित्य और साधना का विकास जैन संन्यासना पारसनाथ के समय से मानी जाती है । पारसनाथ २३वें तीर्थंकर थे । इनकी मृत्यु महावीर स्वामी से २३० वर्ष पहले हुई । सम्भवतः विद्यानुप्रवाद-साहित्य पारसनाथ के समय का है । जैन संन्यासकों में शायद इीशानिद पारसनाथ की पूजा अधिक होती है । पारसनाथ की सेविका सेवियों और सेवक सेविकाओं को संन्यासना द्वारा प्रवृत्त कर 'शिष्टि' प्राप्त की जाती है । 'नेरवपचावडीकल्प' के सम्पादन की श्रावणे की अनुमान है कि पारसनाथ के समय (८७६ पूर्वोक्ता से ७७६ पूर्वोक्ता तक) ही नारद्विर के संन्यास का उदय हुआ होता । पारसनाथ काशी के राजकुमार से अत्र वे अचरित की संन्यासना से प्रभावित हुए होते । जो हा यह निश्चित है कि जैन परंपरा के अनुसार जैनियों में संन्यासना बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है । महावीर की मृत्यु के १७० वर्ष बाद मद्राहू की मृत्यु हुई थी मद्राहू ने स्वरत्नवंश के द्वारा पारसनाथ का आवाहन किया था । मद्राहू जैनसंन्यासना के शार्त्तिक आचार्यों में माने जाते हैं ।

द्विद की जैनसंन्यासना और साहित्य का उदय कठिन ही प्राचीन ही इसका प्रकार ईसा की प्रथम शताब्दी के बाद ही बढ़ता दिखायी पड़ता है, अन्य तांत्रिक सम्प्रदायों की उत्पत्ति का भी यही युग है । श्री श्रावणे की शैत्यवासियों की उत्पत्ति ईसा के आठवाँ ही मानते हैं । कुषण और गुप्तसाम्राज्य के समय के मध्य ही अरबों को 'पतन' का पुत्र माना जाता है, एही अवधि में जैन शैत्यवासियों ने अपनी संन्यासना का प्रचार प्रारम्भ किया ।

ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग जैन संन्यासकों के चतुस्रों की कर्णार्थ प्रवृत्ति होने लगी थी । राजा गर्दीशिल की कृपाचार्य ने ७४ पूर्वोक्ता में संन्यास ले करान्त कर दिया था क्योंकि कठमूर्ति को साधनी बहिन का राजा गर्दीशिल ने अन्तः अन्तर्गत किया था ।

पान्देवद्विर (बिहम की तृतीय शताब्दी) ने 'समुदायिर्मन्त्र' की रचना की थी । यह महान साधक था । लघुविद्या में उस समय ३०० जैनधरिद थे । मानस की ही तरह वादिवेताल पात्रिमूर्ति ने बृहत् शान्तिर्मन्त्र की रचना की थी । इन शान्तिर्मन्त्रों के अन्त से रीण का काठ हुआ है । बिहम की पीथनी घटी

में मिथिलेन दिखाकर साधक का प्रादुर्भाव हुआ यह मंत्रों के सनाभों की सृष्टि कर देता था। मन्मन्वादि गुरि भी इनो पण्डिटी का साधक था।

सम्राट अजोह क मर्वा सम्पति पर शैत्यकाशियों का प्रथम प्रभाव था इसमें बहुत से शैत्य और मन्दिर बनवाये। उनके परशास्त्र धामकों द्वारा मन्दिर निर्माण-कार्य तेजी से बढ़ता गया और शैत्यकारी साधकों का प्रभाव भी बढ़ता गया।

मानतुंगगुरि ('भक्तामरलोच का भण्ड) कवि काल का समकालीन था। हरिप्रदगुरि ने 'तात्पर्य लौकिक तांत्रिकों को पचल किया। यह अम्बिका देवी का भक्त था। हरिप्रद का समकालीन सीतगुप्त गुरि था (८वीं शताब्दी)। इसने तथा बापामट्टिगुरि (८१०-८१५ वि०) कीरमणि शान्तिगुरि तथा गुराचार्य (११वीं शताब्दी) ने मन्त्र विद्या का प्रचार किया।

शैत्यकारी आने लगे थे। इनके पुत्रिया भट्टारक कहलाते हैं। आचार्य कहलान काल साधक गुरियनों का जन्म करते हैं और साधारण लोग परमेष्ठिन का। संकेपी साधु भी गायिक बन जाते हैं। यों इन्हें मन्त्रविद्या के सम्मान की मनाती है।

११वीं शताब्दी और बाद के गायिकों में निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं—
 यशोभद्रगुरि अथर्वण पीराचार्य जिनका वादिदेश हेमचन्द्र मन्त्रविधि, दक्ष
 पारमिष्ठाणि सागरचन्द्र अमरचन्द्र बालचन्द्र धर्मयोग देवभण्डाणि पूर्णकमलधर्मि
 (११०७ ई०) जिनका जिनकुशल भुवमनुष मेरुगुप्तगुरि मुनिमुक्त हृदयमनगुरि
 जिनका (अन्तर का समकालिक) धानिचन्द्र यशोविजय मेघविजय और
 कीरविजय।

आधुनिक युग में भद्रनाम धानिविजय और जयविह गुरि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन द्वारा 'मन्त्राट्ट (यादि आचार्य) में आधुनिक युग तक जन संस्थापकों की अग्रत परंपरा मिलता है।

जनमन्त्राट्ट में कई द्वारा के रूप है। अन्तर 'विद्याभूषण' की कर्ता तो चुकी है। इन अतिरिक्त साधकों ने अग्रत गणना-कार्यों का निर्माण किया है। 'पूर्वनिर्वाह (विद्याभूषण) का गायिक रूप 'धर्म' कहलाते हैं इन एक योनिगम्य रूप की है। 'अंगविद्या' नामक रूप में व्यास का अन्तर्निर्वाह है। मन्त्र में परमेष्ठिन पवित्रता माना जाता है पर साधकों

समान समानित है। 'निर्वाण कर्मिका' नामक ग्रन्थ का निर्माण प्रथम अष्टाश्वी के आसपास हुआ। इसमें आचार्यों यहाँ मूर्तिनिर्माण तथा देवी-देवताओं का वर्णन है।

'ब्रह्मस्वामी द्वारा निर्मित (११४ वि० म मृत्यु) वर्द्धमानविद्यावस्य तथा पद्मगुहाचार्य (ब्रह्मस्वामी का परवर्ती) क 'अनुभवसिद्धमन्त्राभिषेक' एवम् निर्वाणकर्मिका में मूर्तिमूर्तियों का वर्णन है जिनका जप केवल आचार्य ही कर सकते हैं। मूर्तिमूर्तियों के विषय में कहा गया है कि ये 'अपमदेव' के समय भी प्रचलित थे। महावीर स्वामी का शिष्य गौतम अकलाकक या और अपमदेव का शिष्य तुलसीक 'ब्रह्मचर' भी मानिक था। सम्भवतः 'परमेष्ठिमन्त्र' वर्द्धमान विद्या और मूर्तिमूर्तियों का प्रारम्भिक रूप एक ही था बाद में वे अलग-अलग रूप में प्रचलित हुए। मंत्रों में 'सरस्वती' के मंत्र बहुत अधिक हैं। मंत्रों की दृष्टि से ब्रह्ममन्त्र 'हाविमन्त्र' है क्योंकि बीजमन्त्र 'ह्र' से प्रारम्भ होते हैं। 'पद्मावती देवी' का मन्त्र है—'ह्रम्'। कोई भी मन्त्र 'क' से प्रारम्भ नहीं होता।

मंत्र जिन देवताओं से सम्बन्ध हैं इनमें मुख्य ये हैं—सरस्वती अम्बिका बुधेरा पद्मावती सिद्धायिका इन्द्रायी विष्णुप्रिया अमृता और अम्बेवरी। इनमें अम्बेवरी का सम्बन्ध परमेष्ठिमन्त्र से है। पद्मावती का सम्बन्ध पार्श्वनाथ से और सिद्धायिका महावीर से सम्बन्ध देवी मानी जाती है। स्पष्टतः 'सरस्वती' अम्बिका बुधेरा इन्द्रायी और अम्बेवरी नाम त्रिन्नु परंपरा के हैं जिन्हें जैनियों ने स्वीकार कर लिया है।

मांत्रियों में 'विद्याधर' और 'विद्यादेवी' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनका प्रचार ८वीं शताब्दी के बाद अधिक हुआ। अपमदेव की 'नामी' और जिनामी द्वारा मेवा में प्रगट होकर मायी और फिनामी को गोपी मन्त्रापी रोहिणी और पद्मापति नामक विद्याएँ प्राप्त हुईं। ये विद्याधरों की अविच्छिन्नी शक्ति हैं। विद्याओं में 'महाज्वाला' प्रथम विद्या है। ये विद्याएँ सब पदाब्ज से भरती हैं। तांत्रिक पर्यक्रम हमें विद्याओं को उपासना में प्राप्त होता है। इनकी विद्याओं में एक 'आदर्शनी' विद्या भी है जो स्पष्टतः अत्यन्त ही भीम है। अन्य विद्याओं में पाँचराशनी दण्डाल उत्पन्न कर सकती है। भोद्वाराय सम्मोहन के लिए गर्भकरा गर्भधारण के लिए दुर्भाग्यकरा वधु-गाय क लिए और गुणाकरुण समृद्धि के लिए मेवा हीनी है। इनके अनिर्दिष्ट वेनामी अर्धवेनामी अक्षरवादिनी तातोडादिनी (जिनकी पूजा से बन्ध साधे लुप्त जात है।) आदि

विद्यार्थ हैं। य विद्यार्थें एकर, त्रिक तथा कर्मिय देया स सम्बन्ध मानी गई हैं अर्थात् जैनशास्त्रों में भा अनाय देवो-देवताओं को स्वीकार कर सामाजिक सम्बन्धन में सहायता की है।

दियम्बर जैनमत में जगतमासित्री और महाभामा का महाम्य अर्पित है। इस मत के अनुसार विरम की दृष्टा एकाद्री में संतमिद्राबाधों का प्रभाव बड़ा और यह मत इतिहास के भी अनुसृत पटना है। प्रथम मित्र पुण्यपाद हुए एकरभात् हेताचार्य (२वीं शताब्दी) और उनके बाद इन्द्र मन्दा (२२६ बिन्दी)। इन आकाशों का नाम महिषमिथुरि (११० वि०) से प्रसिद्ध भेरवपावनी तथा सिद्धा और उनके बाद शुभकाचार्य ने शास्त्रार्थ लिखा। ज्ञानार्थ और हेमचन्द्र के योगदान में कोई विषय अलग नहीं मिलता। नापुराण देवी के अनुसार हेमचन्द्र का योगदान ज्ञानार्थ का ही प्रतिष्ठित मस्करण प्राप्त है। महिषमिथुरि ने भेरवपावनी कल्प के अनिर्दिष्ट 'सरस्वतीमन्त्र' तथा 'ज्वालिनीमन्त्र' की भी रचना की है। इनके नाम से 'नामचण्डाली कल्प' भी मिलता है। महिषमिथुनाचार्यों में बहुत सख्त संप्रदाय माने जाते हैं।

इन मुख्य तंत्रों के अनिर्दिष्ट बाधों पुष्टता और कथामा में भी अनेक संज्ञा विद्याशा और छिद्रिणी के विवरण मिलते हैं। नियत मूरि के (वि० १३०) के 'पत्रमचरित' में ११ विद्याशा का वर्णन है। 'पत्रपुष्टता' में भी लेख उल्लेख मिलते हैं हेमचन्द्र के विपत्तिनाकापुराण परित' में भी विद्याशा का वर्णन है।

बिहम की १२वीं शताब्दी तक ज्ञान माने जैनतंत्रा और अन्य तंत्रा में आपानत को अंतर प्रतीत नहीं होता जमा कि भेरवपावनी कल्प का विवरण में प्रभावित होता है। भेरवपावनी कल्प का प्रथम अध्याय में माधव की विद्याशा में तीय में व्याग तृतीय में पदार्थ चतुर्थ में मुग्ग आगत ज्ञानार्थ नामक पञ्चम में मूलमंत्र पत्रपुष्टता में अथ पञ्चम में मन्त्रमय दृष्ट में श्रित्तवकरण गनम में अनी काय मन्त्र में अविन्दवपन मन्त्र में अविधि-वर्णन तथा द्वाय अध्याय पाएँ।

(१) (अ) जैनशास्त्र और नीतिगत पुष् ३६३ ६६

(ब) भी आदर्श के अर्थ अन्वयिष्य मन्त्र श्रित्तवकरण मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र में ज्ञानार्थ का प्रभाव के योगदान में परवर्ती ज्ञानार्थ लिखा है इत्यन्त पुष् ३३६ ३३०

ने कुंडलिनी योग की कर्षा की है। ब्रह्माभट्टमूरि ने प्रसिद्ध 'सरस्वती मंत्र को रचना की थी। इस मंत्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि ब्रह्माभट्ट मूरि कुंडलिनायोग से परिचित थे।^१ उन्होंने 'सर्व ब्रह्म' और 'परम ब्रह्म' की एकता पर भी बल दिया है। इनके अतिरिक्त 'भुवि सुन्दर मूरि (३४३६ १२०३ वि०) में भी कुंडलिनी योग की कर्षा की है और 'सहस्रारचक्र' में ध्यान केन्द्रित करने पर बल दिया है।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि जैनतंत्र में मुख्यतः 'मंत्रशापना' की प्रायः ही और 'मंत्रशापना' के क्षेत्र में अनेक नवीं काल में जैन तंत्रों का पूर्ण मातृत्व है। पचासवां शती के सद्गुरुनाम को देखने से पता चलता है कि अनन्तपर मनी केवियों को स्वता स्वीकार करते थे। 'पचासवीं शती महानहमी' 'कमला पीरपा रमा माहेस्वरी महादेवी, जिवा सर्वा कर्णी दुर्गा भुवनेश्वरी सरस्वती, भारती साध्वी भयवती नेत्रो बामपेनु बामी बामा बालिका कथा वेदमाता बीरमता, त्रिनमाणा, त्रिनेश्वरी, योगिनी, योगेश्वरी भाविनी, माताम्या कुंडलिनी पद्मकेशविकायाता भोगवती, विठ्ठल मुष्ठी विठ्ठल सुष्ठी भैरवी भीमा, तारा स्वलिता, कामशाधिनी बाम्यापनी विन्नामधि जया विजया जयन्ती शंकर रवा, हनुमतरवा आदि नाम दिए गए हैं। इसमें सातत्य और अनन्तशापना की मूलभूत एकता गिळ हाती है किन्तु सात्वत और शैवी के ब्रह्माचार को जैनमत में स्वीकार नहीं किया गया, वह अनन्त की सर्व प्रमुख विद्यया है।

इसके अतिरिक्त उक्त विवरण से यह भी स्पष्ट है कि अनन्तशापना में समयमत्र ही स्वीकृत हुआ है। कुंडलिनीयोग के शापक ब्रह्म कम हुए हैं।

शैवी विधिपत्र यह है कि मूलतः 'अनन्त शापक मत्र' होने के कारण जैनशापक शापक और ब्राह्मणशापक के बने ही विरोधी हुए हैं जैन कि बौद्ध और अन्य तानिक। इस दृष्टि का प्रभाव 'जैनशापक' पर भी पड़ा है, किन्तु भागे बनकर हिन्दी के सग शाहित को भी प्रभावित किया है।^१ उक्त 'शापक' शापक हैमचन्द्र क पूर्ववर्ती जैनशि मुनि रामसिंह ने पाहुड़ दाहा या पाहुड़-शेरा की रचना की थी। 'शापक' शब्द से अनन्तशापना का ही बोध होता है। 'पाहुड़शेरा' से यह स्पष्ट है कि रामसिंह की शायी पाल-मरपरा की शायी है जो सत्रशतियों से सादरन रचती है—

जाति प्रथा का खंडन कामु समाहि करन को खंचन
 जोषु मजोषु मखिषि को खंचन
 हल सहि कबह केव समाखंड
 खहि खहि खोखड तहि अप्पाखंड

अर्थात् समाधि किशको मगाळें ? किसे पूरु खुन मखुन कहकर किसे छोड़ें ।
 मसा किशके साथ कपह करे ? जहाँ ही देखना हूँ खईन मपनी आत्मा दिखायी
 देती है ।

अंतरावशोकन देहादेवनि ओ बसई सखिहि सहिखड देड ।
 ओ तहि ओह्य सखिसिह सिगु गबेरहि भेड ।

अर्थात् हे योवी इस बेह के देवालय में छत्तियों के साथ जो बेह रह रहा
 है, वह छत्तिमयुक्त शिव कौन है ? शीघ्र खोज इस पद को ।

याज्ञापार खंडन ताम कुमिलखई परिभमई कुस्मि ताम करति ।
 गुरुद पसार खाम ख वि बेहई देव मुखसि ।

अर्थात् कुीयों का परिभ्रमण अभी तक किया जाता है और कुतूहा भी अभी
 तक बनती है जबकि कि गुरु के अनुग्रह से देह में स्थित देव का परिभ्रमण नहीं
 हो जाता ।

ब्राह्मण्ययाद् का विराघ पंडिय पंडिय पंडिया कल खंडिषि तुस खंडिना ।
 अन्ध गवे तुझे सि परमायु ख आखहि मूझे मि ।

भवत् पंडिन कनों को छोड़ तुने भूमी को ही बूटा है । अन्ध और उसके
 अर्थ में तुझे संताप है किन्तु गुरु परमायु से तेरा परिचय नहीं ।

पांगरखंडखंडन मुंडिब मुंडिब मुंडिया निर मुंडिड बित्तु ख मुंडिया ।
 चित्तई मुंडलु जि कियड संभारई गंडलु ति कियड ।

अर्थात् हे मुंडियों भ खोळ शिर जो अगला तुने मुंडा मिया पर बित्त जो
 नहीं भुंजना समार का खण्डन बित्त को मुंडाने जाता ही कर सपता है ।

मुंडसिनीयोग की स्वीकृति कामिप चिया अरु हाहियख मगखई यहि विराम ।
 तहि गामटा लु जागरई खबर बसावई गाम ।

अर्थात् बाह्य और धाम ब्रह्माण और दार्ष्टिकी और भी धाम ब्रह्माण दिव्य मन्त्र को गूने मूना ही रखा अर्थात् इन्द्र विना नादिया क बीच सुशुम्ना म अपने विना क निरोप नहीं किया ।

पुनः रामसिंह की तरह मृति दबोल भी मर्षी शक्ति ध । जन योग्यापना का हनर को प्रयास दिग्गामी पदना है, दिव्य ध अन्तिर गल्लारी जेव प्रतीत होने है । इनकी रचना 'गाययपम्प दोहा है—

अर्थात् धामरूपमें सीला को सामान्य गुरुत्या के लिए लिने गय है । देवमेत भी हेमचन्द्र के पूर्वकी दार्ष्टिकी और बलि थे ।

आविद्याद् का विरोध षट्पम्प का आधार है अन्तु मुह कि पद ।
सा साकट कि सापयई अन्तु कि सिगमलि हाइ ।

अर्थात् इन पर्य का जो भी आधार करना है, कि चा' का दास्य हो या गुरु बड़ी थाकत है, थाकट के खिर पर बना रोई मनि बिपरी रना है ?

पुनः देवमेत मे अपिनाशन दग्गियममम का उपलब्धि गिया है जो जनगपना का मूनाधार है । इन रचनाओं के रचयण ध ही स्पष्ट है कि आधारपण के बरिषों को इन्होंने ब्रह्मविन किया है ।

द्वितीय जम ब्रह्मापना म राक्षसापना का रक्षाति गते है का वेदब्रह्माण को इनस प्रेरणा मूरी सिमी । ब्रह्माणकाम्य धाणरपण म अविन दनापि हुआ है जो गुराणों और विजयकर ध मद्भागवा पुत्रा क माध्यम मे बन्दना कर पट्टना है ।

द्वितीय क उभयपण्य काय्य का दृष्टिमे मे जो रिगट आविवाण दिग्गामी पदनी है जम जन मत्रमापना और जम योग्यापना मे अन्ता धरबन्तु योग्याण गिया है । ब्रह्माणर क विरोध म धर राक्षस और राक्षसाण की तरह जेनगामरों का कार्य भी उभयपण्य है । अपनी गम्यगमि दग्गि क बरर उभ मत्रमापना को विगिणर क दार ध दार-दवाओं गपना जोर अन्तर की दृम भूत लणा को जेनगपण के जिहृणर । रिजा । अन्तिरों और पौराणिक हाण म्पान अन्तिर क लेखनिक काय मे जनाविना क काय मे अन्तीय है । मरारो जेनगपणकाम्य भेजपानिया, यणिया आदि के काय को वेदम

(१) उरारी आरना को मन्तराण भुविना मन्तराणम चतुर्वेदी

जाति प्रथा का खंडन कासु समाहि करज को खंचर
 जोपु अजोपु मखिबि को खंचर
 हख सहि कखह केख सम्भाखर
 खहि खहि खोखर खहि खप्पाखर

अर्थात् समाधि कियकी समाज ? किते पुत्र कुण मछुन कहकर किते छोड़ें ।
 मसा धियके साथ कखह कहें ? यहाँ भी खेचना हूँ खरख मपनी आरमा रिखावी
 वेती है ।

अंतरावलोकन देहादेखलि का वसाई सलिहि सहियउ देव ।
 को लहि जोख सलिहिसिह सिगु मखेरहि भेद ।

अर्थात् हे मीठी इम देह के देवालय में शक्तियों के साथ वा देव रह रहा
 है, वह शक्तिमुक्त सिव कौन है ? खीम जोव इस भेद को ।

वाग्वाचार खंडन ताम कुतिलखई परिभमई खुचिम ताम करति ।
 गुख वसाई काम ख बि देहई देव मुखति ।

अर्थात् कुनीची का परिभ्रमण अभी तक किया जाता है और श्रुतता भी अभी
 तक खरती है । खबनक कि गुन के अनुपह से देह म सिमर देव का पखिाम नहीं
 हो जाता ।

माह्मणवाद का विरोध पंखिय पंखिय पंखिया कनु खिबिहि तुस कंखिवा ।
 खण्य गख तुहा सि परमापु ख खखहि मुहा सि ।

अर्थात् पंखिय कनों को छोड़ तुने खूनी की ही कूटा है । खण्य और खण्ये
 खरं म तुने खण्य है, खिनु मूख परमाखं ख तैरा परिखव नहीं ।

पात्र्याहस्यंजन मुंखिय मुंखिय मुंखिया मिठ मुंखिउ खिलु ख मुंखिया ।
 खिखई मुंखिउ खि खिखउ, संसारई खंडखु ति खिखउ ।

अर्थात् हे मुंखियों में खेच खिर जो मपना तुन मुंदा खिवा पर खिल को
 नहीं मुंजाया समार का खखन खिल की मुंजाये वाला ही कर खपटा है ।

कुंडलिनीयोग की स्वीकृति वामिय किया खर खहिखिय मख्खई खदइ खिराम ।
 खहि नामदा ख जागखद खखर खसाखद नाम ।

(१) गंगमुपागार-विषेणी हरि और गंग नाम्य-खरगुणम खनुखै

अबान् वाटें और घाम बसाया और दाहिनी ओर भी घाम बसाया दिन्नु मध्य बने तूने मुना ही रखा अर्थात् इन्ना विषया नाशियों क बीच सुपुम्मा म अपने बिल का निरोध नहीं किया ।

मुनि रामसिंह की तरह मुनि दक्षमन भी ममीं संतुष्टि थे । उन योगसाधना का इनपर या प्रभाव दिखायी पड़ता है, किन्तु वे अधिक मन्तारी जन शील होत हैं । इनकी रचना 'सावयपम्म दोरा है—

अर्थात् सावयपम्म दोरा जो सामान्य गुरुओं के लिए रिया मय है । दक्षमन भी हेमचन्द्र के पूर्वजनों साधनिक और बने थे ।

सातिशाद का विरोध ण्णुपम्म का आवरण संभव मुद सि काह ।
सा सावत्र कि सावयपम्म अण्णु सि मिरमणि दाह ।

अर्थात् इन बर्म का जो भी आचरण करना है, फिर चाहे वह शास्त्रम हो या पूर रही साधन है, सावक क तिर पर बसा जो मनि बिपरी रहनी है ?

मुनि दक्षमेम ने अधिवाशन निन्द्यमय का उल्लेख किया है जो जनसाधना का मूलाधार है । इन रचनाओं के रचना के ही स्पष्ट है कि सावयपम्म क बहियों को इन्होंने प्रभावित किया है ।

पूर्विक जन जनसाधना में शास्त्राध्यायी की स्थापना पती है जो गण्यनाय्य की इनमें घेरना नहीं दिनी । मध्यकाल्य शास्त्राध्यायी न अधिद पनामि हुआ है जो गुराणों और बिपरीतर भे मद्रनामवन पुराय क साध्यम म पण्यवा नद पृथका है ।

हिन्दी क उग्र-वलय काय्य का दृष्टान्तिक म जो रिगत सावित्रधारा दिखायी पड़ती है उग्रमे जन जनसाधना और जन जनसाधना के काना दारजन्म मन्मथन किया है । सायाचार क रिगत म सावराधात और सावराधात की तरह जेनसाधना का काम भी उग्रमेम य है । कनी मन्मथनिय दृष्टि क कारण जेन संवसाधना को विविध रूप दार म दय-दक्षमनों साधना जो साधार को मुन भूत रचना को जनसाधन में सिमूा न । रिगत । -रिती और पौराणिक द्वारा प्यारत 'अभूति क रिगतमिब साव म प्रसादि । क कार्य को मन्मथन है । मन्तारी जेनसाधनाय्या धारणादि । रिगत । अर् क काय्य का बरम

(१) उग्रमेम का सावयपम्म दृष्टि मन्मथनयय कान्तेदा

शुद्धाचार की दृष्टि से देखने के कारण उनका महत्त्व नहीं समझ पाता । किन्तु मध्यकालीन छठों और बेल्बर्गों में जो 'एकता' और अविरोध पर बल देने की प्रवृत्ति है, पाखण्ड और धातिपत विषमता के विरुद्ध जो आन्दोल है, विविधता के भीतर एक्य अनुसंधान का जो स्वभाव है, भक्ति और उपासना के प्रति जो अनन्यता है, मनोभृति को सुख करने का जो भाव है और साध ही साधना के द्वारा प्रकृति पर विजय करने की जो अभिभाषा है, उसके निर्माण में जैन तांत्रिकशास्त्रना का भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में योगदान स्वीकार करना चाहिए । लेकिन यह भी स्मरणीय है कि मध्यकालीन हिन्दी काव्य पर जैनशास्त्रना का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है ।

कृतिपय सहायक ग्रन्थ

अ

- १ अथर्ववेद
- २ आर्यमनुषीमूल कल्प—त्रिवेन्द्रम श्रीरीङ्ग, गद्यपति शास्त्री, १९९० ई०
- ३ अथर्वविधि—तास्मीक्या देवी, बड़ौदा (हस्तलिखित प्रति)
- ४ अथर्वब्रह्मसंह—गायकबाहू झा० श्रीरीङ्ग, बड़ौदा
- ५ अथर्वनिद्रा आश्रम केय—टी० मुद्गुकी, शिकागो, १९०० ई०
- ६ अथर्ववेद संहिता—एम० डी० रामानुजाचार्य, मद्रास, १९१६ ई०

इ

- ७ इंद्रोद्धारण दृ पांचरात्र—ओ० ओडर, मद्रास
- ८ एकतन्त्रेण इरमु आश्रम इंटरनेशनल जर्नल आश्रम तार्किक आश्रम—न्यूयार्क
- ९ एलीमेंट्स आश्रम हिन्दू आरकनोमिस्ट्री—डी० एन० राय

उ

- १० उच्छेपे मारुत की संत परम्परा—पद्मश्याम जनुवेदी

ए

- ११ ऐनासपेट्ट दिग्गे आश्रम वैरुत्त एन्डिया इंडिया एन्ड बोट—या० वैदरिष हाऊनी, म्यून्हाफ
- १२ ऐन इंद्रोद्धारण आश्रम बुद्धिस्ट इलास्टेरियम—डी० महाभायें
- १३ ऐन इंद्रोद्धारण दृ तार्किक बुद्धियम—शशिभूषण दाम गुप्ता
- १४ ऐन इंद्रोद्धारण दृ द ररकी आश्रम इंडियन दिस्ट्री—बम्बई १९४६ ई०

ओ

- १५ ओम्निसोर रिलीजस कल्चर—शशिभूषण दाम गुप्ता

क

- १६ के० पी० महाभाय कम्मगौरयन वस्त्रु—बनपुर

शुद्धाचार की दृष्टि से देखने के कारण उनका महत्त्व नहीं समझ पाता। किन्तु मध्यकालीन संतों और वैष्णवों में जो 'एकता और अविरोध पर बस बने की प्रवृत्ति है पाश्चात्य और आदिगत विषमता के विषय को आरोग्य है, विविधता के भीतर एक अनुसन्धान का जो स्वभाव है, भक्ति और उपासना के प्रति जो अनन्यता है, मनोभुक्ति को मुक्त करने का जो भाव है और साथ ही सामान्य के द्वारा प्रकृति पर विजय करने की जो अभिलाषा है, उसके निर्माण में जैन तांत्रिकशास्त्रना का भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में योगदान स्वीकार करना चाहिए। लेकिन यह भी स्मरनीय है कि मध्यकालीन हिन्दी काव्य पर जैनशास्त्रना का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है।

कृतिपथ

सहायक ग्रन्थ

अ

- १ अथर्ववेद
- २ आर्यमंशुभीमूल कल्प—त्रिवेन्द्रम सीरीज़, गणपति शास्त्रा, १९२० ई०
- ३ अक्षयविधि—शस्त्रीकरा देवी, बङ्गोदा (हस्तलिखित प्रति)
- ४ अक्षयवधु संग्रह—गायकवाक झा० सीरीज़, बङ्गोदा
- ५ अवेकनिद्र आरु फेप—टी० मुञ्जुकी, शिकागो, १९०० ई०
- ६ अहिबुध्न्य संहिता—एम० डी० रामामुखाचार्य, मद्रास, १९१६ ई०

इ

- ७ इंग्लैडकथन दू पांचरास—ओ० थोडर मद्रास
- ८ एक्ठनल इरयू आरु इटरनेशनल जर्नल आरु तांभिक आर्डर—न्यूयार्क
- ९ एसीमेंट्स आरु हिन्दू आइफ्नोमैजरी—बी० एन० राव

उ

- १० उत्तरी भारत की संत पाण्डा—परशुराम चतुर्वेदी

ए

- ११ ऐनलियैरट हिस्ट्री आरु पीस्टन इतिहा, इंडिया एण्ड ब्रीट—पी० वैडरिच
हावनी, न्यूयार्क
- १२ ऐन इंग्लैडकथन आरु बुद्धिष्ट इलोटीरिस्म—बी० महाचार्य
- १३ ऐन इंग्लैडकथन दू तांभिक बुद्धिस्म—शशिभूषण दाम गुता
- १४ ऐन इंग्लैडकथन दू द स्टडी आरु इंडियन हिस्ट्री—एम० ई० १९२६ ई०

ओ

- १५ ओमनकोर रिमाजल बस्टन—शशिभूषण दाम गुता

क

- १६ के० पी० मरनागर कयेमोरेटन बॉस्निय—अनपुर

- १७ कृष्ण यजुर्वेद
 १८ श्रीसीतली उपनिषद्
 १९ करवन् म्यूह—सत्यवत समभषी, १८७३ ई०
 २० कूर्म पुराण
 २१ करमीरी शैव दर्शन—जे० एन० चटर्जी
 २२ कुलाचार्य तंत्र
 २३ कीलावली निर्याय
 २४ करमीर ऐतिहासिक—जे० सी० चटर्जी
 २५ कर्नैटिव एवम् किट्टिकल छठी आठ मंत्रशास्त्र—एम० बी० म्हावेरी
 ब्रह्मसाधार, १९४४ ई०

ग

- २६ गखेर—एलिस गरी
 २७ गुणविधि—गायकवाङ्ग पुस्तकालय, बङ्गोदा (हस्तलिखित प्रतिलिपि)
 २८ श्रीनिगत श्लोक ३ तंत्राङ्ग—गोपीनाथ कविराज
 २९ गणेश तंत्र—एम० एम्० काक—भीनमर, करमीर

घ

- ३० छान्दास्य उपनिषद्

च

- ३१ ज्ञानानुभूति—सर चार्ल्स इलियट, लंदन, १९३५ ई०
 ३२ जर्नल आठ ऐतिहासिक लोकाहृत आठ बंगाल
 ३३ जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी

छ

- ३४ चोदक एवम् चिन्तन—ब्रिजियम बाकरदुर्गद्विषय

ज

- ३५ ज्योतिष्यन गीर्वाह इन माहर्न हिन्दूधर्म—डब्ल्यू० टी० एलमार

झ

- ३६ तंत्रशास्त्र—अभिनवगुप्त संस्कृत लोरीङ्ग, भीनमर, करमीर
 ३७ तंत्र संग्रह—छात्ररचित—गायकवाङ्ग, प्रो० लोरीङ्ग, बङ्गोदा
 ३८ तन्त्रशास्त्र गुण—बी० महाशार्य, बङ्गोदा

- ४६ तमोर-फिटालॉग—पी० कार्डियर
 ४७ तांत्रिक टैक्सट्स, कलकत्ता
 ४८ तंत्रराज महारक

द

- ४९ द फाठ डेरॉस आण्ड आयर्नानिक रिलीजन—एन० जे० शिग्द, मैसूर
 ५० द मंडर, दैट यात्र इंडिया—ए० एल० बारास, लंदन १९५३
 ५१ द रिलीजस कनेस्ट आण्ड इंडिया—जे एन० फर्कुंडर १९२० ई०
 ५२ द स्टोपीड आण्ड नागाजुनेन मीम तिभवतन एयड वाहनीड तांत्रिक—बल्लभ
 ५३ द महर गौडैस आण्ड कामाख्या—बेनीकांत काठारी, गाहाटी
 ५४ द शाक्ता—ई० माइने, कलकत्ता, १९३३ ई०
 ५५ देवी रहस्य—रामचन्द्र काठ, भीनगर, १९४१ ई०

न

- ५६ नैरात्म्य परिशुद्धा—मुनीतकुमार मुन्गोपाध्याय कलकत्ता, १९३३ ई०
 ५७ निगम यागावली—अमयकर गुप्त

प

- ५८ प्रज्ञा पारमिता
 ५९ पंचविंशति प्रज्ञापारमिता—नलिनाकदत्त, कलकत्ता १९३४
 ६० प्रज्ञावाचिनिश्चय निधि—चर्मग बस
 ६१ पाशुगाम कल्पतंत्र—गायकबाद आ० लोरीड, बकीदा
 ६२ पापनन्द सूत्र—रथामी त्रिबिरम तीर्थ, बकीदा, १९३९ ई०

फ

- ६३ फिथीवर्किल एसेड—मुरेद्रनाथ दान गुप्ता कलकत्ता १९४१ ई०

प

- ६४ पुडिण्ट आइकनोग्रेफी—पी० भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९२४ ई०

म

- ६५ मार्तीय दशन—अनदेव उराध्याय

म

- ६६ मदाभास—गीता प्रेम

- ६० महापान बुद्धिग्रम एयङ् इत्स रिशेयान द् हीनपान—एन० एच, लंदन,
१९१० ई०
- ६१ मीनुभला आफ इडियन बुद्धिग्रम घो० एच० कर्न, ब्र्यासबर्ग, १८९६ ई०
- ६२ महापानभद्रोत्पाद सूत्र अश्व घोष
- ६३ माडर्न बुद्धिग्रम एयङ् इत्स फीलोअर्स इन जर्जीसा—एन० एन० बसु—
कलकत्ता—१९११ ई०

६४ महापुण्य

घ

६५ योगशास्त्र—हेमचन्द्र

च

६६ साम्प्रपम—बेडेल, कैम्ब्रिज, १९१४ ई०

६७ कश्मिरासहस्रनाम—घोटकमबर, अर्नत कृष्ण शास्त्री
(धर्मरेजी मापा में अनूदित)

च

६८ वैदिक सम्पत्ति—रघुनन्दन शर्मा

६९ बृहदारण्यक उपनिषद्

७० अथर्वनामामृततरंगिणि—ब्रह्मयामिनी चिन्ता, बङ्गोरा

७१ बख्तिस्वारहस्वम्

७२ श्रीरामजी शास्त्र

छ

७३ खेवाइरी—आर० एम० मैसीवर, लंदन, १९५६

७४ साधन माला—डॉ० भद्राचार्य बङ्गोदा, गावकबाक आरिपेटल धोरीत

७५ मुलावती इष्ट

७६ सङ्गम पु बरोड—डा० कर्न तथा बी० जंभियो, सेंट्रलरिचर्वम १९१२ ई०

७७ लद्वगिनि—बङ्गोदा (इस्तलिनित मति) डोम्बी ब्रेडर ।

७८ सेईन्ट्रैरय टीका—नाउपा, घो० इष्टीन्ट्र्यूट, बङ्गोदा

७९ विद्वान्त दम्बर—बलराम दास

८० सैन्दर्य लदरी—रंजराचार्य

८१ सम आर्षेः। इत् आक्र द क्रियाकर्त्री शोक संभ—गापीनाथ कवियज्ञ, वि
आक्र वेत्त, सी

८२ स्वन्द निर्णय—सेमराज, भीनगर, कश्मीर

८३ स्वन्द स्वन्द संभ—भीनगर, कश्मीर

८४ संतसुधाकार—विद्योमी हरि

८५ संत काव्य—परशुराम खड्गबेदी

प

८६ पदचक्र निरूपण

रा

८७ भीरावा का क्रमिक विकास—राशि मूषणदास, काशी

८८ रावपप आशय

८९ भीमदमागवत पुराण

९० राशि एवद राशि—रत जॉन बुद्धरक्त, मद्रास

९१ राशि शोक (कल्याण) मारवापुर

९२ रयाना ररस्य—जीवानन्द विद्यासागर, बलकसा

इ

९३ हिस्त्री आक्र इदियन विनीतश्री—सुरेन्द्रनाथदुस गुप्ता, कैमिन्न

९४ इतिविचार—गायक० श्री० सीरीन्द्र, बड़ीदा

उ

९५ त्रिपुरा ररस्य—गापीनाथ कवियज्ञ

क

९६ शानविधि—इन्द्रभूति

९७ शानार्थक—शुमचन्द्राचार्य

नामानुक्रमणिका

अ

अतिशयोक्ति ३१, ३२३
 अमिषसंग्रह २१, २५, २३६ ३२७
 अमरवेद २१
 अमरवचन ७५
 अमरवचन ७६
 अनुसूची भाग ५७
 अमरवचन ८५
 अमरवचन पुत्र ११४, ११५, १२०
 अमरवचन १११
 अमरवचन १४४

अमरवचन सिद्धांत ११६
 अमिताभ कुण्ड १११
 अमिताभ कुण्ड ११०
 अनुसूची भाग १७६
 अमरवचन २८६
 अमरवचन २९०
 अमरवचन ३२१
 अमरवचन ३२६
 अमरवचन २९०

आ

आवरण ५३
 आर्य-प्रवेशिका २५
 आर्य-भाग्य १२
 आर्य १३०

आदि कुण्ड १०५
 आगत प्रामाण्य २४५
 आगत भाग २५२

इ

इतिहास ११
 इतिहास ४८

इतिहास १४, १५

उपान ८७

उ

उत्पत्ति २२१ २५४, २८१, २८२,
 ३१४

उत्पत्ति विवरण ३३१

ए

अस्ताचार्य १४, ७३
 अस्ता ७७
 अथा २१, ८१
 अर्ध एव० मोक्षेतर ५७, १४०
 अर्धियर ७४
 अग्नीव सदा ३७
 अक्षय्यमान १०९, १२०
 अत्रोवाये १२२
 अत्रेकी १०५

लेखी दृष्टा ११, ३१४, ३२०

अत्र अशिमूपसदास ४१, ८८, १३१
 अत्रपतिद्यास्त्री ३६
 अत्रे एविस २७

अत्रोपाख्याय लेखी अत्राव २२
 अत्रुवा २२६, ३१३

अत्रु २०
 अत्रिवाद अत्रम ३१२
 अत्रि वीय ३३३

अत्रेरी एम० वी० ३३३

अत्रे १३, १८

अत्रो वेस्व ७९

७

अत्रुव २३१
 अत्रुवखिनी ३१४
 अत्रुव-रहस्य २३३
 अत्रुवारी पूमा २२३
 अत्रुव सावना २२०, ३१६
 अत्रुवसावना २७०
 अत्रुव २७४
 अत्रुव-रहस्य ७७२, २१४, २१८
 अत्रुवसर्विणी २७४

क

कसमाख्या १३२, ३१४

ग

गोपीरति विहार ४२
 गिजितेक २१४
 गालोपम अत्रस्या २१८

ख

खगुर्वी पराद्याम ३४३

ख

खगुर्वी अत्रित्य ३३६
 खगुर्वी-अत्रुवसावना ३४०
 खगुर्वी ३३६, ३३७

ग

घ

घ

क्या ८४
 / वस्तुवाच ४०
 बुद्धीवाच ४०
 वाच्य ८४
 लोकोत्पत्तिवाच ४१
 गारावाच ७३, ७३

वाच्य ४८

इत्यवधिवाच ४८, ८८
 वाच्यवाच ७३
 वीच्य २७८
 बुद्धी विज्ञान ३२१

धर्मवैशिष्ट्य ४०
 ध्यान २७८

भागात्म ४२, ८०
 भागात्म द्वितीय ६४
 भाग्य ७६ १०३
 निर्माय काया ८७
 शैलान्ध ६५
 निर्माय ५२

प्रज्ञा पारमिता ३०
 प्रत्यक्ष मय ३१

बुद्धीच गृह ३१
 मन्त्रिण ८१

य

तांत्रिक बीजमय का रूपान्तरण १४०
 तयागत ज्ञान ११२
 तिरोधान-शक्ति १७६, ३०२
 तर्क का रहस्य २६७
 तन्त्र विज्ञान २८७

य

द
 दक्षिणाचार २२६
 देवता १०२, ११६, २७४
 दशाब्दा १८६, २८१

य

धारणा २६८
 धारणी मंत्र ३८, ६८

म

निरञ्जन २३४
 नाद २६१
 नाद-वेद ३००
 न्याय ३०८
 नैमित्तिक कार्य ३०५
 नारी सम्मान ३१३

य

पाद्यरात्र वीच्य १७८
 पूर्वाभिप्रेत २१४
 वाचरात्र अधिपता १०७
 पाद्यरात्र लोग १७८
 वाच ६५१

पद्यकत्र ७५
 पादुपत मत् ३६
 मतीकमधमकता ३२
 प्रतिपत्ति ६८
 पुनर्कर्म ६६
 मन्वराय विमर्ष ६७, ६४७
 पंचमङ्गल ६७
 पाञ्चरात्र मत्-व्यक्तिवाद् १६१
 पाञ्चरात्र-दशांश १२६
 पाञ्चरात्र की वैदिकता १५६
 पोषक १२०
 पञ्चपार्श्वद्वार ११२
 पाञ्चरात्र स्यक्त्या १७७

कङ्कुर जे० एन० ६१, ७७

मन्वराय वनर्षी २३
 मङ्गलवाद् २८
 मन्वराय ३३
 मन्वराय सुविधावाद् ४१
 मोक्षिण्य ६६
 विन्दु ६७, २६०
 मोषि ६५
 बौद्ध-मतीक ७१
 मुद्राव ५१
 बौद्ध-मत् ६१
 बौद्ध ध्येय ११२
 बौद्धिवाच कुत्र ११२
 बौद्ध देवता-संस्कृत ११५
 बौद्ध-वैश्वदेव १४३

मन्वरायवाद् २३१
 मन्वराय २८२
 श्रुवा २७१
 मन्वराय २८६
 मन्वराय २६६
 पराणक्ति २६८
 परम इत्य २७८
 पिरोधिकार मार्ग २६८
 प्रतिमा-संस्कृत २००
 परवेच ३०७
 पीठ ३०८
 प्रेमी नापूराम ३३३

फ

ब

बौद्ध धर्मिक १२२
 बापुरी काति १७६
 बौद्ध मन्विधान १२२
 बौद्ध-मतिप्रिया १२५, १२२
 बौद्ध चक्र आचन १२१
 बौद्ध कर्म-संस्कृत १३७
 बौद्ध वैश्वदेव १०५
 बौद्ध रक्षा मन्वरा १२१
 बौद्ध पूजा १२२
 बौद्ध धर्ममाग १२३
 बौद्ध देवपुत्र विस्तार १०२
 बौद्ध कर्तव्य योग १३०
 बलिपुत्र ३०७
 बुद्ध साधना ३२३

भारतीय जीविकयात्र १२
अन्वयक पृथ्वी २८, ३६
भगवती यशोवरा ७७
महाचार्य बी० ४८
मखिय क बुक १०२
मीरव ताव २१४

म
मीरबी भाष २१५
भावना २१८
भस्म २७०
भुजंग वेध ३०७
मीरबी कव ३१३

महासुख ७६, १०० १०१
महाभाग १००
महास्वय ६९
मुक्तोपाध्याय सुमीरकृमार ८१
महाराज महीपाक ७६
मंत्रपात्र ८०
महामारत ३६
महासांखिक ३१
मालुची बुक १०८

म
मुद्रा रहस्य १२६, ३१०, ३१३
मंत्रसिद्धि १३६, २७१, २७५
मंत्रुषी १०२
मदिरापात्र ३१८, ३२१
महाप्रलय २६०
मन्त्र २६९
मघत्साव ३०८
मूर्ति ३१०

मधुसुत ६६
मुगलक ४२, ६६ ६७, ६८, २०५
वासुदेवाचार्य १५६

य
मुगल विहार २३५
यामक रहस्य २३०
योगिनी विहार ३१५

रत्नाकर शांति ६४
रघुवर्मन शर्मा ३६, १६
राष्ट्र २८ ३६
रामजीवा ४३
राजा १८, २८, ३५
राजर्षिक वृत्ता ३६
रामानुजाचार्य वम० बी० १६०

र
रामसम्मन बुक १११
रमाह वंवित्र १४४
राष्ट्र-रहस्य २३३
रति रहस्य २८३-८४
राम ताव २५४
राग २६४

क

कोशिका २८९, ३०३

ख

बायी विद्या २१५
 वृत्ति विद्या २३३
 बिकल्प परामर्श २७०
 बामाचार २७८, ३०१, ३११
 व्यापिनी अकस्या २८९
 विद्या केवली २८३
 बर्ताभा ३००
 केवलीया ३०६

ग

शिखाचार्य ७३-७४
 समय तत्व ६७
 सुसुखी ८६
 स्रजवद् ८८
 सम्भोग माया ८१, ८३
 स्रजालम् ८८
 संक्षिप्ति ८७
 संक्षय शक्ति २४३
 शक्तों का अनुभूतिवाच २४१
 शाकार मन्त्र २४५
 श्वा २७०
 श्रमना श्रवस्या २८१, २८९
 शक्ति २८०
 शास्त्रोक्त मुक्ति २८१
 शक्त रामसिंह ३४१

घ

मययोग ३३३

विदेह युद्ध ० प० ११२
 बसु साग्रबाब १४१, १४४
 ब्रह्मजप १३१, १३५
 ब्रह्मन्त्र कुञ्ज १११
 विदेह कुञ्ज १०२
 वैश्वानर १८४
 विद्या चन्द्रमाषणा १८३
 वैश्वान मंत्र साधना १८२

सहस्रविद्या २८, ४०
 संवर्ध और अमन्त्र ३४
 संख्याभाषा ६१
 सुरापान २५
 सहयोगिनी चिन्ता ७५
 सर्वास्तिवाह ५०
 सुखावती स्पृह ५३
 सहजभाषा ८१
 सुखावती १०२
 सामास्य १०२ २५८, २६०
 समरमन्त्र १०३
 सिद्धि-प्राप्ति १३५
 सुरेन्द्रनाथदास गुप्ता बा० १३४
 सहजपाठ का योगदान १३८
 स्रज १०३, २६३, २६६, ३२६

बद्ध मिश्रण २१४

यथात्मकी ६४
 यात्रिदेव ६४
 यतिरचित ४८
 यिन्मे पुन० खे० १९
 यम्य २१
 यम्यदा ६६, १००, ११२
 येश्वर खे० १५१
 यिक-शक्ति कामना १५०
 यरवामपठि १७९
 यमदान साधना ३२३
 याक-शक्तियाल २०९
 याक तत्व ज्ञान २०६
 यक्ति साधना २१०
 याक-दीक्षा २०८
 याक-कु कश्चिन्नी योग २१२
 यक्तिर्मा २१३

युक्तनी वेदरित् १४
 यै आर० खी० १३
 यरम्यद यात्रयी १४३

यिद्यत्त रत्न २५१

याम : यिया २५५

रा

राक्षियात् १७६, १०१
 रीव परम्यदा १४०
 राक छुष्टि-विज्ञान २०१
 राक-दर्शन १९९
 राकमत्र २११
 रीवदशन २४३
 रीव शक्ति सिद्धाम् २५२
 रीव साधना २५६
 रात्मन उपाय २५६
 रीव जप २५५
 रीव पूजा २७७, ३१९
 रीवक्याक साधना २६९
 रीव तत्व ज्ञान २६२
 राकि ३१०
 राक तत्व ३०७

इ

इत्याक २६६
 इम १०९

ज

श

